ALOCHNA HINDI

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

G K V

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079,574

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

R
विषय संख्या
पुस्तक संख्या
आगत पंजिका संख्या

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है । कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

Stock Verification-20

तारीख ११-८४-११८५

Stock Verification-20

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

सम्पादक शिवदानसिंह चौहान

CHECKED 1973

३२

आलोचना

079574

...ी साहित्य...	शिवदानसिंह चौहान
...ष्टि और समाजवादी यथार्थवाद	नवलकिशोर
...स्त्र	ब्लादीमीर वाइद्ले
...ीन कथा-चरित्र	डॉ० बेचन
... और हिन्दी की नयी कविता	गोविन्द रजनीश
आस्था और नयी कविता	डॉ० छोटेलाल दीक्षित
अपभ्रंश कथा-काव्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री
कामायनी की अतिलौकिक अन्तर्योजना	डॉ० रमाशंकर तिवारी
अंग्रेज़ी कविता : एक दिशा संकेत	सकलदीप सिंह
जेम्स जॉयस कृत 'युलिसिस' : एक कथा-प्रयोग	रामसेवक सिंह

079574

...ज़कमल प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...विश्वविद्यालय आलोचना

...अंक ३२ नवांक ६ अक्तूबर, १९६४

...क मूल्य १२) प्रत्येक अंक रजिस्ट्री
... अंक का ३) से पाने के लिए १४)

अनुक्रम

● सम्पादकीय

—स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक 1

● सिद्धान्त विवेचन

—मार्क्सवादी कलादृष्टि और समाजवादी यथार्थवाद
नवल किशोर ५

—कला का जीव-शास्त्र
व्लादीमीर वाइद्ल २१

—आधुनिक कविता और रस सिद्धान्त
डॉ० सावित्री सिनहा ३६

—आधुनिकता और नवीन कथा-चरित्र
डॉ० बेचन ४२

● हिन्दी-साहित्य

—यौन परिकल्पनाएँ और हिन्दी की नयी कविता
गोविन्द रजनीश ४८

—आस्था और नयी कविता
डॉ० छोटेलाल दीक्षित ५४

● भारतीय साहित्य

—अपभ्रंश कथा-काव्य
डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री ६२

—कामायनी की अतिलौकिक अन्तर्योजना
डॉ० रमाशंकर तिवारी ७५

● विश्व-साहित्य

—एक महान् अमरीकी कवि रावर्ट फ्रास्ट
सलाम मछली शहरी ८६

—अंग्रेज़ी कविता : एक दिशा संकेत
सकलदीप सिंह ९१

—जेम्स जॉयस कृत 'युलिसिस' : एक कथा प्रयोग
रामसेवकसिंह ९८

● प्रस्तुत प्रश्न

—आज का बाल साहित्य
हरिकृष्ण देवसरे १०८

—आधुनिक हिन्दी कविता में 'विराट्' तत्त्व
रणजीत ११२

● साहित्य और कला

—संस्कृत नाटकों में संगीत की परम्परा
डॉ० श्रीमती गिरीश रस्तोगी ११८

● मूल्यांकन

—परशुराम की प्रतीक्षा, कोयला और कवित्व
डॉ० बेचन १२५

—दो नई कविता-पुस्तकें
डॉ० शिवकुमार मिश्र १३१

—चारु चन्द्रलेख : प्रथम वाचन की एक प्रतिक्रिया
डॉ० गोपाल राय १३६

—रेखा
श्रीमती विजय चौहान १३९

—दो नये उपन्यास
डॉ० महेन्द्र भटनागर १४२

—लौटती लहरों की बाँसुरी
मधुरेश १४३

—हिन्दी साहित्य और बिहार
डॉ० कुमार विमल १४५

—तांत्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि
प्रो० कैलाशचन्द्र मिश्र १४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

सम्पादकीय

'आलोचना' के लिए [illegible] होगा—लगभग ८०० पृष्ठों के एक वृहत विशेषांक के माध्यम से जिसका प्रकाशन चार खण्डों में अगली जनवरी से आरम्भ हो रहा है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के ये नेहरू-कालीन १५-१६ वर्ष हिन्दी में साहित्यिक सृजन और विकास के अभूतपूर्व वर्ष रहे हैं।

पुरानी और नयी पीढ़ी के प्रतिभासम्पन्न लेखकों ने इसमें समान रूप से योग दिया है। उनके कृतित्व का मूल्यांकन और हिन्दी साहित्य के सम्मुख नित्य उठनेवाले प्रश्नों का गम्भीर विवेचन पुराने युगान्त और नये युगारम्भ की वेला में एक अनिवार्य दायित्व था, जिसकी पूर्ति के लिए हिन्दी के लगभग ११५ मूर्धन्य आलोचक और विद्वान सहयोग कर रहे हैं इस विशेषांक में, जिसकी रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत है।

विषय-सूची

		पृष्ठ-संख्या
नया ऐतिहासिक सन्दर्भ : नये प्रभाव : नया परिप्रेक्ष्य : नयी प्रवृत्तियाँ : नयी उपलब्धियाँ : नयी समस्याएँ : नये दायित्व।	शिवदानसिंह चौहान	१६
१. निबन्ध : विभिन्न विधाओं की उपलब्धियों का मूल्यांकन		
१—हिन्दी आलोचना : विकास की प्रक्रिया	डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी	१६
(अ) छायावादी समीक्षा : सीमा और सम्भावना	डॉ० विजयशंकर मल्ल	१२
(ब) प्रगतिवादी समीक्षा : सीमा और सम्भावना	डॉ० चन्द्रभूषण तिवारी	१२
(स) नयी समीक्षा : सीमा और सम्भावना	विश्वम्भर 'मानव'	१२
२—हिन्दी कविता : प्रवृत्यात्मक विवेचन और मूल्यांकन	डॉ० जगदीश गुप्त	१६
(क) हिन्दी कविता : प्रगतिशील	डॉ० शिवकुमार मिश्र	१२
(ख) हिन्दी कविता : प्रयोगशील	रामशंकर मिश्र	१२
(ग) हिन्दी कविता : गीत	ठाकुरप्रसाद सिंह	१२
(घ) हिन्दी कविता : प्रबन्ध-काव्य	डॉ० रामदरश मिश्र	१२
३—हिन्दी उपन्यास : यथार्थ जीवन और युग के केन्द्रीय प्रश्नों का रूपायन	डॉ० रामगोपालसिंह चौहान	१६
४—हिन्दी नाटक : विकास की भूमिका	डॉ० सुरेश अवस्थी	१६
५—हिन्दी एकांकी तथा रेडियो नाटक	चिरंजीत	१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ : आलोचना

६—हिन्दी कहानी : नयी प्रवृत्तियाँ और उपलब्धियाँ	डॉ० नामवरसिंह	१६
(अ) हिन्दी की १२ श्रेष्ठ कहानियाँ : पुरानी पीढ़ी का योगदान	मधुरेश	१२
(ब) हिन्दी की १२ श्रेष्ठ कहानियाँ : नयी पीढ़ी की उपब्धियाँ	धनंजय वर्मा	१२
७—हिन्दी-निबन्ध	डॉ० रामखेलावन पाण्डेय	१२
८—हिन्दी में बाल-साहित्य	मन्मथनाथ गुप्त	१२
९—हिन्दी में समाजशास्त्रीय साहित्य—मौलिक तथा अनूदित	राजाराम शास्त्री	८
१०—हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य—मौलिक तथा अनूदित	भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव	८
११—हिन्दी का रंगमंच : राष्ट्रीय रंगमंच का सूत्रपात ?	वीरेन्द्र नारायण	१२
१२—हिन्दी में भारतीय साहित्य	गोपालकृष्ण कौल	१२
(क) हिन्दी में उर्दू शायरी	शमशेर बहादुरसिंह	१६
(ख) हिन्दी में उर्दू कथा-साहित्य	दीवान बीरेन्द्रनाथ	१६
(ग) हिन्दी में बंगाली कथा-साहित्य	सकलदीप सिंह	१६
(घ) हिन्दी में पंजाबी साहित्य	शमशेरसिंह नरूला	३
(ङ) हिन्दी में मराठी साहित्य	शरद्चन्द्र मुक्तिबोध	३
(च) हिन्दी में गुजराती साहित्य	श्रीमती शान्ता गांधी	३
(छ) हिन्दी में उड़िया साहित्य	युगजीत नवलपुरी	३
(ज) हिन्दी में तमिल साहित्य	डॉ० राजगोपालन	३
(झ) हिन्दी में तेलुगु साहित्य	अयाचित हनुमत् शास्त्री	३
(ञ) हिन्दी में कन्नड साहित्य	प्रो० नागप्पा	३
(ट) हिन्दी में मलयाली साहित्य	वेल्लयाणि अर्जुनन	३
१३—हिन्दी में विश्व-साहित्य	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	१२
१४—हिन्दी में शोध-कार्य : सीमाएँ और सम्भावनाएँ	डॉ० विजयेन्द्र स्नातक	१२
१५—विदेशों में हिन्दी-साहित्य	डॉ० प्रभाकर माचवे	१२

२. सामयिक प्रश्न

१—साहित्य के नये मान-मूल्य	डॉ० नन्ददुलारे वाजपेयी	८
२—साहित्य के नये मान-मूल्य	नेमिचन्द्र जैन	८
३—आधुनिकता और सामयिकता	डॉ० नगेन्द्र	८
४—आधुनिकता और सामयिकता	गिरिजाकुमार माथुर	८
५—परम्परा और प्रयोग	अमृतराय	८
६—परम्परा और प्रयोग	डॉ० रामखेलावन पाण्डेय	८
७—लेखक और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य	डॉ० रामविलास शर्मा	८
८—लेखक और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य	बालकृष्ण राव	८
९—लेखक और मानववाद	डॉ० एहतेशाम हुसेन	८
१०—लेखक और मानववाद	डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी	८
११—लेखक और युग के केन्द्रीय प्रश्न	सज्जाद जहीर	८
१२—सौन्दर्यशास्त्र के नये आधार	डॉ० रमेशकुन्तल मेघ	८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३—सौन्दर्यशास्त्र के नये आधार — डॉ० कुमार विमल — ८
१४—हिन्दी साहित्यालोचन की भाषा तथा शैली — कल्याणमल लोढ़ा — ८
१५—हिन्दी में प्रसार के आधुनिक साधन : संकर-संस्कृति का विकास और साहित्यिक मूल्यों का प्रश्न — श्रीमती विजय चौहान — १२
१६—'भारतीय' साहित्य के विकास की समस्या — कृष्णा कृपलानी — ८
१७—'भारतीय' साहित्य के विकास की समस्या — डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा — ८
१८—विश्व-साहित्य में हिन्दी तथा भारतीय साहित्य के प्रवेश की समस्या — डॉ० रघुवंश — ८
१९—विश्व-साहित्य में हिन्दी तथा भारतीय साहित्य के प्रवेश की समस्या — प्रकाशचन्द्र गुप्त — ८

३. साहित्यिक रेखा-चित्र : व्यक्तित्व और कृतित्व का आकलन

१—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' — डॉ० भगीरथ मिश्र — ४
२—राहुल सांकृत्यायन — भदन्त आनन्द कौसल्यायन — ४
३—बाबू गुलाबराय — डॉ० सत्येन्द्र — ४
४—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' — भगवतीचरण वर्मा — ४
५—रांगेय राघव — डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' — ४
६—गजानन माधव मुक्तिबोध — हरिशंकर परसाई — ४
७—मैथिलीशरण गुप्त — डॉ० विनयमोहन शर्मा — ४
८—सुमित्रानन्दन पंत — नरेन्द्र शर्मा — ४
९—महादेवी वर्मा — डॉ० शम्भूनाथ सिंह — ४
१०—रामधारीसिंह 'दिनकर' — डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' — ४
११—हरिबंशराय 'बच्चन' — डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन' — ४
१२—हज़ारीप्रसाद द्विवेदी — डॉ० इन्द्रनाथ मदान — ४
१३—भगवतीचरण वर्मा — अमृतलाल नागर — ४
१४—यशपाल — उपेन्द्रनाथ 'अश्क' — ४
१५—जैनेन्द्रकुमार — डॉ० देवराज उपाध्याय — ४
१६—उदयशंकर भट्ट — क्षेमचन्द 'सुमन' — ४
१७—उपेन्द्रनाथ 'अश्क' — जगदीशचन्द्र माथुर — ४
१८—स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय' — विद्यानिवास मिश्र — ४
१९—अमृतलाल नागर — इलाचन्द जोशी — ४
२०—इलाचन्द जोशी — वाचस्पति पाठक — ४
२१—नरेन्द्र शर्मा — भारतभूषण अग्रवाल — ४
२२—शमशेर बहादुरसिंह — अशोक वाजपेयी — ४
२३—गिरिजाकुमार माथुर — डॉ० कैलाश वाजपेयी — ४
२४—अमृतराय — प्रकाशचन्द्र गुप्त — ४
२५—नागार्जुन — केदारनाथ सिंह — ४
२६—डॉ० नन्ददुलारे वाजपेयी — डॉ० बच्चन सिंह — ४
२७—डॉ० नगेन्द्र — डॉ० कुमार 'विमल' — ४
२८—डॉ० रामविलास शर्मा — रणजीत — ४
२९—धर्मवीर 'भारती' — चन्द्रदेव सिंह — ४
३०—फणीश्वरनाथ 'रेणु' — डॉ० नर्मदेश्वर प्रसाद — ४
३१—मोहन राकेश — रमेश बक्षी — ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. मूल्यांकन : आलोच्य काल की श्रेष्ठतम कृतियों का पुनर्मूल्यांकन

१—अतिमा : कला और बूढ़ा चाँद	बालकृष्ण राव	६
२—लोकायतन	इलाचन्द्र जोशी	६
३—उर्वशी	डॉ० जगदीश पाण्डेय	४
४—हम विषपायी जनम के	डॉ० रवीन्द्र 'भ्रमर'	४
५—कुछ कविताएँ, कुछ और कविताएँ	कुंवर नारायण	६
६—धूप के धान	राजीव सक्सेना	४
७—अन्धा-युग	डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव	६
८—चाँद का मुँह टेढ़ा	विष्णुचन्द्र शर्मा	६
९—प्यासा निर्झर	डॉ० सियाराम तिवारी	६
१०—झूठा-सच	डॉ० केशरीनारायण शुक्ल	४
११—भूले-बिसरे चित्र	डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित	६
१२—जहाज का पंछी	डॉ० गंगाप्रसाद पाण्डेय	४
१३—बूँद और समुद्र	डॉ० विश्वम्भर उपाध्याय	६
१४—चारुचन्द्रलेख	डॉ० शिवनाथ	४
१५—मैला आँचल, परती : परिकथा	श्रीकृष्णदास	६
१६—वलचनमा	कृष्णनन्दन 'पीयूष'	४
१७—सुखदा	डॉ० गोपाल राय	४
१८—शहर में घूमता आईना	डॉ० मक्खनलाल शर्मा	४
१९—कब तक पुकारूँ ?	गोविन्द रजनीश	४
२०—सागर, लहरें और मनुष्य	डॉ० लक्ष्मीकान्त शर्मा	४
२१—रूपान्तर	मेहताब अली	४
२२—कोणार्क	डॉ० कुंवरजी अग्रवाल	४
२३—आषाढ़ का एक दिन	डॉ० महेन्द्र भटनागर	४
२४—पथ के साथी	डॉ० सावित्री सिनहा	४
२५—कलम का सिपाही	नवल किशोर	४
२६—हरीघास पर क्षण भर, अरी ओ करुणा प्रभामय	डॉ० बेचन	६
२७—यह पथ बन्धु था	डॉ० लक्ष्मीधर मालवीय	४

५. हिन्दी क्षेत्र की प्रमुख भाषाओं का नया साहित्य

१—हिन्दी क्षेत्र की भाषाओं का नया-साहित्य : एक सर्वेक्षण	डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय	१२
२—मैथिली का नया साहित्य	नागार्जुन	३
३—भोजपुरी का नया साहित्य	हरिशंकर उपाध्याय	३
४—ब्रज का नया साहित्य	डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया	३
५—अवधी का नया साहित्य	डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित	२
६—राजस्थानी का नया साहित्य	डॉ० नरेन्द्र भानावत	३
७—मालवी का नया साहित्य	डॉ० श्याम परमार	३
८—छत्तीसगढ़ी का नया साहित्य	डॉ० सावित्री शुक्ल	३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवलकिशोर

मार्क्सवादी कला-दृष्टि और समाजवादी यथार्थवाद

(१)

मार्क्सवादी विचारधारा ने कला और साहित्य के सम्बन्ध में एक सर्वथा विशिष्ट दृष्टि को जन्म दिया है। द्वन्द्वात्मक विकास की मार्क्सवादी धारणा के अनुसार उत्पादन-सम्बन्धों और उत्पादक शक्तियों के संघर्ष से जीवन का भौतिक-विधान बदलता है और चूंकि भौतिक-विधान अन्ततोगत्वा बौद्धिक विधान को निर्धारित करता है, अतः उसके बदलते ही कानून, राजनीति, धर्म, दर्शन और कला आदि सभी बदलने लगते हैं। इस तरह कलागत मूल्यों का सम्बन्ध आर्थिक आधार से अनिवार्यतः होता है, किन्तु यान्त्रिक भौतिकवाद के समान यह दृष्टिकोण यह नहीं मानता कि कलाकृतियाँ आर्थिक प्रक्रियाओं और आवश्यकताओं का प्रतिबिम्ब मात्र हैं। इनमें संश्लिष्ट सामाजिक यथार्थ का चित्रण होता है, सीधे आर्थिक सम्बन्धों का निरूपण नहीं और यद्यपि अन्तिम निर्णायक तत्व आर्थिक आधार ही होता है, किन्तु धर्म, दर्शन, परम्परा आदि भावगत तत्वों का भी उनकी रचना में भारी योग होता है।[1] भावगत प्रकरण भी एक सीमा तक इतिहास के क्रम को प्रभावित करते हैं, अतः कला की भी सामाजिक विकास में निश्चित भूमिका होती है। मार्क्सवादी कलात्मक दृष्टिकोण साहित्य को समाजवादी व्यवस्था की स्थापना में एक अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण साधन के रूप में अपनाए जाने पर जोर देता है।

मार्क्सवादियों के अनुसार साहित्य का वर्ग-संघर्ष से अनिवार्य सम्बन्ध है। जिन-जिन समयों में वर्ग-संघर्ष की जैसी स्थिति रही है, साहित्य में उसकी प्रतिक्रिया अवश्य मिलती है। साहित्य और कला को प्रभुवर्ग की सेवा में नियोजित किया जाता रहा है, किन्तु श्रेष्ठ कलाकारों ने, चाहे उनका सचेत दृष्टिकोण प्रभुवर्ग की नैतिकता से ही सम्मत रहा हो, सहज मानवीय संवेदना से प्रेरित होकर अपनी रचनाओं में वर्ग-समाज के अन्यायपूर्ण मानव-सम्बन्धों पर सचेतन या अचेतन रूप में टीका की है। वास्तविकता के चित्रण के प्रति अपने आग्रह के कारण वे विकासमान शक्तियों के उत्कर्ष को चित्रित करने में समर्थ हुए हैं और एक कलाकार के रूप में उनकी सहानुभूति सदैव उत्पीड़ित मानवता के साथ रही है। जो व्यक्ति अपने युग के सामाजिक जीवन में पाये जाने वाले हर प्रकार के अत्याचार और असत्य से घृणा करने में समर्थ होता है, वह क्रान्ति-

१. दृष्टव्य : उपन्यास और लोक-जीवन—रैल्फ फाक्स (अनु० नरोत्तम नागर)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारी वर्ग का विचारक बन जाता है।[1] जिन सांस्कृतिक परम्पराओं ने मानव-चेतना को विकासोन्मुख और सम्पन्नतर बनाने में योग दिया है और जो अन्यायपूर्ण सामाजिक सम्बन्धों को बदलने की आकांक्षा जगाती हैं, वे मानवता की स्थायी निधि हैं। अतीत की इसी मानवतावादी परम्परा से प्रगतिशील कलाकार को अपना नाता जोड़ना है।

मार्क्सवादी विचारकों के अनुसार मार्क्सवाद कलाकार को इतिहास के विकास की दिशा का सही ज्ञान देता है और उसे मानवजाति के भविष्य को लक्षित कर पाने की दृष्टि देता है। आज के युग की सम्पूर्ण विरूपताएँ और विषमताएँ पूँजीवाद की देन हैं। "दो सौ वर्ष पहले का इतिहास साक्षी है कि पूँजीवाद के अन्तर्गत मानव-सम्बन्धों का कोई न्याय-संगत मानवोचित या कहें 'डेमॉक्रेटिक' नियमन असम्भव सिद्ध हुआ है, कि पूँजीवाद वर्ग-वैषम्य, शोषण, भुखमरी, बेकारी, जातिभेद और युद्धवाद जैसी कुत्साओं का जनक और पोषक रहा है। पूँजीवाद में विज्ञान का उपयोग उत्पादन बढ़ाने और विध्वसंक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण के लिए किया जाता रहा है और अबुद्धि-वाद का प्रयोग सामाजिक चेतना को खोखला करने के लिए। फलतः पूँजीवाद में व्यक्ति और समाज के जीवन को खतरा बढ़ता जाता है।"[2] जबकि निराशावादी कलाकार वर्तमान स्थिति को सत्य मानकर विश्व के ध्वंस और सभ्यता के विनाश की संभावना से हताश हो चुके हैं, मार्क्सवादी कलाकार एक नई सृष्टि की प्रसव-पीड़ा के द्रष्टा हैं और पीड़ित वर्ग द्वारा किये जा रहे मुक्ति-संग्राम में हाथ बटाते हैं। वे वर्तमान का चित्रण भविष्य की नियामक शक्तियों को अभिव्यक्ति देते हुए करते हैं। कलाकार का कर्तव्य है कि वह पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष में सर्वहारा का साथ दे और समाजवादी व्यवस्था में उसका लक्ष्य होगा उस व्यवस्था को पुष्ट एवं विकसित करना।

मार्क्सवादी कला-समीक्षकों के अनुसार पूँजीवादी जगत में साहित्य और कला का ह्रास हो रहा है। बुर्जुआ संस्कृति म्रियमाण हो चुकी है, अतः बुर्जुआ कलाकार मानवता के भविष्य के प्रति विश्वास खो चुके हैं। बुर्जुआ कला जनता के जीवन से दूर हट गई है और मनुष्य को संघर्ष से विमुख करती है। जनता से भय, भविष्य से निराशा, कुढ़न और खीझ, मनुष्य से घृणा, नयी समाजवादी संस्कृति को कोसना—ये आज के पूंजीवादी भाव-जगत् की विशेषताएँ हैं। इसके विपरीत देश-प्रेम, संसार की जनता का भाई-चारा, भविष्य में दृढ़ आस्था, आशा और उल्लास—ये शोषण से लड़ने वाली और नया समाज रचने वाली जनता के भाव-जगत् की विशेषताएँ हैं।[3] मार्क्सवादी कला-दृष्टि ही सच्ची और महान् कला को जन्म देने में समर्थ है। उनकी स्थापना है कि साम्यवादी देशों के अलावा"...विश्व के अन्य पूंजीवादी देशों के साहित्य और कला-संस्कृति में भी जो प्रवृत्तियाँ आज मनुष्य की प्रगति की आकांक्षी हैं, जिनसे आशा और उम्मीद का स्वर फूटता है, जिनमें जीवन के प्रति अनुराग और मानव-प्रेम है, जो

1. Lifshitze. देखिए Literature and Marxism' Ed. by Angel Flores.
२. शिवदानसिंह चौहान : आलोचना, २६ जनवरी ६४
३. डा० रामविलास शर्मा : स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य (पृ० ३०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थायी विश्व-शान्ति, आजादी और जनवाद की समर्थक हैं वे सारी प्रवृत्तियाँ मार्क्स और मार्क्सवाद से किसी-न-किसी सीमा तक अवश्य प्रभावित हैं, क्योंकि सत्यान्वेषी कलाकार जीवन की वास्तविकता से विमुख नहीं हो सकते।"[१]

मार्क्सवाद के अनुसार कलाकार का लक्ष्य है संघर्षशील मानवता के क्रान्ति के प्रयत्नों को बल देना। कला लोगों को वैचारिकी दीक्षा देने और उन्हें समाजवादी लक्ष्य की स्थापना में योग देने के लिए प्रेरित करने में सर्वाधिक उपयोगी उपकरण है। मार्क्सवाद, उसके व्याख्याताओं के अनुसार साहित्य और कला को उचित दिशा देता है क्योंकि "रचनात्मक कलाकार के लिए मार्क्सवाद वास्तविकता को समझने की एक कुंजी है। वह उसे जीवन की तरतीब को देखने में मदद देती है और यह बताती है कि उसमें प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति क्या है। यह सचेत रूप में मानव को पूर्ण महत्व प्रदान करती है और इस अर्थ में यह अन्य सभी विश्व-दर्शनों में अधिक मानवतावादी दर्शन है।"[२]

मार्क्सवाद-भावित कलात्मक दृष्टिकोण को समाजवादी यथार्थवाद की संज्ञा दी गई है, जिसका विवेचन अगले पृष्ठों में है।

(२)

रूस में सन् १९३२ ई० में सोवियत लेखकों का एक नया संगठन निर्मित किया गया। इसी समय से वहाँ कला और साहित्य ने विशेष दिशा ग्रहण की। इस दिशा का प्रेरक 'समाजवादी यथार्थवाद' का सिद्धान्त था, जिसे आधारभूत-साहित्यिक प्रतिमान घोषित किया गया। सन्, २० के आसपास विभिन्न सिद्धान्तों पर विवाद सम्भव था, किन्तु सन् १९३२ के बाद मूलभूत साहित्यिक सिद्धान्त के सम्बन्ध में लेखकों के वैचारिक मतभेद का अन्त करने के लिए उक्त सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की गई। मैक्सिम गोर्की इस अभियान के प्रमुख नेता थे। एक नये मानववाद की प्रतिष्ठा को क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग का ध्येय बताते हुए उन्होंने इसमें साहित्यिकों के अनिवार्य योगदान सम्बन्धी कर्त्तव्य का निर्देश किया। इस नये मानववाद के विषय में उनका कथन इस प्रकार है :—

"क्रान्तिकारी सर्वहारा का मानववाद सुस्पष्ट है। वह मानवजाति के प्रति प्रेम के लच्छेदार और मधुर मुहावरे घोषित नहीं करता। इसका ध्येय संसार-भर के सर्वहारा को पूँजीवाद के शर्मनाक, खूनी और वहशी जुए से स्वतन्त्र करना है व लोगों को यह सिखाना है कि वे स्वयं को नक्कूशाहों (Philistines) के निमित्त स्वर्ण एवं विलासोपकरण जुटाने के लिए कच्चे माल के रूप में क्रय-विक्रय की जाने वाली वस्तुएँ न समझें। पूँजीवाद विश्व को उसी तरह अवलांछित करता है जिस प्रकार कि एक जीर्णवृद्ध, जो जीर्णावस्था के रोगों का गर्भाधान कराने के अतिरिक्त नपुंसक है, एक स्वस्थ युवा स्त्री के प्रति अतिक्रमण करता है। सर्वहारा मानववाद का कार्य एक श्रमजीवी से प्रेम की प्रतीकात्मक घोषणाएँ नहीं माँगता, वह हर मजदूर

१. शिवदानसिंह चौहान : साहित्यानुशीलन (पृ० १४५)।
२. उपन्यास और लोक-जीवन (पृ० ५९)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अपने ऐतिहासिक-मिशन की चेतना की, सत्ता पाने के अधिकार की……, धन-लोलुपों से……परोपजीवियों से, फासिस्टों तथा हत्यारों से अमिट घृणा की, उन सब तथ्यों से जो कष्ट के कारण हैं और उनसे जो करोड़ों लोगों के कष्ट पर जीते हैं, घृणा की माँग करता है।"[1]

गोर्की के अनुसार कला साहित्य को समाजवादी समाज की स्थापना के प्रयत्नों में उचित रूप से सहायक बनाने के लिए उन पर कम्युनिस्ट पार्टी का आवश्यक नियन्त्रण होना चाहिए। पार्टी-नियन्त्रण का अनुमोदन करते हुए उसने कहा है कि साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले पार्टी के सदस्यों का साम्यवादी विचारधारा का (जो दुनिया-भर के मजदूरों को आजादी की आखिरी लड़ाई लड़ने के लिए संगठित करती है) शिक्षक बनना ही पर्याप्त नहीं है : आवश्यक है कि पार्टी-नेतृत्व नैतिक दृष्टि से आधिकारिक शक्ति हो जो लेखकों में, उनके बीच जो-कुछ घटित हो रहा है, उसके प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व की चेतना का समावेश करे। गुण के वैविध्य को रखते हुए सोवियत-साहित्य संयुक्त तथा सामूहिक रूप में संगठित होकर समाजवादी संस्कृति का शक्तिशाली अस्त्र बने।[2] उसके अनुसार समाजवादी यथार्थवाद का कलात्मक आदर्श इसी लक्ष्य की पूर्ति करता है :

समाजवादी यथार्थवाद घोषित करता है कि जीवन कर्म है, रचनात्मक है, जिसका उद्देश्य है मनुष्य की सर्वोत्तम वैयक्तिक योग्यताओं का प्रकृति की शक्तियों पर विजय के लिए, पृथ्वी पर जीवित रहने के महान् आनन्द के लिए निर्बाध विकास। इस पृथ्वी को अपनी आवश्यकताओं में अनवरत वृद्धि के अनुरूप सम्पन्न कर वह एक ही परिवार के रूप में संयुक्त मानवजाति का भव्य वासस्थान बनाना चाहता है।[3]

समाजवादी यथार्थवाद यथार्थ जीवन के चित्रण को ही कला की कसौटी मानता है, किन्तु यह यथार्थवाद वास्तविकता को मात्र वस्तुपरक रूप में अंकित करने वाले यथार्थवाद से भिन्न है; यह समाजवादी हैं, जो कलाकार को समाजवाद के प्रसार के लिए ही अपनी कला का उपयोग करते हुए वास्तविकता के निरूपण का निर्देश देता है। साम्यवादी विचारधारा आज की दुनिया को वर्गसमाज से वर्गहीन समाज के संक्रमण-कालीन दौर में देखती है। तदनुसार कलाकार का कर्तव्य है कि वह विश्व की जनवादी शक्तियों द्वारा पूँजीवाद के विरुद्ध छेड़े गए महान् संघर्ष का कलात्मक रूपायन करते हुए प्रतिगामी शक्तियों के अन्तिम पराभव की घोषणा करे। एक सोवियत लेखक के अनुसार "समाजवादी यथार्थवाद का उद्‌भव तब होता है जबकि मानवजाति को बुर्जुआ समाज के भयंकर अन्तर्विरोधों का सामना करना पड़ता है, जबकि वर्गयुक्त से वर्गहीन समाज की ओर संक्रमण (Agenda) कार्यावली में होता है, जबकि आमलोग (Masses) समाजवाद के लक्ष्य के प्रति प्रयत्नशील होते हैं और उसे प्राप्त करने के

1. Maxin Gorki : 'Culture and the People'
2. Maxim Gorki on Literature (P. 263)
3. Ibid (P. 264)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए संघर्ष का आरम्भ हो जाता है।"[1] पूंजीवादी देशों में कलाकार को सर्वहारा के पक्षधर साहित्य की रचना करनी होगी और साम्यवादी देशों में जहाँ शोषण-मुक्त समाज अस्तित्व में आ गया है, उसे समाजवादी समाज के निर्माण के लिए जनता द्वारा किये जाने वाले गौरवमय प्रयत्नों को चित्रित करने के ध्येय को सम्मुख रखना होगा। समाजवाद की ओर मानवता की प्रगति-सम्बन्धी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विकास-मूलक धारणा को स्वीकार कर कलाकार 'वास्तविकता' को 'उसके क्रान्तिकारी विकास' में चित्रित करने की सामर्थ्य पाता है और वास्तविकता का ऐसा चित्रण ही समाजवादी यथार्थवाद का अभिप्रेत है। वर्तमान समाज को स्थिर न मानकर उसको ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया का अंग मानना और विकसित होते समाजवादी समाज का चित्र देना ही कलाकार का कर्तव्य है। समाज-विकास के क्रम को उक्त ऐतिहासिक परि-प्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना समाजवादी यथार्थवाद की कृतियों का लक्ष्य होना चाहिए। यथार्थ-जीवन में प्रगतिशील और विकासमान तथा प्रतिक्रियामूलक और मरणशील तत्वों का सदा संघर्ष होता रहता है। एक कलाकार को जीवन के इन विरोधों की तस्वीर उतारनी चाहिए, ऐतिहासिक विकास की मुख्य प्रवृत्तियों को स्पष्टतया समझना चाहिए, जो भी नया है उसका समर्थन और जो भी पुराना है उसका विरोध पूर्ण शक्ति के साथ करना चाहिए। इसलिए एक साहित्यिक कृति के वैचारिक मूल्य (Ideological value) को निर्धारित करते समय पहले हमें यह निश्चय करना चाहिए कि क्या वह कृति समाज में विद्यमान वर्ग-विरोधों को उनके सभी रूपों में उद्घाटित करती है और क्या यह उद्घाटन पर्याप्त गम्भीरता लिए है। जीवन के विरोधों (Contradictions) को छिपाने का कोई भी प्रयत्न वास्तविकता को विकृत करता है, साहित्य की वैचारिकी उग्रता (Ideological militancy) को घटाता है और उसकी प्रभावोत्पादकता को कम करता है।[2]

समाजवादी यथार्थवाद साहित्य और कला को सामान्यजन की शिक्षा के लिए सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम मानता है, अतः कलाकार का कर्तव्य है कि वह लोगों को समाजवादी विचारों में दीक्षित करने के लिए अपनी कला का उपयोग करे। समाज-वादी कला श्रमिक जनता के हितों से सम्बद्ध है। अतः सर्वहारा-संघर्ष और समाज-वादी निर्माण की कसौटी पर ही उसकी परख होनी चाहिए। साहित्य-रचना में इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि विषय-वस्तु और रूप (Content and form) दोनों की ही दृष्टि से वह ऐसा हो कि जनता उसे समझ सके और वह पूंजीवाद को समाप्त करने तथा समाजवाद का निर्माण करने में जनता को सहायता दे सके।

समाजवादी यथार्थवाद इस प्रकार वास्तविकता के एक विशेष दृष्टि से चित्रण की माँग करता है और लेखक के सामने समाजवाद के प्रसार का कर्तव्य रखता है।

समाजवादी यथार्थवाद की परिभाषा देना बड़ा कठिन है। १९५४ की लेखक-कांग्रेस में एक सोवियत साहित्यकार ने शिकायत के स्वर में कहा था कि विदेशी कम्यूनिस्ट

1. Nikolai Gei : Soviet Literature 10, 1963.
2. Chou Yang : China's New Literature. (P.47)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक जो समाजवादी यथार्थवाद की निश्चित परिभाषा का आग्रह करते हैं क्यों नहीं समझते कि इसका एकदम ठीक निरूपण नहीं किया जा सकता, यह एक योग नहीं है कि किसी विशेष अनुपात में 'पौज़िटिव हीरो' (Positive hero), विरोधी सामाजिक स्थितियों और आसुतजल (Distilled water) आदि को मिलाने के लिए कह दिया जाए ।[1] केवल सोवियत साहित्य के अनुशीलन द्वारा समाजवादी यथार्थवाद को समझने की सलाह ही उस लेखक ने दी । सोवियत लेखक-संघ के अधिनियमान्तर्गत एक व्यवस्था के अनुसार समाजवादी यथार्थवाद सोवियत कलात्मक साहित्य और साहित्य-समीक्षा की आधारभूत पद्धति है, जो कलाकारों से सचाई और ऐतिहासिक मूर्तता (Historical concretness) के सहित वास्तविकता का उसके क्रान्तिकारी विकास की भूमिका में चित्रण करने की माँग करती है । कलात्मक चित्रण की सत्यशीलता और ऐतिहासिक मूर्तता के साथ समाजवाद की दिशा में श्रमिकों के सैद्धान्तिक रूपान्तरण (Ideological transformation) और शिक्षण (Education) की समस्या को ध्यान में रखा जाना भी आवश्यक है ।[2]

समाजवादी यथार्थवाद की कला ने मनुष्य को सर्वप्रथम और सर्वोपरि विषय बनाया है । मानवीय मनोरागों का चित्रण उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि में ही किया जाना चाहिए क्योंकि यह कलात्मक दृष्टि मनुष्य को उसके वातावरण से संपृक्त मानती है और मानती है कि उसकी आध्यात्मिक विशेषताओं तथा उस समाज-व्यवस्था का जिसने उसके अस्तित्व का निर्माण किया है आपस में गहरा सम्बन्ध है । समाजवादी यथार्थवाद समष्टि के प्रति आग्रहशील है और 'टिपिकल' (प्रतिनिधि) को प्रस्तुत करने को ही कला का ध्येय समझता है । 'प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि पात्रों' का सच्चा चित्र देना ही कलाकार का कर्तव्य है । जॉर्ज लुकाच के अनुसार यथार्थवादी साहित्य की कसौटी 'टाइप' है, जो पात्रों और परिस्थितियों दोनों में ही सामान्य और विशिष्ट को आवयविक एक-सूत्रता में आबद्ध करने वाला संश्लेषण (Synthesis) है । इसलिए मनुष्य और समाज को उनके एक या दूसरे पक्ष को प्रधानता देने के स्थान पर एकीभूत सत्ता के रूप में चित्रित किया जाना चाहिए । जो कलात्मक प्रवृत्तियाँ एकान्त अन्तर्दर्शन या एकान्त बहिर्दर्शन से निर्णीत होती हैं, वे समान रूप से वास्तविकता को दरिद्र और विकृत बनाती है ।[3]

समाजवादी यथार्थवादी साहित्य की यह अनिवार्य शर्त है कि वह आम लोगों के लिए बोधगम्य हो, क्योंकि जैसा कहा जा चुका है कि साहित्य का कार्य साम्यवाद के लिए नैतिक प्रावधान तैयार करना है । लोगों को भावनात्मक शिक्षा देने के लिए और उनमें समाजवाद की चेतना पैदा करने के लिए साहित्य के प्रसार क्षेत्र का अधिक-से अधिक व्यापक होना आवश्यक है । इसलिए साहित्य और कला के क्षेत्र में उन व्यक्तिवादी चेष्टाओं का विरोध किया जाता है, जो उनको जनता से दूर हटाती हैं ।

1. Soviet Literature during the Thaw (1954-57) (द्रष्टव्यः पृ० ४)
2. Soviet Literature Today, by Georgy Reavey (पृ० २०)
3. Studies in European Realism by George Lukacs (Preface. P. 6)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोवियत समीक्षक रूपवाद (formalism) की निन्दा करते हैं, रूपवाद से उनका तात्पर्य ऐसी कला से है जो अमूर्त (Abstract) है, जिसने प्रयोगों को स्वयं में ही साध्य समझ लिया है और जिसमें मानवीय मनोरागों को उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि सहित उपस्थित नहीं किया जाता। रूपवाद में यों सन् १९२५ तक विद्रोह और नूतन प्रयोग दोनों के तत्त्व थे, किन्तु शीघ्र बुर्जुआ समाज से उसका मेल बैठ गया, क्योंकि उससे पूँजीवादी व्यवस्था को कोई सच्चा खतरा उत्पन्न नहीं हुआ। अमूर्तवाद सहित सभी रूपवादी प्रवृत्तियाँ––संग्रहालयों में प्रदर्शनीय वस्तुएँ मात्र बन गईं···बुर्जुआ वर्ग रूप-सम्बन्धी क्रान्ति को प्रोत्साहन देता है किन्तु एक समाजिक क्रान्ति को समर्थन नहीं दे सकता।[1] मार्क्सवादी कला-समीक्षकों की दृष्टि में रूपात्मक प्रयोग समाजवादी वास्तविकता के चित्रण को अधिक प्रभावशाली बनाने के नाते ही अभिनन्दनीय हो सकते हैं : "मार्क्सवादी फॉर्म को अस्वीकार नहीं करते क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें कला को ही अस्वीकृत करना होगा। हम केवल वस्तु (Content) के लिए रूप (Form) के प्रतिष्ठापन को, फॉर्म के आदर्शीकरण को, फार्म की तुच्छ अज्ञानतापूर्ण अराधना को, रूपवाद के रहस्यमय सम्प्रदायों के सृजन को पूर्णतः तथा असंदिग्ध रूप से अस्वीकार करते हैं।[2]

समाजवादी समीक्षक इस बात को अस्वीकार करते हैं कि सामान्य जनता तक पहुँचने के लक्ष्य को मुख्यता देने से उच्चकोटि की कलाकृतियों के सृजन का मार्ग बन्द हो जाता है। उनका कहना है कि प्रतिभा सम्पन्न कलाकारों की कृतियाँ सदैव लोकप्रिय होती हैं।[3] यद्यपि एक सोवियत समीक्षक Ioganson ने श्रेष्ठ कलाकृति की लोकप्रियता का आग्रह करते हुए भी स्वीकार किया है कि कुछ ऐसे कलाकार होंगे ही, जिन्हें लोग स्वीकार नहीं करेंगे, वे कलाकारों के कलाकार होंगे और नये मार्गों के अन्वेषकों के रूप में, नई सम्भावनाओं का उद्घाटन करने वाले प्रयोगशील स्रष्टाओं के रूप में विद्यमान रहेंगे।[4]

समाजवादी यथार्थवाद कला की उद्देश्यपरकता के प्रति आग्रहशील है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह कला को प्रोपैगैण्डा बना देना चाहता है। किसी साहित्यिक कृति के मूल्य को आँकते समय कलात्मक ढंग से यथार्थ को रूपायित करने के प्रश्न को महत्त्व न देना और लेखक की यथार्थ-सम्बन्धी समझ की गहराई तथा पहुँच की सूक्ष्मता को देखने के स्थान पर मात्र उसकी वर्ग-निष्ठा को देखना कुत्सित-समाज-शास्त्रीयता (Vulgar Sociology) है, जिसका १९२० ई० के करीब के वर्षों में मार्क्सवादी विचारों के क्षेत्र में प्रभुत्व था।[5] महान् साहित्य का सदैव उद्देश्यपरक होना आवश्यक है क्योंकि उसका लक्ष्य उच्चादर्शों की दिशा में मनुष्य के भावों और

1. Culture and Life : 3, Moscow···1964 : Range of Realism, by Nedoshivin.
2. Literature and Reality : Haward Fast (P. 58)
3. Studies in European Realism (Page, 269 पर गोर्की पर विचार) द्रष्टव्य।
4. 'Soviet Literature Today' by Reavy (P. 22)
5. Soviet Literature Today by George Reavy—The Writers & Critic. (P. 107)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों को संस्कार प्रदान करना है, किन्तु ऐसा करते समय वह विचारों को आरोपित नहीं करता, जीवित मानवों के जीवित कृत्यों द्वारा अपेक्षित प्रभाव पैदा करता है। एंगेल्स के शब्दों में 'उद्देश्यपरकता का उदय बिना उस पर जोर दिए परिस्थिति तथा कर्म में से अपने आप होना चाहिए, और यह कि लेखक इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि जिन सामाजिक द्वन्द्वों का वह चित्रण करता है, उसका कोई बना-बनाया ऐतिहासिक हल भी पाठकों को दे।'[1] कला-सृष्टि के लक्ष्य के रूप में समाजवादी यथार्थवाद एंगेल्स की इस भविष्यवाणी को सामने रखता है—कि भविष्य की कला में सैद्धान्तिक गम्भीरता व दृष्ट ऐतिहासिक अर्थ का शेक्सपीयरीय जीवन्तता और प्रभावोत्पादकता के साथ पूर्ण एकीकरण होगा।

'प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि पात्रों'[2] का सच्चा चित्र देना समाजवादी यथार्थवाद के अनुवर्ती कलाकारों का ध्येय है। शेक्सपीयर, बालज़ाक, पुश्किन और तालसताय को मुख्यतः उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है : कि कलाकार किस प्रकार पात्रों के माध्यम से अपने युग को पूर्णता से अभिव्यक्त कर सकता है। रैल्फ फॉक्स ने समाजवादी यथार्थवाद का उद्देश्य ऐसे मानव का चित्रण बताया था, जो इतिहास की प्रगति के साथ कदम मिलाकर चलता है और अपने भाग्य का खुद मालिक बनने की क्षमता से युक्त है।'[3] सोवियत समीक्षकों के अनुसार उपन्यासों में चरित्रांकन के इसी महाकाव्योचित आदर्श का अनुसरण किया गया है। उनमें ऐसे नायक हैं जिनका जीवन किसी लक्ष्य के लिए अर्पित है, जिनके सामने प्राप्त करने को एक उद्देश्य है और एक सामाजिक कर्तव्य है या एक ऐतिहासिक मिशन है। वैज्ञानिक, ट्रेक्टर-ड्राइवर, इस्पात-श्रमिक आदि सोवियत-समाज के कुछ प्रतिनिधि पात्र हैं, जो समाजवादी समाज के निर्माण में जुटे हुए हैं। इन पात्रों को निर्धारित लक्ष्यों में सफलता का वरण करते हुए चित्रित किया जाता है। एक आशावादिता से सोवियत कृतियाँ आपूर्ण होती हैं। इस आशावादिता के समर्थन में कहा गया है कि सोवियत उपन्यास इस मान्यता को लेकर चलता है कि मनुष्य इतिहास का शिकार नहीं है, योद्धा है। उसमें श्रमजीवी लोगों की इच्छा-शक्ति, साहस और गुण को प्रकट किया गया है, जो प्रथम बार इतिहास के सचेतन निर्माता बने हैं।[4] किन्तु ऐसे सोवियत उपन्यास भी संख्या में कम नहीं हैं, जिनमें आरोपित लक्ष्यों की प्रमुखता है और साँचे ढाले निर्जीव इन्सान हैं। इस अभाव के प्रति सोवियत लेखक और आलोचक सजग हैं। आलोचक पर्तजोव (Pertzeov) ने ऐसी सतही पात्र-सृष्टि की निर्मम आलोचना करते हुए इस बात पर ज़ोर दिया है कि व्यक्ति-मानव को समस्याओं के केन्द्र में रखा जाना चाहिए, अन्यथा निष्प्राण और सिद्धान्त-रूढ़ पात्रों की ही रचना होगी। उसने लेखकों को, मनुष्य को सैनिक या किसी अन्य व्यवसाय के स्वामी के रूप में नहीं एक व्यक्तित्व के रूप में

१. एंगेल्स : (उपन्यास और लोकजीवन (ले० रैल्फ फॉक्स से उद्धृत, पृ० १०६)
२. एंगेल्स : द्रष्टव्य मिस हाकुरेट को लिखा गया पत्र।
३. द्रष्टव्य : उपन्यास और लोकजीवन (अनु० नरोत्तम नागर)
४. Soviet Literature 2, 1964. Irreconcilable Positions.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने का निर्देश दिया है : "यदि मनुष्य युद्ध का निर्णायक तत्त्व था और है तो ऐसा वह निश्चित रूप से मानव-प्राणी के रूप में—एक व्यक्तित्व के रूप में है, केवल सैन्य व्यवसायी के रूप में नहीं।"[1]

समाजवादी यथार्थवाद जैसा कि कहा जा चुका है साहित्य को श्रमिक वर्ग को समाजवाद की चेतना में सैद्धान्तिक रूप से ढालने के लिए उपकरण समझता है। इसलिए साहित्यकार से अपेक्षा की जाती है कि वह लोगों के जीवन से तात्कालिक रूप में सम्बद्ध प्रकरणों (Topics) पर ही लिखे। लोगों के हितों का सही प्रतिनिधित्व करने का दावा कम्यूनिस्ट पार्टी करती है। तदनुसार पार्टी के इस महत्व को स्वीकार करने पर ही साहित्यकार कलात्मक संस्कृति के निर्माण में योग दे सकता है। पार्टी ही मार्क्सवाद के आलोक में, जो सामाजिक और ऐतिहासिक विश्लेषण का अव्यर्थ साधन है, घटनाओं की सही व्याख्या कर सकती है। इसलिए कलाकार की सैद्धान्तिक ईमानदारी और कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रति उसकी निष्ठा को वास्तविक महत्व की कला-कृतियों के सृजन के लिए अनिवार्य समझा जाता है।[2] स्टालिन ने कलाकार को 'मानवात्मा का अभियन्ता' (Engineer of the human soul) घोषित किया था। ख्रुश्चेव ने भी मई १९५९ में हुई लेखकों की तृतीय महासभा में लेखकों को अपनी कृतियों के सैद्धान्तिक और कलात्मक स्तर को ऊँचा उठाते हुए, "कर्मकारों को साम्यवादी शिक्षा देने के कार्य में, बहु-राष्ट्रीय सोवियत संस्कृति के विकास में, उच्च सौन्दर्यात्मक अभिरुचि के निर्माण में, साम्यवादी नैतिकता के प्रचार में पार्टी और सरकार के सक्रिय सहयोगी बने रहने"[3] का सन्देश दिया। लेखकों की बीसवीं महासभा में बड़े विनोदी लहजे में सुप्रसिद्ध सोवियत उपन्यासकार शोलोखोव ने सगर्व कहा था कि "हम लेखकों के पार्टी से अनुबन्ध उन बन्धनों से भी अधिक पवित्र हैं जो हमें अपनी पत्नियों से बाँधते हैं।"[4]

उक्त दृष्टिकोण के अनुसार पार्टी चूँकि जनता के वास्तविक हितों का प्रतिनिधित्व करती है, अतः पार्टी-निर्देशों का अनुपालन जनवादी कलाकार के रचना-स्वातन्त्र्य को बाधित नहीं करता। 'कलाकार की स्वतन्त्रता' के नारे को पूंजीवादी-जगत् में असामाजिक और व्यक्तिवादी रचनाओं को प्रोत्साहित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। पूंजीवादी समाज में 'कलाकार की स्वाधीनता' सम्बन्धी धारणा एक भ्रम मात्र है; क्योंकि ऐसे समाज में जो पैसे के बल पर टिका हो, जहाँ मजदूर गरीब और बदहाल हों और मुट्ठी-भर अमीर कामचोरी में दिन गुजारते हों, कोई वास्तविक और सच्ची स्वाधीनता हो ही नहीं सकती। लेखक क्या पूंजीवादी प्रकाशक से स्वतन्त्र हो सकता है? मजदूर वर्ग का साथ देने वाला, संघर्ष, विजय और निर्माण में उसके

1. Soviet Literature Today by George Reavey (V. Pertzeov quoted P. 127)
2. Culture and Life : 2, Moscow, 1964
३. उद्धृत Soviet Literature During the Thaw, 1954-57 (P. 24-25)
४. द्रष्टव्य : Soviet Literature 2, 1962 (Speech of Sholokhov)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ बढ़ने वाला, ऊँचे वर्गों के बदले कामकाजी अवाम की सेवा करने वाला साहित्य ही सही अर्थों में आज़ाद हो सकता है।[1] साम्यवादी कला-समीक्षकों के अनुसार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता इस बात पर निर्भर है कि वह किन सामाजिक शक्तियों की सेवा करता है, किन विचारों को प्रकट करता है और उन्हें किस प्रकार गतिशील रूप देता है। अतः अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का वास्तविक निर्णायक तत्व कलात्मक अभिव्यक्ति की वस्तु है। वही कलाकार स्वतन्त्र है जो एक न्यायोचित उद्देश्य को मानकर उसके लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर देता है—यदि वास्तव में उसका उद्देश्य जनता के अनुभव द्वारा न्यायोचित प्रमाणित कर दिया है; क्योंकि सत्य का सर्वोच्च प्रतिमान वही है। जब कलाकार मानववादी लक्ष्यों के लिए संघर्ष करता है, जब वह लोगों के कल्याण की ज्वलन्त कामना से प्रेरित होता है और उसका संघर्ष इस कल्याण को निकटतर लाने में सहायक होता है, जब वह कभी अपना मार्ग बदलने की बात नहीं सोचता क्योंकि वह जानता है कि जिस मार्ग को उसने ग्रहण किया है वह श्रेष्ठ है तो वह उच्चकोटि की आन्तरिक स्वतन्त्रता को दृष्टिकोण और अभिव्यक्ति के सामंजस्य में पा लेता है।[2]

समाजवादी यथार्थवाद के अनुसार लोगों के जीवन और संघर्ष का, उनके हितों और उनकी आकांक्षाओं का रूपायन ही कला का लक्ष्य होना चाहिए। एक सोवियत लेखक के अनुसार "समाजवादी-यथार्थवाद-यथार्थवाद का सर्वश्रेष्ठ रूप है, जो मानव-जाति के इतिहास में सर्वोच्च विचारों—समाजवाद के विचारों—के आलोक में कला द्वारा जीवन की अनेकरूपता और जटिलता को प्राप्त करने की संभावना प्रदान करता है। इस यथार्थवाद को सच्चे मानववाद से पृथक् नहीं किया जा सकता। कला वह है जो मनुष्य को प्रेरणा देती है और आह्वान करती है, संघर्ष और निर्माण के पथ को ज्यादा सही रूप में देखने में उसकी मदद करती है।"[3]

समाजवादी यथार्थवाद के व्याख्याता पूँजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण के इस युग में 'आलोचनात्मक-यथार्थवाद' की उपस्थिति को परिलक्षित करते हैं। वे उसे समाजवादी यथार्थवाद का सहयोगी स्वीकार करते हैं और उन यथार्थवादी कलाकारों का आदर करते हैं जो पूँजीवाद की विकृतियों की निन्दा करते हैं, सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों को समादृत करते हैं और पूँजीवाद से त्रस्त श्रमजीवी जनता की आशाओं को अभिव्यक्त करते हैं। लेकिन वे आलोचनात्मक-यथार्थवाद को समाजवादी यथार्थवाद से अभिन्न नहीं मानते, दोनों को कला की ऐतिहासिक प्रगतियों की विभिन्न देन मानते हैं। 'समाजवादी यथार्थवाद' आलोचनात्मक यथार्थवाद की अगली मंजिल है। पूँजीवादी समाज में 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' अब भी बहुत प्रभविष्णु है और

१. देखिए : भाषा, साहित्य और संस्कृति : ले० डा० रामविलास शर्मा (साहित्य और संस्कृति पर लेनिन के विचार, पृ० २०६-२०७)
२. देखिए : Soviet Literature : 2, 1964—Positive Hero and Freedom of Expression by Alexander Karagonov.
३. Real Humanism by Ryurikov, Soviet Literature, 12, 1963.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचनात्मक यथार्थवादी कलाकार वास्तविकता का लोगों के हित में प्रतिबिम्बन कर पतनोन्मुख बुर्जुआ संस्कृति की अमानवीयता का उद्घाटन करते हैं। पर बहुत से आलोचनात्मक यथार्थवादियों के साथ होता यह है कि वे अपनी सारी सदिच्छाओं के बावजूद व्यक्तिवादी बुर्जुआ विश्व-दृष्टिकोण के दबाव में आ जाते हैं, जिसकी प्रगति के प्रति कोई आस्था नहीं है।[1]

समाजवादी यथार्थवाद के प्रतिपादकों के अनुसार अधिकांश आधुनिक पाश्चात्य साहित्यिक व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों को अपनाकर उन महान् यथार्थवादी लेखकों की परम्परा से हट चुके हैं, जिन्होंने अपने काल की शोषण से आक्रान्त वास्तविकता को कभी समर्थन नहीं दिया और जिन्होंने श्रेष्ठतर व्यवस्था की प्राप्ति के हेतु प्रयत्नशील होने की चेतना लोगों में उत्पन्न कर सामाजिक प्रगति में योग दिया। इन समीक्षकों के अनुसार पश्चिम का आधुनिक साहित्य पतनशील है। इसके विपरीत समाजवादी देशों का साहित्य मानववादी भावनाओं से परिपूर्ण है : सोवियत साहित्य के सम्बन्ध में ऐलेक्सी तालस्ताय का कहना है कि 'सोवियत साहित्य से अधिक मानवपरक और कोई साहित्य नहीं है, लेकिन परम्परागत मानववाद से सोवियत मानववाद सिद्धान्ततः भिन्न है। पहले में मनुष्य के प्रति दया, कष्ट-सहन और सहानुभूति के भाव मिलते हैं, किन्तु दूसरे में हमें मनुष्य के सुख के लिए आवश्यक परिस्थितियों के निर्माणार्थ वास्तविक सक्रिय संघर्ष मिलता है···।"[2]

इन विचारकों के मत से पश्चिम के व्यक्तिवादी साहित्यकार अपनी कृतियों में मनुष्य को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने में सर्वथा असमर्थ रहे हैं। आधुनिक पश्चिमी उपन्यासों से सजीव मानव का लोप हो गया है, क्योंकि उपन्यासकीय मनुष्य को समाज से विच्छिन्न, अतः मानवीय गरिमा से वंचित एकाकी प्राणी के रूप में चित्रित करते हैं तथा समाज और मनुष्य के सम्बन्धों की नैराश्यपूर्ण तस्वीर दिखाते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के महान नायकों का स्थान बौने, क्षुद्र और ओछे इन्सानों ने ले लिया है। इसका कारण यह है कि लेखक बुर्जुआ समाज को, जहाँ मनुष्य-मनुष्य के बीच सामाजिक सम्बन्ध संघर्षपूर्ण हैं, अपरिवर्तनीय मान लेता है और उसका मनुष्य जाति के भविष्य के प्रति कोई विश्वास नहीं रहता। बुर्जुआ कलाकार यह मानकर चलते हैं कि जीवन में वीरत्व का कोई स्थान नहीं है, अतः उसका चित्रण भी पाखण्डपूर्ण है। वे सामाजिक द्वन्द्वों का चित्रण न करके भीतरी-संघर्षों, यौन-षड्यंत्रों, हवाई वाद-विवादों, आदिम पशु-प्रवृत्तियों, पागलपन और अपराध-चेष्टाओं का चित्रण करते हैं। वे 'एण्टी-हीरो' विचारधारा के प्रचारक हैं। सोवियत सिने-कलाकार ग्रिगोरी चुखराई के अनुसार इसका कारण यह नहीं है कि हमारे युग में शक्तिशाली व्यक्तियों की कमी है, "किन्तु बुर्जुआ कलाकार उनकी तरफ ध्यान नहीं देते क्योंकि उनका सारा ध्यान व्यक्ति और समाज के वेदनापूर्ण संघर्ष पर केन्द्रित रहता है। जिस समाज की वे पैदावार हैं, उसकी

१. Culture and Life (Mag.) 2, Moscow 1964 : में Anatoly Yegorov का लेख।
२. Soviet Literature Today, by George Reavy में उद्धृत (p: 163)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त कुत्साओं को वे अपनी कृतियों में प्रतिबिम्बित करते हैं। उनके पात्रों का समाज से कोई सम्पर्क नहीं रहता। वे अपने एकाकीपन के अवसाद में खोये रहते हैं—सर्वनाश के भय से ग्रसित। वे विक्षिप्त होकर किसी सहारे की तलाश में हाथ-पैर पटकते हैं और आसमान की तरफ मुँह उठाकर कभी ईश्वर को कोसते हैं तो कभी पागलों की तरह हर चीज को तहस-नहस करना शुरू कर देते हैं, या अपने एकाकीपन पर आँसू बहाने लगते हैं।"[1]

ये बुर्जुआ कलाकर मनुष्य की महानता के प्रति अविश्वस्त हैं और उसे निराशा, भय तथा शंका के क्षणों में चित्रित करते हैं। उनकी कृतियों में अपाहिज और हताश मानव की सृष्टि ही हुई है। इन कलाकारों का कहना है कि मनुष्य के विवेकशील होने की धारणा का वैज्ञानिक और दार्शनिक धरातल पर खंडन हो चुका है। (मनोविश्लेषण और अस्तित्ववाद का इस सम्बन्ध में उल्लेख किया जा सकता है), विश्व की घटनाओं ने प्रगति के प्रति विश्वास को हिला दिया है तथा जीवन में स्थिरता और तर्क संगति का अभाव है; अतः कला और साहित्य में मनुष्य का गौरवपूर्ण चित्र देना बेमानी होगा। इन बुर्जुआ लेखकों का यह कलात्मक दृष्टिकोण समाजवादी यथार्थवाद के प्रवक्ताओं के अनुसार पतनशील और अग्राह्य है। यह मानवीय व्यक्तित्व की सम्पूर्णता को विनष्ट करता है।

समाजवादी यथार्थवाद का कलात्मक दृष्टिकोण मनुष्य को अविवेकशील और जीवन को निरर्थक नहीं मानता। समाजवादी कलाकार मनुष्य के साधारण-बोध के प्रति आश्वस्त हैं और उसे केवल शंका के क्षणों में नहीं, महानता के क्षणों में चित्रित करने के अवसर को मूल्यवान समझते हैं।[2] लोगों में जो कुछ अच्छा है और नये जीवन के निर्माण में आने वाले अवरोधों से जिस तरह वे जूझ रहे हैं उस सबका चित्रण समाजवादी कृतियों में होता है। समाजवादी कलाकार जिस नायक को प्रस्तुत करते हैं, वह साम्यवादी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किये जा रहे सामूहिक प्रयत्नों में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता हुआ प्रदर्शित किया जाता है। इसीलिए ऐसे पात्र को 'पॉज़िटिव-हीरो' (निश्चयी नायक) का संज्ञा दी गई है। सोवियत साहित्य में निषेधात्मक तत्वों का चित्रण भी किया जाता है किन्तु उन्हें दूर करने योग्य बुराइयाँ मानकर ही। एक सोवियत लेखक के शब्दों में "सोवियत कलाकार जिन्हें 'पॉजिटिव-हीरो' की संज्ञा देता है उन्हें जीवन के प्रमुख वीरों के रूप में अधिक पूर्णता और अधिक विविधता के साथ चित्रित करने का प्रयास करता है। ऐसा वह इसलिए करता है कि उसे सामाजिक प्रगति, मनुष्य और उसके सहज-बोध में दृढ़ विश्वास है, इसलिए कि उसे लोगों से निकट सम्बन्ध की, विश्व की सम्पत्ति के स्रष्टा श्रमजीवी नर-नारियों से प्रेम की अनुभूति होती है। यही वह स्रोत है जिससे वह जीवन के वीरतापूर्ण क्षणों के गान की, मनुष्य के कार्यों की भव्यता के चित्रण की प्रेरणा ग्रहण करता है। जब निराशा, भय और शंका की बात आती है वह इन्हें जीवन और इतिहास के परिप्रेक्ष्य

१. आलोचना २७, जुलाई १९६३ (कला और व्यक्ति)
२. Studies in European Realism : George Lukacs, P. 274

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रदर्शित करता है, मनुष्य की पूर्वनियत, सदा के लिए अस्वीकृत स्थिति के रूप में नहीं। इन्हें अशुभों के रूप में चित्रित किया जाता है, जिन्हें विजित किया जाना चाहिए और किया जायेगा।[1] अतः समाजवादी साहित्य में बुर्जुआ साहित्य में पाये जाने वाले संशयवाद, निराशावाद और वास्तविकता के प्रति नाशवादी अभिवृत्ति (Nihilistic Attitude) को कोई स्थान नहीं मिल सकता।

समाजवादी यथार्थवाद के प्रतिपादक इन दिनों पाश्चात्य कला और साहित्य में प्रचलित "आधुनिकतावाद (Modernism) का विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में 'आधुनिकतावाद' यद्यपि अनेक शाखाओं में रूप ग्रहण करता रहा है और उसकी अनेक प्रवृत्तियाँ हैं, जो प्रकट रूपमें एक-दूसरे की विरोधी लगती हैं, किन्तु वे सब समान रूप से यथार्थवाद और कला में परम्परा का निषेध करती हैं। जीवन के प्रति ह्रासवादी दृष्टिकोण उनकी समान विशेषता है। समाजवादी यथार्थवाद के और आधुनिकतावादी या ह्रासवादी दृष्टिकोणों के बीच संघर्ष ही आधुनिक कला का केन्द्रीय प्रश्न है—ऐसा सोवियत सिद्धान्तशास्त्री और समाजवादी यथार्थवाद के अन्य समर्थक मानते हैं। उनकी दृष्टि में यथार्थवाद की महान् कृतियों की तुलना में 'आधुनिकतावाद' की कलात्मक उपलब्धियाँ नगण्य हैं। 'आधुनिकतावाद' कला के क्षेत्र से एक ओर सारवान वस्तु (Content) का निरसन कर तथा उसके स्थान पर (Form) रूप का प्रतिष्ठापन करने की चेष्टा कर कला को जीवन से विमुख करता है और दूसरी ओर मनुष्य को उसके समस्त गौरव से वंचित कर कला को अमानवीकरण का साधन बनाता है। समाजवादी-यथार्थवाद यथार्थवाद की महान् परम्परा का नव्यतम विकास है, जो इस आधुनिकतावादी अमानवीकरण का विरोध करता है। बुर्जुआ साहित्य-समीक्षक ही अनेक समसामयिक आधुनिकतावादी कृतियों के प्रसंग में उनकी व्यर्थता का अनुभव कर उन्हें अमानवीकरण का दोषी ठहराते हैं।[2] समाजवादी-यथार्थवाद समाजवादी मानववाद के उच्चादर्शों के अनुरूप 'मनुष्य को मनुष्य के मित्र, सहयोगी और बन्धु' के रूप में चित्रित करने का लक्ष्य कलाकार के सम्मुख रखता है।[3]

(३)

गैर-साम्यवादी लेखकों को समाजवादी-यथार्थवाद के प्रति अनेक गम्भीर आपत्तियाँ हैं। समाजवादी यथार्थवाद जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं कलाकारों से मार्क्सवाद को ही मानव के आत्यन्तिक कल्याण का एकमात्र और सम्पूर्ण दर्शन मानने और उसके राजनैतिक कार्यक्रमों का समर्थन करने के लिए कहता है। एक निश्चित विचारधारा के अनुसार साहित्य-रचना करने वाले वर्तमान लेखकों को ही वास्तविक महत्व का अधिकारी समझा जाता है, अन्य लेखकों को अधिक-से-अधिक सहयात्री का गौरव

१. Soviet Literature 2, 1964. Positive Hero and Freedom of Expression by Alexander Karagonov.
२. Romond Williams, New Left Review, no 20, Summer 1963 From Hero to Victim.
3. Soviet Literature : 2, 1964.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाता है। विश्व में ऐसे लेखकों की कमी नहीं है जो पूँजीवादी व्यवस्था के वर्ग-वैषम्य के घोर विरोधी हैं किन्तु समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत मनुष्य के सामूहिकीकरण की भी निन्दा करते हैं। ऐसे लेखकों की दृष्टि में मानवादी कलाकार वही हैं जो मनुष्य और उसके कष्टों से, वे चाहे पूंजीवादी जगत् में हों या समाजवादी देशों में, सहानुभूति रखते हैं। जिन सोवियत कृतियों को कलात्मक सफलता मिली है उसका श्रेय लेखकों की मानवीय संवेदना को है न कि समाजवादी यथार्थवाद के सिद्धान्तों के अनुपालन की निष्ठा को। उदाहरण के लिए शोलोखोव के 'The Silent Don' की कलात्मक श्रेष्ठता का कारण है युद्ध, क्रान्ति और गृह-युद्ध से पीड़ित लोगों के प्रति कलाकार के रूप में लेखक की दिलचस्पी, न कि साम्यवादी दृष्टिकोण, हालाँकि उस दृष्टिकोण के प्रति भी लेखक की निष्ठा से इन्कार नहीं किया जा सकता।[1]

सबसे अधिक आपत्ति साहित्य पर पार्टी और सरकार के नियन्त्रण को लेकर है। साहित्यकार को निर्दिष्ट विषयों पर निर्दिष्ट सीमा में लिखने के लिए बाध्य होना पड़ता है। विषयों के स्वतन्त्र रूप से चुनाव के अभाव में लेखक की सृजनात्मक प्रतिभा को निर्बाध विकास का अवसर नहीं मिल सकता और सामाजिक आलोचना के अधिकारों से वंचित कर दिये जाने पर साहित्यकार स्थापित सत्ता का प्रचारक मात्र रह जाता है। इसलिए स्वतन्त्रचेता साहित्यकारों ने इस स्थिति के विरुद्ध सदैव विद्रोह किया है।

स्टालिन के युग में शासकीय आदेशों से बँधकर न चलने वाले साहित्यिकों को अपमान, निन्दा, दण्ड से लेकर आत्महत्या तक की यातनाओं को भोगना पड़ा था। स्वतन्त्र साहित्यकार के लिए अपना अस्तित्व बनाए रखना असम्भव हो गया। इन सब बातों की जानकारी हमें आज रूसी सूत्रों से ही मिल रही है। जिन बहुत से साहित्यिकों को उस युग में साहित्य-संसार से बहिष्कृत कर दिया गया था, उन्हें अब पुनर्प्रतिष्ठा दी जा रही है। इस स्थिति के लिए स्टालिन के व्यक्ति-पूजा (Personality cult) युग को दोषी ठहराया गया है,[2] किन्तु समाजवादी यथार्थ के आलोचकों का कहना है कि साहित्य और कला का पूर्ण विकास तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि उसे अधिकारी-वर्ग के हस्तक्षेप से मुक्त नहीं रखा जाता।

रूस में आज कलाकार को अपेक्षाकृत बहुत स्वतन्त्रता प्राप्त है, किन्तु विरोधी विचारधारा रखने पर किसी लेखक को वहाँ बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। पास्तरनाक के 'डॉ० जिवागो' की कलात्मक श्रेष्ठता को लेकर प्रश्न किया जा सकता है, यह भी माना जा सकता है कि नोबल पुरस्कार उसके साहित्यिक गुणों पर उतना नहीं दिया गया जितना राजनीतिक कारणों से (क्योंकि उसमें अक्टूबर क्रान्ति, सोवियत समाज-व्यवस्था और मार्क्सवाद की तीखी आलोचना की गई है) किंतु यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि वह एक महत्वपूर्ण कलाकृति नहीं है। लेखक के जीवन-दर्शन को

1. Russian Fiction And Soviet Ideology by Ernest J. Simmovs.
2. 'A Writer's Notes' by drawdlist A. Kron in Soviet Literature during the Thaw.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्वीकार किया जा सकता है, रूसी क्रान्ति और सोवियत व्यवस्था की उपलब्धियों को सर्वथा नजरन्दाज कर केवल दोषों पर दृष्टि रखने के लिए उसकी निन्दा भी की जा सकती है, किन्तु यदि कोई पुस्तक कलाकृति के नाते महत्वपूर्ण है तो क्या उसका प्रकाशन रोका जा सकता है ? हो सकता है कि कुछ लोग बिना अनुद्विग्न हुए यह निर्णय देते हुए कि 'पास्तरनाक ने जो कुछ लिखा है वह उसके देश के लिए और जाग्रत मानवता के लिए अपमानजनक है अपनी राजनीतिक-निष्ठा की घोषणा करें,[1] किन्तु जो लोग कलाकार की स्वाधीनता के प्रश्न को महत्वपूर्ण समझते हैं, वे इस कृति के गुण-दोषों के बावजूद इसके कलात्मक महत्व के प्रति उदासीन नहीं हो सकते और इसके लेखक को उसके साहस तथा चारित्रिक निष्ठा के लिए आदर देने को मजबूर हैं।[2]

समाजवादी-यथार्थवाद के सिद्धान्तों की व्याख्या समय-समय पर शासकीय इच्छा के अनुकूल ही की गई है। उसे कम्यूनिस्ट पार्टी के राजनैतिक उद्देश्यों या सरकारी योजनाओं के प्रचार का काम सौंपा गया है। मानववाद की ऊँची घोषणाओं की ओट में समाजवादी यथार्थवाद साहित्यकार को साम्यवादी दलों का मुखापेक्षी बनाना चाहता है और इसे दूसरे जनवादी कलाकार अस्वीकार करते हैं।

पश्चिम के आधुनिक साहित्य में निराशावादी स्वर व्याप्त है। इसमें बहुत-सा ऐसा श्रेष्ठ साहित्य भी है जो निराशा-मूलक होकर भी पराजय का साहित्य नहीं है। उस प्रकार के साहित्य-स्रष्टाओं के निराशावाद का आधार दार्शनिक है। वे महसूस करते हैं कि धार्मिक विश्वासों के ढहने के साथ ही आज के मनुष्य के सामने से जीवन का अर्थ तिरोहित हो गया है। ऐसे लेखक जीवन को एक मानवीय अर्थ देने के लिए व्याकुल हैं, वे किसी सुखद भविष्य का चित्र भले ही न देते हों, मनुष्य को उसकी कठिनाइयों के वहन की सामर्थ्य अवश्य देते हैं।[3] इस साहित्य के प्रति समाजवादी यथार्थवाद का प्रायः निन्दात्मक दृष्टिकोण उसकी सीमाओं को व्यक्त करता है।

समाजवादी यथार्थवाद का अनुगमन करने पर लेखक को अपने कृतित्व को कृत्रिम मूल्य देने पड़ते हैं। सैद्धान्तिक वस्तु के प्रति आग्रह के कारण कलात्मक मूल्यों के उपेक्षित हो जाने का खतरा रहता है। यदि एक उपन्यासकार को पात्रों को चित्रित करते समय टाइप का ही चुनाव करना हुआ और अपनी कृति में आशावादी स्वर को ही अभिव्यक्ति देनी पड़ी तो उसे अपने अनुभव और कृति की अपनी माँग के स्थान पर उन मान्यताओं को प्रमुखता देनी होगी जिनके प्रसार की उससे अपेक्षा की जाती है। कृति की आम लोगों तक पहुँच को एक साहित्यिक प्रतिमान मान लेने का नतीजा होगा उन साहित्यिक प्रयोगों का अवरुद्ध होना जिनकी अनुशंसा के लिए उच्चकोटि की कलात्मक अभिज्ञता अपेक्षित है। यही कारण है कि साम्यवादी जगत् में पश्चिम के उन श्रेष्ठ साहित्यकारों को कोई महत्व नहीं दिया गया है जो व्यक्ति की निजता

---

१. डा० रामविलास शर्मा : समालोचक, अक्टूबर ५९

२. अमृतराय : समालोचक, नव ५९

३. द्रष्टव्य : The Contemporary French Novel by Henri Peyre : Introduction, P. 11

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रति आग्रहशील हैं और उसे विशिष्ट रूप में चित्रित करते हैं तथा जिन्होंने अभिव्यक्ति के माध्यमों में सर्वथा नवीन प्रयोग किये हैं।

समाजवादी यथार्थवाद की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह लेखक को सामाजिक दायित्व की भावना देता है। पश्चिम के कलाकार जबकि क्षुद्र स्वार्थों में रत या एकाकी मानवों का चित्रण करते हैं, सोवियत लेखक जीवन की क्षुद्रताओं के प्रति घृणा व्यक्त करते हैं और किसी वृहत्तर उद्देश्य की प्राप्ति में लगे सामाजिक मानवों के जीवन के बारे में लिखते हैं।[1] आधुनिक साहित्य-जगत् को समाजवादी यथार्थवाद की सबसे बड़ी देन यही है कि उसने जीवन से संपृक्त साहित्य-रचना का लक्ष्य रखा है।

समाजवादी यथार्थवाद की सीमायें स्पष्ट हैं। किन्तु उसका महत्व यही है कि उसने लेखक के सामाजिक दायित्व पर ज़ोर दिया है। मानववाद के अनुसार मनुष्य की सारी क्रियाओं का लक्ष्य श्रेष्ठतर जीवन की उपलब्धि है और कला भी इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होनी चाहिए। कलाकार की रचनात्मक स्वतन्त्रता को स्वीकार करते हुए भी उसे दायित्व से मुक्त नहीं माना जा सकता। समाजवादी यथार्थवाद को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उसने कला के क्षेत्र में उत्तरदायित्वहीन दृष्टिकोणों का विरोध किया है। सोवियत उपन्यासकार ओस्त्रोवस्की के शब्दों में 'मनुष्य की सबसे मूल्यवान निधि जीवन है और यह उसे केवल एक बार मिलती है। उसे इस प्रकार जीवित रहना चाहिए कि वह निरुद्देश्यतापूर्ण वर्षों के लिए मर्मान्तिक खेद का अनुभव न करे, इस प्रकार जीवित रहे कि मृत्यु के समय कह सके कि 'मेरा सम्पूर्ण जीवन और शक्ति सारी दुनिया में सबसे अधिक सुन्दर लक्ष्य—मानव जाति की मुक्ति के लिए संघर्ष को—समर्पित थे।' कलाकार का लक्ष्य निश्चय ही मनुष्य में इस प्रकार की नैतिक चेतना का संचार है जिससे वह इस धरती पर दूसरे मनुष्यों के साथ मिलकर मानव-कल्याण के कार्यों में प्रयत्नशील होने में गौरव का अनुभव करे।'

1. द्रष्टव्य : Soviet Literature During Thaw (P. 166)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
दि ३८७आ
अं-३२, पृ २
0.29574

व्लादीमीर वाइद्ले

कला का जीवशास्त्र

१. काफी समय से प्रमुख विचारक एक कोरमकोर विवरणात्मक प्रत्यक्ष ज्ञानवादी कला-सिद्धान्त की प्रशंसा करते आ रहे हैं जो स्वयं कलाकृति से और दर्शक या श्रोता पर पड़ने वाले उसके प्रभाव से सम्बद्ध है। इसके अलावा कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जो इसी दिशा की ओर उन्मुख होते हैं; लेकिन कभी-कभी उनमें मनोवैज्ञानिक सौन्दर्यशास्त्र की पद्धतियों की मिलावट हो जाती है और कभी-कभी वे जन उन पद्धतियों का सामना करने में ही काफी प्रयत्न किया करते हैं। वे उन्हें प्रयोग के परीक्षण में प्रस्तुत करने की अपेक्षा उनकी परिभाषा करने में ही काफ़ी प्रयत्न करते हैं।

कलाकृति एक वस्तु है जो केवलमात्र मानवीय अवबोधन के निमित्त अस्तित्व रखती है। लेकिन यह अपनी बहिर्मुखता के लिए अस्तित्वमान है—अर्थात् प्रत्यक्षीकरण के वैयक्तिक विभेदों के परे या उनसे अलग। जो कोई इस क्षेत्र में परिणामों—निस्सन्देह व्यवस्थाई; किन्तु कम-से-कम सुधार और संशोधन में सक्षम परिणामों—को प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसे समान पादभिन्न (denominator) का तथा ऐसी वस्तुओं के प्रभेदक लक्षणों का विवरण देना चाहिए।

तिस पर भी, ज्योंही कोई इस दिशा में अग्रसर होता है, उसे एक ऐसे तथ्य को साभार स्वीकार करना पड़ता है जो अब तक उन लेखकों के ध्यान से छूट गया है जिन्होंने ऐसे विषयों पर विचार किया है। तथ्य निम्नलिखित है :

२. कलाकृति एवम् जीवित संघटना (organism) के बीच एक सुस्पष्ट परिभाषित रचनागठन (structure) के सादृश्य का अस्तित्व है।

हम "रचनागठन के सादृश्य" की बात करते हैं; न कि धर्म अथवा क्रिया की, क्योंकि कलाकृति "जीवित" शब्द के उचित अर्थबोध के अनुरूप जीवित नहीं रहती। फिर भी हमें रूपकात्मक ढंग से यह जोड़ देना चाहिए कि कलाकृति जीवित ही रहती है और यह रूपकात्मक बोध न तो स्वेच्छापूर्ण है न ही कुतर्कपूर्ण। एक कलाकृति निरन्तर क्रमिक पीढ़ियों की चेतना में अस्तित्वमान रहती है जो उसे जानती और उसका अवबोधन करती है। यह कहा जा सकता है परिवर्तित होते हुए, जीवित रहते हुए वह कृति अस्तित्व रखती है क्योंकि वे पीढ़ियाँ उसे विभिन्न प्रकार से समझती हैं। और क्या यह सत्य नहीं है कि स्वयं से तादात्म्य करते हुए आत्म-पुनर्नवीकरण की यही समान धर्मिता, जो कलाकृति के लिए उपयुक्त है, वनस्पति तथा पशु-जगत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पाई जाती है ? यह भी हो सकता है कि मानव प्रगति इतिहास (ontogenesis) तथा जातीय प्रगति इतिहास (phylogenesis) जैसे प्रत्यय (concepts) कलाकृति में पूरी तरह से अनारोपणीय न हों क्योंकि यह एक जीवित सत्ता की प्रगतिमूलक विकसित उपज है और यह उसी भाँति की दूसरी कृतियों से सहोदर सम्बन्ध कायम किये रहती है जो कामक्रम से उसकी पूर्ववर्ती या परवर्ती होती हैं। इस तरह हम आगे ही देख सकते हैं कि क्यों एक कलासिद्धान्त, अथवा उसका कोई अंश, ठीक ही बराबर जीवशास्त्र भी कहा जा सकता है।

फिर भी, ऐसे विषय पर औचित्यमूलक रूपकों अथवा चाहे जितने विशिष्ट सादृश्यों के द्वारा हम प्रकाश डालने की आशा नहीं कर सकते। केवल गठनतत्त्वीय (morphological) अध्ययन अर्थात् प्रकृति विज्ञान एवं मस्तिष्क दोनों पर, बराबर लागू होने वाली पद्धति से प्रसूत रूप ही हमें आगामी स्थापनाओं की ठोस नींव डालने के योग्य बनायेगा।

३. जीवित संघटनाओं तथा कलाकृतियों के बीच की गठनतत्त्वीय व्यासक्ति केवल अभी प्रयुक्त की गई शब्दावलियों—"संघटना" (Organism) और "रूप" (Form) ("गठन तत्त्व" शब्द से अभिप्रेत)—के पूरवर्ती अभिप्रेतों तक ही सीमित नही हैं।

जर्मन स्वच्छन्दतावादियों की सर्वाधिक अनुकूल शब्दावली "संघटना" उनके द्वारा साहित्यिक आलोचना में, और कला के दर्शन तथा राजनैतिक एवं सामाजिक चिन्तन में भी, भूमिका अदा करने के लिए गढ़ी गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि इसका बहुत कुछ ठीक अर्थ लुप्त हो गया। इसलिए इसने प्राकृतिक विज्ञानों के बाहर, 'खण्डों'(Ganzheit)के योग में न घटाये जा सकने वाली किसी भी प्रकार की वस्तु के उस सम्पूर्ण को छोड़कर अन्य किसी भी अर्थ का बोध कराना बन्द कर दिया। फलस्वरूप हम अब यह नहीं जानते कि इसकी मूल धातु 'जीवी' जीवित संघटना के समुपयुक्त का भी संकेत करती है अथवा नहीं। इसीलिए जर्मन जीवशास्त्री "संघटनात्मक" या "संघटनावादी" विशेषण पसन्द करते हैं। तथ्य तो यह है कि जीवित संघटना 'खण्डों' से बिलकुल भिन्न गुणों का अभिधान करती है और जैसा कि हम प्रदर्शित करेंगे, कलाकृति केवल एक संघटनात्मक रचनागठन ही नहीं अपितु एक 'संघटनामूलक' भी प्रस्तुत करती है।

जहाँ तक "रूप" शब्द की बात है वह हमें केवल अपने अर्थों के सीमित दायरे में उपयोगी है जब कि वह 'खण्ड' शब्दावली का अनुवाद करता है। इस पर भी जिस प्रत्यय का यह संकेत करता है वह भी उस सादृश्य के लिए बहुत बड़ा है जिसकी परिभाषा करने की हम चेष्टा कर रहे हैं। आरम्भ में 'संघटना के उस सामान्यीकृत प्रत्यय की अपेक्षा यह अधिक उपयोगी हो सकता है जो उसे कई बिन्दुओं पर अधिक ठीक-ठीक निर्धारित करता है। परन्तु सचमुच अनिवार्य सूत्रस्थापनों के लिए यह पर्याप्त नहीं है। जीवित संघटना की तरह कलाकृति एक रूप है, एक 'गेस्टाल्ट' (gestalt) है, किन्तु इसी की भाँति यह कुछ अधिक भी है। और दोनों ही दशाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में किसी सीमा तक यह पूरक विशेषता भी एक समान है।

४. प्रत्येक रूप के निम्नलिखित चारित्र्यतत्व होते हैं: यह उससे नितान्त भिन्न है जो इसका आवेष्ठन करता है अथवा इसकी पृष्ठभूमि का निमित्त होता है; यह उन सह-सम्बन्धी तत्त्वों से निर्मित है जिनके सम्बन्धों को इसे रूपान्तरित या विनष्ट किये बगैर नहीं बदला जा सकता; यह एक सम्पूर्ण है जो अपने खण्डों के योग में नहीं घटाया जा सकता; यह क्रम परिवर्तमान है अर्थात् आयामों में, स्थितियों में, या संगीत, सुर और अष्टपदी (जब रागिनी नामक रूप में हम व्यस्त होते हैं) में कई परिवर्तनों के द्वारा भी हम इसे तादात्म्य जैसा पहचानते हैं।

संपुटन तथा संघटन (Geschlossenkeit and Zusammengehorigkeit) नाम से पुकारे जाने वाले पहले दो चारित्र्यतत्व बाद के दो से कम मूलतात्त्विक नहीं हैं, यद्यपि इनका हवाला कभी-कभी दिया जाता है। बाद के दो तत्त्वों से हम गेस्टाट-क्वालिटाटेन' (Gestaltqualitaten) का अभिज्ञान करते हैं जिसे सन् १८९० के अपने अध्ययन में वॉन एहरेनफेल्स (von Ehrenfels) ने वर्णित किया है। इनमें से दूसरे का तो उनसे पहले वर्णन ही नहीं हुआ, जबकि पहले का 'खण्ड' (ganzheit) से, फलस्वरूप व्यापक एवं रूपकात्मक बोध की दृष्टि से संघटना की धारणा से, भ्रम हो जाता है। जो भी हो, पर यह तथ्य बरकरार रहता है कि हमने तबसे जिन प्रत्ययों की परिभाषा की है, और जिन्हें हम अभी निर्धारित कर चुके हैं, वे केवल कलाकृतियों तथा जीवित संघटना को ही नहीं, बल्कि रवों को, ज्यामितिक आकृतियों को, कोहलर (Koehler) के भौतिक गेस्टाल्ट (Physische Gestalten) को, उत्पादित वस्तुओं के पूर्णयोग को, मस्तिष्क की कृतियों के योग को भी आत्मसात करते हैं। प्रत्येक वस्तु या लगभग प्रत्येक वस्तु 'गेस्टाल्ट' है: माचिस की एक डिब्बी और पार्थेनन, शतरंज का एक खेल और 'नवीं सिम्फनी', माइकेल एंजिलोकृत "मोज़ेस" और चार्ली चेपलिन की मूंछ, मेरा दरबान और उसका आवास, मधुमक्खी का एक छत्ता, एक मधुमक्खी, मधुमक्खियों का एक झुंड। हाँ। यह भी अमहत्वपूर्ण नहीं है कि इस अतिशय व्यापक श्रेणी के अन्तर्गत १९५४ में पेरिस में आत्महत्याओं की संख्या का सांख्यिकी तथ्य, सड़क से मेरी खिड़की तक उठने वाले शोरशराबे की तरह का संवेदनात्मक प्रभावों का एक सामान्य पुंज आदि समाविष्ट नहीं किये जा सकते। इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसा तथ्य हमारे लिए उपयोगी हो सकता है—बशर्ते कि हम पर्याप्त परिभाषा करने में असमर्थ जो भी है उसकी परिभाषा कर दें।

५. वे कौन से गठनतत्त्वीय चारित्र्यतत्व हैं जो जीवित संघटना से सम्बद्ध हैं और उन्हें जड़रूपों से पृथक करते हैं? ब्यूटेंडिक (Bi ytendijk) ने इस प्रश्न को तीस वर्ष पूर्व उठाया और सन्तोषपूर्ण उत्तर दिया था। वे इस तथ्य से (जिसे वे पूरी तरह से समझते तो थे, किन्तु जो उनकी टिप्पणी के प्रसंगानुकूल नहीं था) ज्यादा चिन्तित नहीं थे कि उनका उत्तर उन रूपों के अलावा, जिनकी ओर उन्होंने सीधा इंगित किया था, अन्य रूपों पर भी सार्थक है तथा जिन विशिष्ट चारित्र्यतत्वों का संकेत उन्होंने किया था वे कलाकृतियों के भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके निरीक्षणों ने उन्हें कई सिद्धान्तों को स्थापित करने की योग्यता प्रदान की। इनमें से प्रयोग की दृष्टि से निस्सन्देह सर्वाधिक समृद्ध वह है जिसको उन्होंने "अनियमित नियमत्व" (irregular regularity) कहा है। एक वृत्त (cirle), एक दीर्घवृत्त (ellipse), एक अंडे की आकृति, और चकोतरे नींबू की एक पत्ती की रूप-रेखा की तुलना करने में उन्होंने दिखा दिया कि पूर्वापर सम्बन्ध से प्रत्येक अधिक स्वतन्त्रता की मात्रा की अभिव्यक्ति करता है। यहाँ प्रयुक्त की गई शब्दावली के अनुसार स्वतन्त्रता एक नियम के स्थिरीकरण के साथ सह-अस्तित्व रखती है। एक वृत्त को नियन्त्रित करने वाले नियम की अपेक्षा एक दीर्घवृत्त का नियम कम रूढ़ है और एक अंडे की रूपरेखा में अधिक लचीला। और एक पत्ती के लिए यह नियम तो सर्वाधिक लचीला है तथा शब्दों या अक्षरों के द्वारा सबसे कम सूत्रबद्ध किया जा सकता है, यद्यपि इसी के साथ-साथ हजारों अन्य प्रकार की पत्तियों का निर्धारण करने वाले नियमों के बीच में यह पूर्णरूपेण स्पष्ट तथा तत्कालतः अभिज्ञेय है। आयामों के अलावा वृत्त में विवर्तन नहीं होता; एक दीर्घवृत्त अपनी अत्यधिक संकुचित सीमाओं के अन्दर विवर्तित होता है; अंडे के विवर्तन तो अनेकानेक हैं; और पत्ती के विवर्तन तो असंख्य है। यद्यपि किसी भी अथ में असीमित नहीं। इस सम्बन्ध में पशु और वनस्पति रूपों के नियमों के लिए स्वतन्त्रता की गुणात्मक मात्राएँ इसी के संग-संग लगभग सत्य की मात्राएँ भी हैं। रूढ़ि से मुक्ति यह नियम उदार है जो न तो स्वोक्ति को अस्वीकार करता है, और न ही नियम विहीन हो जाता है। यह जीवित वस्तुओं से सम्बन्धित हर वस्तु में हर जगह देखा गया है। इसकी अतीव स्पष्ट अभिव्यक्तियों में से एक तो वह द्विस्तरीय समरूपता है जो संघटनाओं के रचनागठनों (भ्रूणमूलक भी) में विशिष्ट होती है। हमें यह जोड़ देना चाहिए कि यह द्विस्तरीय समरूपता हमेशा हल्की-सी अ-समरूपात्मक होती है और अपनी प्रकृति की वजह से वैषम्य के द्वारा समानता प्राप्त करती है। इसके अलावा जो सांख्यिकी के विषय में सही है वह गतिशास्त्र (dynamics) के विषय में भी; क्योंकि जीवंत तालों या छन्दों (rhythms) जैसे विकास, श्वासप्रक्रिया, रक्तसंचार आदि के छन्द—में से कोई भी तालघड़ी से नियमित नहीं किया जा सकता और कुछ सीमाओं (जो हमेशा चंचलगति है) के अन्दर ये सभी तीव्रगामी या मन्दगामी हो सकते हैं।

अनियमित नियमत्व को, बाइटेंडिक द्वारा जितना माना गया था उससे भी अधिक जीवित रूप का एक सार्वभौम नियम माना जाना चाहिए—वह नियम जो स्वयंमेव स्थापित हो जाने वाले अन्य normative सिद्धान्तों में से अधिकांश में विभिन्न ढंग से प्रतिबिम्बित होता है जब निर्जीव रूपों से इन रूपों के भेदीकरण की समस्या [illegible]ती है। किन्तु इन सबके ऊपर अपने प्रयोजन के लिए हमें इस बात पर बल देना चाहिए कि कलात्मक सृजन के किसी क्षेत्र में कला के सभी रूपों पर भी यह नियम समान रूप से सार्थक है। श्वासप्रक्रिया की भाँति संगीतात्मक ताल एक तालघड़ी के द्वारा निश्चित नहीं की जा सकती। किसी भी उल्लेखनीय कविता का ताल उस किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

भी छन्द-नियम से मेल नहीं खाता जो या तो उसका ढाँचा बनता है या उसकी सीमाएँ स्थापित करता है। एक पादवेदिका अलंकरण या एक चित्र की रचना में अनुपात या समरूपता के "नियमों" का कभी भी अक्षरशः निरीक्षण नहीं होता या इनके बिना दोष की अभिव्यक्ति ही करते हैं। और सभी में सर्वाधिक "नियमित" वास्तुकार की कला भी जिसे Inductable संगणना के नियमों के अनुरूप होना चाहिए, बिना किसी चमत्कारी विधि के ऐसा नहीं करती। संक्षेप में यही तत्व इसे एक इंजीनियर के बुद्धि-कौशल से पृथक् करता है।

आगे चलकर यह कल्पना नहीं करनी चाहिए कि यह अल्पीकरण—जो हमेशा उस नियम में वर्तमान है जिसे यह समाप्त नहीं करता—इतना रहस्यपूर्ण रहता है कि बिना सूक्ष्म यन्त्रों की सहायता के इसका उद्‌घाटन ही नहीं हो सकता। किसी भी अंशतः अभ्यस्त कानों को भी यह प्रकट हो जाता है। यह कोरी आँख को भी दृष्ट है बशर्ते कि प्रयोज्य नेत्र दृश्यात्मक रूप की आशंसा में समर्थ हो। यह सच है कि पिछली शताब्दी के मध्य में पार्थिनन की सही नाप-जोख ने यह रहस्योद्‌घाटन किया कि उसकी सभी प्रलम्ब और ऊर्ध्वलम्ब रेखाएँ वास्तव में वक्र हैं। पहले-पहल यह तथ्य आश्चर्यपूर्ण लगा, लेकिन यूनानी इसे जानते थे और इसका अनुभव करते थे। इसके विषय में थोड़ा-बहुत विट्रूवियस जानता था और क्योंकि पुरातत्त्ववेत्ताओं ने हमारी आँखें भी खोल दी हैं इसलिए हम भी इसका सीधे (कुछ शुभेच्छा के साथ-साथ) प्रत्यक्षीकरण करते हैं। वास्तुकार तो और अधिक अपनी संगणना की तथा उस पदार्थ की, जिसमें उसके विचार स्थापित होते हैं, रूढ़ कठोरता का उल्लंघन करने या सम्भवतः उसे केवल छिपा देने के अन्य साधन भी रखता है। यदि हम इन दीर्घ शताब्दियों में ऐसा पूर्वाविधान न भी लेते तो भी इसके निर्माताओं के हस्तकौशल के कारण इमारत में निश्चित ही कुछ न्यूनतम अनियमत्व आ ही जाता। इसके अतिरिक्त यदि हम अपने युग में येन-केन संयोगपूर्ण साधनों के द्वारा इसे 'जीवन्त बनाने' (to vivify) की जरूरत का अनुभव करें तो इस एकमात्र यान्त्रिक कार्य के बहुत कुछ निस्तेज परिणाम ही निकलेंगे। यह एक बार पुनः यह सिद्ध करता है—लघुविरामों में घिरा क्रिया-शब्द इसी पर बल देता है—कि जो 'जीवित' है उसका यह अनियमित नियमत्व कितना अधिक चारित्र्य तत्त्व है, और जीवित रूपों एवं कलात्मक रूपों के आंगिकों के बीच का सेतु कितना सँकरा है।

६. यदि हम अब जीवित संघटना तथा कलाकृतियों में समान रूप से विद्यमान लक्षणों में से विशेष को प्राप्त करने के लिए अपने आरम्भिक प्रत्यय की ओर मुड़ें, तो हम तुरन्त पाएँगे कि 'गेस्टाल्ट' के उपर्युक्त गिनाये गए सभी गुण एक समान धरातल पर अचल नहीं है। Transponibility का भी, जिसका अर्थ तभी तक स्पष्ट है जब तक हम एक रागिनी अथवा देश एवं काल में किसी दूसरी आकृति के विषय में सोचते हैं, उसी अर्थ में उन वस्तुओं पर अभिघान नहीं हो सकता जिनका रूप उनकी भौतिक विशेषताओं में से कुछ से नहीं, बल्कि उनके योग से भी अपार्थक्यनीय है। जहाँ तक कि सभी रूपों के आरम्भिक लक्षणों का सवाल है जो अपने परिवेश से पृथक् होगा ही,

संदर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय ही कहा जाता है कि यह एक विशेष तथा परिवर्द्धमान मूल्य प्राप्त कर लेता है, चाहे वह एक पौधा, एक पशु, एक वास्तुरूपात्मक ढलनीय कृति, या संगीतात्मक कृति हो। लेकिन जब तक इस पर अलग ढंग से विचार किया जाता है तब जो उसके मूल्य में संवृद्धि होती है उसे सूत्रबद्ध करना बहुत कुछ कठिन होता है। यह करने के लिए 'गेस्टाल्ट' का केवल बाह्य अवयवत्व ही नहीं, मूल प्रकृति भी, सम्पूर्ण और उसके खण्ड के बीच के सम्बन्ध भी जाँचने पड़ते हैं।

जैसा कि हम देख चुके हैं कि सर्वदा वास्तविक बन्धनमयी यह सम्बन्धता किसी एक ऐसे तत्त्व में नहीं घटाई जा सकती जो मामूली योग के परिणामस्वरूप मिलेगा। किन्तु संक्षेप में रूप का यही अ-योगमूलक चारित्र्य-तत्व इस तरह का नहीं रह पाता जब वह इनमें से एक या दूजा होता है, यद्यपि जब कभी भी यह न तो एक कलाकृति और न ही एक जीवित संघटना होता है तब इसको पर्याप्त ढंग से परिभाषा दी जा सकती है। बाद के दो दृष्टान्तों में केवल खण्ड ही नहीं जोड़े जाते, बल्कि रूप के सम्पूर्ण में भी वे संश्लिष्ट नहीं किये जाते। यह सम्पूर्ण ही होता है जो अन्य सभी के पहले उपस्थित होता है और अपने खण्डों में सप्राण हो जाता है। गठनतत्त्वीय तथा प्रजननीय दृष्टिकोण से भी एक जीवित संघटना में सम्पूर्ण खण्डों के पहले आता है। इसका कारण यह है कि एक ओर तो सम्पूर्ण से पृथक खण्डों में न तो जीवन और न ही अर्थ होता है, तथा दूसरी ओर वे एक सापेक्ष अभेदीकृत सम्पूर्ण के प्रगत्यात्मक विभेदीकरण से उद्भूत होते हैं। जहाँ तक एक कलाकृति के बोधगम्य विभेदीकरण का सवाल है, यह चैतन्यमूलक बीज के विभेदीकरण के कारण होता है और इसकी धारणा (शब्द के दोनों अर्थों के अनुसार) इसके संग्रथित खण्डों के माध्यम से नहीं की जा सकती, भले ही वे योग के नियम की अपेक्षा एक अधिक जटिल नियम के अनुसार संग्रथित किये गए हों। व्यापक रूप में अपने अनेक सदस्यों तथा अंगों की तरह खण्ड सम्पूर्ण से ही जुड़े हैं; वे उनसे सम्बन्धित हैं और उनके बिना अस्तित्व नहीं रख सकते। और यदि इसमें उनमें से कुछ न भी हों, तिस पर भी यह स्वयं से तादात्म्य रूप रहता है।

सम्पूर्ण का अपने खण्डों पर इतना प्रचलन भलीभाँति प्रक्षेपण में संवृद्धि, विश्रान्ति तथा उर्वरता की व्याख्या कर देता है जिसके विषय में हम शंकाएँ उठा चुके हैं और जो आरम्भ में अव्याख्येय लगा था। उर्वरता का कोई न्यूनमान—एकता की किसी गुणात्मक मात्रा की तरह जो एक संयोगात्मक समूह की अपेक्षा ऊँची हो—बिना किसी अपवाद के प्रत्येक रूप का चरित्रण कर देता है। लेकिन जब यह एक कलाकृति का या एक जीवित संघटना का प्रश्न होता है, तब यह (संवर्द्धित) उर्वरता और (अधिक समग्र हुई) यह एकता भी, किसी पूर्ववर्ती प्रक्रिया—जैसे सम्पूर्ण का संविधान या खण्डों का संश्लेषण के परिणामस्वरूप नहीं, बल्कि सम्पूर्ण में प्राकृतस्थ गुण के रूप में प्रकट होती है। सम्पुटन, संघटन, और उर्वरता एक इकाई का विधान करती हैं, और तीनों ही 'गेस्टाल्ट' के इस केन्द्रीय चारित्र्य तत्व से निसृत होते हुए प्रतीत होते हैं जिसे हम एकता, या अधिक वहिर्गत ढंग से, सम्पूर्ण का अपने खण्डों पर आरोपण कहते हैं। स्वयं को इस पर विश्वास दिलाने के लिए हम केवल एक बड़े एकाकी वृक्ष, एक जंगली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशु (भले ही पिंजड़े में बन्द), वनिनी के निकट एक निर्झर की कल्पना करने की, अथवा एक फ्रेम के एक पादपीठ के, दो कविताओं अथवा संगीत के दो तोड़ों के बीच शान्ति के माध्यन्तर के विषय में सोचने की जरूरत है। अन्तिम तीन उदाहरणों में तो और भी पूरक पद्धतियाँ संलिप्त हैं; यदि एक चित्र को फ्रेम की जरूरत है तो इसलिए कि वह उसकी पूर्वाहिति रखती है, अपने अन्तर्गत ही उसे धारण करती है। यह इसी प्रकार होता है कि जिस तरह पौधे या पशु करते हैं। और अपने प्रारम्भ तथा अन्त दोनों में ही एक 'सिम्फनी' शान्ति को अन्तर्निहित—उत्पन्न भी कहा जा सकता है—करती है।

एक मशीन, एक औज़ार, एक उपयोगी इमारत की तुलना एक जीवित संघटना, एक कलाकृति से कीजिए। जब कि उसकी विविधता पर एकरूप की एकता का प्रसार हो जाता है, जब यह विविधता एकता का ही और एक प्रकार से एकता की सम्पुष्टि का ही परिणाम होती है, तब इससे रूप एक ऐसी उर्वरता प्राप्त कर लेता है जो न तो अकार्बनिष्क प्रकृति में और न ही मनुष्य के तकनीकी सृजन में पाई जाती है।

७. रूप के उपर्युक्त दो चारित्र्यों—सम्पूर्ण की प्राथमिकता तथा, अनियमित नियमत्व—में एक तीसरा भी जोड़ देना चाहिए। लेकिन गलतफहमी पैदा किये बगैर इसका नामकरण कठिन है। तो, हम इसे अतिरिक्त या अतिशयता न कहने के लिए "परमोत्कृष्टता" (Surpassingness) कहते हैं।

सभी रूप अपनी आभ्यन्तर अन्तिमता के अर्थात् सम्पूर्ण के सम्बन्धानुरूप उसके खण्डों के धर्म, या वे 'सेवाएँ' जो खण्ड सम्पूर्ण की करते हैं—इस दृष्टिकोण से विचारणीय हो सकते हैं। यह अन्तिमता किसी एक-दूसरे से, स्वयं रूप के अलावा अन्य किसी को अर्पित की गई "सेवाओं" से परमोत्कृष्ट की जा सकती है, लेकिन हम परमोत्कृष्टता के विषय में चर्चा नहीं करना चाहते। एक मशीन के पहियों का प्रयोजन इस मशीन का विधान करना है, जब कि स्वयं मशीन अपने निर्माता द्वारा प्रदत्त लक्ष्य का अनुसरण करती है। एक जीवित प्राणी के अंग उसकी सत्ता का विधान नहीं करते, वे उसके अंग होते हैं। प्रत्युत उसके अस्तित्व के लिए जरूरी सभी धर्मों को वे पूरा करते हैं। अपने मूल प्रयोजन पर आने के लिए हम किसी अन्य के सम्बन्धानुरूप इस सत्ता की अन्तिमता या जीवित प्राणियों के योग की चर्चा नहीं करेंगे। यहाँ हमारा प्रयोजन एक-दूसरे प्रकारकी परमोत्कृष्टता से है : वह परमोत्कृष्टता जिसे जीवित संघटना उपलब्ध करती है जब वे उन लक्षणों को प्रस्तुत करती है जिन्हें कोई हेतुवादी व्याख्या स्वीकार नहीं। उर्वरता एक ऐसा ही लक्षण है जहाँ तक कि यह सभी रूपों के एक समान तत्त्व से निसृत होती है। विशेष रूप से वह उर्वरता विवेच्य है जो बहुत उच्च विभेदीकृत संघटना का चिह्न है और जिसका साग्रहपूर्ण नामकरण किये बिना बच नहीं सकते।

इसके साथ भ्रमित हुए बगैर इसके समानान्तर प्रकृति में रूप निर्माण की इतनी विपुलता और विविधता विद्यमान है कि यह उस सबसे ज्यादा परमोत्कृष्ट हो जाती है जिसे कोई वातावरण के प्रभाव की, वंशानुक्रम के जटिल तन्त्र की, किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष संघटना की विशिष्ट आवश्यकताओं की (अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार) देन मान सकता है । आज हमें यह तथ्य की तरह स्वीकार कर लेना चाहिए कि पशु और वनस्पति रूपों की विविधता को उनके अस्तित्व की दशाओं की अपेक्षाकृत कम विविधताओं में नहीं घटाया जा सकता । उदाहरणार्थ, सैकड़ों विभिन्न प्रकार के जलीय पौधे लगभग एकरूप जलीय वातावरण में बढ़ते हैं; तितलियों के पंखों के अनन्त विविध रंगभराव उनकी अपेक्षाकृत अपूर्ण नेत्रेन्द्रियों से प्रशंसित नहीं हो सकते और फिर भी वे अनुकरण की अनिवार्यता का अतिक्रमण कर जाते हैं । बबरशेर और चीते की बाह्य प्रतीतियों के बीच का साफ़ वैषम्य··· (यह अधिक साफ़ तब लगता है जब हमें यह ज्ञान होता है कि उनके अस्थिपंजर लगभग एक समान हैं) एक सीमित हद तक उन स्थानों के आयत्तीकरण के आधार पर व्याख्येय हैं जिन्हें वे क्रमशः अपना निवास बनाते हैं।

यही परमोत्कृष्टता—नये लक्ष्यों की दिशा की ओर नहीं, अपितु एक अप्रत्याशित समृद्धि की ओर—हमें एक बार पुनः अभिभूत कर लेती है जब हम कला के क्षेत्र की ओर मुड़ते हैं । इस क्षेत्र के लिए निम्नलिखित नियम का सूत्रस्थापन होगा;

एक कलाकृति उसमें कभी नही घटाई जा सकती जो उसमें से एक कलाकृति बनाने के लिए पर्याप्त हो सके ।

जिस तरह बिलकुल सही अनुमानों के अनुसार एक जीविति···उससे सन्तुष्ट नहीं होती जो उसे पूर्णतः जीविष्णु बना दे, और उन लक्षणों को ग्रहण कर ले जो विज्ञान की गम्भीर दृष्टि में केवल फिजूल के अलंकरण हों, उसी प्रकार एक कलाकृति भी आवश्यक के अतिक्रमण की कामना की प्रकट उद्दण्डता से और पूर्णानन्द से भी अधिक प्रदान करने से आश्चर्यचकित करना कभी भी बन्द नहीं करेगी । इस सम्बन्ध में हम वैयक्तिक···(जो एक कलाकृति का दूसरी से अन्तर करने में पर्याप्त हुआ करते हैं) का, अथवा कुछ सामूहिक या वैयक्तिक शैलियों को चारित्र्य प्रदान करने वाली विशिष्ट अतिरंजना का हवाला नहीं दे रहे हैं । त्रासदी की शास्त्रीय (क्लासिकल) विधि में कुछ भी परिवर्तन न करने पर भी रेसाइन (Racine) रचित एक त्रासदी अपने निजी नियम का उसी प्रकार अत्यधिक अतिरंजन करती है जिस प्रकार शेक्सपियर (Shakespeare) का एक नाटक अपने नियम के परे होता है; इस बोध के अनुसार स्तेन्दाल (Stendhal) की अपेक्षा शातेब्रॉं (Chateaubriand) की शैली 'अतिरंजित' नहीं है । परमोत्कृष्टता बाख (Bach) की लघुकृति में एक उतना ही रहस्यात्मक लक्षण है जितना 'ट्रीस्टन' का, उतना ही कोरोट (Corot) का जितना कि ग्रेको (Greco) का । प्रत्येक कलाकृति का विधान इस तरह होता है कि उसमें ऐसा कुछ जोड़ दिया जाता है जिसकी वास्तव में न तो उसमें ही कमी है और न ही उसकी पूर्णता में । जिस कृति में केवल पूर्णता होगी, वह जीवनशून्य होगी । एक जीवित संघटना में, चाहे हम भले ही इसके स्थिर रूपों तक सीमित हो जाएँ, जीवन अपना साक्षात्कार जीवन की एक अतिशयता से करता है । एक कलाकृति के विषय में भी यही सत्य है जब तक कि हम उसमें एक रूप का दर्शन करते हैं । इसका रूपात्मक मूल्य एक जीवन्त मूल्य है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) यूनानियों तथा कला-कौशल (techne) सम्बन्धी उसकी पुञ्जीभूत धारणा के समय से, सर्वोपरि तो अरस्तू के समय से जिन्होंने इस धारणा का सिद्धान्तीकरण करके अपने मोड़ के बिन्दु को लक्षित किया, यूरोपियन विचार कलाकृतियों को उपयोगी वस्तुओं तथा निर्मितियों की तात्कालिक निकटता में रखने का अभ्यस्त हो गया है। यूँ तो यह निकटता वास्तविक है। हमारा सरोकार यहाँ वहाँ तो रूपों से होता है जो साथ-साथ धरातल की वे व्यासक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं जो हमारी आँखों के सामने इतनी स्पष्ट होती हैं कि हम सारपूर्ण अन्तरों के विषय में सोचना भूल जाते हैं। यह तो ठीक है कि एक कलाकृति को एक, औद्योगिक उत्पत्ति समझ लेने के भ्रम की अपेक्षा एक जीवित संघटना को मनुष्य के कृतित्व के परिणाम से उत्पन्न किसी भी प्रकार की वस्तु समझ लेने की गलती कर बैठना कठिन है। और अगर दूसरी ओर हम यह याद रखें कि एक कलाकृति उसी समय एक व्यावहारिक रुचि की भी वस्तु हो सकती है, और उसकी सत्ता के लिए यह सर्वाधिक स्वाभाविक तथा अत्यन्त ठोस आधार भी है, तब हमें सहमत होना चाहिए कि इस प्रकृति के भ्रम अवश्यम्भावी हैं, तथा तब हम अपनी सभ्यता के सभी कालों तथा सभी चरणों में ऐसी कृतियों के पनपने पर विस्मित नहीं होंगे। लेकिन क्या यह एक नितान्त भिन्न दृष्टिकोण को अपनाने तथा कलाकृतियों के एक नितान्त भिन्न सन्दर्भ में रखने का पर्याप्त कारण नहीं है ?

हमने तो यही करने की चेष्टा की है। और पुनः अरस्तू ही हमें इस मार्ग पर जमे रहने का हौसला बँधाते हैं क्योंकि उनमें ही हमें वह दर्शन प्राप्त होता है जो उन दोनों ही दिशाओं में पिटी-पिटाई लीकों से भिन्न है; प्रथम, जब वे मनुष्य के उत्पादक कृतित्व की प्रकृति के कृतित्व से तुलना करते हैं; तथा, जब वे त्रासदी में कार्यव्यापार के क्रम-निर्धारण तथा उच्चतर पशुओं के शरीर के रचनागठन के बावत एक ही शब्दावली में बात करते हैं। थोड़ी देर के लिए हम इस दूसरे अरस्तूवादी विमर्श का अनुसरण करें। जबकि हम जीवित संघटना एवं कलाकृतियों के सादृश्यसम्बन्धी सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना कर चुके हैं, हम अब अत्यधिक आरम्भिक गठनतत्त्व की पद्धति को अपनाकर दूसरी (कलाकृति) के रचनागठन का परीक्षण करेंगे, जैसाकि हम इसे पौधों एवं पशुओं के अध्ययन में लागू होते देखते हैं।

निस्सन्देह ज्यों ही हम यह अध्ययन शुरू करते हैं कि हम एक अनुसन्धान तक पहुँच जाते हैं : जीवन के रूपों तथा कला के रूपों के सादृश्य के चौथे सिद्धान्त तक। यह सिद्धान्त कला-सिद्धान्त के लिए एक ऐसी पद्धति के दृष्टिकोण को ग्रहण करने में इन सबसे अधिक मूल्यवान है जो संवेदनाओं और संवेगों पर आश्रित न होकर कृतियों के विवरण और तुलना पर आधृत है। यह सिद्धान्त निम्नलिखित है :

(९) प्रत्येक कलाकृति उस तन्तु (Tissue) से निर्मित होती है जिसका तन्तुजाल संघटनाओं के जीवित तन्तुओं का अनुकरण करता है।

चाहे जो कुछ भी हो किसी भी रूप में हमेशा सम्पूर्ण और खण्ड दोनों होते हैं। जब हमारे मस्तिष्क में एक जीवित संघटना का ध्यान रहता है तब ये खण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियाँ कहलाते हैं तथा कलाकृतियों में छोड़कर कहीं भी सम्पूर्ण के प्रति इनका अनुपालन अधिक नजदीकी (साथ-साथ अधिक लचीला) होता है। लेकिन जीवित संघटना—यदि वे इन्द्रियों में सप्राण कर दी जाएँ जो अन्ततोगत्वा कुछ दृष्टियों से एक मशीन के पहियों से तुलनीय भी हैं—एक अन्य रचनागठन को भी प्रस्तुत करते हैं जिससे अचेतन रूप किसी भी तरह से तुलनीय नहीं है : जसे उनके कोशाषों (Cellular) के तन्तु, उनका प्रोटोप्लाज़मपरक पदार्थ। बाद वाला तत्व तो इन्द्रियों के आलम्बन पर बदलता है, किन्तु अपरिवर्तनीय ढंग से यह जीवित कोशाओं से निर्मित होता है। यहाँ वे स्थान छोड़ दिये गए हैं जहाँ जीवित न रहकर भी एक उपयोगी धर्म को परिपूर्ण किया करते हैं। शुरू में तो यह विश्वास करने का छल हो जाता है कि जहाँ शब्द के सही अभिधेयार्थ के अनुसार जीवन नहीं है वहाँ इस भाँति की सम्भावना भी नहीं है। किन्तु संक्षेप रूप में जीवित पदार्थ का यही कोशाओं वाला पदार्थ है जिसका कलाकृतियाँ अनुकरण करती हैं और इस प्रकार से उनके अमहत्वपूर्ण पदार्थ का रचनागठन होता है।

सादृश्य का निकटता से परीक्षण करने तथा प्रमापन करने के पहले हमें उन लोगों को विश्वास दिलाना है जो इस तथ्य को ही अस्वीकृत करते हैं कि कला के रूप के रचनागठन का भी अस्तित्व है एवं यह बिलकुल तर्क के आधार पर 'तन्तु' कहा जा सकता है। ढलनशील कलाओं के क्षेत्र में ऐसी शंकाओं के विरोध में सर्वोत्तम तर्क एक मूल कृति का अनुकति से विभेद होगा, भले ही वह समसामयिक तथा सब लेखा-जोखा के अनुसार सर्वोत्कृष्ट हो। मूल की रचना एवं स्थूल संरचना कहलाने वाला सब कुछ अनुकृति में भी ज्यों-का-त्यों रहता है; केवल विरलता से रचना के प्रत्यक्षीकृत कोमल वर्णों में ही भेद होता है। आकल्पन (design) का लोच एवं स्फूर्तिदान, रूपरेखा की दृढ़ता अथवा उसमें अतिसूक्ष्मकम्पन या रंग का एक धब्बा—दूसरे शब्दों में ये सूक्ष्मसंरचना के गुण हैं जो कृति का जीवन्त तन्तु भी है। जीवन्त इसलिए कि, यह सर्जक के जीवन की व्याख्या करता है; और इसलिए भी कि, सर्जित वस्तु को जीवन देता है। सामान्य नियम से तो मूल की तुलना में अनुकृति कम जीवन्त होती है। कुछ अपवादों में यह उतना ही जीवन्त होता है किन्तु तब उसका जीवन भिन्न हो जाता है—एक दूसरे सर्जक का जीवन ! यह भी तय है ऐसा असम्भव—जितना कला में उतना ही प्रकृति में भी असम्भव—है कि वैयक्तिक जीवन का प्रत्यक्षीकरण किये बगैर जीवन का प्रत्यक्षीकरण किया जाय; लेकिन दोनों प्रत्यक्षीकरण पृथक्-पृथक् हैं, एवं वैयक्तिकता का प्रत्यक्षीकरण जीवन के अप्रत्यक्षीकरण की अपेक्षा कम तात्कालिक है। कलाचित्रों का मूल्यांकन करने में जो अभ्यस्त हैं उन्हें मालूम है कि यदि वे attribution को कूतने से शुरू करेंगे तो वे प्रामाणिकता के सम्बन्ध में अधिक खतरा ले लेंगे। सबसे पहले तो वे यह निर्णय करने की कोशिश करते हैं कि अपने सम्मुख जिस कलाचित्र का वे अवलोकन कर रहे हैं वह मूल है अथवा अनुकृति; और यह विचार रखते हुए फिर यह स्थापित करने की कोशिश करते हैं कि उसमें जीवन है भी कि नहीं—[illegible] जीवन, इस्तेमाल किया हुआ जीवन नहीं ! रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रूप' उन्हें कुछ भी उपयोगी नहीं बना सकते। अकसर वे चित्र को ऊपर-नीचे पलटते हैं या उसका अधिकांश ढँक देते हैं जिसके कि उसके एक लघु अंश का अत्यन्त ध्यानपूर्वक परीक्षण कर सकें। इसके प्रति बिना सजग हुए भी वे इस ढंग से यह प्रदर्शित करते हैं कि उस क्षण में उनकी अभिरुचि के अनुकूल केवल वही वस्तु तन्तु है और, फलस्वरूप तन्तु का अस्तित्व है।

इसका अस्तित्व सभी कलाओं में है। इस भाँति से एक मूर्ति के टुकड़े की अपेक्षा एक भवन का खण्ड बहुधा अधिक प्रभावपूर्ण है। एक पूरे राग के पन्ने पलटने वाला संगीतज्ञ दस में से नौ बार सौवीं मीड़ तक यह जानता है कि जिस कृति पर उसने हाथ लगाया है वह जीवित भी है कि निस्पन्द। एक नई पुस्तक के पन्ने खारिज करने वाले विद्वान् के पास दसवें पृष्ठ (और कभी-कभी तो दसवीं पंक्ति) से आगे न पढ़ने के लिए प्रत्येक कारण है यदि वह यह अनुभव करता है कि पढ़ी जाने वाली पुस्तक में भाषा के तन्तुजाल में मूलनाल; जीवन्त ऊर्जा ही नहीं है। यह सब हमेशा ज्ञात रहा है, यद्यपि भले ही अभ्यन्तरतः रहा हो। 'द्रुत', 'जीवन्त', 'सप्राणकरना' जैसे शब्दों का रूपात्मक उपयोग इसे सिद्ध करता है। कम स्पष्ट तो यह है कि ये रूपक मुआमले की बहुत वास्तविक दशा को प्रतिबिम्बित करते हैं। एक कलाकृति का तन्तु इसलिए जीवित प्रतीत होता है कि वह बहुत समीप से—यथासम्भव समीपता से—संघटना के कोशाओं वाले तन्तु की अनुकृति करता है। और यह सब इस प्रकार होता है : यह आद्यन्त लघु विराम के या कम किये हुए आकार की इकाइयों से निर्मित होता है जो अपनी बारी से जीवित कोशाओं के आन्तरिक रचनागठन की अनुकृति करती हैं। बेशक यह अनुकरण बहुत दूर तक नहीं हो सकता, उन सूक्ष्मताओं का स्पर्श नहीं कर सका जिसे केवल दूरबीन के अन्वेक्षण ही उद्घाटित कर सकेंगे। लेकिन इस सब जटिलता की देहरी पर रुककर यह प्रातिभज्ञान से पहली नींव का समग्र कोशात्मक वस्तुरूप के आरम्भिक सिद्धान्त का चातुर्यपूर्वक प्रत्यक्षीकरण, एवं केन्द्रीय भाग तथा प्रोटोप्लाज्म का वैषम्य अनुभव करता है। इनमें से परवर्ती दो विरोधी तत्वों के बीच के वैषम्य या तनाव के रूप में इकाइयों के अन्तर्गत मिलता है जो सरलता से विविध हो सकती हैं लेकिन जो हमेशा विपरीत तथा पूरक प्रतीत होती है—द्विपक्षीय समत्व के सिद्धान्त के अनुसार एक शरीर के हृदयप्रकुञ्चन (Systole) और हृदयप्रसरण (Diastole) या दो अर्द्धांशों की तरह। हम इन अर्घाभास कोशों को 'तनाव की इकाइयाँ' कहेंगे। अब हम उस सूत्र पर आते हैं जो पहले की अपेक्षा अधिक बहिर्गत है :

(१०) पहले पहल प्रत्येक कलाकृति एक तन्तु के रूप में अभ्युदित होती है जो जीवित संघटना के कोशात्मक तन्तु का अनुकरण करती है और आद्यन्त तनाव की इकाइयों से रचित होती है।

यदि इस नियम का संशोधन किया जाए तो ऐसा करने का एकमात्र कारण जीवशास्त्रीय रचनागठन से और अधिक सादृश्य पर बल देना ही होगा। जिस तरह जीवित संघटना स्थानों में मृतक तन्तुओं का उपयोग करती है, उसी प्रकार एक कला-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृति उन सहायक तत्त्वों का अभिधान कर सकती है जो उसके जीवन में तो संश्लिष्ट हों लेकिन स्वयं अपने में निस्पन्द हों। वास्तुकला में ये तत्त्व असंख्य हैं लेकिन जहाँ कहीं भी कृति बहुत कुछ जटिल होती है ये सभी कलाओं में उपस्थित होते हैं। ये इसकी सीपी या अस्थिपंजर का काम करते हैं। इसके अलावा (जीवित संघटना की भाँति) कोशात्मक तन्तु के जीवित एवं मृतक भागों के सातत्य भी है। जहाँ तक अन्तःसंचित जीवन्त ऊर्जा की मात्रा का सम्बन्ध है, तनाव की इकाइयाँ असमान हैं; इनके विधायक दोनों तत्त्वों की बीच की आन्तरिक स्थानीय दूरी परिवर्तनीय है। जब यह स्थानीय दूरी किसी मापन से अधिक हो जाती है तब उनकी तीव्रता कम होने लगती है और कुछ दृष्टान्तों में अनास्तित्वमान हो जाती है। फिर भी तनाव की इन इकाइयों पर, केवल इन्हीं पर एक कृति की जीवन्तता निर्भर करती है—यह जीवन्तता उसके रूपात्मक मूल्य से अधिक नहीं है। परवर्ती तत्त्व को इसका विलक्षण, इसका सर्वोच्च मूल्य नहीं माना जा सकता लेकिन ऐसे मूल्य का अभाव भी उसी कृति में अन्य मूल्य का अनुभव कराना सम्भव नहीं बनाएगा। जिन कलाकृतियों के तन्तु की वे रचना करते हैं उनके लिए ये तनाव की इकाइयाँ उसी तरह हैं जिस तरह हमारे शरीर के लिए जीवित कोशाएँ हैं। हम अपने जीवन से भिन्न और कुछ भी हैं; लेकिन हम जीवनविहीन क्या हैं?

एक दीर्घ, फिर एक ह्रस्व वर्ण, एक स्वराघात पूर्ण वर्ण के बाद आनेवाला सामान्य अक्षर, विपरीत दिशा में जानेवाले स्वर-सामंजस्य का सामना करनेवाला दूसरा स्वर सामंजस्य, एक चाप (Curve), एक प्रतीप चाप, काल और देश में एकगति तथा दूसरी जो उसका अनुकूल प्रतिबोध करे, दो रंग और ध्वनियाँ जो टकराकर एकसूत्र हो जाती हों, दो औंधे तथा पार्श्वस्थित रचनागठन—ये सब उन सबके थोड़े उदाहरण हैं जिन्हें हमने तनाव की इकाइयाँ कहा है। लेकिन ये सभी तंतु—और (जीवित संघटना की तरह) सभी कृतियों में इनके कई भेद निहित हो सकते हैं—इतना आरम्भिक रचनागठन प्रस्तुत नहीं करते। नाना भाँति की तनाव की इकाइयों का इस तरह या उस तरह से मेल कराने से, उन्हें अत्यारोपित करने से और दूसरों पर उनका आच्छादन करवाने से ये तंतु जटिलता की काफी गहन सीमामात्रा तक पहुँच सकते हैं। तिस पर भी यह कभी उतनी महान नहीं होती जितनी कि जीवी या संघटना और उसकी इंद्रियाँ, कभी भी उतनी महान् नहीं होती जितनी कि स्वयं कला-कृति और उसमें पहचाने जा सकने योग्य सप्राण भाग। सप्राण भागों एवं संपूर्ण के प्रति उनके संबन्धों के बीच जो भिन्न बनता है वह संक्षेप में उनकी जटिलता है; तंतुओं में जो बदलता है वह किसी हद तक उनकी मोटाई और, सर्वोपरि उनका घनत्व है। मोटाई को जानने के लिए हमें इस तथ्य का भी लेखा लेना चाहिए कि तंतु की विशुद्ध रूपात्मक पर्त्त के नीचे बहुधा एक दूसरी पर्त्त है—अर्थ तात्विक पर्त्त जो (भौतिक एवं चेतन दोनों) कलाकृति की "विषय वस्तु" (Content) का उद्घाटन करती है और फिर भी उसके रूपात्मक रचनागठन से सम्बन्धित है। यह कला में जिसका पदार्थ भाषा है, रूपकात्मक चित्रों तथा शिल्प में स्थायी ढंग से मौजूद है लेकिन यह हमेशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत में तथा वस्तुकला में भी कुछ भूमिका अदा करती है। अधिक बहिर्गत "अ-अर्थतात्विक" पर्त्त की तरह, यह तनाव की इकाइयों (आकांक्षाएँ एवं घटना, प्रश्न एवं उत्तर, हर्ष एवं शोक, प्रेरणा एवं असफलता, निषेध एवं स्वीकृति) से मिलकर बनी है। ये तनाव की इकाइयाँ उन दूसरी पर्त्तों की इकाइयों से निरन्तर संपर्क समझौता या संघर्ष कायम किये हैं जो केवल तंतु की मोटाई ही नहीं बढ़ाते अपितु उसकी घनत्व-वृद्धि में भी सहायक हैं।

लेकिन किसी भी दशा में पहले-पहल जो महत्वपूर्ण है वह न तो मोटाई है और न ही तंतु का घनत्व। वह है इसकी मात्र उपस्थिति, इसका जीवन, जिसके बिना स्वयं कृति ही निष्प्राण होगी। एक जीवित तंतु की आवश्यकता—भले ही वह न तो घनत्वपूर्ण हो, न मोटा ही—तब भी साकार होती है जब सामात्यतः "मशीनी काम" के ऊपर "हाथ के काम" को प्राथमिकता दी जाती है, चाहे वह कला का मामला भी न हो। अपनी प्रकृति के कारण हाथ का काम, जिसके अनियमित नियमत्व की प्रशंसा (वास्तुकला के संदर्भ में) हम कर ही चुके हैं, सतहों और रेखाओं को उत्पन्न करता है। संक्षेप में अपने में विशिष्ट इस अनियमत्व के कारण ही ये सतहें और रेखाएँ एक बहुत दुर्बल कोशात्मक तनाव के न्यूनरूप तंतु का विधान करती हैं, लेकिन जो फिर भी जीवित है, या कम-से-कम एक पूर्णतः जीवंत कृति के अपेक्षाकृत मोटे तंतु में संश्लिष्ट होने के योग्य है। इसके अलावा, तंतु के तंतुपुंज (Woof) में अपनी आंतर बुनावट की तरह तनाव की इकाई का आंतरिक रचनागठन प्रत्येक चरण पर अनियमित नियमत्व के तथा परमोत्कृष्टता के भी उदाहरण प्रस्तुत करता है—दूसरे शब्दों में, एक प्रचुरता और एक विविधता के जो कभी भी एक कोठर आवश्यक की सीमाओं में नहीं बंधी रहतीं। पुनः एक बार हमें इस पर बल देना चाहिए कि कलात्मक रूप का जीवित और सप्राण चरित्र मूलतः इस तंतु में ही चिन्तनीय हो सकता है। यही कारण है कि इस तंतु के, इसके असंख्य विभेदों तथा अगणित संभावनाओं के अध्ययन को इस नये कलासिद्धान्त का एक सबसे महत्त्वपूर्ण अध्याय रचना चाहिए—जिसके विषय में हम यहाँ केवल पहली और बहुत अपूर्ण रूपरेखा दे पाए हैं।

(११) संपूर्ण और अपने खण्डों के बीच के सम्बन्धों के फलस्वरूप प्राप्त कलाकृतियों की स्थूल संरचना के बारे में हमें और भी संक्षेप में चर्चा करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में सबसे पहले जो सामान्य सिद्धान्त प्राप्त होता है वह संपूर्ण की प्रमुखता का है; लेकिन जिस लचर ढंग से इसे लागू किया जाता है, कलाकृति की किसी भी आन्तरिक "मितव्ययता" की कीमत पर जो स्वतन्त्रता हावी होती है, वह हमें तुरंत अनियमित नियमत्व के सिद्धान्त की याद दिला देती है। संपूर्ण खण्डों का पूर्ववर्ती होता है, उनके बीच भेदीकरण करने के दौरान उन्हें उत्पन्न करता है। लेकिन जहाँ तक शेष बात का सम्बन्ध है, कृति के आन्तरिक गठन का संपादन स्वच्छंदतापूर्वक होता है तथा अतीव विभिन्न रूपों से आयत्त किया जा सकता है। खण्ड असंख्य हो सकते हैं या कुछ वे परस्पर सदृश्य हो सकते हैं या भिन्न-भिन्न; उनका अस्तित्व एक ही धरातल पर हो सकता है या सर्वाधिक जटिल, सर्वाधिक रूढ़ वंशानुक्रम से संजोये जा सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इस अधिक्षेत्र में, पहले के विरोध में, जटिलताओं के अन्तर लगभग असीमित हैं। सर्वाधिक सरल पैराटैक्सिस (Parataxis) से लेकर सर्वाधिक गंभीर हाइपोटैक्सिस (Hypotaxis) तक सभी हमें प्रत्येक सम्भव नमूना पेश करते हैं। यही कारण है कि जब हमारा चिन्तन इन रचनागठनों का सामना करता है, तब वह अविलंब कला-कृतियों के एक समान पादमुखभिन्न की ओर नहीं, बल्कि उनकी विविधता तथा उनकी प्रतीयमान···की ओर उन्मुख होता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कला का जीवशास्त्र इस बिंदु पर अपनी नैसर्गिक सीमाओं को प्राप्त कर ले। इसका तो केवल यही अर्थ है कि इस क्षेत्र में गठनतत्व से प्रजननशास्त्र की ओर जानेवाले पंथ को पहले से ही देखना आसान है। और आगे यह पंथ विकासवाद के सिद्धान्त की ओर उन्मुख है। इस सम्बन्ध में जिज्ञासा के तीन वातायन खुलते हैं। यहाँ हम साधारणतः उन्हें गिनाएँगे :

(क) व्यक्तिगत कृति का उद्गम; वह प्लाज्मा (Plasma) जिससे इसकी वृद्धि शुरू हुई; विभेदीकरण के रूप में देखी गई यह वृद्धि; स्वनियंत्रित विकास एवं चेतना विस्तार; विषम तत्त्वों का संश्लेषण; तंतु तथा स्थूल संरचना के बीच का सम्बन्ध; कृति की प्रौढ़ता।

(आ) कलाकार का उद्गत; एक कृति से दूसरी कृति तक रचना गठनमूलक विकास; पुरुष के जैविक स्तर और उसकी रचना के रूपात्मक (इसलिए जीवंत) पक्ष के बीच सम्बन्ध; प्रतिभा की उम्र में ढलाव और कृतियों में "पारदर्शिता" की वृद्धि के बीच सम्बन्ध।

(इ) मानवप्रगति के इतिहास (Ontogenesis) के इन दो भेदों के बाद जातीय इतिहास (Phylogeneis) की बारी आती है। क्या इन तीनों प्रक्रियाओं के बीच कोई समानांतरता है और वह कहाँ तक जाती है? क्या कला के इतिहास में हम एक विकास (शब्द के बिल्कुल ठीक अर्थ में) का निरीक्षण कर सकते हैं? रूपों के (रचना-गठनमूलक) विकास तथा अपनी मूर्त्त यथार्थता में देखी गई कलाकृतियों के ऐतिहासिक अनुक्रम के बीच विभेद करना पड़ेगा; प्राकृतिक इतिहास तथा कला के इतिहास में (आंशिक) औचित्य उद्गमवाद (Orthogenesis)।

अन्त में कला-कृतियों के रचनागठन का अध्ययन शोध के उस क्षेत्र में भी उन कई दृष्टिदशाओं का उन्मीलन करता है जहाँ अब तक विद्वान जनों ने बहुत कम प्रयास किया है; जैसे, कृतियों के स्थायित्व की, शताब्दियों के दौरान उनके उत्तर जीवन की दृष्टि दशाएँ। इन्हीं अधिक्षेत्रों में पुनर्जीवन की या नियमन की कुतूहलपूर्ण दशाएँ घटती हैं। इनके विषय में हम ऊपर भ्रमनिर्देशन कर चुके हैं। जब वे प्रत्येक संगठन के अत्यंत अभियोजित एवं नमनीय प्रकृति के सम्बन्ध से तुलनीय होती हैं तभी वे थोड़ी-बहुत व्याख्येय हो पाती हैं। जिस प्रकार सम्भव होने पर एक जीवित संघटना में एक विशिष्ट तंतु दूसरे को स्थानांतरित कर सकता है, जिस प्रकार एक इंद्रिय कम-से-कम दूसरी के धर्म का धारण कर सकती है, और जिस प्रकार एक ग्रंथि की क्रियता (Glandular activity) एक दूसरी ग्रंथि की कमी की पूरक हो सकती है, उसी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कलाकृति में भी कुछ ऐसे गुप्त साधन निहित होते हैं जिनके द्वारा वह प्रयुक्त किये गए प्रतीकों की जीर्णता-शीर्णता (wear and tear) की मरम्मत कर सकती है, अपने रूपात्मक रचनागठन के अप्रयुक्त तत्त्वों को अबतक छिपे गए तत्त्वों से स्थानांतरित कर सकती है, एवं नई पीढ़ियों को नई प्रतीत हो सकती है। कहा जा सकता है कि एक ओर तो यह जीवन है, तथा दूसरा ओर जीवन के औपम्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है। किन्तु इतना स्थायी रहने वाला जीवन का औपम्य किसी ऐसे पर आधारित होना चाहिए जो यथार्थ हो। और जीवनशास्त्रीय ढंग से उन्मुख कलासिद्धान्त इसी यथार्थता का तो अन्वेषण एवं अनुशीलन करता है।

(१२) जहाँ तक हमारा विश्वास है कि सिद्धान्त रूप में संभव, अथवा वास्तव में अस्तित्व मान सिद्धान्तों के ऊपर ऐसे सिद्धान्त का पहला लाभ है कि, चाहे ज्ञान का कितना ही सीसित अंश क्यों न हों, यह प्राकृतिक विज्ञानों तथा मस्तिष्क के विज्ञानों के बीच नजदीक का ऐक्य स्थापित करने में योगदान कर सकता है। हमारे युग का यह एक सबसे जरूरी काम है। इसका दूसरा लाभ यह है कि अपने निर्देशक सिद्धान्तों के द्वारा यह कलाकृतियों का केवलमात्र उनके आत्यात्मिक सार के आधार पर अनुशीलन करने वाले अध्ययनों की संक्षेपरूप सीमाओं का संकेत कर देता है। इस तरह यह कला के एक अधिजीवशास्त्र (Metabiology) की ओर भी निर्देश करता है। किन्तु हमें जो लाभ सर्वाधिक अपील करता है, वह तीसरा है: यह सिद्धान्त हमें मानवीय सर्जना के अर्थों की झलक लेने में सहायता करता है।

चैतन्य के जीवन से जीवन विलंबित होता है। जहाँ प्रकृति का अन्त और चेतना का आरंभ होता है वहाँ निरन्तर प्राकृतिक प्रसव रुक नहीं जाता। मनुष्य प्रकृति को सातत्य प्रदान किये रहता है। लेकिन अकेले नहीं, जैसा कि गलती से यह विश्वास किया जाता है कि अपनी निजी तकनीकी सर्जना-शक्तियों के द्वारा वह प्रकृति का उपयोग करके ऐसा करता है। बल्कि, अधिक सीधे ढंग से, उसका अनुकरण करते हुए, उसकी भाँति परिश्रम करते हुए, अपनी कल्पना के रूपों में जीवन की साँसें सम्प्रेषित करते हुए वह प्रकृति को सातत्य प्रदान करता है। कला एक नवीन प्रकृति है जो सत्ता के दूसरे स्तर पर स्थिर हैं; लेकिन उसके अनुशासक नियम कोई नये नियम नहीं हैं। प्रकृति कला में स्वयं का अभिज्ञान करती है; और यदि चेतना भी अपना कुछ अंश कला में संवलित कर देती है तो भी यह तो सत्य रहता ही है कि, अगर चेतना को जीवन्त रहना है तब, वह इस धरित्र पर उन नियमों को रद्द नहीं कर सकती जो कि जीवन के भी नियम हैं।

[अनुवादक :—रमेश कुन्तल मेघ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० सावित्री सिन्हा

आधुनिक कविता और रस-सिद्धान्त

कोई भी शास्त्रीय मापदण्ड चाहे वे कितने ही सार्वभौम और व्यापक क्यों न हों अपने रूढ़ रूप में हर युग के साहित्य के मानक नहीं बन सकते। जीवन में अन्य मूल्यों की भाँति ही ऐक्य और अनैक्य के सह-अस्तित्व का सिद्धान्त इस क्षेत्र में भी लागू होता है। रस काव्य की आत्मा है। आत्मा दिक्-काल के व्यवधान से परे, शाश्वत है। यह जितना बड़ा सत्य है, उतना ही बड़ा सत्य यह है कि आदिम युग और विज्ञान-युग के मानव की रागात्मक अथवा भावात्मक प्रतिक्रियाओं का रूप एक-दूसरे से बहुत भिन्न है। एक ही मूल भाव भिन्न वातावरण में भिन्न प्रकार से व्यक्त होता है। उदाहरण के लिए शृङ्गार-रस को ही लीजिए। विद्यापति के काव्य से लेकर नई कविता तक वह सतत विद्यमान है; पर भक्तिकाव्य का शृङ्गार रीतिकालीन शृङ्गार से भिन्न है; साकेत का शृङ्गार रूमानी कवियों के शृङ्गार से भिन्न है और नई कविता में व्यक्त शृङ्गार भावना पहले के शृङ्गार से बिलकुल अलग है। वीर-गाथा-काल के वीर-रस, भूषण के वीर-रस और आधुनिक कविता की वीर-भावना मूलतः एक होते हुए भी एक-दूसरे से भिन्न हैं। ऐसी स्थिति में यदि आधुनिक युग-बोध और परिवेश के प्रभाव को अमान्य करके हम रस-सिद्धान्त को उसके रूढ़ रूप में ही स्वीकार करना चाहें तो यह ठीक नहीं होगा। जिस प्रकार शरीर से परे आत्मा हमारी पकड़ के बाहर की वस्तु है उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी रूप अथवा विधा से बाहर रस की स्थिति सम्भव नहीं है। कवि की अनुभूतियों का विस्तार अथवा सम्प्रेषण केवल मानसिक और अमूर्त स्थिति में नहीं हो सकता, रूपात्मक स्थिति उसके लिए अनिवार्य होती है। यह रूपात्मक स्थिति भौतिक, सामाजिक अथवा प्राकृतिक परिवेश से गृहीत वस्तु-तत्वों के संयोजन द्वारा ही सम्भव हो सकती है; इस प्रकार हर कृति में आत्मगत अद्वैत का शाश्वत सूत्र देहगत द्वैत के परिवर्तनशील सूत्र में लिपटकर ही सुरक्षित रहता है। हिन्दी कविता पर रस-सिद्धान्त के मानकों का आरोपण करते हुए सबसे बड़ी भूल यही की जाती रही है कि काव्य-सर्जन की प्रक्रिया के द्वैतमूलक और परिवर्तनशील तत्वों को भी अद्वैतमूलक और शाश्वत सिद्ध करके, आधुनिक युग की बुद्धि-सम्पुष्ट रागात्मक संवेदना पर उसका आरोपण किया जाता रहा है। यह बात मैं अधुनातन प्रबन्ध कृतियों को ध्यान में रखकर कह रही हूँ। आधुनिक कविता के प्रसंग में रस-सिद्धान्त के मानकों का प्रयोग केवल उस व्यापक अर्थ में ही हो सकता है जिस अर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रस मानव-संवेदना का पर्याय है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए मैं एक प्रश्न लेती हूँ अंगी रस का। आनन्दवर्धन की उक्ति का अनुवाद है—

"जैसे प्रबन्ध में (आद्योपान्त) व्यापक एक प्रधान कार्य रखा जाता है (और अवान्तर अनेक कार्य उसको परिपुष्ट करते हैं) उसी प्रकार एक प्रबन्ध-व्यापी अंगी रस के साथ अंगभूत अवान्तर रसों के समावेश में भी विरोध नहीं है।"

स्पष्ट है कि अँगी रस का सम्बन्ध कृति के प्रबन्ध-विन्यास से जुड़ा हुआ है। पंचसन्धि-युक्त प्रबन्ध में जिस आधिकारिक वस्तु की नियोजना की जाती है वह आधिकारिक वस्तु प्रासंगिक वस्तु और अवान्तर कथाओं से जुड़ी रहती है; परन्तु इस कारण उसका महत्व कम नहीं होता। इसी प्रकार अंगी रस निरन्तर व्याप्त रहता है, कृति के मूल प्रभाव को व्यंजित करता है, नायक की चित्तवृत्ति में उसकी स्थिति होती है और उसी के माध्यम से वह कृति के उद्देश्य की व्यंजना करता है। जिन आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों की रचना संस्कृत महकाव्यों के आधार पर हुई है, जिनमें घटना और पात्रों की प्रधानता है, उन पर तो अंगी रस के निर्धारण की यह कसौटी लागू की जा सकती है, परन्तु उन विचार प्रधान आधुनिक-प्रबन्ध-कृतियों पर यह शास्त्रीय जकड़-बन्दी कैसे लगाई जा सकती है जहाँ घटनायें और पात्र किसी विचार के वाहक होते हैं। विचार प्रधान काव्य की सर्जन-प्रक्रिया में दो शक्तियाँ साथ-साथ काम करती हैं। तर्कों से बँधे विचार को मानसिक प्रवृत्तियों से चंचल गतिशील भावनाएँ सजीव बनाती हैं। बुद्धि की स्थिरता भावनाओं की द्रवणशीलता में बँधकर हृदय का अंग बन जाती है, तभी विचारक कवि-कलाकार के रूप में अपने दायित्व का निर्वाह करने में समर्थ होता है। विचार-प्रधान कृतियों में समस्या के चित्रण और समाधान की प्रक्रिया का भी कोई निश्चित और रूढ़-रूप नहीं हो सकता। कभी एक ही विचारसूत्र के विविध पक्ष एक साथ चलते हैं, कहीं द्वन्द्व बुद्धिजन्य विचार और प्रवृत्तिजन्य राग में होता है, कहीं एक ही समस्या पर उठाये गए विभिन्न विचार-सूत्र एक-दूसरे से टकराते हुए एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं और इस टकराहट का अन्त बिखराव और टूटन में भी हो सकता है। इस प्रकार इन कृतियों में एक ही समस्या से सम्बद्ध-विरोधी तत्व अपने आप ही समाविष्ट हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में इन कृतियों के अंगी-रस के निर्धारण के लिए मूल प्रभाव की व्यंजना, नैरन्तर्य और फलागम में सहायता इत्यादि निकष मेरे विचार से ठीक नहीं उतरते। इन कृतियों में कवि का राग बुद्धि-सम्पुष्ट होता है, उसके सामने एक समस्या रहती है जिस पर विचार करते समय रस-निष्पत्ति की निमग्नता और तल्लीनता नहीं आ पाती, उससे प्राप्त आनन्द बौद्धिक आनन्द होता है जिससे मस्तिष्क की ग्रन्थियाँ पहले खुलती हैं—हृदय उनका अनुसरण करता है। भाव-प्रधान कविता की भाँति विचार-प्रधान कविता में कवि दर्शक अथवा आश्रय मात्र न रहकर विचारक और द्रष्टा होता है। इसलिए आधुनिक कविता के बौद्धिक प्रतिपाद्य के मूल्यांकन के लिए, हमें इन शास्त्रीय विधानों के शिकंजे से बाहर आना पड़ेगा।

लेकिन, फिर प्रश्न उठता है कि क्या ये कृतियाँ रस-विरोधी हैं? और मेरे मन को इसका निषेधात्मक उत्तर नहीं मिलता। इन कृतियों के प्रतिपाद्य में भाव और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि की स्थिति का विपर्यय नहीं है। आस्था-युग के कवि दिनकर की विचार-प्रक्रिया यदि रससिक्त न होती, तो "कुरुक्षेत्र" प्रवचन-मात्र रह जाता, यद्यपि अंगी रस की शास्त्रीय कसौटी पर वह काव्य खरा नहीं उतर सकता क्योंकि उसमें युधिष्ठिर का विचारसूत्र समस्या उठाकर पीछे हट जाता है और भीष्म ही समस्या के दोनों विरोधी पहलुओं को समाधान की ओर ले जाते हैं। उर्वशी के अंगी रस के निर्धारण में तो कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी क्योंकि उसमें शृङ्गार के कई सूत्र बिना एक-दूसरे का विरोध किए आगे बढ़े हैं। 'कनुप्रिया' में व्यक्त सहजता के आग्रह तथा भावाकुलता का मूल्यांकन रस के सन्दर्भ में ही उचित रूप में किया जा सकता है, यद्यपि नया भाव-बोध, और नई अर्थवत्ता इसमें आद्यन्त विद्यमान है। 'संशय की एक रात' की उलझी हुई संशय-ग्रस्त संवेदना का मूल्यांकन रागात्मक प्रतिक्रियाओं के परिपार्श्व में ही किया जा सकता है। पर उसके प्रतिपाद्य के विभिन्न अंगों को तोड़कर भाव, अनुभाव, विभाव, और संचारी भावों की खानापूरी करना चाहेंगे तो ग़लत होगा। अतः यदि रस-सिद्धान्त में बौद्धिक और भावात्मक प्रतिक्रियाओं के जटिल, ग्रन्थिल और संश्लिष्ट प्रबन्ध के लिए स्थान है, तो वह निकष ठीक है नहीं तो अच्छा है कि रस-सिद्धान्त अपनी शास्त्रीय गरिमा न खोए और आधुनिकता उसके अनुपयुक्त होकर ही अपने मार्ग पर चलती रहे।

इन प्रबन्ध-कृतियों के अतिरिक्त सामान्य भूमि पर नई कविता और रस का प्रसंग मैं पिछले कुछ दिनों में श्री वात्स्यायन द्वारा दिए गए वक्तव्यों की पृष्ठभूमि में उठाना चाहूँगी। दिल्ली विश्वविद्यालय की विस्तार व्याख्यानमाला तथा दिल्ली की ही संस्था साहित्यिकी के तत्वावधान में वात्स्यायन जी ने नई कविता के सन्दर्भ में रस की चर्चा करते हुए कहा था 'विश्वविद्यालय में विचार रस-सिद्धान्त के सन्दर्भ में होता है, विश्वविद्यालयों में नई कविता जिस रूप में पहुँची है उसमें उसे भरती करने और निकाल बाहर करने में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि वह भरती ही इसलिए की गई है कि उसे अस्वीकृत करके कहा जाए कि वह कितनी अपात्र है।' मैं वात्स्यायनजी को यह याद दिलाना चाहती हूँ कि अनेक प्रतिष्ठित नये कवियों का सम्बन्ध विश्वविद्यालयों से है अथवा पहले रहा है और नई कविता के प्रसंग में रस-सिद्धान्त के औचित्य-अनौचित्य का प्रश्न भी गम्भीरता के साथ केवल उन्हीं नए कवि और आलोचकों द्वारा उठाया गया है जिनका विश्वविद्यालयों से सम्बन्ध है, जो नए भाव-बोध के प्रति सजग और आग्रहशील होते हुए भी शास्त्रीय परम्पराओं की गरिमा को समझने की क्षमता रखते हैं—जो केवल विरोध के लिए विरोध करने को ही बिना रस-सिद्धान्त को समझे हुए, अपने अविश्वविद्यालयी सहकर्मियों की तरह, हवा में फ़ायर नहीं करते। जिस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ये बातें कही गई हैं, वे अब पुरानी पड़ चुकी हैं। आधुनिक कविता के सन्दर्भ में रस-सम्बन्धी विवाद शायद डा० नगेन्द्र के प्रयोगवाद लेख से आरम्भ होता है, जिसमें उन्होंने यह निर्णय दिया था कि "प्रयोगवाद में बुद्धि प्रधान हो गई है और राग गौण इसलिए उसमें रस का अभाव है। पहले तो उसका अर्थ ही हाथ नहीं आता और यदि दिमाग को खुरचकर इसका अर्थ निकाल भी लिया जाय तो पाठक के मन का प्रसादन नहीं होता।" प्रथम दो सप्तकों के मैनेरिज्म,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नूतनता के लोभ और शिल्प के अत्यधिक आग्रह से नई कविता बहुत आगे आ चुकी है। जिस नए भाव-बोध और संवेदन का वह संवहन कर रही है उसमें राग और बुद्धि के क्रम का वह विपर्यय नहीं रह गया है जिसका स्वर दो तारसप्तकों में प्रधान था। अनेक नए कवियों की रचनाओं में द्वन्द्व से अद्वन्द्व, द्वैत से अद्वैत की ओर जाने की सतत चेष्टा दिखाई दे रही है। वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के अन्तर्विरोधों से टक्कर लेने के साथ ही सामंजस्य की ओर उन्मुख होने का भाव भी उनमें विद्यमान है—यह स्थिति रस-विरोधी नहीं है। अब तो मुझे ऐसा लगता है कि नई कविता में रस के प्रश्न को इतना तूल केवल दोनों ओर के मताग्रह के कारण दिया जा रहा है।

रसयुक्त-काव्य और रसमुक्त-काव्य का भेद स्पष्ट करते हुए एक बात यह कही जा रही है कि "रस का काव्य अनिवार्यतया अतीतोन्मुख था। जब द्वन्द्व प्रबल होने लगा तो रस-कवि और भी अतीतोन्मुख होने लगा। प्रगतिवाद भविष्योन्मुख था परन्तु नया कवि वर्तमान में जीता है।" समझ में नहीं आता कि आज से पहले की सम्पूर्ण कविता अतीतोन्मुख कैसे थी ? सम्पूर्ण राष्ट्रीय कविता की प्रेरणा के पीछे तत्कालीन, राजनीतिक आन्दोलन तथा तद्‌युगीन सांस्कृतिक चेतना है। अतीत—इतिहास और पुराण तो वर्तमान की अभिव्यक्ति के निमित्त उपादान मात्र हैं। छायावादी कविता अतीतोन्मुखी कैसे है ? रूमानी यथार्थवादी कविता को क्या एक क्षण के लिए भी वर्तमान से असम्पृक्त किया जा सकता है ? हिन्दी कविता की हर प्रवृत्ति वर्तमान से प्रेरित होकर भविष्य की ओर उन्मुख हुई है, अतीत-गौरव के महत्व की स्थापना तथा गौरव-गान वर्तमान के सन्दर्भ में ही हुआ है। यदि 'क्षण' में जीने की स्थिति से तात्पर्य क्षणिक भावदीप्त मनःस्थिति से है तो भी यह स्थिति रस-विरोधी नहीं पड़ती; इस प्रकार की स्थिति संचारी रूप में उदित होती है जो बिना किसी स्थायी भाव के सम्भव नहीं है। रूढ अनुभावों, विभावों आदि की जकड़बन्दी की अनिवार्यता यहाँ भी छोड़नी पड़ेगी।

हर युग की श्रेष्ठ कविता वर्तमान से प्रेरित होकर, यथावश्यक अतीत का सहारा लेकर भविष्य की ओर उन्मुख होती है। भविष्योन्मुखता केवल प्रगतिवाद का दाय नहीं है और न नई कविता अतीतोन्मुखता से परे है। न इतिहास की ओर तथा-कथित रस-काव्य लौटा था और न रस-मुक्त काव्य अर्थात् नई कविता लौटी है। यदि नई कविता में प्रतिष्ठित पौराणिक उपाख्यानों और पात्रों की नई अर्थवत्ता वर्तमान से सम्बद्ध है तो प्रियप्रवास साकेत और रश्मिरथी का भाव-बोध भी वर्तमान से ही प्रेरित था। और फिर, अतीतोन्मुखता को रस-सिद्धान्त की मूल कसौटी कैसे माना जा सकता है ? रस और अरस काव्य के बीच में एक व्यावर्तक रेखा अवश्य खींची जा सकती है कि रस-कवि वर्तमान में जीकर भूत और भविष्यत् की ओर बढ़ता है और रस-मुक्त कवि वर्तमान में जीता हुआ उसी में मरना चाहता है, क्योंकि द्वन्द्व और असामंजस्य की स्थिति दीर्घायु नहीं हो सकती। परन्तु अब तो स्थिति यह भी नहीं रह गई है। अनेक पुराने और नए कवि द्वन्द्व से अद्वन्द्व और अनास्था से आस्था की ओर बढ़ रहे है, दूसरे शब्दों में वे अनास्था से आस्था और द्वैत से अद्वैत की ओर उन्मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो रहे हैं जिन्हें रस-काव्य का मुख्य अनुबन्ध माना गया है।

पर द्वन्द्व और नास्तिकता का प्रश्न जिस रूप में उठाया गया है उससे बात और भी उलझ गई है। द्वन्द्व को दुलारने की प्रवृत्ति को शाश्वत सिद्ध करने के लिए तर्क दिया जाता है कि भारतेन्दु की कविता रस की थी परन्तु उनके नाटकों में, जिनमें समाज की आलोचना है, रस को विशेष महत्व नहीं दिया गया। आरम्भ के निराला वेदान्ती और आस्तिक हैं, परन्तु बाद में वे समाज के आलोचक और द्वन्द्व से पीड़ित हैं। प्रगतिवाद का आग्रह द्वन्द्व और द्वन्द्ववाद से पीड़ित है। इस प्रकार के संकेतों का रस के सन्दर्भ में केवल एक अर्थ लगाया जा सकता है कि जहाँ कविता की प्रेरणा यथार्थोन्मुखी तथा समाजोन्मुखी होती है वहाँ रस नहीं हो सकता। यह स्थापना ही अपने-आप में ग़लत है। भारतेन्दु ने केवल रस-कविता ही नहीं लिखी उनकी अनेक कविताओं की प्रेरणा भी उतनी ही यर्थार्थवादी और सामाजिक है जितनी उनके नाटकों की।

नई कविता के पहले की हिन्दी-कविता के क्षेत्र में जितनी भी समाजोन्मुखी प्रवृत्तियाँ उदित हुईं वे प्रायः द्वन्द्व से अद्वन्द्व की ओर बढ़ी हैं—चाहे वे भारतेन्दुकालीन हों, द्विवेदीयुगीन हों अथवा छावावाद-परवर्ती। उनमें द्वन्द्व को पाला नहीं गया है। हर समाजोन्मुखी प्रवृत्ति आलोचना और द्वन्द्व से आस्था होकर शिवत्व की ओर उन्मुख होती है। पहले का द्वन्द्व व्क्ति और समाज के बीच था, आज के द्वन्द्व का फोकस व्यक्ति पर है। आज व्यक्ति, समाज, देश और विश्व सबके प्रति एक असामंजस्य का भाव है, दुनिया की हर छोटी-बड़ी वस्तु से ऊबा हुआ व्यक्ति जिस नई संवेदना को पाल रहा है उसका सम्बन्ध पूर्वकालीन समाजोन्मुखी चेतना से जोड़कर उस चेतना को भी रसविहीन सिद्ध करने की चेष्टा की जा रही है, जो सर्वथा असमान्य है। पहले का द्वन्द्व भावनात्मक प्रतिक्रियाओं की एक स्थितिमात्र है जिसकी परिणति अद्वन्द्व में होती है। जिस द्वन्द्व की बात आज उठाई जा रही है उसे अन्तिम परिणति रूप में स्वीकारा जा रहा है। इस प्रकार रस के प्रसंग में उठाया हुआ यह सूत्र भी सन्दर्भ से टूटा हुआ है।

आधुनिक कविता के प्रसंग में रस-सम्बन्धी दो मुख्य प्रश्न और उठाए जाते हैं, (१) नई कविता के बौद्धिक प्रतिपाद्य में रस निष्पत्ति की अलौकिकता कैसे आ सकती है तथा (२) नई कविता का सामाजिक कौन है ?

पहले प्रश्न के उत्तर में एक प्रश्न उठता है, क्या मानव मन की बौद्धिक और अनुभूत्यात्मक स्थितियाँ एक-दूसरे की पूर्णतया विरोधी हैं ? काव्यसर्जन—प्रक्रिया के संश्लिष्ट विन्यास में क्या एक की स्थिति दूसरे के निषेध से ही सम्भव हो सकती है ? साहित्य की प्रक्रिया आत्मदर्शन की आध्यात्मिक प्रक्रिया है जो उद्रेक की स्थिति है, अगर प्रतिपाद्य के प्रति कवि का बौद्धिक दृष्टिकोण इस उद्रेक की गतितूर्ण लहरों में समाकर भावानन्द का ही अंश बन जाता है, तो मेरे विचार से ऐसे बौद्धिक तत्व को कविता का घातक नहीं माना जा सकता। बुद्धिद्वारा संचित समाहिति की स्थिति हृदय की मुक्तावस्था की स्थिति से भिन्न है, ऐसा मेरी समझ में नहीं आता। समाहिति की स्थिति आनन्द की ही स्थिति होती है और यह प्रक्रिया सूक्ष्म मानसिक स्तर पर होने के कारण एक प्रकार से आध्यात्मिक या अलौकिक भी कही जा सकती है। नई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता के सामाजिक का निर्धारण करते हुए सबसे पहली बात तो ध्यान में रखने की यह है कि साहित्यिक प्रवृत्तियों के परिवर्तन के साथ सामाजिक की परिभाषा नहीं बदला करती। जब प्रत्येक युग का साहित्य देश और काल की सीमा का अतिक्रमण कर अपना सामाजिक प्राप्त करता रहा है, तब नई कविता में ऐसा क्या है जिससे १९४३ के पहले का सामाजिक उसके मूल्यांकन के लिए अनधिकारी घोषित कर दिया जाए। ऐसे नारे तो नई कविता को युग और वर्ग की मुट्ठी में बाँध उसे संकीर्ण बना देंगे।

नई कविता के प्रतिपाद्य में भी पहले की ही भाँति दो प्रवृत्तियाँ प्रधान हैं— वैयक्तिक काम-भावना और समष्टिगत सामाजिक चेतना। काम-भावना पहले की अपेक्षा स्वच्छन्द और यथार्थ भूमि पर पल्लवित होने के कारण समस्यामूलक अधिक हो गई है, भावमूलक कम रह गई है। इसी प्रकार पहले की समष्टि-चेतना के रूमानी स्वर का स्थान यथार्थवादी धरातल पर उठते हुए आक्रोश के स्वरों ने ले लिया है, जिनमें से कुछ काल्पनिक और बौद्धिक हैं और कुछ की जड़ें इस पृथ्वी में ही हैं। जो सामाजिक पहले देवदास के साथ आँसू बहाता था वह शेखर के साथ भी तादात्म्य कर सकता था। तो फिर, जो सामाजिक 'निशानिमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' की भाव-लहरियों में निमग्न होता था वह 'नये रस' के पिघले फूलों की रसवन्ती आग को पीनेवाले के द्वन्द्व का आस्वादन क्यों नहीं कर सकेगा? जो सामाजिक 'हुँकार' और 'सामधेनी' की आग और धुएँ की पहचान कर सकता था वह आज के संकट को नहीं पहचान सकता ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। इसके साथ ही यह भी ध्यान में रखने की बात है कि मध्यवर्गीय युवकों की संवेदना का नाम देकर नई कविता की संवेदना को सीमित और संकीर्ण तथा सार्वभौमता के गुणों से विहीन घोषित नहीं किया जा सकता, क्योंकि हिन्दी कविता की ध्वजा मध्यवर्गीय युवकों के हाथ में आज पहली बार नहीं आई है। आवश्यकता इस बात की है कि अब नए और पुराने की रेखाएँ मिटाकर, पक्ष-विपक्ष, वाद-प्रतिवाद के पूर्वाग्रहों और मताग्रहों को छोड़कर नई कविता के प्रसंग में रस-सिद्धान्त के औचित्य-अनौचित्य के प्रश्न पर वाद-विवाद समाप्त कर दिया जाय क्योंकि जिस स्थिति में यह प्रारम्भ हुआ था नई कविता अब उससे बहुत आगे आ गई है और रस-सिद्धान्त का विवेचन भी आज शास्त्रीय जकड़बन्दी से बाहर आकर खुले और व्यापक धरातल पर हो रहा है। ऐसा लगता है कि नई चेतना और शास्त्रीय गरिमा बिकास, समन्वय तथा व्यावहारिकता के सिद्धान्तों को ग्रहण कर एक ही गंतव्य की ओर बढ़ रही है। नई काव्य-चेतना और रस-सिद्धान्त की शास्त्रीयता की यह टक्कर हिन्दी कविता के इतिहास में पहली बार नहीं हो रही है। हिन्दी की हर नवोदित काव्य-प्रवृत्ति के मार्ग में 'ब्रह्मानन्द सहोदर' भूत की तरह खड़ा हो जाता है और अपनी प्राचीन वेशभूषा के कारण उसे अपनी ईमानदारी के प्रति आश्वस्त नहीं कर पाता, परन्तु इतिहास साक्षी है कि नई कविता के पहले उदित आधुनिक प्रवृत्तियों में से वही अंश अमरत्व का भागी बना है, जो रस की भूमि पर खरा उतरा है। नई कविता में रस-तत्व का पूर्ण निराकरण देखने वाले विद्वानों का ध्यान मैं इसी तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहती हूँ कि नई-चेतना अब जिस ओर मुड़ रही है वह मार्ग रस के विरोध का नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० बेचन

आधुनिकता और नवीन कथा चरित्र

नवीनता को आवश्यकता से अधिक महत्व देने वाले आलोचक (ह्रासोन्मुखी) इस बात से चिन्तित हो रहे हैं कि मानवतत्व का अंग-भंग हो गया है और मानव का व्यक्तित्व सामाजिक एवं व्यक्तिगत इन दो टुकड़ों में बँट गया है।[1] ये आलोचक कथा साहित्य में दृष्टिगोचर होनेवाली मानवीय पक्ष की दुर्बलता का मूल कारण यह मानते हैं कि मनुष्य के आत्मान्वेषण की वृत्ति सीमित, सतही, कुण्ठित या लक्ष्य-भ्रष्ट हो गई है। इनके अनुसार स्टालिन पुरस्कार प्राप्त कृतियाँ सुसंस्कृत अभिरुचि वाले पाठकों को बचकानी लगती हैं। इन कृतियों में डास्तावस्की, विक्टरह्यूगो, और टालस्टाय के उपन्यासों की तरह चिरंतन मानवीय मूल्यों की स्थापना नहीं हुई है। अतः ये उयन्यास क्लासिकल साहित्य नहीं बन पा रहे हैं। यही हाल अमेरिका में प्रकाशित होने वाले 'बेस्ट सेलर' उपन्यासों का भी है।[2]

ऐसे आरोपों का मुख्य कारण यह है कि आधुनिक जनवादी भावनाओं ने कथाकारों को प्रभावित किया और वे घिसी-पिटी परम्परा को छोड़ नये चारित्रिक मूल्यों की स्थापना के लिए नये साहित्य का सृजन करने लग गए। ऐसे नये उपन्यासों के चरित्र ह्रासोन्मुखी बुर्जुआ आलोचकों के पल्ले नहीं पड़ते।

सोवियत कथाकार कथा साहित्य की पुरानी परम्परा को छोड़कर नई जनवादी परम्परा को कायम कर रहे हैं, जो उनके अपने अनुभव और आभ्यान्तरिक चेतना का प्रतिफल है। पुरानी सामाजिक व्यवस्था और घिसे-पिटे मूल्यों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा, बल्कि वे समाजवादी समाज के प्रेम और भविष्य में विश्वास करते हैं। ये उपन्यास अपने-अपने स्वतन्त्र उद्‌भव रखते हैं और इन्हें अपनी भूमि से अलग-अलग प्रेरणाएँ प्राप्त हैं। इनमें सूक्ष्मतः एक विचारगत नवीनता, भावनाएँ, पात्रों का संघर्ष और उनका भाग्य एक नवीन आस्वाद उत्पन्न करता है। विषय का यह नयापन तभी पसन्द आ सकता है जब वैसी व्यवस्था में हम जीना चाहें। रूसी उपन्यासों में अत्यन्त बलिष्ट मानव अपने उद्देश्य में अग्रसर होता हुआ विजय प्राप्त करता है। वहाँ की जनता यह समझती है कि जीवन उपन्यास की तरह है और उपन्यास जीवन की तरह है।

१. आलोचना (उपन्यास अंक) उपन्यास का भविष्य, पृ० २३१।
२. आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

It goes without saying that what I have to say is purely subjective and based on my personal experience. We Soviet writers are united by our love for our socialist society and faith in its future, but we write about different things, each in his own way. The experience of each of us is different."[1]

किन्तु इसके विपरीत पाश्चात्य बुर्जुआ लेखक यह सोचता है कि कल उसका एवं उसके पात्र का क्या होगा जब कि विश्व पर युद्ध के बादल मँडरा रहे हैं और हमारे मित्र कहें कि एक वर्ष के अनन्तर ही तुम पर अणुबम की वर्षा होगी।

"Today the writers of the bourgeois west do not know what will happen to their characters the next day, or to themselves, for that matter. It is hard to think out a novel when your friend says an atom bomb will drop on you in a year's time."[2]

नई पीढ़ी के अधिकांश अमरीकी उपन्यासों में जीवन की आशा और वास्तविकता का बड़ा ही सजीव चित्र उभरा है। मार्क्स कन्लिफ़ ने अमरीकी कथा साहित्य के विषय में लिखा है कि आमतौर पर मानी जाने वाली बातें झूठी हैं। कलाकार शेष समाज से कटा हुआ होता है। ये 'खोई हुई पीढ़ी' द्वारा आम तौर पर स्वीकृत स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त थे। ये नकारात्मक वक्तव्य थे, यह नकारों के युग के अनुकूल ही था। किन्तु ये आनन्दपूर्ण नकार थे। लेखक उतने आशाहीन रूप में कटा हुआ नहीं था, जितना वह अपनी ओर से मानता था। कम-से-कम उपन्यासकार ऐसा नहीं था। छोटी पत्रिकाओं के सांत्वनापूर्ण आपसी सम्पर्क के अतिरिक्त (जिन्हें हमेशा ही नए समर्थक मिलते प्रतीत होते थे), उसे जनसाधारण से भी, जिनकी वह भर्त्सना करता था, आश्चर्यजनक मात्रा में समर्थन मिला। वस्तुतः व्यापक प्रश्नों में कथा-साहित्य का लेखक अपने पाठकों से बहुत दूर नहीं था। बहुसंख्यक अमरीकी उससे सहमत थे कि युद्ध व्यर्थ और भयावह था, नशाबन्दी एक भूल थी, यौन महत्वपूर्ण था, पेरिस और फ्रान्स के दक्षिणी तट का जीवन स्वदेश के जीवन से अधिक स्फूर्तिदायक था। कसे हुए, बनावट से मुक्त गद्य में, जिसे अधिक-से-अधिक विकसित करने की लेखक चेष्टा करता था, ऐसे विषयों की चर्चा सुनना उन्हें अच्छा लगता था। सिंक्लेयर ल्युइस या अर्नेस्ट हेमिंग्वे की शैली में उन्होंने एक ऐसी चीज पाई जो उनकी बातचीत या समाचार पत्र में उनके प्रिय खेल सम्बन्धी लेखक के स्तम्भ से बहुत दूर नहीं थी। फिर भी, लेखक का आग्रह था कि असली और नकली के बीच, संस्कारयुक्त लोगों और जिन्हें मेन्केन 'बूबाइजी' कहते थे (मध्यम वर्ग के लिए फ्रेन्च शब्द 'बूर्जुआजी' को बिगाड़कर) उनके बीच, एक मौलिक अन्तर था। युद्धोत्तर काल के वर्षों में लेखक की पुकार स्वतन्त्रता के लिए थी—व्यक्ति के लिए अपने को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता। इस काल के विचारदर्शन में फ्रायड की देन मार्क्स से कहीं अधिक थी, किन्तु मार्क्सवादी सिद्धान्त बेमेल नहीं प्रतीत होते थे।—यह स्थिति केवल अमेरिका की ही नहीं है।

1. The writer & his craft, Ilya Ehrenburg, P. 39.
2. The writer & his craft, P. 4.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक दृष्टि से युरोप की स्थिति कुछ बेहतर भले ही हो, उसका राजनीतिक और आर्थिक ढाँचा बुरी तरह हिल गया है। और वस्तुतः उसके लेखकों-कवियों, उपन्यास-कारों और नाटककारों ने, अमरीका के लेखकों से अधिक इसके कोई चिह्न नहीं दिखाए हैं कि उनके पास कहने को कोई नई बात है या उसे कहने का कोई प्रभावकारी ढंग है।[1]

सोवियत कथाकार इलिया इहरेनबुर्ग ने नई सोवियत सामाजिक व्यवस्था से उभर रहे नए चरित्र का बड़ा ही भव्य एवं यथार्थ चित्र अपने प्रबन्ध 'दी राइटर एण्ड हिज क्राफ्ट' में प्रस्तुत किया है। आधुनिक भारतीय कथा चरित्र भी उसी परिवेश में विकसित हो रहे हैं। इहरेनबुर्ग के विचार भारतीय जीवन के यथार्थ चित्र से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। आधुनिक समाज हमारी आँखों के सामने बन और बिगड़ रहा है। बहुत से ऐसे लेखक हैं जो अभी जीवित हैं, किन्तु प्राचीनता से दूर है, जिनके उपन्यास आज की ज्वलन्त समस्याओं से ओतप्रोत होते हुए भी बिना किसी कलात्मक ह्रास के अमर बन गए हैं—आधुनिक मानव और उसके आपसी सम्बन्ध बदलते जा रहे हैं। हमारे युग के कॉलेज के छात्र उन युवक युवतियों से बहुत कम मिलते-जुलते हैं जो सन् १९२५ ई० में मिलते थे। मानव की मूल वृत्तियाँ, जो अपरिवर्तनशील मानी जाती हैं वह भी शीघ्रता से बदलती जा रही हैं। आधुनिक दम्पति का विकसित प्रेम-प्रथम पंचवर्षीय योजना के युग में प्रचलित युवा स्त्री-पुरुषों के प्रेम से भिन्न है।

"Our society is being built before our very eyes. Many nov-els by authors still living (and far from old) that dealt with burning issues of the day have become, without losing their literary merits historical novels...People and their relationships and psychology are changing. The heroes...The college students of our day are little like the youngmen and women who attended the workers high sch-ools in 1925. Even emotions formerly considered unchanging change with amazing rapidity and the feelings of a couple in love to-day are different from what young men and women felt in the era of the First Five Year Plan."[2]

भारतीय आलोचक श्री शिवदानसिंह चौहान के अधोलिखित कथन से इलिया हरेनबुर्ग के कथन का समर्थन होता है। भारत नये मूल्यों को अपना रहा है। भारत की स्वतन्त्रता के साथ यह उभरा है—"भारतीय जनता ने आजादी के लिए संघर्ष किया—क्यों? क्योंकि (आजादी) स्वयं एक मूल्य है, शायद सबसे बड़ा मूल्य आजादी के बिना नये भारत के निर्माण की आकांक्षा एक स्वप्न ही बनी रहती आजादी की बुनियाद पर ही नये भारत की इमारत खड़ी हो सकती थी। जनवाद दूसरा मूल्य है, जिसके लिए हमारी जनता ने संघर्ष किया, क्योंकि जनवाद में ही आजादी के बाद के भारत की आकांक्षाएँ ठोस मानवीय आधार पा सकती थीं। जन

१. अमरीकी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३१२।
2. The writer and his craft. Page 2.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाद या डिमोक्रेसी पूंजीवाद का पर्याय नहीं है, न दोनों में कोई अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जनवाद समाजवाद का विरोधी भी नहीं, जैसा कि ह्रासोन्मुखी पूंजीवाद के व्यष्टि विचारकों ने प्रचारित कर रखा है। जनवाद सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक क्षेत्रों में व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्धों का समानता, न्याय और सहयोग के आधार पर नियमन करने वाली व्यवस्था भी है और विश्व-बन्धुत्व की एक उच्चतर भावना भी। 'शान्ति' तीसरा मूल्य है जिसके प्रति हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का सहज आकर्षण रहा है क्योंकि शान्ति—विश्व-शान्ति ही आजादी और जनवाद की सुरक्षा की गारण्टी है और शान्ति के वातावरण में ही किसान की कुदाली धरती से सोना उगलवा सकती है और मजदूर का हथौड़ा नये कारखानों, विद्युत शक्ति पैदा करने वाले बाँधों और राजपथों का निर्माण करके जरूरत की चीजें पैदा कर सकता है। ये तीन मूल्य हैं जो हमारी सभी प्रगति-चेष्टाओं के मूलमन्त्र रहे हैं। ये मूल्य ही हमारी राष्ट्रनीति की आधारशिला हैं—गांधी के सत्य अहिंसा के सिद्धान्त, समाजवादियों-साम्यवादियों के शोषणमुक्त वर्गहीन समाज व्यवस्था के सिद्धान्त तथा राष्ट्रों के सहअस्तित्व के लिए पंचशील के सिद्धान्त इन मूल्यों की ही पुष्टि करते हैं, क्योंकि भारतीय जीवन ही नहीं विश्व-जीवन के विकास की सम्भावनाएँ भी इन मूल्यों की स्वीकृति पर निर्भर करती हैं।[1]

परिणामस्वरूप हमारे नैतिक मूल्य भी बदले और परम्परागत मूल्यों में विघटन आया। नए मूल्यों ने पुराने मूल्यों को चुनौती दी। जीवन का सारा दृष्टिकोण ही कुछ इस प्रकार बदलने लगा कि जीवन के सारे स्तर के लिए नई व्याक्या की आवश्यकता महसूस हुई। किन्तु इसकी जड़ में आर्थिक समस्याएँ अधिक थीं, सामाजिक कम। आर्थिक स्थिति में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता थी, जो हो नहीं रही थी। आर्थिक असन्तुलन से शासक और शासित में विषमता उत्पन्न हुई। चारित्रिक असंयम, भ्रष्टाचार, दायित्वहीनता और बेईमानी का नंगा नाच होने लगा। ठीक इसी समय योरोपीय साहित्य ने हमारे साहित्य को भी प्रभावित किया। परिणामस्वरूप आशंका, भय, अनिश्चितता, मूल्यों के विघटन, पतनशील प्रवृत्तियों के उदय, जीवन के प्रति अनास्था, मृत्यु और वेदना की जीवन पर प्रतिष्ठा इत्यादि ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियाँ ही एक सिरे से प्रकट होने लगीं।[2] इस योरोपीय अराजकता का चित्र डॉ० पी० ए० सोरोकिन ने अपने प्रबन्ध "Sexualization of culture" में प्रस्तुत किया है। इस युग का अधिकांश साहित्य अपसामान्य व्यक्ति चरित्रों का चित्र प्रस्तुत करता है—

"Parallel with this secularization has been the use of characters drawn from every day life, housewives and husbands, merchants and workers, farmers and professionals, and other common types. And in the last century, much literature has centred on the personalities and adventures of subnormal and abnormal people, prostitutes and mistress, street urchins and criminals, the mentally and emotionally derailed and other social derelicts".[3]

१. संकेत, पृ० २८४।
२. आलोचना (२५), पृ० २६६।
3. Bhawan's Journal, Feb. 8, 1959, P. 43.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरोप में जो कथा-साहित्य गत कुछ वर्षों में सबसे अधिक प्रचारित हुआ उसमें बुरे चरित्रों, (Bad characters)[1] पाकिटमारों, जुआरियों, चोर-उचक्कों आदि को प्रधानता मिली है। हिन्दी में भी इस दौरान दलालों, जासूसों, वेश्यालयों, पूँजीपतियों और राजाओं के रोमान्सों का कथा-साहित्य कम प्रचलित नहीं हुआ। देश और विदेश के इस क्लिष्ट परिवेश ने आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य को प्रभावित किया, जिसे दो रूपों में देखा जा सकता है। हिन्दी लेखकों की दो प्रवृत्तियाँ इन प्रभावों के कारण विकसित हुई। एक धारा के कथाकार ने अनास्था, घुटन और फ्रस्ट्रेशन को जीवन का अनिवार्य अंग मान लिया। व्यक्ति का महत्व इनके साहित्य में अधिक है। अतः यह साहित्य व्यक्तिमूलक बन गया। 'शेखर' ऐसे पात्रों का व्यक्तिवाद और भुवन-रेखा की काम चेष्टाएँ व्यक्ति स्वातन्त्र्य की वैयक्तिक व्याख्या है। "गुनाहों के देवता" का नायक इसी कुण्ठा का शिकार नायक है। इस व्यक्तित्ववादी और कुंठावादी प्रवृत्ति के बारे में श्री अमृतराय का कहना—" योरोपीय मध्यवर्ग या निम्न मध्यवर्ग की भाँति हूबहू हममें वह चारित्रिक अराजकता, अनास्था, व्यक्तित्व का बिखराव आ गया है ऐसा कहना न केवल कुत्सित समाज शास्त्रीयता है, वरन् हद दर्जे की निराशावादिता है। साहित्यिक चेतना के इतिहास के मानदण्डों पर कसने वाले को यह तथ्य पूर्णतया हृदयंगम कर लेना चाहिए कि युद्ध के बाद का भारत आजाद, प्रजातान्त्रिक पद्धति का भारत है। निश्चय ही हम पूर्ण अनास्था, हताशा और भ्रमविच्छेद के युग से नहीं गुज़र रहे हैं, हमारी सांस्कृतिक जड़ें उखड़ी नहीं हैं वे और भी गहरी पैठ रही हैं, इधर की पुनरुत्थानवादी पर्त को तोड़कर अपनी संस्कृति के व्यापक जनवादी और लोक-परक तत्त्वों तक पहुँच गई है। योरोपीय अराजकता का आरोप हम पर करना अवैज्ञानिक है।—हमारा झुटपुटा प्रभात का है, सन्ध्या का नहीं।"[2]

दूसरे वर्ग के कथाकार जीवन के ह्रास को आधुनिक जीवन की सचाई नहीं मानते। वे यह मानते हैं कि जीवन का शोषण हो रहा है इसीलिए जिन्दगी मुरझाई लगती है। इस शोषण के खिलाफ संघर्ष करना होगा। समाजवादी यथार्थवाद इनका मूलमन्त्र है। इन्होंने टाल्सटाय, प्रेमचन्द, गोर्की आदि की परम्परा ग्रहण की है। कथा-साहित्य के सही लक्ष्य को इन्होंने समझा है, जिस लक्ष्य का विश्लेषण श्री शिवदानसिंह चौहान इस प्रकार करते हैं—"उपन्यास साहित्य का वह अंग है जो बाह्य वास्तविकता को उसके समस्त, संश्लिष्ट प्रवहमान रूप में उपस्थित कर वास्तविकता पर हमारी पकड़ गहरी बनाता है ताकि हम अधिक भावात्मक या आध्यात्मिक दृढ़ता और व्यापक चेतना के साथ वास्तविकता से संघर्ष कर सकें और उसे अपने अनुकूल बना सकें।[3]

व्यंग्य कथालेखक श्री हरिशंकर परसाई एक तीसरे वर्ग के कथाकारों को भी

१. भारतीय पुलिस की भाषा में।
२. नई समीक्षा (अमृतराय), पृ०-१६१।
३. प्रगतिवाद, पृष्ठ-१५०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकारते हैं—"एक तीसरे प्रकार के लेखकों ने यद्यपि इस सारी परिस्थिति को मानव-समाज की प्रवृत्ति के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा, उसे क्षणिक थकन माना; यथार्थ को उसके समूचे रूप में स्वीकारा भी; परन्तु किसी ढाँचे के आधार पर नहीं बल्कि जीवन से वास्तविकता, निकट सम्पर्क स्थापित कर, सच्चे अनुभव संवेदन ग्रहण कर, कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें यथार्थ के विभिन्न स्तर और विभिन्न कोण उभरे हैं।"[1]

नवीन चारित्रिक मूल्य राष्ट्र-निर्माण के नए संस्थानों द्वारा उभरे हैं। इसीलिए नए चरित्र कथा-साहित्य में आए हैं। फणीश्वरनाथ "रेणु" ने इन नवीन उभरने वाले चरित्रों की ओर संकेत करते हुए लिखा है—"क्या पता कि नव-निर्माण की तीव्र प्रेरणा कहीं किसी किसान के बेटे को स्पंदित कर रहा हो और वह अपनी अटपटी भाषा में मन के उल्लास को जोड़ने की चेष्टा कर रही हो। दूर किसी उदास गाँव में बैठा कोई बूढ़ा लुहार टेक्टरों, बुलडाभरों की गड़गड़ाहट को सुनकर फिर से जवान हो रहा हो। उसकी बाहों में फिर से फौलादी ताकत आ रही हो। सेनेटोरियम की खिड़की से पचास कोस दूर थरमल पावर प्लान्ट की चिमनियों को देखकर किसी क्षयग्रस्त युवक के फेफड़े में घाव भर रहे हों। विपुल प्राणधर्म से ओतप्रोत जीवन-छन्द रचने को वह बेदार हो रहा हो।"[2]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद हिन्दी कथा-साहित्य में उपर्युक्त विचारों एवं नई उत्क्रान्ति का चिह्न परिलक्षित होने लग गया। गत दशक में इस उदय उत्क्रान्ति ने एक सुस्थिर दिशा की ओर कदम बढ़ाया जो निस्सन्देह हिन्दी कथा-साहित्य के लिए शुभ प्रतीत हुआ और यह भी एक आश्चर्य एवं गौरव की बात है कि जब प्रेमचन्द एवं प्रेमचन्द की परम्परा की माँग पुनः आलोचक एक स्वर से कर रहे थे उसी समय नागार्जुन एवं रेणु के रूप में प्रेमचन्द की जनवादी दृष्टि लेकर वैसी प्रतिभा हिन्दी में आई। इन कथाकारों की रचनाओं से प्रेमचन्द की परम्परा बढ़ी, उसका विकास हुआ। इसी परम्परा में भैरव प्रसाद गुप्त, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, लक्ष्मीनारायण लाल, उदय शंकर भट्ट, अमृतराय, श्यामल किशोर झा, शिव प्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, बलभद्र ठाकुर, देवेन्द्र सत्यार्थी, हिमांशु श्रीवास्तव, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, शेखर जोशी, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, प्रेमकुमार, अमरकान्त आदि कथाकारों के नाम उल्लेख्य हैं।

---

१. साहित्यकार सम्मेलन (इलाहाबाद) १९५७ ई० में पठित निबन्ध।
२. आलोचना (२४), पृष्ठ २२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—गोविन्द रजनीश

यौन परिकल्पनाएँ और हिन्दी की नयी कविता

हिन्दी काव्य के लिए यौन परिकल्पनाएँ अभिनव वस्तु नहीं हैं। इनकी एक वृहत परम्परा रही है, जिसका प्रारम्भिक सूत्र संस्कृत काव्य से उपलब्ध होता है। कालिदास से जयदेव तक शृंगार विषयक रचनाओं में, विशिष्टया संयोग पक्ष के अन्तर्गत क्रीड़ाओं, हाव-भाव प्रदर्शन, आलिंगन, प्रिय समागम का वर्णन पर्याप्त रूप में हुआ है। इस युग के परिपार्श्व में सामन्ती अबाध विलासिता प्रेरणादायिनी शक्ति के रूप में कार्य कर रही थी। उसी वातावरण से अनुप्राणित होकर तदनुरूप साहित्य की सर्जना हो रही थी। कालिदास के कुमार सम्भव, रघुवंश, ऋतुसंहार में यह प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है। जयदेव ने भी गीत गोविन्द में अबाध विलास, रति क्रीड़ा, वासनामय चित्रण को प्रधानता दी है। उक्त ग्रन्थ में श्रीकृष्ण किसी गोपी का आलिंगन करते हैं। किसी के साथ विहार करते हैं। किसी को मृदु मुस्कान से देखते हैं।

ईसा की दशवीं शताब्दी तक की इस विलुप्त, क्षारावेष्टित अंगारवत् धारा को हिन्दी की रीतिकालीन धारा ने पुनः प्रज्ज्वलित किया। इन दोनों युगों की परिस्थितियों में अद्भुत साम्य था। फलस्वरूप शृंगारपरक रचनाओं में नायक-नायिकाओं की कामोद्दीपन क्रीड़ाओं, केलि क्रीड़ाओं का मुक्त रूप से चित्रण हुआ। १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रीतिबद्ध कविता से विचित्र क्लीवता फैल गई थी। वासना के वेगमय उफान से मथित, जर्जर राजाओं की विलासप्रियता ने उसमें आहुति का कार्य किया। इस सामन्तीकाव्य के मेरुदंड के टूटते ही, आरोहण की ओर अग्रसर हिन्दी कविता ने नया परिवेश धारण किया, जिसमें यौन-परिकल्पनाओं का तृतीय उत्थान है।

नई कविता में इसके आविर्भाव के परिपेक्ष्य में समसामयिक परिस्थितियाँ पूर्ववर्त्ती परिस्थितियों से भिन्न थीं। प्रथम विश्व युद्ध से केवल मानव मूल्यों का विघटन नहीं हुआ, अपितु स्त्री-पुरुषों के यौन सम्बन्धों पर भी उसका कुप्रभाव पड़ा। युद्ध की विभीषिका से सैनिकों की पुरानी जीवननिष्ठा, सौन्दर्यबोध, और अनुभूति मर्माहत हो गई। प्रतिपल मंडराने वाली मौत की छाया नें उन्हें कामुकता की ओर प्रेरित कर दिया। स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह युद्ध कार्यों में संलग्न रहीं, जिससे उनकी आय में वृद्धि होने से वैवाहिक जीवन विश्रृंखल हो गया, क्योंकि उन्हें वैवाहिक जीवन से वितृष्णा हो गई थी। युद्धोतर आर्थिक विपन्नता ने गार्हस्थिक जीवन की दीवारों को ढहा दिया, जिससे स्वच्छन्दता के साथ-साथ यौन-उच्छृंखलता को प्रश्रय मिला। सन्तति निग्रह के नवीन तथा सफल साधनों ने सामाजिक व्यभिचार को चरम सीमा पर पहुँचा दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक अन्वेषणों से भौतिकवाद उद्भूत हुआ। हर विषय को भौतिकवाद की दृष्टि से देखा गया। भौतिकवाद ने चली आई परम्पराओं और मान्यताओं को खंडित कर दिया। इससे वैज्ञानिक बौद्धिकता प्रादुर्भूत हुई। यह बौद्धिकता इतनी प्रबल हो गई कि धर्म और ईश्वर पर अविश्वास किया जाने लगा।[1] ईश्वरीय भय तथा ईश्वरीय अस्तित्व के लोप होने से नैतिक बन्धन शिथिल हो गये। नैतिकता का पतन ही उच्छृंखलता का द्योतक होता है जिससे विकृतियाँ उद्भूत हो जाती हैं।

मशीन युग की कर्कशता ने मानवीय संवेदनाओं का हनन कर, वैषम्य को जन्म दिया। पूँजीपति वर्ग के अनैतिक हथकंडों ने व्यभिचार फैलाने में योग दिया साथ ही श्रमिक वर्ग की आर्थिक विपन्नता ने यौन सम्बन्धों के अलावा अन्य मनोरंजन के साधनों का मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

तभी मनोविश्लेषण का आश्रय लेकर फ्रायड ने पदार्पण किया। उसकी मान्यताओं ने काव्य तत्त्व तथा काव्य प्रकृति पर सबसे अधिक प्रभाव डाला। उसकी यौन परिकल्पनाओं ने काव्य को जिस रूप में आक्रान्त किया, उससे विद्रोह होता है। यौनाचार और कामभावना फ्रायड की देन हैं। पाश्चात्य तथा हिन्दी के नये काव्य में उन्हें यथेष्ट मात्रा में ग्रहण किया गया है। उसने विवर्जित यौनकुंठाओं के यथार्थवादी धरातल पर मानव की शल्यप्रक्रिया की है। फ्रायड का विचार है—

१—कलासृजन के मूल में कलाकार की दमित एवं कुण्ठित काम-प्रवृत्तियों की सत्ता होती है। ये वृत्तियाँ विविध प्रकार की बाह्य वर्जनाओं के कारण अवचेतन मन में दमित अवस्था में होती हैं। मार्ग प्रशस्त होने पर विकास का मार्ग खोज लेती हैं। अतः सम्पूर्ण कला अवचेतना, अथवा अवचेतन में दमित तथा कुण्ठित कामुक वृत्तियों की अभिव्यक्ति है। यदि सामाजिक तथा बाह्य प्रतिरोधों से इन वृत्तियों का दमन है, तो अनेक मानसिक व्याधियाँ तथा विकृतियाँ उद्भूत हो जाती हैं।

२—फ्रायड के अनुसार स्वप्न इच्छापूर्त्ति भर हैं, जिसका दमन चेतनावस्था में किया जाता है। उसके अनुसार दमित एवं कुण्ठित आकांक्षाएँ अवचेतन में विद्यमान होती है, जो सुप्तावस्था में एक-एक करके बाहर निकलने लग पड़ती हैं।

३—फ्रायड का विश्वास था कि दुःखों के केन्द्रीभूतसंगठन को शैशवकालीन यौन (Pre-occupations) चेष्टाओं में खोजा जा सकता है। उसने माता-पिता, शिशु के सम्बन्ध को ऑडिपस कॉम्पलैक्स (Oedipus complex) के नाम से अभिहित किया जिसको उसने ऑडिपस के पौराणिक आख्यान से उद्धृत किया। उक्त पौराणिक आख्यान में

१. प्रो० हैल्स का इस बारे में मत है—
Science has certainly been in part responsible for the growth of a spirit to examine themselves and remould their arguments, science has therefore tended to depress many who, without accepting materialistic opinions, have been affected by the march of thought. On the whole we may say that science has tended positivism, agnositicism, and in a word to a negative view of things spiritual."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऑडिपस ने पितृहत्या के उपरान्त माता को पत्नी बना लिया था। इस कथा से फ्रायड ने अनुमान लगाया कि यौन भावनाएँ, विपरीत लिंग के साथ सहवास की कामनाएँ, शैशव से ही विद्यमान होती हैं।[1]

फ्रायड के इस यौनवाद ने पाश्चात्य साहित्य को अप्रतिम रूप से प्रभावित किया। साहित्य के चिन्तन का प्रवाह दमित वासनाओं, सुषुप्त चेतनाओं और मुख्यतया यौनभावना की ओर उन्मुख हो गया। अनेक कवि, उपन्यासकार, जीवनीलेखकों ने फ्रायड के सिद्धान्तों का अन्धानुकरण किया। चेतना के मुक्त प्रवाह ने काव्य-रचना-प्रक्रियाओं तथा काव्यात्मक संवेदनाओं को अप्रत्याशित रूप से प्रभावित किया।

इस पतनोन्मुख दुरवस्था का लाभ उठाकर मर्यादाहीन, अनैतिक और विषाक्त सिद्धान्तों का प्रचार किया गया। इन कतिपय साहित्यकारों ने वैवाहिक जीवन की भर्त्सना की और यौन उच्छृंखलता को प्रतिपादित किया। ग्रेट एलन के उपन्यास "दि वूमेन हू डिडि" ने इन विचारों को विज्ञापित किया, एच० जी० वेल्स ने उसका प्रतिपादन और समरसेट मॉम ने" "लिजा ऑफ लामबेथ" में उसे अग्रसर किया। डी० एच० लारेंस ने "लेडी चैटरलीज लवर" में उसे चरमसीमा पर पहुँचा दिया।

लारेंस के उपन्यासों की वर्ण्यवस्तु यौन भावना है। 'दि रेन वो', 'वीमन इन लव' 'एरोन्स रोड़' में यौन भावना सम्बन्धी दृष्टिकोण एक निश्चित जीवन-दर्शन के रूप में आया है। 'वीमन इन लव' की भूमिका में उसने कहा है 'मैं सुन्दर और सशक्त प्रतीत होने वाले विषय पर ही लिख सकता हूँ—वह विषय है, स्त्री और पुरुष के बीच यौन सम्बन्ध। इन सम्बन्धों की पुनर्स्थापना तथा पुनर्समायोजन ही आधुनिक समस्या है।'[2]

लेकिन यौन भावना का जैसा घोर यथार्थवादी नग्न, और उच्छृंखल चित्रण 'लेडी चेटरलीज लवर' में हुआ है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। इसकी निरावरण, अमर्यादित यौन परिकल्पनाओं ने जितना अपरिपक्व यौन भावनाओं को संस्पर्श कर जागृत किया उतना और किसी उपन्यास ने नहीं। इसी आधार पर इसे जब्त कर लिया गया।

---

१. फ्रायड का इस बारे में कथन है कि—
"You know it is one of the tasks of analysis to lift the veil of amnesia which shrouds the earliest years of childhood and to bring the expression of infantile sexuality hidden behind it into conscious mind—Now from their first sexual expressionsof anxiety, prohibition, disappointment and punishment, one can understand why they have been repressed, but, if so, it is difficult to see why they should have such easy access to the dream life, why they should provide the pattern for so many dream fantasies...."

२ दूसरे स्थान पर उसका कथन है—
"A character will find himself after physical love, 'shattered' as well as 'satisfied,' Love must be a fusion of spirit sunk in the potent darkness."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य कविता भी फ्रायड के यौनवाद से काफी अनुप्राणित रही—

Sweet, wicked Kisses in your stark
Hate of the white washed day...
Till the winged blood horses of sex
Dead beat and meet their match.

(Barkes, Epithulamium for two friends)

यह तो हुआ पाश्चात्य साहित्य पर प्रभाव, परन्तु हिन्दी की नई कविता और कथासाहित्य पर इसका प्रभाव भी अयाचित और अछूता नहीं है। डी० एच० लारेंस के उपन्यासों की प्रतिच्छाया 'अज्ञेय' के 'नदी के द्वीप' तथा 'शेखर एक जीवनी' पर देखी जा सकती है। इन उपन्यासों में भी यौन भावना उतनी ही वेगमय बनकर व्यक्त हुई है।

हिन्दी की नई कविता पर फ्रायड के यौनवाद और लारेंस की यौन परिकल्पनाओं का अधिक प्रभाव पड़ा है। 'अज्ञेय' ने 'तार सप्तक' की भूमिका में इसे स्पष्ट किया है—

"आधुनिक युग का साधारण मनुष्य यौन वर्जनाओं का पुंज है। उसके जीवन का एक पक्ष है, उसकी सामाजिक रूढ़ि की लम्बी परम्परा, जो परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ विकसित नहीं हुई, और दूसरा पक्ष है स्थिति परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति, जिसके साथ रूढ़ि का विकास असम्भव है। इस विपर्यास का परिणाम है कि आज के मानव का मन यौन-परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएँ दमित हैं, कुंठित हैं। उसकी सौन्दर्यचेतना भी इससे आक्रान्त है। उसके उपमान सभी प्रतीकार्थ रखते हैं।—और इस आन्तरिक संघर्ष के ऊपर जैसे काठी कसकर एक बाह्य संघर्ष बैठा है, जो व्यक्ति या व्यक्ति का नहीं, व्यक्ति समूह और व्यक्ति समूह का, वर्ग और श्रेणियों का संघर्ष है। व्यक्तिगत चेतना के ऊपर वर्गगत चेतना भी लदी हुई है।"

साधारण मनुष्य को यौन-वर्जनाओं का पुंज कहना आधुनिक मनुष्य की चेतना परिधि को सीमित करना है, एक तरह से सजग तथा प्रतिभाशील कवि की प्रतिभा को सीमित दायरों में बाँधना है। मनोविश्लेषणशास्त्र ने मनुष्य के मन और व्यक्तित्व से सम्बन्धित जो सामग्री उपलब्ध की है, यदि काव्य के रूपशिल्प में उसको अभिहित किया जाये तो कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है। लेकिन जब कवि मनोविश्लेषणशास्त्र के सिद्धान्तों को अपने काव्य का आदर्श बनाकर काव्य प्रक्रिया के साथ उसका तादात्म्य कर लेता है तो उसकी काव्य-रचना संदिग्ध ही होगी। उपलब्धि के रूप में वह समाज को कुछ नहीं दे सकेगा।

अज्ञेय केवल व्यक्तव्य देने तक सीमित नहीं रहे अपितु उन्होंने तथा उनके अनुयायियों ने अनेक कविताओं में यौन वर्जनाओं एवं विगलित कुंठाओं का चित्रण किया है। 'इत्यलम्' की अनेक कविताओं से उक्त कथन स्पष्ट हो जाता है—

ठहर-ठहर आततायी ! जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा।
और यह दृढ़ पैर मेरा,
गुरु, स्थिर स्थाणु सा गड़ा हुआ
तेरी प्राणपीठिका पर लिंगसा खड़ा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञेय का 'क्षेत्रविशेष' 'स्त्री-पुरुष का चिरंतन प्रेम-व्यापार रहा है।' अतः यौन भावनाओं का समावेश होना आवश्यक हो गया है। 'अज्ञेय' की यौन-सम्बन्धी भावनाएँ लारेंस से बहुत कुछ मेल खाती हैं। शायद 'अज्ञेय' का अवचेतन मन फ्रायड के प्रति बहुत उदार रहता होगा। लेकिन अज्ञेय ने यौन भावना द्वारा सामाजिक सस्पर्श ही नहीं किया अपितु प्रकृति के सहज चित्रों में यौन भावना का सन्निवेश करके उन्हें यौन प्रतीक का रूप दे दिया है। इन यौन प्रतीकों में प्रकृतवाद का भी अपना सहयोग रहा है—

घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले
भूमि के कंपित उरोजों पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष
वज्र-सा यदि तड़ित-सा झुलसा हुआ सा
आह मेरा श्वास है उत्तप्त—
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार
काम है अभिशाप
तुम हो नारि।

यहाँ कवि की यौन भावना प्रकृति के साथ उद्दीप्त हो जाती है। जिससे वह नारी का आह्वान करता है। अन्तश्चेतन के मुक्त प्रवाह में इन प्रतीकों का महत्व अधिक हो गया है। प्राचीन यौन प्रतीक परम्परा और आधुनिक यौन प्रतीक परम्परा में केवल अन्तर इतना है कि आज प्रतीकों की प्रक्रिया का समग्र ज्ञान होने से उनका प्रयोग बौद्धिक आधार पर किया जा रहा है। प्राचीन कवियों ने काव्य के उद्बोधन में संकेतित अर्थों के साथ-साथ, अभिधार्थ का भी प्रयोग किया है, लेकिन नये कवि अभिधार्थ के स्थान पर व्यंग्यार्थ अथवा संकेतित अर्थ का आश्रय लेते हैं।

अज्ञेय से प्रभावित होकर अन्य नये कवि भी दमित और कुंठित भावनाओं की अभिव्यक्ति करते रहे। विगलित कुण्ठाओं को व्यक्त करने के कारण ये प्रतीक लोक-हित के लिये समीचीन नहीं हैं। कुंवरनारायण के चक्रव्यूह में 'अतृप्त ज्वार' में अलि-गन, चुम्बन का सहज प्रयोग हुआ है। उनके जीवनदर्शन में समस्त सुखों का केन्द्र यौन प्रतीकों में निहित है। आमाशय, गर्भाशय, यौनाशय ही सुख और सौन्दर्य के प्रतीक हैं।

यही यौन प्रतीकों की परम्परा दूसरा मोड़ लेकर भोगवाद में परिणत हो गई। भोगवाद ही सुखवाद है। इसमें अतृप्त भावनाओं तथा यौन विकृतियों की तुष्टि होती है तथा मांसल, शारीरिक, ऐन्द्रिक सुख को प्राप्त किया जाता है। वस्तुतः इस बहाने कवि अपनी अतृप्त यौन-वासनाओं को मुखरित करने में सफल हो जाता है। शान्ता सिन्हा की एक कविता है जिसमें उन्होंने कहा है "स्तनों की परिधि फैल रही है, हसरतें अभी जवान हैं। दोस्तों और साथियों मेरे झण्डे के नीचे आओ। रक्त की लय पर उत्सव करें, नाचें, गाएँ।"

ऐसे स्थलों पर कवि-मन अपनी दमित वासनाओं को प्रकट कर चेतन और अचेतन के संघर्ष को समाप्त कर देता है। कामवृत्ति और अहं के मध्य उद्भूत द्वन्द्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी समाप्त हो जाता है। साथ ही कथ्य के माध्यम से सामाजिक नैतिकता के झीने आवरण को विदीर्ण कर कामप्रवृत्ति का दमन नहीं करना पड़ता।

अन्त में एक नये कवि, जो अभी कवियों की पंक्ति में खड़ा हुआ है, की कविता को उद्‌धृत किया जा रहा है। इस नये कवि का 'एक आत्मकथन' मन के अन्तश्चेतन में छिपी वासना की कहानी है जो अतृप्त होने के कारण बार-बार निकलना चाहती है—

वह मुझे एक बहुत बड़े मेले में ले गई
जहाँ सब खुश थे, सब को बड़ा मजा आ रहा था
वहाँ मुझे खाली हाथ देख
उसने अपनी दृष्टि में मुझे बाँध हल्के से चूम लिया
वह मुझे सजे-सजाये कमरे में ले गई
जहाँ कुर्सियाँ थीं, मेजें थीं, और उसकी प्रिय
कुत्तों की नस्लें और नीली-पीली बिल्लियाँ भी
उनके बीच परेशान देख
उसने मुझे वहाँ रुकने के लिये अपनी दो टाँगे—
उधार दे दीं।
इसी को सच समझे
तब से मैं कहीं गया नहीं
यहीं पड़ा हूँ। [विपिन बिहारी अग्रवाल]

इस प्रकार यौन परिकल्पनाओं के माध्यम से नये कवियों ने अपनी विवर्जित यौन कुण्ठाओं, दमितवासनाओं को काव्य में व्यवहृत किया है, जो हेय होने के साथ-साथ, समाज की नैतिकता को आघात पहुँचाने वाली हैं। यौन भावना एक सीमा तक ग्राह्य है, क्योंकि उसका अवरोध भी विद्रूपता में परिणत हो सकता है। वह नैसर्गिक प्रक्रिया है। चिरन्तन प्रवाह है। लेकिन उसकी अति द्वारा मानवमूल्यों को आघात पहुँचाना भी अनुचित है। घोर अश्लीलता किसी भी रूप में समाज को उपादेय नहीं हो सकती है। अतः नये कवियों को यौन प्रतीकों, तथा परिकल्पनाओं को व्यवहृत करने में सचेत होना आवश्यक है।

यह दोष केवल नये कवियों का नहीं है। किसी भी 'नयी कहानी' तथा उपन्यास को उठा लीजिये 'सेक्स' उसमें बुरी तरह छाया हुआ मिलेगा। 'सेक्स' के आधार पर ही मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व, और चारित्रिक विशेषताओं का प्रस्फुटन किया जाता है। यही युगबोध और युग सत्य है। युग की माँग भी यही है। परन्तु अवनति के गर्त की ओर जाते हुए समाज को क्या सत् साहित्य द्वारा रोका नहीं जा सकता है? अवश्य ही रोका जा सकता है। साहित्य जहाँ एक ओर समाज का दर्पण होता है, दूसरी ओर समाज की भावनाएँ उससे अनुप्राणित होती हैं। साहित्य का मूल उद्देश्य आदर्शमय समाज का निर्माण करना है। भटकते हुए समाज को सच्चा मार्ग दिखाना है। ऐसी अवस्था में नये साहित्यकारों का दायित्व और भी बढ़ जाता है। श्रीमती सिमोना बीवोयर के उपन्यास 'द मेन्डारिन्स' में वर्णित कुत्सित वातावरण से मुक्त होना है। यह 'सैक्स' स्थिति यूरोप ही नहीं भारत में भी विद्यमान है। अतः इस भाव-बोध [किंचित आधुनिकता] के माया जाल को झटकने में ही कविकर्म सफल हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० छोटेलाल दीक्षित

आस्था और नयी कविता

आत्माभिव्यक्ति की व्याकुलता रचनाकार को सृजन की प्रेरणा देती है। रचनाकार की आत्माभिव्यक्ति समष्टि-निरपेक्ष नहीं होती। उसे अपनी कृति में दोहरे दायित्व को निभाना पड़ता है : अपनी अनुभूति के प्रति ईमानदार भी होना पड़ता है और परिवेश के प्रति सापेक्ष भी। कवि की परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता कई रूपों में देखी जा सकती है : व्यक्ति के प्रति, समाज के प्रति, धर्म, नैतिकता और परम्पराओं के प्रति, राजनीति के प्रति। रचनाकार की यह प्रतिबद्धता उसके लिए आदर्श नहीं है वरन् सृजन-प्रक्रिया की अनिवार्य शर्त है। परिवेश के इन सभी रूपों के प्रति रचनाकार की प्रतिबद्धता कहाँ तक है और कहाँ तक वह इनसे मुक्त है, यह जानना महत्वपूर्ण है।

व्यक्ति के प्रति प्रतिबद्धता का तात्पर्य युग के परिप्रेक्ष्य में उसके सम्पूर्ण सत्य स्वरूप को व्यक्त करना है। इसे नकारा नहीं जा सकता कि पिछले दो-तीन दशकों से भारतीय जीवन-चेतना में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। मानव-मूल्य परिवर्तित हुए हैं। उन विभिन्न प्राचीन मान्यताओं के समक्ष प्रश्नचिह्न लग गए हैं, जिन्हें हम बिना संकोच स्वीकार करते चले आ रहे थे। इसका कारण जहाँ एक ओर वैज्ञानिक प्रगति, यांत्रिकता का विकास एवं विश्व की विभिन्न विचारधाराओं का एक-दूसरे के अधिक निकट आना है वहीं व्यक्ति की महत्ता का स्वीकार भी है। पहले मूल्य के निर्णायक राज्य, परिवार और धर्म हुआ करते थे अब व्यक्ति स्वयं है। व्यक्ति की महत्ता स्वीकार कराने में जहाँ सार्त्र जैसे अस्तित्ववादी दार्शनिकों और फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिकों की चिन्तन-धारा का सहयोग रहा है वहीं उसे धर्म एवं पूँजीवादी बुर्जुआ-वर्ग की सत्ताओं से मुक्त कराने में मार्क्स जैसे समाजवादी चिन्तकों का भी। विज्ञान एवं यांत्रिक सभ्यता ने जीवन की परिस्थितियों को बदला है। अतः जीवन-मूल्य टूटे हैं। आज के व्यक्ति में कुण्ठा, निराशा, घुटन, विक्षोभ, उदासीनता, घृणा, पराजय और अतृप्ति अधिक है और नया कवि ईमानदारी के साथ इन सबको अपनी रचना में व्यक्त करने की हामी भरता है। नया कवि यह तर्क भी देता है कि यदि वह अपनी रचना में सम्पूर्ण सच्चाई के साथ आज के टूटे हुए व्यक्ति को प्रस्तुत करता है तो उसे आस्थाहीन कवि क्यों न कहा जाय ? देखना यह है कि जिस कवि को अपने चारों ओर 'रतिक्रान्त युवतियाँ और नपुंसकों का हुजूम' ही दिखाई पड़े, दूसरे (काफ्का) के अनमोल बोलों को अक्षरशः स्वीकार करते हुए जो हम सबको भुनगे और मच्छर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक महत्त्व न दे, जिसके लिए सारी मानवता 'कमजोर नामर्द औलादें' बन जाय और जिसको अपने वृत्त के चारों ओर सेक्स ही दिखाई दे, वह क्या आज के व्यक्ति का सच्चा चित्र प्रस्तुत कर सका है ? क्या वह व्यक्ति के प्रति प्रतिबद्ध है ? क्या उसे आस्थावान कवि कहा जाय ?

नगर में शोर है
विषैला धुआँ आँखों से निकल रहा है
सभी मर्द घिनौने कछुओं से पहने हुए हैं खोल
केंकड़े सी सिमटी जा रही हैं रतिक्रान्त युवतियाँ
बुझे बल्बों की कतार सी टिड्डियों की टोली
नपुंसकों का हुजूम

× × ×

हम सब हैं,
तलैया के बँधे जल में रहनेवाले
भुनगे और मच्छर
हमारी पीढ़ी परजीवियों की आलसियों की पीढ़ी है।

× × ×

हम सब नपुंसक हैं
बीसवीं सदी की
कमजोर नामर्द औलादें—

× × ×

गोरे जिस्म
कसे लबादे
बिजली भरी आँखें
सड़क पर केवल सेक्स है

प्रारम्भ—जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी।

यह ठीक है कि कोरे आदर्शों को व्यंजित करनेवाले, वास्तविकता को नकार कर स्वर्गिक-जीवन में भव्य काल्पनिक चित्र प्रस्तुत करनेवाले कवियों को आस्थावान कवि की संज्ञा देना भी सत्य की उपेक्षा करना है। नया कवि यदि आज के व्यक्ति के सच्चे यथार्थ को अपनी रचना में व्यक्त करता है तो यह सम्भव नहीं है कि उसमें प्रभावित करने की क्षमता न हो। कवि की रचना म उसका आत्म-तत्व व्यंजित होता है, जिसे उसके वैयक्तिक-बोध या जीवन-दर्शन की संज्ञा दी जा सकती है। हजारी-प्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या कवि अपने जीवन-दर्शन को ईमानदारी से अभिव्यक्त कर पा रहा है ? और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि कवि ने जो ईमानदारी से जिया और भोगा है क्या उससे पाठक को इम्प्रेस कर पा रहा है ? यहाँ पर यदि कवि को सफलता मिली है तो कवि का सृजन सार्थक है। वह ईमानदार और आस्थावान है। अज्ञेय, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरिजाकुमार माथुर, बालकृष्णराव, कुंवरनारायण सिंह की ऐसी अनेक रचनाएँ हैं जिनमें आज के मानव की मन:स्थिति, उसकी जीवन-चेतना का सच्चा चित्र देखा जा सकता है और जो पाठक को अभिभूत करने की क्षमता रखती हैं।

केदारनाथ सिंह की कविता 'फूल को हक दो' में प्रतीकों के माध्यम से व्यक्ति की स्वतंत्रता की माँग की गई है, जिसमें वह बाह्यारोपित दायित्वों को नकार कर अपने सार्थक दायित्वों की खोज करना चाहता है।

लहर को हक दो—वह कभी संग पुरवा के
कभी संग पछुआ के इस तट पर भी आए—
उस तट पर भी जाए
और किसी रेती पर सिर रखकर सो जाए
नयी लहर के लिए—

कुंवरनारायण सिंह की कविता 'ये दायरे' में छोटे शहर की अफवाह एवं बंधे जल के प्रतीकों से व्यक्त आज के मनुष्य की विवशताओं एवं बन्धनों का सशक्त चित्र देख सकते हैं—

दायरा
फिर दायरे पर दायरा
ये खत्म ही होने न आते दायरे
तालाब भर
अफवाह जैसे एक छोटे से शहर में
अचरजों
आँखों
बराबर फैलती ही चली ही चली जाएँ
एक कंकड़
बँधे जल में
बड़ी घटना —धर्मयुग

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की 'आज पहली बार' कविता में थकी पराजित मानवता को कहीं कुछ मिल जाता है। अज्ञेय की 'यह दीप अकेला' अथवा 'दर्द सब को माँजता है' जैसी कविताओं में व्यक्ति को मानव पीड़ा के प्रति दायित्व-चेतना से परिपूर्ण दिखाया गया है। बालकृष्णराव की 'नदी को रास्ता किसने दिखाया' रचना में व्यक्ति और उसके परिवेश की सच्ची अभिव्यक्ति की गई है, जिसमें व्यक्ति केवल अपनी परिस्थितियों से पराजित कुण्ठित नहीं है, वरन् अपनी सामर्थ्य एवं शक्ति से परिस्थितियों के समक्ष प्रश्न चिह्न लगा देता है। यदि भूमितल नीचा होकर नदी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है तो नदी की धारा भी अपने सबल थपेड़ों से भूमि तल को राह देने के लिए विवश कर देती है। अत: व्यक्ति और परिस्थिति दोनों को एक दूसरे के वश में मान लेना भ्रान्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी को रास्ता किसने दिखाया ?
सिखाया था उसे किसने कि अपनी भावना के वेग का
उन्मुक्त बहने दो ?
कि वह अपने लिए
खुद खोज लेगी
सिन्धु की गम्भीरता
स्वच्छन्द बह कर
....

मार्ग मैंने आप ही अपना बनाया था
मगर है भूमि का दावा
कि उसने ही बनाया था नदी का मार्ग
....

ले गई
भोली नदी को भूमि सागर तक
किधर है सत्य
मन के वेग ने
परिवेश को अपनी सबलता से झुलाकर
रास्ता अपना निकाला था
कि मन के वेग को बहना पड़ा बेबस
जिधर परिवेश ने स्वयमेव
झुककर राह दे दी थी—

नई कविता (५-६) बालकृष्णराव।

नयी कविता में जीवन के लघु-लक्ष्यों को अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास हुआ है। नया कवि विशिष्ट क्षणों की अनुभूतियों को गहराई के साथ व्यंजित करने पर विशेष बल देता है। कभी-कभी हम ऐसे क्षण को भोगते हैं जो सामान्य क्षणों की तरह नहीं होता। ऐसे क्षण में हमारी मनःस्थिति ऐसी होती है जैसी भविष्य में फिर कभी नहीं होती है। अज्ञेय ने सुन्दर प्रकृति के बीच बिताए अभूतपूर्व क्षण की महत्ता स्वीकारी है। उस क्षण में प्रकृति का सौन्दर्य प्रकृति का न होकर उस क्षण की मनःस्थिति का है।

झील का निर्जन किनारा
और वह सहसा छाये सन्नाटे का
एक क्षण हमारा
वैसा सूर्यास्त फिर कभी नहीं दिखा

क्षण की अनुभूति साहित्य को सार्वभौमिक नहीं बना सकती। बहुत से नए कवि एकाकी क्षणिक अनुभूति को विकृत अभिव्यक्ति देखकर काव्य-रचना के नाम पर जो हेय-सृष्टि कर रहे हैं वह स्वस्थ साहित्य के लिए हानिकारक है। आस्था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास की भावनाएँ जीवन में शाश्वत हैं। किन्तु ऐसे कवियों के लिए शाश्वत नाम की कोई वस्तु ही नहीं है, जिनको कुण्ठा के क्षणों में "विश्वास लावारिस सा दर-दर भटकता" दिखाई देता है अथवा जिनकी "आस्था की कमीज़ का हर छोर फट गया" है

विश्वास
लावारिस-सा
दर-दर भटकता है
× × ×
हमारी आस्था की कमीज का
हर छोर फटा है

प्रारम्भ—ममता अग्रवाल।

साहित्य के मूल्यों की स्थापना क्षण की अनुभूति के आधार पर न की जाय तो उचित होगा। साहित्यिक-मूल्यों की स्थापना जीवन की समग्रता, सम्पूर्ण सामयिकता के परिप्रेक्ष्य में ही करना श्रेयस्कर है।

रचनाकार की प्रतिवद्धता समाज के प्रति भी है। वह समाजशास्त्री नहीं होता फिर भी समाज को पूर्णतः नकार नहीं सकता। रचनाकार का वैयक्तिक-स्वातन्त्र्य सामाजिक दायित्व से अन्योन्याश्रित होता है। वह समाज के प्रति न नितान्त निरपेक्ष है न विद्रोही। वह व्यक्तिगत सत्य की अभिव्यक्ति करता है जो बाह्य-सत्य से रहित नहीं होता। इसी अर्थ में लेखक स्वतन्त्र होते हुए प्रतिबद्ध है। लेखन की स्वतन्त्रता का अर्थ भी यही है कि वह अपने परिवेश की सच्ची उभियक्ति करते हुए उच्चतर मानव-मूल्यों की सृष्टि कर सके। नयी कविता में समाज की उपेक्षा की गई है, वैयक्तिक सीमाओं के बाहर के सत्य को नकारा गया है। उसमें व्यक्तिगत कुण्ठा, विक्षुब्ध अहम् अन्तर्मन की दुरूहता और अर्धविक्षिप्त चेतनाओं ने विशेष स्थान पाया है। ऐसे भी नये कवि हैं, जिन्होंने समाज की उपेक्षा नहीं की है, सामाजिक मूल्यों और नैतिक मान्यताओं के विघटन को ही आधुनिकता नहीं माना है। जब मैं सामाजिक-मूल्यों और नैतिक मान्यताओं के प्रश्न को उठाता हूँ तो मेरा तात्पर्य यह नहीं होता कि ऐसी परम्पराओं और मान्यताओं को प्रश्रय दिया जाय जो आज के बदले हुए जीवन परिवेश में निरर्थक हो गई है वरन् मैं ऐसे सामाजिक-मूल्यों और नैतिक मान्यताओं की ओर संकेत करना चाहता हूँ जो प्रत्येक युग और प्रत्येक परिस्थिति में अनिवार्य शर्त के रूप में व्यक्ति और समाज के साथ जुड़ी हुई हैं, कभी परिवर्तित नहीं होतीं। जैसे अच्छे और बुरे, पाप और पुण्य के मूल्य कभी परिवर्तित नहीं होते, हाँ उन मूल्यों के परिवेश किन्हीं विशेष परिवर्तनों में बदलते रहते हैं।

नया कवि यदि रूढ़ि परम्पराओं, मान्यताओं को निरर्थक समझकर, उन्हें जनचेतना से दूर की वस्तु मानकर उनका विरोध करता है और नये मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है तो वह आस्थाहीन कवि नहीं है। साहित्यकार का दायित्व मानव की स्वाधीनता बनाते चलना, उसकी असीम सम्भावनाओं को परात्पर उपलब्ध कराते चलना है। बालकृष्ण राव के शब्दों में यदि समाज अपनी मान्यताओं को ही सुरक्षि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना चाहता है तो चाहे, यदि सत्ता उनकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो, तो भी साहित्यकार झूठे मूल्यों और निष्प्राण मान्यताओं को छोड़ने और नवाविष्कृत सत्य को उद्घोषित करने में अग्रणी होगा। अज्ञेय की 'मानव अकेला' कविता में जर्जर लोकाचारों के बाहर मनुष्य के स्वतन्त्र स्वरूप को स्वीकारा गया है—

भीड़ों में
जब-जब जिस-जिस से से आँखें मिलती हैं
वह सहसा दिख जाता है
मानव
अंगारे-सा भगवान-सा
अकेला
और हमारे सारे लोकाचार
राख की युगों-युगों की परतें हैं।

इत्यलम्—अज्ञेय।

रूढ़ि-परम्परा और मान्यताओं को अक्षरशः स्वीकार कर हम अपने युग में जी नहीं सकते। संस्कारों की पट्टी हटाकर ही हम युग के प्रकाश को देख सकते हैं।

जिन्दगी हर मोड़ पर करती रही हमको इशारे
जिन्हें हमने नहीं देखा
क्योंकि हम बाँधे हुए थे पट्टियाँ
संस्कार की
और हमने बांधने के पूर्व देखा था
हमारी पट्टियाँ रंगीन हैं

इत्यलम्—अज्ञेय।

आधुनिकता के फेर में प्राचीन-मूल्यों के विरोध के नाम पर जो केवल संकीर्णता, दिग्भ्रम, मिथ्या-विश्वास, ध्वंस, निराशा एवं मानव-द्रोही चिन्तन-पद्धतियों को प्रश्रय देते हैं और समस्त पुरानी-पीढ़ी की मृत्यु की कामना करते हैं, वे मानव की असीम सम्भावनाओं को नकारते हैं। समाज के सामूहिक अस्तित्व के प्रति अपने दायित्व को भुलाकर अपने और अपने वर्ग के सदस्यों की वैयक्तिकता को प्रश्रय देते हैं, जो कभी श्रेयस्कर नहीं माना जा सकता।

पिछले कुछ दिनों से कतिपय नये कवियों में बीटनिक् प्रवृत्ति विशेष जग रही है जो आर्लोवस्की क्रोसे, पीटर, गिंसवर्ग जैसे बीट कवियों का अनुसरण कर यश पाना चाहते हैं। राजकमल चौधरी का 'कंकावती' नाम से एक ऐसा संग्रह भी प्रकाशित हुआ है जिसे उन्होंने अपने मित्रों तक ही सीमित रखा है। ये युवा-आक्रोशी कवि प्रत्येक प्रकार से विध्वंस चाहते हैं, असामाजिकता के पक्षपाती हैं। ये न किसी प्रकार के दायित्व से जीवन में बंधे हैं और न साहित्य में बँधना चाहते हैं। इनको कभी 'अपने ही कन्धों पर शव डाले ईश्वर भागता' दिखाई देता है और कभी ये स्वयं औरतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सामने से निर्वसन निकल जाने के लिए प्रार्थना करते दिखाई पड़ते हैं। ऐसे बीटनिक् कवियों का काव्य किसी भी साहित्य के लिए रोग होगा।

अपने ही कन्धों पर डाले हुए अपना शव
···ईश्वर
चीखता हुआ भागता रहता

प्रारम्भ, राजकमल चौधरी।

औरतें
मुझे क्षमा करें
मैं
उनके सामने से निर्वसन निकल जाना चाहता हूँ।

—लहर—श्रीकान्त वर्मा।

लेखक के समक्ष किसी प्रकार की राजनैतिक प्रतिबद्धता नहीं होनी चाहिए। यदि उसके समक्ष राजनैतिक प्रतिबद्धता होगी तो वह साहित्यकार न होकर किसी विशिष्ट पार्टी के सिद्धान्तों का प्रचारक और पूर्वाग्रही होगा, उसका दृष्टिकोण स्वस्थ न होगा। किन्तु इसके साथ इस तथ्य पर भी विचार करना होगा कि राजनीति केवल दलबन्दी अथवा विशिष्ट प्रकार के सिद्धान्तों का प्रचार मात्र नहीं है। राजनीति राष्ट्र की सुरक्षा, उसके भरण-पोषण और उत्थान की सुविधा भी प्रदान करती है। कहीं-कहीं तो उसका स्वर राष्ट्र हितों के आगे बढ़कर लोक-मंगल की कामना तक प्रसार पा जाता है। ऐसी राजनैतिक दृष्टि को साहित्य से असंपृक्त कैसे रखा जा सकता है। राजनीति कभी-कभी साहित्य को अत्यधिक प्रभावित करती है। गांधी और विनोबा राजनीतिक व्यक्ति भी हैं। क्या उनकी मान्यताएँ लोक-मंगल की उपेक्षा करती हैं? साहित्यकार बिना वैयक्तिक स्वतन्त्रता को व्यक्त किए उनको प्रश्रय दे सकता है।

रचनाकार स्वतन्त्र होते हुए भी कहीं-न-कहीं व्यक्ति, समाज और राजनीति से अंशतः प्रतिबद्ध है। क्योंकि उसे मनुष्य की असीम सम्भावनाओं के उत्स को खोलना है, असीम सम्भावनायुक्त सम्पूर्ण मनुष्य को पुनः प्रतिष्ठित करना है। आज की भीषण परिस्थितियों के बीच भी मनुष्य में आशा, आस्था, विश्वास और प्रेम को बनाए रखना है। साहित्यकार के लिए आस्थावान होना अनिवार्य शर्त है। आस्था-विहीन साहित्यकार अपनी रचनाओं में कभी अपने पूरे प्राणों से जी नहीं सकता। मैं स्पेंडर के शब्दों में साहित्य की प्रगति से अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ उस आम्लान आस्था की खोज को जो जीवन और साहित्य के मूल्यों में संश्लेषण करती है। और अन्त में मैं सुरेन्द्रपाल की कविता को उद्धृत करना चाहूँगा जिसमें दुःख, दर्द, घुटन और छटपटाहट के विरुद्ध असीम मानव-सम्भावनाओं की बात व्यक्त करने को कहा गया है। नया कवि यदि जीवन की ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों को प्रश्रय न देकर आस्थावादी विचार-धारा को लेकर चले तो साहित्य के लिए उपयोगी होगा।

बहुत आसान है कहना
जिधर देखो उधर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्द है, दुःख है, अंधेरा है
किसी को रौंद कर चलते हुए कदमों की आहट है
... ...

मगर
क्या है नहीं प्रतिकार इन सबका
कि जिससे
मिटा दें दर्द को दुःख को अंधेरे को
घुटन को छटपटाहट को
किसी को रौंदकर चलते हुए कदमों की आहट को।
....

महा मानव भला क्या गोंडते ही रह गए ऊसर।

'नयी-कविता' (५-६) सुरेन्द्र पाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० देवेन्द्रकुमार, शास्त्री

अपभ्रंश कथाकाव्य

मूलतः अपभ्रंश साहित्य पुराण, चरित और महाकाव्य है। पुराणकाव्य में जहाँ महापुरुषों का अतिलौकिक जीवन वर्णित है वहीं चरितकाव्यों में प्रसिद्ध पुरुषों के लौकिक जीवन का सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है। विषय-विस्तार, विभिन्न आख्यानों की जटिलता, कार्यान्विति का अभाव और पंच लक्षणों से समन्वित पौराणिक शैली विशेष रूप से पौराणिक काव्यों में लक्षित होती हैं। स्वयम्भू कृत 'पउमचरिउ', 'रिट्ठणेमिचरिउ', पुष्पदन्त विरचित 'महापुराण', धवल रचित 'हरिवंशपुराण' तथा यशकीर्ति कृत 'पाण्डवपुराण' आदि पौराणिक काव्य हैं जिनमें विविध राजवंशों, ऐतिहासिक वंशावली तथा महापुरुष राम, कृष्ण एवं कौरव-पाण्डव आदि का सविस्तर वर्णन रहता है। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के साहित्य में पुराणकाव्य की यह विधा निश्चय ही धार्मिक-आस्था तथा रीति-नीति से गुम्फित होती है। इसीलिए महापुरुषों के जीवन के साथ ही उनके पूर्व भवों, प्रासंगिक विभिन्न घटनाओं, व्रत-माहात्म्य, अवान्तर कथाओं और जीवन से सम्बद्ध विभिन्न कार्य-व्यापारों का अतिशयोक्तिपूर्वक वर्णन किया जाता है। परन्तु चरितकाव्य में किसी एक महापुरुष का चरित पौराणिक या अन्य किसी शैली में वर्णित रहता है। चरितकाव्य में नायक के सम्पूर्ण जीवन की विभिन्न घटनाओं तथा संघर्षों का वर्णन किया जाता है। इसलिए आचार्य आनन्दवर्धन ने इसे सकलकथा कहा है और आचार्य हेमचन्द्र सकलकथा को ही चरितकाव्य कहते हैं।[1] आचार्य हरिभद्रसूरि रचित 'णेमिणाहचरिउ' चरितकाव्य है। परन्तु उसके अन्तर्गत वर्णित सनत्कुमार की कथा कथा है जिसे खण्डकथा कहा जा सकता है।[2] अतएव किसी भी रचना के पीछे 'चरिउ', 'कहा', 'पुराणु' या 'कव्व' शब्द जुड़ा होने से वह उस कोटि की रचना नहीं मानी जा सकती। और इसीलिए पुराण नाम से प्रचलित कुछ काव्य-ग्रन्थों को चरितकाव्य ही माना जाना चाहिए, पौराणिक नहीं। उदाहरण के लिए— कवि पद्मकीर्ति विरचित 'पार्श्वपुराण' अठारह सन्धियों में निबद्ध होने पर भी केवल एक महापुरुष तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित वर्णित होने के कारण चरितकाव्य ही कहा जाएगा। इसी प्रकार जयमित्रहल्ल के 'वड्ढमाण कव्व' और 'मल्लिणाहकव्व' काव्य-संज्ञक होने पर भी चरितकाव्य हैं। और 'पउमसिरिचरिउ' के पीछे चरित शब्द जुड़ा होने पर भी वह चरितकाव्य न होकर कथाकाव्य है। वस्तुतः पुराणकाव्य की भाँति

१. 'सकलकथेति चरितमित्यर्थः।' 'काव्यानुशासन, ८,८ की वृत्ति।

२. ग्रन्थान्तरप्रसिद्धं यस्यामितिवृत्तमुच्यते विबुधैः।
मध्यादुपान्ततो वा सा खण्डकथा यथेन्दुमती॥ वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथाकाव्य और चरितकाव्य में कई बातों में अन्तर है।[1] अर्थ प्रकृतियाँ, कार्यावस्थाएँ, नाटकीय सन्धियाँ, कार्यान्विति तथा कथा-तत्वों की संयोजना में इन दोनों में अन्तर देखा जाता है। यथार्थ में चरित तो लोक में देखा जाता है, काव्य में तो वस्तु ही प्रधान होती है परन्तु चरितकाव्य में मूल चेतना कथा न होकर कार्य-व्यापार होती है, जिसमें नायक का प्रभावशाली चरित्र चित्रित किया जाता है।

डॉ० शम्भूनाथसिंह ने अपभ्रंश काव्यों की दो शैलियाँ मानी हैं—पौराणिक और रोमांचक। इन दोनों शैलियों में लिखे गये काव्यों को चरितकाव्य कहा गया है। संस्कृत के चरितकाव्य चारों शैलियों (शास्त्रीय, पौराणिक, रोमांचक, ऐतिहासिक) में तथा प्राकृत के तीन शैलियों में हैं।[2] परन्तु तथ्य यह है कि अपभ्रंश के चरितकाव्य अधिकतर पौराणिक शैली में लिखे गये हैं और कथाकाव्य रोमांचक शैली में। 'विलासवईकहा' रोमांचक शैली में लिखा हुआ उत्कृष्ट कथाकाव्य है। यद्यपि शैली ही भेदक रेखा नहीं मानी जा सकती है पर कहीं-कहीं शैलीगत यह अन्तर अवश्य मिलता है। अपभ्रंश के अधिकतर काव्य पौराणिक शैली में लिखे गये हैं। इसलिए कथाकाव्यों से चरितकाव्यों की संख्या अधिक है। कथाकाव्य उपन्यास की भाँति रोचक तथा कुतूहलवर्द्धक शैली में लिखे गये हैं। इनमें वर्णित कथावस्तु लोककथा एवं कल्पित हैं जो विस्मय, औत्सुक्य, कुतूहल तथा भावनातिरेक से अनुरंजित लक्षित होती है। कथाकाव्य के नायक लोक जीवन के जाने-पहिचाने साधारण पुरुष हैं जो सुख-दुःख से अनुप्राणित तथा आशा-निराशा, हर्ष-विषाद के हिंडोलों में झूलते हुए दिखाई पड़ते हैं। जहाँ उनके जीवन में अन्धकार है वहीं प्रकाश की उज्ज्वल किरणें मुस्कराती हुई दिखाई पड़ती हैं और प्रकृति अनुराग से अनुरंजित तथा सहानुभूति प्रकट करती हुई जान पड़ती है। अधिकांश चरितकाव्यों काव्यों में आदर्श की प्रधानता है और कथाकाव्यों में यथार्थ की। यद्यपि दोनों में ही नायक या नायिका के असाधारण कार्यों का वर्णन मिलता है परन्तु एक में वह दैवी संयोग और धार्मिक विश्वासों से सम्बद्ध होता है और दूसरे में अतिलौकिक एवं असम्भव घटनाओं से अनुरंजित। यही कारण है कि चरितकाव्यों में आदर्श चरित्रों की प्रधानता रहती है और उनके जीवन की सिद्धि तथा पूर्णता का वर्णन किया जाता है। निश्चय ही चरितकाव्य का नायक लौकिक जीवन की सीमाओं से ऊपर असाधारण गुण, शक्ति, ज्ञान आदि से समन्वित पूर्ण पुरुष के रूप में चित्रित किया जाता है। यथार्थ में चरितकाव्य पुराणों से विकसित हुए हैं इसलिए आख्यान तथा इतिवृत्त के साथ ही पौराणिक पुरुष के रूप में उनका असम्भव तथा अकल्पित रूप भी वर्णित रहता है। कथाकाव्य में भले ही आदर्श पुरुष का जीवन विन्यस्त हुआ हो परन्तु पूर्ण पुरुष के रूप में उसका चित्रण नहीं होता। और फिर, चरितकाव्य की कथावस्तु अधिकतर पुराणों से अधिग्रहीत होती है परन्तु कथाकाव्य की वस्तु लोक-जीवन तथा लोक-कथाओं से समन्वित होती हैं। इसलिए उनमें मानवीय परिस्थितियों के विभिन्न रूपों का आकलन होने के साथ ही स्थानीय रूप-रंग (Local colours),

१. विशेष द्रष्टव्य है—'भविसयत्तकहा और अपभ्रंश-कथाकाव्य' शीर्षक लेखक का शोध-प्रबन्ध।
२. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० १७४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य-व्यापार (Actions), नाटकीय कल्पनाएँ, रोमांस (Romance) और कथानक रूढ़ियाँ एवं कथाभिप्राय (Motifs) चरित्रगत उद्देश्यों के (Objective characters) के बीच लक्षित होती हैं।

विण्टरनित्स उपन्यास शैली में पद्यबद्ध लिखे हुए कथाकाव्य 'भविसयत्तकहा' को, साहसिक तथा रोमांचक दृश्यों का वर्णन होने के कारण रोमांटिक महाकाव्य मानते हैं।[1] अपभ्रंश के प्रायः सभी कथाकाव्यों में साहस, रोमांस तथा समुद्र-यात्रा, संकट आदि के रोमांचकारी वर्णन मिलते हैं। परन्तु नायक के साहसिक कार्यों के कारण तथा रोमांचक वर्णन होने से यह रोमांटिक काव्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि महाकाव्य में किसी-न-किसी रूप में प्रेम तथा रोमांस का वर्णन रहता ही है। अंग्रेज़ी काव्य साहित्य में रोमांचक महाकाव्य का उत्कृष्ट निदर्शन स्पेन्सर द्वारा लिखित 'फेअरी क्वीन' माना जाता है। इसमें नायक और नायिका के प्रेम-व्यापारों के साथ नायिका की प्राप्ति का वर्णन है। काव्य का आरम्भ नाटकीय ढंग से होता है जिसमें जीवन की विविधता और जटिलताओं का सटीक एवं सजीव वर्णन मिलता है। इस काव्य की यही विशेषता है कि इसमें कई रूपों में रोमांस तथा प्रेम का सजीव चित्रण किया गया है—ईश्वर-प्रेम, देश-भक्ति, सत्य-निष्ठा, मानवीय-प्रेम और विशेषकर रोमांटिक प्रेम।[2] यद्यपि 'भविष्यदत्तकथा' में भी ईश्वर-भक्ति, मानवीय-प्रेम तथा देश-प्रेम की अभिव्यंजना मिलती है परन्तु इसमें वह व्यापकता तथा स्वच्छन्दता नहीं है जो विशेषकर रोमांटिक प्रेम तथा राष्ट्रीय चेतना में निहित रहती है। 'भविष्यदत्तकथा' का समूचा कथानक धार्मिक तथा सामाजिक परिवेश में चित्रित किय गया है इसलिए उद्देश्य प्रधान होने के कारण उन्मुक्त प्रेम का वास्तविक चित्रण इस काव्य में नहीं हो सकता है। फिर नायक-नायिका के कार्य-व्यापारों तथा प्रेम का यथार्थ वर्णन इस कथाकाव्य में किसी एक भी स्थान पर नहीं हुआ है। इसलिए साहसिक तथा रोमांचकारी वर्णनों को पढ़कर ही इसे रोमांटिक महाकाव्य मान लेना उचित नहीं जान पड़ता।

वस्तुतः अपभ्रंश के कथाकाव्यों में प्रेम तथा वीर का अद्भुत संयोग मिलता है, इसलिए एक ओर वे जहाँ रोमांटिक काव्य के निकट है वहीं दूसरी ओर वीरकाव्य (Heroic Poetry) से मिलते-जुलते हैं। अतएव प्रत्येक कथाकाव्य का आरम्भ प्रेम से, मध्य युद्ध से और अन्त निर्वेद से होता है। अधिकतर कथाएँ राजकुमारों की हैं जिनमें प्रेम का बीज वन-उपवन से अंकुरित होता है और नायिका के प्रथम दर्शन में ही नायक-नायिका एक-दूसरे के आकर्षण तथा प्रेम-पाश में बँध जाते हैं। नायक मित्रों की सहायता से उसका संयोग प्राप्त करता है परन्तु कई प्रकार की विघ्न-बाधाओं में

१. ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, जिल्द २, पृ० ५३२।

2. "It takes various forms, the love of Christ, of God, of Country, of justice, of truth, and most frequently and perhaps—genially the love of humans for each other, and especially romantic love."

—On the Poetry of Spencer and the Form of Romances by John Arthos, 1956, p. 44.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे एक-दूसरे से बिछड़ जाते हैं। नायक कई प्रकार की आपत्ति-विपत्तियों का सामना करता है। अन्त में दोनों का मिलन होता है और विवाह हो जाता है। इस दृष्टि से साधारण सिद्धसेन के द्वारा लिखित 'विलासवईकहा' बहुत ही बढ़िया रचना है। यह 'विलासवतीकथा' अपभ्रंश के कथाकाव्यों में उत्कृष्ट प्रेमकथाकाव्य है। परन्तु 'भविष्य-दत्तकथा' में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती है।

अपभ्रंश के लगभग सभी कथाकाव्यों में सोद्देश्य चरित्र-चित्रण किया गया है। हीरोइक पोइट्री में कथात्मक होने के साथ ही उद्देश्य प्रधान चरित्रों का होना आवश्यक माना जाता है।[1] यद्यपि कुछ कथाएँ ऐसी भी होती हैं जो केवल कहने के लिए ही कही जाती हैं परन्तु अपभ्रंश में एक भी ऐसी कथा या कथाकाव्य नहीं है जिसका कुछ-न-कुछ सम्बन्ध जातीय तथा धार्मिक भावना से उद्देश्य रूप में सम्बद्ध न हो। सभी कथाएँ किसी-न-किसी जीवन-दर्शन या धार्मिक व्रत-माहात्म्य को अभिव्यंजित करती हैं। इन कथाकाव्यों में नायकों के चरित तथा कार्य भी किसी उद्देश्य से वर्णित रहते हैं। क्योंकि ये सभी कथाएँ काल्पनिक एवं लोक प्रचलित लोक-कथाएँ हैं जिनमें धर्म तथा समाज की रीति-नीति का साभिप्राय वर्णन किया जाता है। संसार के अधिकांश साहित्य में पहले से ही यह मान्यता चली आ रही है कि शक्ति का केन्द्र मानव न होकर अदृश्य शक्ति है जिसको वश में करके वह उन असम्भव-से-असम्भव कार्यों को भी पूर्ण कर सकता है जिन्हें वह अभी शारीरिक शक्ति से सम्पन्न करने में असमर्थ है।[2] अपभ्रंश के कथाकाव्यों में ईश्वर या अदृश्य शक्ति के स्थान पर कर्म (पूर्व जन्म के किये हुए कार्यों के फल को) को महत्त्व दिया गया है। यद्यपि उनके द्वारा किये गए असाधारण कार्य किसी अतिमानवीय शक्ति से ही सम्पन्न होते है पर वे निमित्त मात्र होती हैं, मुख्य तो नायक के पूर्व-जन्म में संचित कर्मों का फल है जिसके अनुसार मित्र, यक्ष, विद्याधर आदि उसकी सहायता करते हैं। यह मान्यता अपभ्रंश के सभी कथाकाव्यों में व्याप्त लक्षित होती है। इसलिए 'हीरोइक पोइट्री' की भाँति इसमें मानवीय कार्यों का वर्णन किया जाता है। नायक के असाधारण-से-असाधारण कार्य भी मानवीय कार्यों से परे नहीं होते हैं। काल्पनिक होने पर भी कथाकाव्यों में इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। पुराणकाव्यों में अवश्य अतिलौकिक तथा दिव्य चरित्रों का वर्णन किया जाता है जो ईश्वरीय या अन्य किसी शक्ति से प्रेरित तथा संचालित होते हैं। इसलिए कभी-कभी उन पर ठीक से विश्वास करना भी कठिन हो जाता है।

1. "Heroic poetry is essentially narrative and is nearly always remarkable for its objective character. It creates its own world of the imagination in which men act on easily understood principles, and, though it celebrates great doings because of their greatness, it does so not overtly by praise but indirectly by making them speak for themselves and appeal to us in their own right."
—Heroic Poetry by C. M. Bowra, 1961, p. 4.

2. Ibid, p. 5.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय साहित्य में कथाकाव्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। काव्य के मूल में जीवन की लिपिबद्ध कथाएँ ही हैं जो श्रुति रूप में वर्षों तक प्रचलित रही हैं और देश-देशान्तरों में अपने मूल रूप में स्थानान्तरित होती रही हैं। अपभ्रंश में ऐसी ही कथाएँ महाकाव्यों की कड़ी में पद्यबद्ध कथाकाव्य के रूप में लक्षित होती हैं जिनमें मानवीय संवेदना कतिपय घटनाओं के विग्रह में सजीव एवं चारित्रिक बन्धनों में अनुस्यूत रहती हैं। कथा ही कथाकाव्य में मुख्य होती है जो किसी उद्देश्य से कही जाती है। और वह उद्देश्य नायक के कार्य-व्यापारों से सम्बद्ध रहता है। ये कथाएँ प्रायः वक्ता-श्रोता शैली में कही जाती हैं। इनमें कहीं-कहीं सुनने वाला कथा एवं घटना के सम्बन्ध में जिज्ञासा और उत्सुकता प्रकट करता चलता है और लेखक उसकी उत्सुकता को वृद्धिगत करता हुआ आगे की घटनाओं का सजीव वर्णन करता चलता है। चरितकाव्यों में नायक के जीवन का समूचा इतिवृत्त अलौकिक रूप में वर्णित रहता है। उनमें अभिप्राय-विशेष भी नायक के आदर्श तथा असाधारण गुणों तथा अतिलौकिक चमत्कारों से समन्वित होते हैं। जिन कथाकाव्यों में वस्तु सोद्देश्य नियोजित नहीं हैं वे लोक-कथाएँ हैं जो साहित्यिक रूढ़ियों के साथ कालान्तर में काव्य के साँचे में प्रबन्ध के रूप में ढाल दी गई हैं। और इसीलिए इन कथाओं में कई प्रकार के परिवर्तन तथा जोड़-मोड़ मिलते हैं। कुछ कथाएँ लोक-कथा या जन-श्रुति के रूप में प्रचलित होने पर भी व्रत-माहात्म्य तथा अनुष्ठानों से सम्बद्ध होकर काव्य-बन्ध का अंग ही नहीं प्राण बन गई हैं। हीरोइक पोइट्री में कथा अल्प तथा सूक्ष्म रहती है। परन्तु कथाकाव्य में मुख्य वस्तु कथा-संयोजना तथा घटनाओं का महत्त्वपूर्ण वर्णन रहता है। 'भविष्यदत्तकथा' ऐसी ही कथा है जो पहले श्रुति के रूप में वर्षों तक जन-मानस में प्रचलित रही और फिर परम्परागत प्रबन्धकाव्य की शैली में लिखी गई। और इसलिए हीरोइक पोइट्री से भी कई बातों में अन्तर दिखाई पड़ता है। क्योंकि जब हीरोइक पोइट्री रोमांस में परिणत होने लगती है तब उसमें गेय चेतना कोमल भावनाओं और आकर्षक दृश्यों से मृदु तथा साहसिक कार्यों के मध्य विराम देने वाली आनन्दमयी अनुभूतियों से संवेदनीय हो जाती है।[1] अतएव अपभ्रंश तथा भारतीय साहित्य में कथाकाव्य तथा चरितकाव्य की विधा अपने ढंग की अलग ही प्रबन्ध-रचना है।

भारतीय साहित्य में कदाचित् प्राकृत और अपभ्रंश में इस साहित्यिक विधा का सूत्रपात हुआ जिसमें कथा और काव्य मिलकर लोक-जीवन के परिपार्श्व में यथार्थ रीति से गतिशील तथा मनुष्य जीवन में घटनाओं का रोमांचक एवं वास्तविक प्रभाव दर्शाते हुए लक्षित होते हैं। यद्यपि कहीं-कहीं पौराणिक प्रवृत्ति के अनुगमन से घटनाओं में अस्वाभाविकता-सी जान पड़ती है परन्तु प्रबन्ध-संघटना और रचना-शिल्प में

1. "When heroic poetry passes into romance, it is touched by a lyrical spirit which dwells on tender emotions and charming scenes and softens the stark outlines of adventure with intervals of ease and pleasure."

—Heroic Poetry by C. M. Bowra, 1961, p. 548

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
NOT TO BE ISSUED

शिथिलता नहीं दिखाई पड़ती। अपभ्रंश के इन कथाकाव्यों की विशेष प्रवृत्ति है—प्रेम की मधुर व्यंजना। अधिकतर नायक पवित्र प्रेम से प्रेरित एवं संचालित दिखाई पड़ते हैं। कहीं-कहीं प्रेम की उदात्त व्यंजना धार्मिक वातावरण में हुई है कहीं-कहीं शुद्ध मानवीय। इस रूप में हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्य वस्तु एवं शिल्प-रचना की दृष्टि से ही नहीं शैली और प्रेम की मधुर व्यंजना में भी अपभ्रंश के इन कथाकाव्यों से प्रभावित जान पड़ते हैं।

कथा पहले आख्यान थी, जो शुद्ध इतिवृत्त थी। परन्तु ज्यों-ज्यों काव्य-तत्वों से उसका ताल-मेल बैठता गया त्यों-त्यों वह कहानी और उपन्यास का रूप ग्रहण करती गई। भविष्यदत्तकथा को पद्य में लिखा हुआ एक प्रकार का उपन्यास ही समझना चाहिए। यद्यपि रचना-तत्वों में असमानता है पर हम उसे कथा ही कहते आए हैं। और इसलिए भी कि वस्तु रूप में वह लोक-कथा ही है। संस्कृत में लिखी गई कथाएँ गद्य में हैं। वाणभट्ट की 'कादम्बरी' तो उपन्यास ही जान पड़ती है। परन्तु वह कथा ही है। प्राकृत और अपभ्रंश में छोटी तथा बड़ी लगभग सभी प्रकार की कथाएँ छन्दोबद्ध हैं। 'कुवलयमाला कथा' अवश्य गद्य में लिखी मिलती है। इसी प्रकार अन्य रचनाएँ भी गिनाई जा सकती हैं, परन्तु प्राकृत और अपभ्रंश में पद्यबद्ध कथाएँ लिखने की सामान्य प्रवृत्ति रही है। गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' से लेकर आज तक न जाने कितनी तरह की कथाएँ और कहानियाँ लिखी गई जो नीति-रीति, मानवीय स्थितियों की विविधता और यथार्थता से समन्वित लिखी जाती रही हैं। भाषा की भाँति साहित्यिक विधाओं का भी यह परिवर्तन आज इतिहास की वस्तु बनकर रह गया है। उन परिवर्तनों का पूर्ण विवरण देना आज असम्भव-सा जान पड़ता है।

अपभ्रंश-साहित्य का ही नहीं, यदि हम दसवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक के भारतीय साहित्य का अनुशीलन करें तो ज्ञात होता है कि मध्य-युगीन भारतीय काव्यों की मुख्य प्रवृत्ति उदात्त प्रेम की मधुर व्यंजना रही है। यद्यपि इस युग के काव्य में वर्णित प्रेम अतिलौकिक भाव-भूमिका में भी चित्रित हुआ है परन्तु काव्य का सामान्य धरातल लौकिक प्रेम में ही अभिव्यक्त हुआ है। इसलिए अतिलौकिक प्रेम और आदर्शों को समझने के लिए हमें किन्हीं प्रतीकों और रूपकों के रहस्यों को खोलना पड़ता है। परन्तु अपभ्रंश के कथाकाव्यों में प्रायः यह व्यंजना नहीं मिलती हैं। यद्यपि प्रेम-बीज से लेकर उसके विकास तक की सम्पूर्ण परिस्थितियों एवं अवस्थाओं का इनमें पूर्ण विकास लक्षित होता है परन्तु व्यक्तिवादी वैचित्र्य एवं चमत्कार नहीं मिलता। वस्तुतः ये कथाकाव्य मध्ययुगीन भारतीय साहित्य की देन हैं जो लोक-जीवन की परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतएव हम इस युग को पुनर्जागरण काल (Renaissance) कह सकते हैं, जिसमें जनवादी प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही थीं और पौराणिकता से हटकर साहित्य लोक-चेतनोन्मुखी हो रहा था। अतएव लोक-जीवन के विविध तत्त्व कथाकाव्य में सहज ही लक्षित होते हैं। इस युग में कथाकाव्य का नायक आदर्श पुरुष ही नहीं, राजा, राजकुमार, बनिया, [illegible] या अन्य कोई साधारण से साधारण पुरुष हो सकता था जो अपने पुरुषार्थ से असाधारण व्यक्तित्व तथा गुणों को

REFERENCE BOOK
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट कर मानव बन सकता था। सभी कथाकाव्यों में यह व्याप्ति पूर्णतया लक्षित होती है। इससे देश के साहित्यिक विकास की एक नवीन उत्थानिका का पता लगता है जो मध्ययुगीन साहित्य की विशिष्टता है।

भविष्यदत्तकथा—अपभ्रंश के कथाकाव्यों में भविष्यदत्त की कथा अत्यन्त करुण, सजीव और यथार्थ है। परिवार की छोटी-सी घटना को लेकर वस्तु-बीज किस प्रकार जाति, समाज और देश के मूल तक पहुँच जाता है—इसका सटीक वर्णन इस कथाकाव्य में मिलता है। समस्याएँ प्रत्येक युग में सचेत सामाजिक के सामने रही और उन पर समय-समय पर साहित्य-लेखक विचार भी करते रहे हैं। यही नहीं उन समस्याओं की जटिलता तथा परिणामों का लेखा-जोखा भी किसी-न-किसी रूप में चित्रबद्ध किया जाता रहा है। घनपाल के इस कथा काव्य को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में किस प्रकार सामन्त-धनिकवर्ग काम-वासना की तृप्ति के लिए बहु-विवाह रचते थे और संतति पर उसका क्या दुष्परिणाम पड़ता था। इस प्रकार सत्ता तथा बाहुबल पर किस प्रकार राजा लोग सुन्दरी का अपहरण कर लेते थे और इस प्रकार की छोटी-छोटी बातों के लिए संग्राम में रण-कौशल दिखाते थे भाई-भाई किस प्रकार सम्मान तथा आत्म-तृप्ति के लिए सगे भाई के साथ छल-कपट करते थे और किस प्रकार मातृतुल्य भावज को अपनी बना लेने का षड्यन्त्र रचा करते थे। और किस प्रकार भाई तथा भावज अपनी परीक्षा देते थे और अन्त में सफलता प्राप्त करते थे। उस युग की ऐसी ही कुछ ज्वलन्त घटनाएँ हैं, जिन पर कवि ने भलीभाँति प्रकाश डाला है और सांकेतिक रूप से समस्याओं का उद्घाटन किया है।

वस्तुतः 'भविसयत्तकहा' में भावों की उदात्तता, कल्पना की अतिशयता और वस्तु का यथार्थ चित्रण जितना सजीव और आवेगमय है उतना अपभ्रंश के अन्य कथाकाव्यों में नहीं है। परिमाण एवं आकार की दृष्टि से भी यह अपभ्रंश कथा-चरित काव्यों में सबसे बड़ी रचना है। यह कथाकाव्य दो खण्डों में और बाईस सन्धियों में विभक्त है। प्रबन्ध तथा वास्तु-तत्व की योजना सोद्देश्य नियोजित है। इसलिए धार्मिकता का पुट स्पष्ट है। किन्तु भावान्तर तथा अतिलौकिक बातों को ऊपर से जोड़ी हुई चिप्पियाँ समझकर छोड़ दिया जाये तो शुद्ध रूप में लोककथा झलकने लगती है।

मूल रूप में कथा बहुत छोटी रहती है। किन्तु वस्तु-वर्णन तथा विभिन्न अभिप्राय-मूलक घटनाओं के योग से समूचे जीवन का चित्र चित्रित करने वाले प्रबन्ध काव्य का आकार ग्रहण कर लेती है। अपभ्रंश के कथाकाव्यों में हमें अधिकतर ऐसी ही कथाएँ मिलती हैं जो शृंखलाबद्ध रूप से वर्णित हैं। इसे ऐकिक कहानी कहा जा सकता है जो कई सरल कथाओं से मिलकर एक बृहत्कथा बनती है। इस प्रकार अपभ्रंश कथाकाव्य के कथानक सरल तथा कार्यान्विति से युक्त मिलते हैं।

कथा-वस्तु—भविष्यदत्त की कथा में एक साथ तीन अन्य उपकथाएँ जुड़ी हुई हैं। मुनि के आशीर्वाद से भविष्यदत्त का उत्पन्न होना और पाँच सौ व्यापारी तथा भाई बन्धुदत्त के साथ समुद्र की यात्रा करना, मार्ग में मैनागद्वीप में बन्धुदत्त के द्वारा भविष्यदत्त को अकेला जंगल में छोड़ दिया जाना, वहाँ से भविष्यदत्त का तिलकपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उजाड़ नगरी में पहुँचना और भविष्यानुरूपा का मिलन होना, दोनों का परस्पर प्रेम होना और विवाह हो जाना, बन्धुदत्त के बारह वर्षों के बाद फिर से मैनागद्वीप में लौटने पर उसी स्थान पर भविष्यदत्त की भेंट होना, बन्धुदत्त का फिर से छलपूर्वक भाई को अकेला छोड़ जाना और भावज पर आसक्त होना, पोत का डगमगाना, देवी का स्वप्न देना और बन्धुदत्त का अपने घर पहुँचकर भविष्यानुरूपा से विवाह करने की तैयारी कराना, भविष्यदत्त का फिर से उजाड़ नगरी में पहुँचना और यक्ष मित्र की सहायता से विमान में बैठकर गजपुर माँ के पहुँचना—ये सब घटनाएँ कथा के एक सूत्र में पिरोयी हुई हैं जो आदि से अन्त तक एक ही मुख्य कथा में विन्यस्त हैं। यह कथा मूल रूप में बड़ी माँ' की कहानी है जिसमें सौतेली माँ का व्यवहार और उसके सिखाये हुए पाठ से बड़े भाई के साथ छोटे भाई के खोटे-से-खोटे और नीच-से-नीच कर्म करने का वर्णन है। कहीं-कहीं इन घटनाओं से कथा को गतिशील बनाये रखने के लिए उपवाक्यों की भाँति उपकथाएँ जुड़ी हुई हैं।

अपभ्रंश के लगभग सभी कथाकाव्यों की वस्तु कल्पित एवं निजंघरी है। घटनाओं के मोड़ में तथा सोद्देश्य चरित्रों के चित्रण से भी यह स्पष्ट हो जाता है। उजाड़ नगरी या किसी अज्ञात वन-उपवन के ऐकान्तिक अंचल में स्थित आश्रम अथवा चमत्कारी पर्वत या विद्याधरों की नगरी के वर्णन कवि की कल्पना से प्रसूत हैं। ऐसे स्थलों पर कवि की वृत्ति प्रकृति या सुरम्य वातावरण के वर्णनों में अधिक रमी है। महाकाव्यों की भाँति इन कथाकाव्यों में भी प्रकृति-वर्णन, वस्तु-व्यापारों का विस्तृत विवरण तथा मानवीय परिस्थितियों का उल्लेख रहता है। कहा जाता है कि हीरोइक पोयट्री में नायक की क्रियाओं का विस्तृत वर्णन रहता है। वर्तमान दशा में जिन बातों को अनावश्यक समझकर उपन्यासकार या कथाकाव्य लेखक छोड़ देता है उन्हीं बातों के विस्तृत वर्णन से हीरोइक पोयट्री व्याप्त रहती है।[1] अपभ्रंश-कथाकाव्यों की अपेक्षा चरितकाव्यों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है। परन्तु कथाकाव्यों की वस्तु उद्देश्यमूलक तथा विषय के अनुरूप भलीभाँति सम्बद्ध रहती है। 'भविसयत्तकहा' में भी श्रुतपंचमी व्रत के माहात्म्य का फल भविष्यदत्त के जीवन में भलीभाँति चरितार्थ दिखाया गया है और उसकी माता कमलश्री की आस्था फलवती दर्शाई गई है। परन्तु कथा यहीं पर समाप्त नहीं होती है, वह आगे भी चलती है। और उसमें भविष्यदत्त की वीरता, पराक्रमपूर्वक युद्ध की तैयारी करना, राजा भूपाल की पुत्री सुमित्रा की याचना करने वाले सिन्धुनरेश को पराजित करना और राज्यलक्ष्मी का भलीभाँति उपभोग कर शासन करना आदि भविष्यदत्त की असाधारण बातों का चित्रण है, जो वैश्य-बालकों में नहीं मिलती। वस्तु और विषय के इन विविध आयामों में भविष्यदत्तकथा

1. No reader of heroic poetry can fail to notice that it abounds in detailed descriptions of actions which are in themselves trivial, and would be omitted by a novelist or narrative poet working in modern conditions. These are the mechanics of narrative and are needed to keep the story coherent and obective."—Heroic Poetry, P. 179.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-उपन्यास की धारा से निःसृत ही जान पड़ती है। विभिन्न सन्धियों में इस नवीन पात्र, घटनाओं तथा परिस्थितियों का समावेश हुआ है। इसलिए कथा में आदि से अन्त तक उत्सुकता तथा कुतूहल बना हुआ है।

अपभ्रंश-कथा-काव्य उक्त बातों के कारण निश्चय ही महाकाव्य से भिन्न है। लेसिल्स-एबरक्रोम्बी के मत में प्रचलित, स्पष्ट तथा पौराणिक कथा के माध्यम से जिस काव्य में अज्ञात एवं अचेत तथा मान्य अपने युग की अध्यात्मतत्व की अभिव्यंजना की जाती है वह महाकाव्य है। परन्तु ई० एम० डब्ल्यु० टिलयार्ड उनके इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि निश्चित रूप से महाकाव्य की कथावस्तु लोकजीवन से अधिग्रहीत होनी चाहिए, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह कथा रूप में ही हो, जिसमें घटना परम्परा की शृंखला की भाँति अनुक्रम से नियोजित हों और जिससे विन्यस्त कहानी अधिक-से-अधिक पाठकों को रुचिकर हो सके। प्रत्येक युग में—जिस प्रकार जीवन के मान-दण्ड बदलते रहते है उसी प्रकार घटनाओं, परिस्थितियों, क्रियाओं तथा जीवन-दर्शन और आदर्शों में भी कुछ-न कुछ परिवर्तन होता रहता है इसलिए वस्तु की दृष्टि से पौराणिक या ऐतिहासिक अथवा प्रख्यात नायक की कही हुई कथा में संयोजित-काव्य ही महाकाव्य हो सकता है—इस विचार से हम सहमत नहीं हैं। परन्तु मेरे मत में किसी काव्य के महाकाव्य होने के लिए उसमें राष्ट्रीय चेतना, युग की मुख्य विचार धाराओं का आकलन, युगसापेक्ष्य प्रतिनिधित्व और परम्परागत शास्त्रीय नियमों का निर्वाह या किसी विशिष्ट काव्य-सरणि का स्थापक और सुसम्बद्ध घटनाओं तथा विचारों को अभिव्यक्त करने वाला हो। केवल आकार या परिमाण से ही अथवा उदात्त शैली से ही कोई प्रबन्धकाव्य महाकाव्य नहीं हो सकता। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर भविष्यदत्त-कथा में हमें वह सूक्ष्म व्यंजना तथा राष्ट्रीय चेतना का प्रवाह नहीं मिलता जो अपने युग के प्रतिमान प्रदर्शित कर सके। यद्यपि इस कथाकाव्य का प्रथम खण्ड वहुत ही उत्तम है पर द्वितीय खण्ड कुछ शिथिल, अवान्तर आख्यानों से भरित और प्रभावहीन सा जान पड़ता है इसलिए यह महाकांव्य की कोटि का न होकर कथाकाव्य है, जिसे आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में 'एकार्थकाव्य' कहा जा सकता है।

भविष्यदत्तकथा का लोक-रूप—यद्यपि अपभ्रंश की कथाएँ सच्ची मानकर लोगों के मन पर धार्मिक प्रभाव डालने के लिए लिखी गई हैं पर उनकी जड़ें लोक

1. Lascelles Abercrombie postulates that the epic not only should express the 'Accepted unconscious metaphysic' of its age but do so through a clear and anthentic story, a story known and already part of the mythology of the audience. I disagree with this further demand. Certainly, the material of the epic should be largely public, but not necessarily in the form of a narrative where the concatenation of sequent events holds a large proportion of the reader's interest."

—The English Epic and its Background by E. M. W. Tillyard, 1954, P. 1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथाओं में जमी हुई मिलती हैं। भविष्यदत्तकथा भी मूलतः लोक-कथा है, जो उद्देश्य विशेष से प्रबन्धकाव्य के रूप में वर्णित है। इस तरह की कथा-कहानी आज भी हमारे यहाँ गाँवों में कही जाती हैं। कहीं पर यह कहानी राजा-रानी और राजकुमारों के रूप में कही जाती है और कहीं सौदागर के रूप में[1]। अधिकतर लोक-कहानियों में राजकुमार की कहानी इससे मिलती-जुलती सुनी जाती है। बंगाल में प्रसिद्ध लोक-कथाओं में 'कलावती राजकन्या' की कहानी इसी प्रकार की रूपकथा है जिसमें पाँचों राजकुमार ईर्ष्यावश सबसे छोटे दोनों राजकुमारों को छोड़कर कलावती को पाने के लिए जहाज में बैठकर यात्रा करते हैं। किन्तु दोनों भाई भी डोंगी में बैठकर प्रस्थान करते हैं। दोनों भाई तीन बुढ़ियों के देश में पहुँचकर बुढ़िया के चंगुल में फंसे हुए पाँचों भाइयों को छुड़ाते हैं। परन्तु इस पर भी पाँचों भाई दोनों भाइयों की उपेक्षा कर आगे बढ़ जाते हैं। मार्ग में दिशा-भ्रम की दशा में दोनों भाइयों में से बुद्धू पाँचों की सहायता करता है। अन्त में तूफान आने से पाँचों भाई डूब जाते हैं। बुद्धू कलावती के नगर में पहुँचकर देखता है कि पाँचों भाई बन्दी-गृह में हैं। उसे भी बन्दी बना लिया जाता है। परन्तु वह कला-कौशल से पाँचों भाइयों को तथा छोटे भाई को कलावती के साथ लेकर पोत में बैठकर घर के लिए लौट पड़ता है। पाँचों भाई कलावती को बुद्धू के पास देखकर जल-भुन उठते हैं और उन दोनों भाइयों को समुद्र में फेंक देते हैं। कलावती को कैद कर वे अपने नगर में ले जाते हैं। राजा—कलावती का विवाह राजकुमार से करना चाहता है, परन्तु वह तैयार नहीं नहीं होती। राजा मार डालने की धमकी देता है। वह एक महीने का व्रत धारण करती है। इसी बीच दोनों राजकुमार आकर कलावती से मिलते हैं। राजा को जब सारा रहस्य ज्ञात होता है तब वह बुद्धू का विवाह कलावती के साथ धूम-धाम से करता है। छोटे भाई का पाणिग्रहण भी किसी अन्य राजकुमारी से हो जाता है। पाँचों भाइयों को अपने किये का दण्ड मिलता है।

इस प्रकार संक्षेप में भविष्यदत्त की लोक-कथा का रूप है—

किसी नगर में एक नगर सेठ रहता था। उसका नाम धनवइ था। कमलश्री नाम की उसकी शील तथा रूपवती पत्नी थी। उन दोनों के भविष्यदत्त नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। धीरे-धीरे सेठ का मन उससे विरक्त हो गया। उसका दूसरा विवाह सरूपा से हुआ। सरूपा स्वभाव से दुष्ट तथा रूपगर्विता थी। भविष्यदत्त ननिहाल में पढ़-लिखकर बड़ा होता है। सरूपा के भी एक पुत्र उत्पन्न होता है, जिसका नाम बन्धुदत्त रखा जाता है। बन्धुदत्त नगर में बहुत उत्पात मचाता है। नगर के लोग मन्त्रियों से निवेदन करते हैं। अन्त में प्रधान नगर-सेठ से कहकर उसे व्यापार के लिए भेजते हैं। पाँच सौ व्यापारियों का मुखिया बनकर बन्धुदत्त समुद्र के मार्ग से जहाज पर बैठकर यात्रा करता है। भविष्यदत्त भी साथ में जाने के लिए तैयार होता है। उसकी माता कमलश्री बहुत समझाती है। अन्त में मामा आदि के कहने से वह भविष्यदत्त को भेज देती है। बन्धुदत्त की माता बड़े भाई भविष्यदत्त के सम्बन्ध में

१. डा० नामवरसिंह : हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, तृतीय परिवर्द्धित संस्करण, पृ० २५०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कुछ बता देती है और किसी प्रकार मार्ग में कहीं छोड़ आने या समुद्र में गिरा देने की सीख देती है। कई दिनों के बाद बन्धुदत्त का जहाज मैनागद्वीप के तट पर लगता है। सब लोग उतर कर खाते-पीते हैं। फल-फूलों को वन में से तोड़ते हैं। भविष्यदत्त फूलों को चुनता हुआ दूर निकल जाता है। अवसंर पाते ही वन्धुदत्त भविष्यत्त को वहीं छोड़कर जहाज चलवा देता है। भविष्यदत्त रोता-गाता जंगल में भटकता है। एक रात घने जंगल में, जंगली जानवरों के बीच एक शिला पर सोता हुआ बिताता है। दूसरे दिन एक गुफा में से निकलकर एक उजाड़ नगरी में पहुँचता है। उस तिलक-पुर में उसे केवल एक सुन्दर राजकुमारी को छोड़कर कोई नहीं मिलता। वह उससे सारा हाल पूछता है। वह कहती है—राक्षस ने इस नगरी को उजाड़ दिया है। तुम भी उससे नहीं बच सकते। राक्षस के आने पर वह ललकारता हुआ युद्ध के लिए तैयार हो जाता है। राक्षस साहस तथा पराक्रम से प्रसन्न होकर उन दोनों का विवाह कर देता है। दोनों वहाँ पर बारह वर्षों तक साथ में रहते हैं। एक दिन भविष्या-नुरूपा ससुराल के हाल-चाल पूछती है। भविष्यदत्त को माता का स्मरण हो आता है। वह दूसरे दिन ही उसी गुफा में से होकर समुंद्र-तट पर पहुँचते हैं।

बारह वर्षों के बाद बन्धुदत्त का जहाज फिर उसी तट पर लगता है। लोग भविष्यदत्त को पहचान लेते हैं। बन्धुदत्त गले मिलता है। भाई से क्षमा माँगता है। भविष्यदत्त सब को भोजन कराता है। भविष्यानुरूपा के साथ सब माल जहाज पर चढ़ा दिया जाता है। भविष्यानुरूपा को इतने में ही स्मरण हो आता है कि वह सेज पर नागमुद्रा भूल गई है। भविष्यदत्त उसे लेने के लिए जाता है। तभी बन्धुदत्त लोगों के मना करने पर भी जहाज खुलवा देता है। भविष्यदत्त बहुत पछताता है। भौजाई के रूप-सौप्दर्य से आकृष्ट होकर बन्धुदत्त उससे अनुनय-विनय करता है। वह मौन धारण कर लेती है। भोजन-पानी त्याग देती है। देवी उसे स्वप्न देती है कि एक महीने में पति के दर्शन होंगे। मार्ग में जल-देवता के प्रभाव से तूफान आता है। जहाज डग-मगाने लगता है। सभी बन्धुदत्त को धिक्कारते हैं। भविष्यानुरूपा से क्षमा माँगते हैं। तब कहीं लहरें शान्त होती हैं और वे गजपुर की ओर आगे बढ़ते हैं। सभी अपने-अपने घर पहुँच जाते हैं। कमलश्री भविष्यदत्त को आया हुआ नहीं देखकर निराश होती है। वह सबसे पूछती है। सब यही कहते हैं कि किसी द्वीप में रह गया है। आ जायगा। बन्धुदत्त के विवाह की तैयारियाँ होती हैं। पन्द्रह-बीस दिन बाद भविष्यदत्त घर लौट आता है। मामा के साथ वह राजा को सब वृत्तान्त सुनाता है। माता को भेजकर नागमुद्रिका के अभिज्ञान से वह भविष्यानुरूपा को राज-दरबार में बुला लेता है। राजा सभा बुलाता है। सारा रहस्य खुल जाता है। नगरसेठ और बन्धुदत्त को दण्ड मिलता है। जनता विरोध करती है। भविष्यदत्त के कहने पर धनवइ को छोड़ दिया जाता है। राजा अपनी कन्या सुमित्रा का विवाह भविष्यदत्त के साथ करने का निश्चय प्रकट करता है।

इसी बीच पाँचालनरेश की सेना आकर गजपुर को घेर लेती है। सुमित्रा को माँगने और अधीनता स्वीकार कर कर देने का प्रस्ताव रखा जाता है। राजा बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असमंजस में पड़ जाता है। भविष्यदत्त इस प्रस्ताव को ठुकरा देता है। स्वयं सेना का नेतृत्व कर युद्ध लड़ता है और चित्रांग को बन्दी बना लेता है। सुमित्रा से उसका विवाह हो जाता है। वह राजा बन जाता है। धनवइ भी अपनी भूल को स्वीकार कर पूर्व त्यक्त कमलश्री को अपना लेता है। सभी का जीवन आनन्द से बीतता है।

अतएव अपभ्रंश की यह कथा लोक-कथा है, जिसमें धर्म और साहित्य के परिप्रेक्ष्य में कतिपय कथाभिप्राय वर्णित हैं। ऐसी कथाएँ प्रायः लोक-जीवन और संस्कृति को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं। भविष्यदत्त की यह कथा उत्पाद्य है, जिसमें सुमित्रा के लिए युद्ध, मणिभद्र यक्ष की सहायता से मैनागद्वीप से गजपुर पहुँचने और भविष्यानुरूपा के दोहला के समय तिलकपुर में भ्रमण करने की घटनाएँ एवं वृत्त कल्पित जान पड़ता है। इसका मुख्य कारण धार्मिक वातावरण प्रस्तुत करना है।

चरित्र-चित्रण—घटनाओं की भाँति भावों में संघर्ष का चित्रण करना अपभ्रंश कथाकाव्यों की सामान्य प्रवृत्ति है। यद्यपि भविष्यदत्त सामान्य व्यक्ति है इसलिए भाई के द्वारा द्वीप में छोड़ दिये जाने पर आँसू बहाता है, पश्चात्ताप करता है, परन्तु विनय, शालीनता, साहस और धैर्य आदि गुणों से संयुक्त होने के कारण वह धीरोदात्त नायक की भाँति चित्रित किया गया है। अपभ्रंश के कवियों ने अपने काव्यों में सामान्य व्यक्ति को नायक मानकर उसके क्रिया-कलापों से उदात्त जीवन में उन्हें प्रतिष्ठित किया है। और इसका मूल कारण उनकी धार्मिक वृत्ति जान पड़ती है, जिसके अनुसार वे 'नर से नारायण' बनने की मान्यता में विश्वास रखते हैं। अतएव भविष्यदत्त धीर, वीर ही नहीं, साहसी और क्षमाशील भी है। जातीय गुणों के साथ ही उसमें क्षात्रधर्म का दर्प और तेज भी दिखाई पड़ता है। अतएव सिन्धुनरेश के अन्यायपूर्ण प्रस्ताव से असहमत होकर वह सबसे आगे बढ़कर युद्ध लड़ता है और निर्भीकता के साथ अपनी वीरता का परिचय देता है। इस प्रकार सामान्य वणिक्पुत्र होकर भी भविष्यदत्त राजोचित प्रवृत्तियों एवं गुणों को प्रदर्शित कर अन्त में राजा बनता है और सफलता से राज्य-शासन करता है। लेखक ने जहाँ दैवी संयोग, आकस्मिकता और असाधारण वृत्तों की संयोजना धार्मिक प्रभाव स्पष्ट करने के हेतु की है वहीं नायक चारित्रिक गुणों पर भी प्रकाश डाला है।

अंप्रभ्रंश के इन सभी कथाकाव्यों की रचना पद्धड़ियाबद्ध है। पद्धड़िया एक छन्द का नाम है। संस्कृत में इसे पज्झटिका कहते हैं। यद्यपि अपभ्रंश का औरस छन्द दोहा कहा जाता है, किन्तु अपभ्रंश के प्रबन्धकाव्यों में स्वतन्त्र रूप से इसके दर्शन नहीं होते। पद्धड़िया छन्द अवश्य प्रायः सभी कथाकाव्यों में बन्ध रूप में मिलता है। इसकी प्राचीनता का उल्लेख भी मिलता है। महाकवि स्वयम्भू ने कहा है कि उन्होंने पद्धड़िया छन्द चतुर्मुख से ग्रहण किया जो छड्डणिया, दुवई और ध्रुवक से जड़ा हुआ है।[1] 'स्वयम्भूछन्द' में इसका विस्तृत उल्लेख मिलता है। वस्तुतः पद्धड़िया और घत्ता प्रयोग-शैली के छन्द हैं जो बन्ध-रचना के अनुरूप प्राकृत और अपभ्रंश-काव्यों में प्रयुक्त हुए हैं। पद्धड़िया में चतुर्मात्रगण तथा चारों पद समान होते हैं। कुल चौंसठ मात्राएँ

१. छड्डणिय दुवइ धुवएहिं जडिय, चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय। —हरिवंशपुराण १,२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हैं। पूर्वार्द्ध में या उत्तरार्द्ध में यमक होता है।[1] किन्तु प्राकृतपैंगलम् में यमक का उल्लेख न होकर प्रत्येक चरण के अन्त में जगण की रचना आवश्यक कही गई है। इसका उदाहरण है—

किं करसि खीणविहवप्पहाइ, णउ लहमि सोह सज्जण सहाइ।
अह णिद्धणु जणि सोहइ णु कोइ, घणु संपय विणु पुण्णहि ण होइ॥

यह पद्धड़िया छन्द है। इसमें चार चरण हैं। चारों में समान रूप से सोलह-सोलह मात्राएँ हैं। अन्त में जगण (मध्य गुरु) है।

आ० स्वयम्भू ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि प्रबन्ध-रचना की दृष्टि से कडवकों की बहुविध रचना होती है जिसमें पद्धड़िया, छड्डुणि, घत्ता आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता है। पद्धड़िया के प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं और वह दो यमकों से मिलकर बनता है। और प्रत्येक कडवक में आठ यमक होते हैं।[2] इस प्रकार कडवकों की रचना पद्धड़िया छन्द से, छड्डुणि से या अन्य किसी बड़े छन्द से होती है। परन्तु अधिकतर पद्धड़िया छन्द का ही प्रयोग मिलता है।

स्पष्टतया अपभ्रंश के कथाकाव्यों की रचना पद्धड़ियाबद्ध कडवकों की शैली में हुई है। साधारणतः एक कडवक में सोलह पंक्तियाँ देखी जाती हैं। परन्तु यह नियम नहीं है। प्रत्येक कडवक में घट-बढ़ पंक्तियाँ भी मिलती हैं। विषय के अनुरूप विभिन्न छन्दों से कडवक की संयोजना अपभ्रंश काव्य की निजी विशेषता है। और इस प्रकार कडवक बन्ध एक शैली मात्र है जो समान रूप से अपभ्रंश के पुराण, चरित, कथा तथा अन्य काव्यों में भी प्रयुक्त मिलती है।

इस प्रकार भारतवर्ष में ही नहीं अन्य देशों में भी मध्यकाल में पद्यबद्ध कथाएँ लिखी जाती रही हैं। मूलतः कथाएँ ही प्रत्येक देश की प्राचीनतम साहित्यिक अभिव्यक्ति हैं, जिनमें जीवन की आलोचना ही नहीं वरन् सामाजिक और सांस्कृतिक तत्त्वों की संयोजना भी होती रही है। और इतिहास की अपेक्षा कथाएँ ही हमारे लिए सबसे उपयोगी साधन रूप में विद्यमान हैं, जिनकी सहायता से हम किसी भी देश की मूल संस्कृति तथा सभ्यता का सरलता में वास्तविक पता लगा सकते हैं। अतएव कथा तथा कथाकाव्यों का महत्त्व किसी भी युग, राष्ट्र तथा परिस्थितियों की जानकारी के लिए अत्यन्त उपयोगी है। साहित्य और सामाजिक दृष्टि से उनका सदा महत्त्व बना रहा है और बना रहेगा।

---

१. प्राकृतपैंगलम्, १,१२५।
सोलहमत्तं पाआउलअं, छचक्कंसविरइअं संकुलअं।
तं चेअ चत्तारचउक्कलअं, तं जाणसु पद्धडिआधुइअं॥ स्वयम्भूछन्द, ८,१२९।
२. पद्धडिआ पुणु जे इ करेंति, ते सोडह मत्तउ पउ धरेंति।
विहिं पअहिं जमउ ते णिम्मअंति, कडवअ अट्ठहिं जमअहिं रअन्ति। वही, ८; १५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० रमाशंकर तिवारी

'कामायनी' की अतिलौकिक अन्तर्योजना

'कामायनी' की वस्तु-योजना में अतिमानवीय तथा अतिलौकिक तत्त्वों का इतना प्राचुर्य विद्यमान है कि उसका मानवीय मूल्य पर्याच्छन्न-सा बन गया है। यह कथन कुछ चौंकाने वाला तथा नास्तिकों-जैसा ध्वनित होता है, किन्तु स्वस्थ मन से विचार किया जाए तो इसकी सत्यता स्फटिकवत् प्रमाणित हो जाएगी। 'कामायनी' की प्रबन्ध-सृष्टि का एक छोर, आधार-भूमि है सर्वनाशी जल-विप्लव और दूसरा छोर, प्राप्तव्य-विन्दु है कैलाश-स्थित आनन्द-लोक। इस अथ और इति के मध्यवर्ती अन्तराल में मनु, श्रद्धा तथा इड़ा का मिलन-व्यापार प्रसरणशील रहा है। और, ये सभी किसी-न-किसी प्रकार मानवी रक्त की समशीतोष्णता से पूर्णतः प्रभावित नहीं हो सके हैं। कवि का अन्तिम आदर्श, अभेद-मूलक सामरस्य-धर्मा अखण्डानन्द की प्राप्ति, स्वतः इतना उदात्त एवं लोक-निरपेक्ष रहा है कि वह अतिलौकिक क्या, अलौकिक, पारलौकिक जैसा दिखाई पड़ता है। अतएव, बिलकुल स्वाभाविक रीति से, 'कामायनी' की अन्तर्योजना में अति-लौकिक तत्त्वों का आद्योपान्त संगुम्फन हो गया है, जिसके फलस्वरूप काव्य की परिणति से प्राप्त होने वाला अन्तिम रस इन्द्रजाल के आस्वाद का आधायक बन गया है।

(क)

अतिलौकिकता के वातावरण का प्रथम महत्त्वमय घटक तत्त्व है रहस्यवादी रंगों का नियोजन। काव्य का आरम्भ ही एक विस्मयकारी, अतीव सम्भ्रमपूर्ण ध्वनि से हुआ है। हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, शिला की छाँह में समासीन मनु आर्द्र नयनों से प्रलय-प्रवाह देख रहे हैं। नीचे जल-सन्दोह उमड़ रहा है, ऊपर हिमराशियों की पर्तें बिछी हुई हैं। एक तरल है, एक सघन है। कितु दोनों एक ही मूल तत्त्व के प्रकाश हैं, चाहे उसे जड़ कहा जाए, चाहे चेतन : "एक तत्त्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन।" असाधारण परिस्थितियों में साश्रुनयन मनु को एक केन्द्रीय तत्त्व का, जिसका अत्यन्त आदिम स्वरूप व्यक्त है, दर्शक बनाकर, प्रसादजी ने 'कामायनी' की मूलवर्ती ध्वनि को लौकिक की अपेक्षा अतिलौकिक, भौतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक किंवा दार्शनिक बना दिया है।

प्रलय का वर्णन अतिलौकिकता की सामान्य सीमा में परिगणित न हो, क्योंकि वह कवि का तत्काल उपपन्न अर्थ है। लेकिन, उसमें गुंफित बिम्ब साधारण भौतिक परिवेष्टन को अतिक्रान्त कर जाते हैं और उनमें रहस्यवादी गुंजन सुनाई पड़ने लगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पंचभूतों के भैरव-मिश्रण तथा शम्पाओं के शकल-निपात का कथन तो उपपन्न कहा जाएगा; लेकिन जब अमर शक्तियाँ उल्काओं की मशालें जलाकर, भूले प्रात खोज करती हैं, तब रहस्यवादी अतिलौकिकता से पूरा बिम्ब ओत-प्रोत हो जाता है

"उल्का लेकर अमर शक्तियाँ
खोज रही ज्यों खोया प्रात।"

अतएव, आरम्भ से ही पाठक सावधान हो जाता है कि काव्य की वस्तु-यो विशुद्ध लौकिक, इसीलिए विशुद्ध मानवीय धरातल को स्पर्श अथवा अंगीकार क नहीं समझी जानी चाहिए।

जल-प्रवाह के घट जाने के बाद जीवन का उन्मेष रहस्यवादी आवरण में हुआ है। ध्वस्तचेता मनु के भीतर अचानक प्रश्न उत्पन्न होता है, "कौन ?" तब उस प्रश्न की माया में विचित्र ढंग से उलझ जाते हैं। "हे अनन्त रमणीय ! तुम हो ? कैसे हो ? क्या हो ? हे विराट् ! हे विश्वदेव ! तुम कुछ हो, ऐसा भान है।" मनु की यह जिज्ञासा तथा उसके समाधान की यह चेष्टा और भी अतिलौ अतिप्राकृत बन जाती है जब वह परोक्ष सत्ता उनके कानों में यह गुंजार करने ल है, "मैं हूँ" और तब मनु भी यह कहते छटपटा उठते हैं, "मैं रहूँ शाश्वत न गानों में।"

मनु के भीतर जीवन की यह प्रेरणा रहस्य से उत्पन्न होती और गति बनती है, प्रकृति की व्यापक जीवन-चेष्टा के अंग-रूप में। "नित्य नये प्रश्न उप होते हैं। उनके अर्ध-प्रस्फुटित उत्तर मिलते हैं। समस्त प्रकृति कर्म-लीन बनी हुई जीवन आज अपना अस्तित्व बनाये रखने में व्यस्त है। मनु भी तपनिरत होकर करने लगे हैं और उस एकान्त नियति-शासन में विवश चलते जा रहे हैं।" प्रकृति नियति का यह गठबन्धन तथा मनु का विवश भाव से कर्म-लीन होना, वातावरण अपार्थिव रहस्य से जड़ित कर देता है।

रहस्यवादी यह अलौकिकता 'काम' सर्ग में अपना मोहक, विस्मयकारी वि ताने हुए है। मनु जगती के नीले आवरण से दुर्बोध नहीं बनने की प्रार्थना करते अणुपरमाणुओं के नृत्य-शिथिल निश्वासों की मोहमयी छाया से आकर्षित होते आकाश के आलोचक मूर्च्छित-से सोते दिखाई पड़ते हैं, 'सौन्दर्यमयी चंचल कृति रहस्य बनकर नाचती हुई उनकी आँखों को रोक लेती हैं; 'सुन्दरता के उस पर छिपे किसी 'अमूल्य धन' की प्रतीति से वे चंचल बन जाते हैं और वह कोमल दुर्भेद्य ही बनी रह जाती है।

मनु के हृदय में अनादि वासना के जागरण से लेकर उनका प्रायः स कार्य-कलाप रहस्यधर्मी अलौकिकता की गन्ध से अखिल रहा है। यह तथ्य का अतिलौकिक वातावरण को एक अन्तर्हित, अविच्छेद्य आधार-सा प्रदान किये हुए है

(ख)

अतिलौकिक अन्तर्योजना का दूसरा संघटक तत्त्व है स्वप्नों का संगुंफन। ने एक स्पष्ट स्वप्न में काम का सन्देश सुना है और एक अर्ध-स्वप्न में काम की अभि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी सुनी है। दूसरा स्वप्न कामायनी ने देखा है। पंडितों ने मनोविश्लेषणीय आधार पर इन स्वप्नों में अंवदमित वासनाओं की छाया का दर्शन किया है। किन्तु, तथ्य यह है कि ये स्वप्न, विचित्र ढंग से, प्रबन्ध की गठना के साथ उलझे हुए हैं और नायक-नायिका दोनों की जीवन-धारा को मोड़ने में सहयोगी सिद्ध हुए हैं। 'काम' सर्ग में मनु ने कल्पना-तरंगों पर चढ़कर, जीवन-रस के आकण्ठपान के व्यामोह का अनुभव किया है—

"पीता हूँ, हाँ मैं पीता हूँ,
यह स्पर्श-रूप-रस-गन्ध भरा"

और, स्वप्न में काम ने पहले ही यह चेतावनी दे दी है—

"प्यासा हूँ, मैं अब भी प्यासा
सन्तुष्ट ओघ से मैं न हुआ।"

देव-सृष्टि के विलास-परिणमित विनाश की चिन्ता मनु को सन्तापित कर रही थी। काम ने स्वप्न में मनु को पूरा इतिहास ही बता दिया कि कैसे वह देवों का सह-चर रहा, कैसे उसकी पत्नी रति सुर-बालाओं की रागमयी सखी रही और यदि मनु के प्राणों में,

"नव हो जगी अनादि वासना
मधुर प्राकृतिक भूख-समान,"

तो कैसे काम तथा रति भी भूख-प्यास से जाग उठे—

"हम भूख-प्यास से जाग उठे,
आकांक्षा - तृप्ति - समन्वय में,"

और कैसे वह सुख-मन्दिर सृष्टि विनष्ट हो गई—

"वे अमर रहे न विनोद रहा,
चेतनता रही, अनंग रहा।"

आप कदाचित् यह समझ लें कि काम के प्रस्तुत कथन में मनु के मनन-तत्त्व ही प्रतिध्वनित हुए हैं, इस आशंका को जैसे निरस्त करते हुए, काम ने स्वप्न में मनु को संयम तथा कर्म का उपदेश दिया है : "यह विश्व मनोहर कृतियों का नीड़ है, कर्म की रंगस्थली है। हम दोनों की वह सुन्दर भोली-भाली सन्तान, श्रद्धा, सृष्टि की मूल शक्ति प्रेम-कला का सन्देश सुनाने आई है। उसे पाने की इच्छा हो तो योग्य बनो।" मनु आँखें खोलकर पूछने भी लगे हैं, "हे देव ! उस ज्योतिमयी को प्राप्त करने का कौन-सा पथ है ?" मनु ने, किन्तु, काम के सन्देश का पालन नहीं किया।

यही काम एक बार पुनः अर्ध-स्वप्न-जैसी दशा में 'इड़ा' सर्ग के आरम्भ में मनु को चेतावनी देता दिखाई पड़ता है। मनु कामायनी का परित्याग कर, सारस्वत् प्रदेश पहुँच गए थे और देव-दानवों के संघर्ष एवं जीवनादर्शों पर सोच-विचार कर रहे थे। इसी अवस्था में काम की अपशकुनमयी वाणी उन्हें पुनः सुनाई पड़ती है, "मनु ! तुम श्रद्धा को भूल गए। तुमने पुरुषत्व-मोह में नारी की सत्ता का अपमान किया। उसने तो प्रणय से पूर्ण अपना सरल हृदय तुम्हें दान कर दिया, किन्तु तुमने सौन्दर्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलधि से केवल अपना गरल-पात्र ही भरा । अब तुम स्वतन्त्र बनना चाहते हो, अ
अलग तन्त्र स्थापित करना चाहते हो । तुम्हारा प्रजातन्त्र शापित बन जाय।" क
की शापमयी यह चेतावनी काव्य की कथ्य वस्तु से कितनी घनिष्ठतापूर्वक उलझी
है, सामान्य पाठक भी जानता है । काम की इस वाणी में मनु के अब तक किये कृ
की भर्त्सना और भविष्य में सम्पद्यमान कार्य-कलाप की अशुभ परिणतियों का
पूर्व-निर्देश सन्निविष्ट हुए हैं ।

'स्वप्न' सर्ग में कामायनी ने जो स्वप्न देखा है, उसी का विजृंभण अगले 'सं
सर्ग में परिलक्षित है । सारस्वत-सभ्यता का नवसंघटन, सुख-वैभव के साधनों
एकत्रीकरण, इड़ा का बलात् आलिंगन, प्रजा का विद्रोह इत्यादि समस्त प्रमुख त
का सन्निवेश कामायनी के स्वप्न में हो गया है, और इस स्वप्न से भयभीत का
यनी मनु की खोज में निकल गई है । यहाँ श्रद्धा की अवदमित वासना की प्रतिच्छा
देखना काव्य की मूल-ध्वनि को झुठला देना है ।

इन सभी स्वप्नों की योजना इस सामान्य भारतीय विश्वास को आधार मा
कर की गई है कि स्वप्न दिव्य संकेत हैं, जिनमें अतीत की पुनरावृत्ति के साथ, वर्तम
एवं भविष्य के तथ्यों का संकेत भी रहता है । 'कामायनी' के वस्तु-विन्यास के स
इन स्वप्नों का आवयविक (organic) सम्बन्ध हैं ।

(ग)

अतिलौकिकता का तीसरा प्रसंग 'संघर्ष' सर्ग में वहाँ नियोजित है जहाँ
विद्रोही सारस्वत-प्रजा के दमन-हेतु अपना भीषण अस्त्र सँभालते हैं । कवि ने कहा
कि मनु के अन्यायपूर्ण आचरण के प्रतिशोध-रूप में देव-शक्तियाँ भी क्रुद्ध हो गईं
अपनी पूँछ में प्रलयंकर ज्वाला समेटे, रुद्र का भयंकर नाराच छूट पड़ा तथा अन्त
में महाशक्ति रोष से हुंकार उठी, जिसका सम्मिलित परिणाम रहा, मनु का घा
होकर भूमि पर मुमूर्षु गिर पड़ना—

"धूमकेतु-सा चला रुद्र-नाराच भयंकर,
लिये पूँछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर ।
अन्तरिक्ष में महाशक्ति हुंकार कर उठी,
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं ।
और गिरीं मनु पर, मुमूर्षु थे गिरे वहीं पर;
रक्त-नदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर ।"

मनु ने संयम भंग किया है, अतएव उन्हें दण्ड देने के लिए विक्षुब्ध प्र
जन के साथ देव-शक्तियों ने भी सहयोग किया है । कवि की पौराणिक आस्था आ
निक बुद्धिवादी दृष्टिभंगी के मेल में नहीं पड़ती, लेकिन उसे स्वयं इसमें कोई असंग
पूर्ण तत्त्व नहीं दिखाई पड़ता । जब संसार की मर्यादा टूटने पर होती है, तब अ
किक किंवा पारलौकिक शक्तियाँ जो देव-रूप में सृष्टि-चक्र का नियमन करती हैं,
कुपित हो जाती हैं और अपराधी को दण्ड देती हैं—इस सामान्य विश्वास का बेहि
उपयोग कवि ने किया है । इस सम्बन्ध में मैं यह कह दूँ कि काव्य के निजी वाताव

में दे
पूर्ण
कि
ओत

ज्यो
संयो
काव
विद्व

रमण
जाग
मौग
के
का
का
रहस
चय

१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में देव-शक्तियों के नियोजन का यह तथ्य तनिक भी असंगत नहीं है, अपितु इसे कला-पूर्ण भी कहा जा सकता है; लेकिन, इससे हमारे इस विवक्ष्यार्थ की पुष्टि ही होती है कि प्रसादजी ने अपने काव्य-रत्न की इन्द्रजाली चकमक को अतिप्राकृत दीप्तियों से ओतप्रोत कर दिया है।

(घ)

'कामायनी' की अतिलौकिक अन्तर्योजना में एक अन्य महत्त्वमय सूत्र है रजनी, ज्योत्स्नाप्लावित विभावरी का उपयोग। बात साधारण-सी जान पड़ती है, किन्तु इसे संयोग-दान नहीं समझना चाहिए। प्रसादजी ने मायावी रजनी के ताने-बाने से अपने काव्य-संसार को एक निश्चित आयाम, एक निश्चित स्वभाव प्रदान किया है जो विद्वानों की दृष्टि से अद्यापि सर्वथा ओझल रहा है।

मनु की अलस चेतना की आँखें अन्तरिक्ष में हिल्लोलित चन्द्रिका-उदधि के रमणीय दृश्य में खुलती हैं और उनके अन्तस में मधुर भूख के समान अनादि वासना जाग पड़ती है। अंचलों के अचानक छूट पड़ने से मोहक मणिराजी बिखेरने वाली मौग्ध्य-मण्डित रजनी को देख, मनु की छाती के दाग हरे हो उठते हैं। श्रद्धा रजनी के पिछले पहरों में विचार-मग्न मनु के समीप आती है और उन्हें मंगल-मण्डित काम का उपदेश देती है।[1] 'काम' सर्ग में रजनी के पिछले पहरों में काम ने मनु को संयम का उपदेश दिया है और ज्योत्स्नाप्लावित रजनी की माया में ही मनु का अपना रहस्यात्मक चिन्तन, जिसकी पृष्ठभूमि के रूप में श्रद्धा के दर्शन तथा प्राथमिक परिचय से अनुप्रेरित हो, अतीत के यौवन-सुलभ सुख-विलासों का उन्होंने मानसिक पारा-

---

१. श्रद्धा रात में ही मनु के समीप आई है। वह ललितकलाओं के अभ्यास की लालसा से अनुप्राणित हो, 'हृदय-सत्ता का सत्य' खोजने निकली थी। चाँदनी रात इस खोज के लिए सदा उपयुक्त होगी। 'काम' सर्ग के प्रथम छन्द में मनु मधुमय वसंत के 'रजनी के पिछले पहरों' में आने का कथन करते हैं। 'रजनी के पिछले पहरों' की व्याख्या पण्डितों ने 'किशोरावस्था की पूर्णता', 'पतझर की रजनी के पिछले पहरों', 'रात की अन्तिम वेला में काम-वृत्ति के जगने' इत्यादि के गूढ़ अर्थों में की है। किन्तु, ये सभी दूरारूढ़ कल्पनाएँ हैं। सम्बद्ध पंक्तियाँ यों हैं—

"मधुमय वसंत जीवन-बन के,
वह अन्तरिक्ष की लहरों में,
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों में।"

(काम)

यहाँ कवि का उपपन्न अर्थ वाच्यार्थ ही है, और वह है श्रद्धा का रात के पिछले पहरों में, हृदय-सत्ता का सत्य खोजते, मनु के समीप चुपके से पहुँचना। 'साहचर्य' के नियम से, मनु, श्रद्धा के विषय में सोचते हुए, अतीत की सुखमय स्मृतियों में उलझ गए हैं।

श्रद्धा दिन में हृदय-सत्य की खोज में निकल ही नहीं सकती थी। इड़ा वह नारी है जो दिन के सजग प्रखर प्रकाश की अभिलाषिणी है। इसीलिए वह प्रत्यूष-वेला में मनु के निकट आई, यद्यपि प्रसादजी ने इड़ा के भी सम्पूर्ण कर्म-प्रसार की परिणति, अन्तिम सर्ग में, चाँदनी रात की लुभावनी माया में ही दिखाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रण किया है, चला है। 'वासना' सर्ग में कथा के सूत्र संध्या तथा रागरंजित चन्द्रिका की छाया में ही आगे बढ़े हैं। 'दरिद्रमिलन' वाली संध्या-वेला में श्रद्धा अपने पशु पर प्यार प्रदर्शित करती है, जिसके प्रतिक्रिया-स्वरूप मनु ईर्ष्या से दीप्त हो उठे हैं और थोड़ी देर बाद कामायनी के कोमल कर-स्पर्श से शान्त होकर लुभावनी चाँदनी रात में 'विश्व-रानी', 'सुन्दरी नारी' को अपनी चेतना का दान समर्पण करते हैं तथा कामायनी 'मधुर व्रीड़ा-मिश्र चिन्ता' के साथ पुलकित मनोदशा में वह समर्पण स्वीकार करती है। 'कर्म' सर्ग में मनु के पशु-यज्ञ की विषण्ण प्रतिक्रिया के रूप में कामायनी ने चन्द्रिका-चर्चित रजनी के परिप्रेक्ष्य में अपनी प्रणय-वेदना का कथन किया है और अन्ततः उत्तेजक सोमरस का पान भी किया है। इसी स्थल से उसके जीवन की धारा में महत्त्व का मोड़ प्रवर्तित हुआ है। ईर्ष्या सर्ग में कथा की जो प्रगति हुई है—रागमयी संध्या के अवतरण पर मनु का मृगया से लौटना, कामायनी द्वारा उनके असाधारण मृगया-व्यसन का मधुर-मार्मिक प्रतिवाद, मनु द्वारा चिर-मुक्त पुरुष की स्वच्छन्द प्रकृति का निरूपण तथा श्रद्धा से उसके 'दुलार' की माँग करना और भावी शिशु के सुख-हेतु सम्पादित साज-सज्जा पर ईर्ष्याभिभूत हो, उसे छोड़कर चले जाना—वह सभी रजनी की मायक छाया में ही घटित हुई है।

'इड़ा' सर्ग से अन्तर्मुख मनु की जीवन-धारा में एक नवीन मोड़ प्रवर्तित हुआ है। उन्होंने सारस्वत-सभ्यता की नवरचना कर, प्रजापतित्व की प्रतिष्ठा अर्जित की है। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि प्राची में अरुण राग के प्रस्फुटित होने की वेला में, इड़ा मनु के सामने प्रकट होती है और उन्हें बुद्धि-संगत रीति से कर्मलीन होने का उद्बोधन प्रदान करती है: 'हँस पड़ी उषा प्राची-नभ में, देखे नर अपना राज्य-काज।' कर्म-पथ में प्रवृत्त होने के संकल्प के लिए अरुणोदय कदाचित् अधिक उपयुक्त मुहूर्त है, क्योंकि कर्म का विस्तार दिन के विस्तार का ही आकांक्षी होगा। किन्तु, इस संकल्प की पृष्ठभूमि में यहाँ भी काम की शापमयी वाणी मनु को रात में ही सुनाई पड़ी है। बाद के सर्गों में रात, और प्रायः चाँदनी रात का ही सर्वोपरि महत्त्व दृष्टिगोचर होता है। श्रद्धा का पूरा स्वप्न रात की माया से प्रेरित है। 'संघर्ष' के बाद 'निर्वेद' सर्ग में, कामायनी अपने 'रूठे प्रवासी' की खोज करती हुई, 'निस्तब्ध निशा' में इड़ा के निकट पहुँचती है तथा घायल मनु के दर्शन करती है। मनु पुनः रात में ही शान्ति के संधान में कामायनी तथा कुमार को छोड़ चले जाते हैं। 'दर्शन' सर्ग में भी ज्योत्स्नाप्लावित विभावरी का मधुमय आलोक आद्योपान्त प्रसरणशील है। सरस्वती के निर्जन पुलिन पर स्थित एक लतावेष्टित गुहा में घायल मनु को चाँदनी रात में श्रद्धा पुनः प्राप्त करती है और नटराज का आकर्षक, विस्मयकारी वह माया-नृत्य भी मनु द्वारा चन्द्रिका की मनोहर छटाओं के मध्य ही देखा जाता है। 'रहस्य' सर्ग में मनु को 'त्रिदिक् विश्व' के दर्शन भी संध्या के समय ही मिले हैं: "दिवा-रात्रि के संधि-काल में ये सब कोई नहीं व्यस्त थे।" किंबहुना, 'आनन्द' सर्ग की वह आनन्दमयी घटना भी संध्या तथा चाँदनी रात के मधुमय इन्द्रजाली आलोक में ही घटित हुई है। सारस्वत-वासियों का जुलूस जब कैलाश-स्थित मानसरोवर तीर्थ के समीप पहुँचता है, तब "दिनकर गिरि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे अब, हिमकर था चढ़ा गगन में।" और, जब वे लोग मनु-श्रद्धा के पावन दर्शनों से पुलकित होते हैं, तब तो 'ज्योत्स्ना का जलनिधि' अन्तरिक्ष में हिल्लोलित हो उठा है, और जिस 'चेतनता' के विलास की ध्वनि से काव्य का रहस्यमय संगीत समाप्त हुआ है, वह भी ज्योत्स्ना का ही सहधर्मा है—

"रश्मियाँ बनी अप्सरियाँ
अन्तरिक्ष में नचती थीं;
परिमल का कन-कन लेकर
निज रंगमंच रचती थीं।
× × × ×
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।"

अतएव, यह आसानी से देखा जा सकता है कि सम्पूर्ण काव्य की योजना में सन्ध्या, रात्रि, निस्तब्ध रात्रि तथा चन्द्रिका-चर्चित रात्रि को अद्वितीय महत्त्व मिला है। जैसा हमने आरम्भ में निवेदन किया है, इसे संयोग का अवदान नहीं समझना चाहिए। प्रसादजी ने जान-बूझकर, अपने काव्य की 'स्पिरिट' का निर्माण करने के निमित्त, सन्ध्या तथा रजनी का लगभग प्रत्येक सन्दर्भ में कुशल विनियोग किया है। 'कामायनी' की स्पिरिट मूलतः ज्योत्स्नामयी विभावरी की स्पिरिट है, जिसमें मनोहर इन्द्रजाली लालसाएँ, प्राणों को बिछला देने वाली वासनाएँ, हृदय को तोड़ने वाले सपने, स्निग्ध-सुकुमार एवं ललित-गलित कल्पनाएँ स्वच्छन्द भाव से आती और विलीन हो जाती हैं। प्रकृत कर्म का जो समारम्भ प्राची के अरुण-राग से हुआ था, उसकी दुर्दान्ति, दयनीय परिणति अर्थ-गर्भा समझी जानी चाहिए।

(ङ)

काव्य का पर्यवसान उसकी अलौकिक अन्तर्योजना का सबसे महत्त्वपूर्ण संघटक तत्त्व है। शान्ति की खोज में कामायनी के साथ चलते हुए मनु, निर्निमेष, अनन्त शून्य में झाँकने लगते हैं और तभी उन्हें मंगल-चेतन आलोक-पुरुष के पावन दर्शन मिले जो केवल 'प्रकाश का कल्लोल' था, 'सत्ता का स्पन्दन' था—

"सत्ता का स्पन्दन चला डोल,
आवरण-पटल की ग्रन्थि खोल;
तम-जलनिधि का बन मधु-मन्थन,
ज्योत्स्ना-सरिता का आलिंगन;
वह रजत-गौर, उज्ज्वल जीवन,
आलोक-पुरुष! मंगल-चेतन!
केवल प्रकाश का था कलोल,
मधु-किरनों की थी लहर लोल।"

इस आलोक-पुरुष के ताण्डव-नृत्य का भी भौतिक साक्षात्कार मनु को हुआ। उन्होंने देखा, कैसे नृत्य के प्रभाव से दिगन्त हिल्लोलित हो रहे हैं, कैसे सूर्य-चन्द्रादि पिण्डों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रचना हो रही है, कैसे पहाड़ धूलि-कण के समान उड़ रहे हैं, कैसे असंख्य ब्रह्माण्ड इतस्ततः बिखर रहे हैं, कैसे गणनातीत चेतन परमाणु बिखरते, बनते, बिलीन होते जा रहे हैं—

"अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित,
थी शून्य-भेदिनी सत्ता चित्;
नटराज स्वयं थे नृत्य-निरत,
था अन्तरिक्ष प्रहसित मुखरित;
स्वर लय होकर दे रहे ताल,
थे लुप्त हो रहे दिशा-काल।
× × × ×
बिखरे असंख्य ब्रह्माण्ड गोल,
युग त्याग ग्रहण कर रहे तोल;
× × × ×
यह विश्व झूलता महादोल,
परिवर्तन का पट रहा खोल।"

मनु विस्मय-विमुग्ध हो उठते हैं तथा चिल्ला पड़ते हैं—

"यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल,
उन चरणों तक दे निज संबल;" इत्यादि।

कवि का जो भी, जैसा भी विश्वास रहा हो, सबसे विस्मयकारक उसका आत्म-विश्वास है, जिसके साथ उसने शंकर के नृत्य का इतना सूक्ष्म, स्थूल एवं चाक्षुष बिम्ब अंकित किया है, और यह विश्वास भी कि पाठक उसके चित्रांकनों का रसास्वादन पूर्ण आस्तिक-बुद्धि से करेंगे। कवि की प्रस्तुत पौराणिक आस्था और उसका अमोघ आत्मविश्वास, जिसके साथ उसने इस आस्था को सम्प्रेषणीय बनाने का प्रयास किया है, दोनों काव्य को पारलौकिक व्यंजना से पूर्ण कर देते हैं।

'रहस्य' सर्ग में वस्तु-योजना समस्त भौतिक एवं लौकिक परिवेष्टनों से प्रायः मुक्त हो गई है। त्रिदिक् विश्व के तीन प्रकाश-बिन्दुओं को देखकर, मनु विस्मय-चकित हो जाते हैं और उन्हें भासित होता है जैसे वह किसी इन्द्रजाली माया-लोक में पहुँच गए हैं।

"मैं किस लोक बीच पहुँचा, इस
इन्द्रजाल से मुझे बचाओ।"

यहाँ यह स्मरणीय है कि मनु थोड़ी ही देर पूर्व, पिछले सर्ग में, शंकर का मनोमुग्धकारी नृत्य देखकर, श्रद्धा से प्रार्थना कर चुके हैं कि वह उन्हें पावन-चरणों तक पहुँचाए। और जब वे त्रिपुर के दर्शन करते हैं, तब उनकी यह पूर्व मनोदशा बदली दीखती है और वे उस 'इन्द्रजाल' से बचना चाहते हैं। दार्शनिक दृष्टि से, मनु के शांभव-स्थिति तक पहुँचने की मध्यवर्ती सरणि के रूप में चाहे जो व्याख्या इस असंगतिपूर्ण अनुरोध के लिए प्रस्तुत की जाए, इतना निश्चित है कि प्रसादजी ने एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रजाल की अवतारणा की, इस तथ्य-निरूपण के निमित्त कि मानव-संसार में इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान के व्यापार एक-दूसरे से पृथक्-पृथक् चल रहे हैं जो मनुष्य की विपत्ति के लिए उत्तरदायी हैं। यह इन्द्रजाल अपनी चरम सीमा को प्राप्त हो गया है जब श्रद्धा मुसकरा देती है और उसकी मुसकान की किरणों से 'महाज्योति' की एक रेखा फूटकर, उन तीनों लोकों को परस्पर संयुक्त कर देती है, सकल विश्व में शृंग तथा डमरू का निनाद गूँज उठता है तथा उस दिव्य अनाहत संगीत में श्रद्धा-समेत मनु तन्मय हो उठते हैं। पूरा वातावरण यहाँ अतिलौकिक, पारलौकिक बन गया है। इस अभीष्ट के प्रतिपादनार्थ कि इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान के समरसीभवन से ही अखंड शान्ति से ओतप्रोत पूर्णानन्द की उपलब्धि हो सकती है, कवि ने, अपने ढंग से तथा काव्य में आरम्भ से ही उत्पन्न वातावरण की अनुकूलता में, मनोरम प्रयत्न किया है। लेकिन, इस साध्य-साधन में सम्पूर्ण वातावरण पौराणिक बन गया है। सावधान पाठक के लिए अपनी स्वाभाविक प्रश्न-वृत्ति को दबाकर, कवि की प्रस्तुत परिणति को मौन-भाव से स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं मिलता। श्रद्धा को हम विशुद्ध मांसल आकर्षण से युक्त देख चुके हैं, उसे लज्जा के साथ सुकुमार संघर्ष में संलीन देख चुके हैं, अपनी सम्पूर्ण संयम-शालीनता के बावजूद नारी-लभ्य दुर्बलता के सामने परास्त होते उसे देख चुके हैं; और जब अन्त में यह पाते हैं कि श्रद्धा दिव्य इन्द्रजाली प्रतिभा से समन्वित वह देवदूत है जो अपनी भौतिक मुसकान से अन्तरिक्ष के वायवीय ऊर्ध्व धरातलों पर अवस्थित अभौतिक त्रिदिक् विश्व को समस्त बना देती है, तब लगता है, हम सहसा किसी अपार्थिव, पौराणिक संसार में चले गये हैं जहाँ आश्वस्त होने के लिए श्रद्धा के अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है, सरल-सहज विश्वास के अतिरिक्त कोई अन्य सहारा नहीं है। इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया के एकीकरण एवं सामरस्य वाले आदर्श से हमें कोई तात्त्विक असहमति नहीं है। किन्तु, इस आदर्श की सिद्धि के निमित्त जो अलौकिक, अतिप्राकृत सूत्र परस्पर अनुस्यूत किये गए हैं, वे निश्चिततया हमें पुराणों की दुनिया में स्थानान्तरित कर देते हैं जहाँ सम्भव-असम्भव के बीच कोई विभाजन-रेखा नहीं और जहाँ पार्थिव-अपार्थिव, लौकिक-अलौकिक सभी अनमेल तत्त्व बेहिचक मिलते तथा मिश्रित होते हैं।

'आनन्द' सर्ग की परिणति में तो पौराणिक, अतिप्राकृत एवं अतिलौकिक रंगों एवं छटाओं का मोहक वितान तन गया है। सारस्वत-प्रजा के सदस्य, इड़ा के निर्देशन में, मनु-पुत्र मानव के साथ, सोमलता से आवृत 'धर्म-प्रतिनिधि' धवल वृषभ की पुण्य छाया में कैलाश की यात्रा करते हैं और संसृति की सेवा में लीन उस 'द्युतिमय देव-द्वन्द्व' के पावन दर्शन करते तथा प्रणति में झुक जाते हैं। मनु और कामायनी आनन्द-लीन हो, चिर-मिलित 'पुरुष-प्रकृति' बन गए हैं, उनके-जैसे दिखाई नहीं पड़ रहे हैं, क्योंकि विद्वानों ने बताया है कि मनु शांभव-स्थिति में पहुँचकर 'सदाशिव' बन गए हैं—

"चिर-मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निज-शक्ति-तरंगायित था
आनन्द-अम्बुनिधि शोभन।"

और, फिर किसी अन्य इन्द्रजाली रसायन के प्रभाव में, मनु वीतराग योगी की भाँति लौकिक चेतना से पूर्ण हो, अभेदवाद तथा 'विश्वनीड़वाद' का उदात्त उपदेश भी देते हैं—

"सब भेदभाव भुलवा कर
दुख-सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे! 'यह मैं हूँ,'
यह विश्व नीड़ बन जाता।"

सारस्वत-वासियों के जुलूस का जिस सूक्ष्म विवरण के साथ, जिस शैली में, वर्णन किया गया हैं, उसे पढ़कर लगता है जैसे हम काव्य नहीं, किसी पौराणिक गाथा का पारायण कर रहे हैं। इसी प्रकार, मानसरोवर तीर्थ में मनु तथा श्रद्धा की महिमा का वर्णन पौराणिक आस्वाद से सौरभित है। प्रसादजी की कल्पना प्रस्तुत काव्य में, काव्यात्मक होते हुए भी, पौराणिक बन गई है। विद्वानों ने बताया है कि काव्य की कल्पना सत्य का आभास रखती हुई भी झूठी ही बनी रह जाती है, किन्तु पुराण की कल्पना मिथ्या को भी सत्य का स्वरूप प्रदान करती है। प्रसादजी ने 'कामायनी' में ऐसी ही कुशल प्रतिभा का विनियोग किया है और मिथ्या को ऐसे कलात्मक कौशल एवं सहज विश्वास के साथ चित्रित किया है कि वह सत्य का स्वरूप ग्रहण करता-सा प्रतिभात होता है। उन्होंने 'सारस्वतवर्त्म' का अनुसरण कर पुराण की सृष्टि की है, जिसमें जीवन की समस्या को सनातनता के स्तर पर प्रतिष्ठित किया गया है और सामयिक प्रश्नों का भी सनातन निदान सुझाया गया है।

(च)

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष निकलते हैं—

'कामायनी' का वातावरण आद्योपान्त अतिप्राकृत, अतिलौकिक है। उसमें रहस्यमयी शक्तियाँ कार्यशील हैं: रहस्य-सत्ता है जिसका प्रकाश व्यक्त विश्व में विच्छुरित हुआ है; देव-शक्तियाँ हैं जो मनुष्य को संयम तथा शालीनता का पाठ पढ़ाती हैं और नैतिक विच्युतियों के लिए उसे उचित दण्ड देती हैं; काम एक अदृश्य किन्तु शक्तिशाली देवता है जो विचित्र ढंग से मनुष्य को अपनी माया में फँसाता है और साथ ही, संयम-विहीन आचरण के विरुद्ध चेतावनी भी देता है; स्वप्न भी हैं जो अतीत, वर्तमान तथा भविष्य के परदे एक साथ उठाते हैं और मनुष्य को सही मार्ग-दर्शन देने की चेष्टा करते हैं; और सबसे बढ़कर, कैलाश-तीर्थ मानसरोवर है जहाँ गौरी-शंकर चिर-मिलित प्रकृति-पुरुष के रूप में लोकों तथा ब्रह्मांडों का निर्माण एवं विनाश किया करते हैं और जहाँ मनुष्य शांभव स्थिति को अधिगम्य करता तथा पुनः स्वेच्छा से वीतराग संन्यासी के समान सत्कर्म का उपदेश देता है। इस अलौकिक काव्य-संसार की स्पिरिट मूलतः 'रजनी-रानी' की स्पिरिट है जिसमें मधुर कल्पनाएँ हृदय तोड़ने वाली घटनाओं को भी एक मोहक ममत्व से आर्द्र बना देती हैं। जीवन को देखने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परखने की स्पिरिट मुख्यतया चाँदनी रात की स्पिरिट है जो अलस चेतना की आँखें खोलती है, जो जीवन-भोग की ललित लालसा को रहस्य-भाव से जगाती एवं उपलालित करती है, जो सब प्रकार के अवरोधों तथा बाधाओं से बच निकलने के लिए पलायन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है और जो जीवन के चरम साध्य आनन्द की महिमा को भी अपनी लुभावनी माया में निमज्जित कर देती है। यह स्मर्तव्य है कि अखंड चेतना के समरसतापूर्ण विलास का आनन्द भी यहाँ ज्योत्स्ना की मधुर परिणतियों में आस्नात चित्रित है। प्राची के रागारुण आलोक में मनु का इड़ा से परिचय हुआ, और वह शुभ नहीं रहा क्योंकि बुद्धि के प्रखर प्रकाश में नवसंघटित सारस्वत-सभ्यता स्वयं 'प्रजापति' के लिए ही अत्यन्त घातक सिद्ध हुई।

प्रसादजी की प्रतिभा 'कामायनी' में मूलत: पुराण-निर्मात्री बनकर प्रकाशित हुई है। हिमगिरि के उत्तुंग शिखर से नीचे समतल प्रदेश में उतारकर, मननशील मनु को पुन: वहीं कैलाश-तीर्थ में पहुँचा दिया गया है और इस प्रकार, मानसरोवर की पौराणिक महिमा का वर्तमान युग में नवस्थापन सम्पन्न हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सलाम मछली शहरी

एक महान् अमरीकी कवि राबर्ट फ्रास्ट

अमरीकी कवि (राबर्ट फ्रास्ट) से हम अभी हाल ही में बड़ा प्रेम करने लगे हैं। इस प्रेम का प्रादुर्भाव स्वाभाविक ही है। हमारे प्रिय नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू ने मृत्यु से कुछ दिन पूर्व उसकी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ पैड के कागज़ पर लिखकर अपने कमरे की एक छोटी-सी मेज़ पर रख दी थीं। स्मृति-स्वरूप प्राप्त हुई यह फ्रास्ट की कविता "Stopping by Woods on a Snowy Evening" का एक पद्यांश है।

इसका भावार्थ यह है :

"सुहाने घनेरे, अँधेरे हैं जंगल
मगर मुझको आराम करना नहीं है"
कि मैंने किसी से यह वायदा किया है, अभी तो बहुत दूर जाना है मुझको।
"अभी तो बहुत दूर जाना है मुझको।"

औरों का तो मुझे पता नहीं, परन्तु यह पढ़ने के बाद मेरे हृदय में यह इच्छा अवश्य उत्पन्न हुई कि तनिक उस कवि के बारे में कुछ और जानकारी प्राप्त करूँ। इस कवि के सम्बन्ध में जितना जान सका हूँ उसका संक्षिप्त विवरण यह है—

जन्म तिथि······२६ मार्च १८७४ ई०।
स्थान······सैन फ्रांसिसको।
पिता का नाम······विलियम प्रेस कोट फ्रास्ट।
माता······(एक स्काट स्त्री थी)।

इनके पिता विलियम को राजनीति तथा कला से बड़ा प्रेम था। वे बहुत ही अस्थिर विचारों के व्यक्ति थे, जिसका कारण था नियमित और अधिक मदिरापान।

माता अजबील एक सुशिक्षित महिला थी और एक विद्यालय में अध्यापन-कार्य करती थी। उसे पारिवारिक कार्यों की अपेक्षा कविता से अधिक प्रेम था और वह भी 'रूमानी' कविता से।

दस वर्ष की आयु तक फ्रास्ट के जीवन में कोई अद्भुत लक्षण प्रगट नहीं हुए, परन्तु आवारा-प्रकृति युवकों की संगति ने उसमें बुरी आदतों के बीजारोपण कर दिए थे, जिसका यदा-कदा परिणाम भी भुगतना पड़ता था।

१८८५ में विलियम का स्वर्गवास हो गया। उसकी अन्तिम इच्छा यह थी कि उसका अपने देश 'न्यूइंग्लैंड' में अन्तिम संस्कार किया जाए। उस इच्छा की पूर्ति को वास्तविक रूप दिया गया, परन्तु उसकी सम्पन्नता के लिए माता के पास पर्याप्त धन नहीं था। इस कारण दो बच्चों और एक उनकी विधवा माता को पुनः केलि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फोर्निया आना भाग्य में नहीं बदा था। माता अजवेला 'हेम्प शायर' में एक बाल-विद्यालय में अध्यापन का कार्य करने लगी। यहीं 'फ्रास्ट' की शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। घर की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए उसे मेहनत-मजदूरी भी करनी पड़ी थी। १८८८ में उसने 'लारेंस हाई स्कूल' से 'मैट्रीक्यूलेशन' पास कर लिया।

एक दिन जबकि वह 'मेक्सिको की विजय' के बारे में एक पाठ पढ़ रहा था तभी उसके मस्तिष्क में एक 'बैलेड' लम्बी कविता लिखने का विचार जागृत हो उठा। यह उसकी प्रारम्भिक कविता थी जो उसी स्कूल की 'पत्रिका' में प्रकाशित हुई।

इसी विद्यार्थी-जीवन के प्रवाह में उसे लातीनी भाषा के काव्य-ग्रन्थों को पढ़ने का अवसर मिला। वह धीरे-धीरे 'रोमांसप्रिय' होता गया, जिससे उसकी रुचि दिनों-दिन बढ़ती गई और अन्त में एक लड़की (एलजिमेरम) से प्रारम्भ में प्रेम, फिर अन्त में विवाह कर लिया। इसके बाद वह विशेष अध्ययन के लिए 'डार्ट माउथ' चला गया, लेकिन अध्ययन से अब उसका प्रेम समाप्त हो गया।

वह जल्दी ही वापस आ गया और अपनी माँ के ही स्कूल में पढ़ाने लगा। परन्तु उसका वह नटखटपन, जो उसे सम्भवतः पिता से धरोहर में मिला था, समाप्त नहीं हुआ। माता का स्कूल छोड़कर वह अब 'लारेंस' के एक दूसरे विद्यालय में नौकर हो गया। १८९४ में उसने एक कविता 'मेरी तितली' रची, यह उसकी पहली कविता थी और एक लोकप्रिय मेगज़ीन 'इन्डिपेंडेन्ट' में प्रकाशित हुई। इस प्रेस की नौकरी के बीच उसने अपनी छः कविताओं का एक संग्रह भी तैयार कर लिया जो प्रकाशित हुआ। इसका नाम था Twilight, लेकिन उस पुस्तिका के केवल दो ही परिच्छेद थे। एक उसकी प्रियतमा के लिए और एक स्वयं उसके लिए। यह लड़की 'सेंट-लारेंस' में अध्ययन करती थी और यहीं १८९५ में अध्ययन समाप्त करके 'फ्रास्ट' की पत्नी बनी। परन्तु एलिज़ ने प्रारम्भ में उसकी कविताओं की इस भेंट पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इसलिए कवि को महान् दुःख हुआ और वह हताश होकर कहीं बाहर चला गया। कुछ समय पश्चात् वापस आकर एक अखबार का 'सम्पादक' बन गया। अब उसकी आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी हो रही थी। परन्तु अचानक फिर उसके मन में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की चाह जाग उठी और वह 'हारवर्ड' चला गया। परन्तु कठिन रोग के कारण उसे लौटने पर बाध्य होना पड़ा। इस बार उसने अपनी दरिद्रता दूर करने के लिए एक 'पोलट्रीफार्म' स्थापित किया। किन्तु इस काम से भी जल्द ही उकता गया और हरी साग-सब्ज़ियों की खेती करने लगा। भाग्य तनिक चमका तो यहीं अंग्रेज़ी पढ़ाने की एक नौकरी मिल गई, लेकिन इस नौकरी से भी वह बहुत जल्दी घबरा गया। इस मोड़ पर वह दरिद्रता की परवाह किए बिना किसी ऐसे अज्ञात स्थान पर जाना चाहता था जहाँ पर स्वतन्त्र रहकर केवल कविता ही कविता कर सके। अन्त में १९१२ में अपने पुत्र-पुत्रियों तथा पत्नियों समेत उसे इंग्लैंड आना पड़ा और यहीं किराए पर एक मकान लेकर वह काव्य-रचना में लीन हो गया। जीवन के साथ कला का यह टकराव अधिक सफल रहा। १९१३ में एक प्रकाशक डिविड्ट ने उसकी कविताओं का पहला संग्रह प्रकाशित किया। इस संग्रह

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेर 'इज़रा पाउण्ड' और दूसरे आलोचकों ने बहुत अच्छी आलोचनाएँ लिखीं। फिर शीघ्र ही उसी प्रकाशक ने उसका दूसरा कविता संग्रह 'North of Boston' प्रकाशित कराया। यहीं से उसकी प्रसिद्धि का श्रीगणेश हुआ। १६१४ में जब संहार का सबसे बड़ा विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ तो योरुप में साहित्य और काव्य का जीवन शान्त हो गया। 'फ्रास्ट' फिर अमरीका वापस आ गया। इस बार उसने एक छोटा-सा फ़ॉर्म खरीदकर किसान का जीवन प्रारम्भ कर दिया। वह अपनी समस्त आयु कविताओं से जोड़ देना चाहता था, परन्तु उसकी यह इच्छा अन्त तक पूरी न हो सकी। इसके दो बड़े मुख्य कारण थे। एक यह कि उसका जीवन बड़ा अस्तव्यस्त और अशान्त था। वह मनुष्यता से प्यार करता था। और दूसरा कारण उसकी अपनी आर्थिक परिस्थितियाँ थीं। परन्तु उसको व्याख्यान देने और अपनी कविताओं का पाठ करने के लिए निमन्त्रण बराबर प्राप्त होते रहते थे। फलस्वरूप उसे कला के प्रति सान्त्वना मिलती रही। १६१४ में उसने 'Mountain Interval' के नाम से अपनी कविताओं का तीसरा संग्रह छपवाया और इसी वर्ष 'नेशनल इस्टीट्यूट ऑफ़ आर्ट्स एण्ड लेटर्स' का सदस्य बन गया। साथ ही 'एमहर्स्ट कालिज' ने उसे प्रोफ़ेसर का पद दे दिया, जिसे फ्रास्ट ने अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए स्वीकार कर लिया।

यथार्थ में स्वयं उसे यह जीवन प्रिय न था, लेकिन कला के विद्यार्थियों के सौभाग्य से वह जीवन-भर उनके सम्पर्क में रहा। वह पहला अमरीकी कवि था जिसे विभिन्न विश्वविद्यालयों ने महान् कवि की उपाधियों से विभूषित किया। फ्रास्ट के जीवन में कला का यह सुन्दर मोड़ चालीस वर्ष तक अज्ञात कवि का समय बिताने के बाद आया और फिर ऐसे अवसर आते रहे।

१६३० में अमरीकन एकादमी ने उसे अपना सदस्य मनोनीत कर दिया। १६३८ में वह 'हारवर्ड कारपोरेशन' का 'ऑनरेरी एसोसिएट' बनाया गया।

इसी बीच उसे कई पारितोषिक तथा सम्मान प्राप्त हुए। इसी में Pulitzer Award भी सम्मिलित है।

अब तक वह चालीस से अधिक कालिजों और विश्वविद्यालयों की ओर से डॉक्टरेट की उपाधियों से विभूषित हो चुका था। अमरीकी सीनेट ने उसकी पचासवीं और पचहत्तरवीं वर्षगाँठ बड़ी धूमधाम से मनाई और दीर्घायु के लिए प्रसन्नता तथा सद्भावनाएँ प्रकट कीं।

१६२२ और १६४४ के बीच उसकी कविताओं के चार और संग्रह प्रकाशित हुए और १६४६ में जब उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना प्रकाशित हुई तो साहित्य-संसार में उसकी प्रसिद्धि अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। १६५८ में उसे जो सबसे महान् सम्मान मिला उसका अस्तित्व कुछ साहित्य और कुछ राजनीतिक था। अमरीकी कांग्रेस पुस्तकालय में विशेष काव्य-प्रतिनिधि के रूप में उसकी नियुक्ति हो गई और १६६१ में जब उसने जॉन कैनेडी के राष्ट्रपति होने पर एक प्रशंसात्मक कविता The Gift Out Night की रचना की तो उसने प्रसिद्धि के आकाश को छू लिया। यह सम्पूर्ण अमरीका में एक कवि के लिए प्रथम सम्मान था। फ्रास्ट वास्तव में प्रशंसा का पात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसकी समस्त प्रसिद्धि का कारण उसका कविता से अटूट प्रेम है और ऐसे उदाहरण संसार में बहुत कम मिलते हैं।

वह प्रारम्भ में केवल एक रूमानी कवि था और सौन्दर्य तथा प्रेम विषय पर ही काव्य रचना करता रहा। उसकी सुन्दर कविताओं में ऋतुओं के रंगीन परिवर्तनों का अद्‌भुत प्राकृतिक रंगों के साथ उसके विचारों का रंगीलापन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ऐसी कविताओं में उसने कहीं-कहीं मानव और प्रकृति की समानता भी की है। उसकी दृष्टि में कहीं-कहीं प्रकृति मानव से दूर असीमित दृष्टिगोचर होती है और कहीं केवल निर्दयी स्वार्थी शक्ति जो एक अनजाने विचार के अनुकूल ही हो। लेकिन इसके बाद की कविताओं में वह अपनी व्यक्तिगत कथाओं तथा अपनी काव्य-प्रकृति के चक्कर से मुक्त दिखाई पड़ता है। अब वह तमाम व्यक्तियों के दुख-सुख में सम्मिलित हो जाता है। उस दौर के पश्चात् तुरन्त ही उसकी कविताओं में दृढ़ बौद्धिक कविताओं की झलकियाँ दिखाई देने लगीं।

इस मोड़ पर भौतिकवादी और व्यवसायी जीवन के खोखलेपन से वह अक्सर परेशान दिखाई पड़ता है। New Hapshire और अन्य कविताओं में वह स्वयं अमरीकी समाज के अनुसार प्रतिनिधि रूप में आता है। वह प्रत्येक वस्तु को 'शो केस' में देखकर उस पर व्यंग्य वाण चलाता है।

फ्रास्ट अपनी प्रमुख कविताओं में उस शक्ति का भी चितेरा दिखाई पड़ता है जिससे वह स्वयं को अनजाने रूप में बहुत समीप अनुभव करता है परन्तु यह समीपता उस पर अच्छी प्रकार घटित नहीं है और इसीलिए वह स्वयं अपनी खोज में खोया हुआ दृष्टिगोचर होता है और यही वह वाह्य प्रदर्शनों से मदद लेना चाहता है। वास्तव में फ्रास्ट एक ऐसा कवि है जो कलाकारों में सम्मिलित करने योग्य है। उसकी कुछ कविताओं के अध्ययन से यह अनुमान भी होता है कि वह भारतीय दर्शन से प्रभावित है। West Running Brook में उसने यह दिखाया है कि जीवन कभी समाप्त नहीं होता और उसका क्रम सदैव बना रहता है। Too Anxious for Rivers में भी उसने आवागमन की समस्या को बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। इसमें नदी जीवन का प्रतीक है और पर्वत 'मृत्यु' का प्रतीक माना है। परन्तु ऐसा भी नहीं है कि वह दार्शनिक, आध्यात्मिक और धार्मिक विचारधाराओं से परिपूर्ण होकर इनसे सन्तुष्ट है परन्तु वह उनकी सीमाओं को भी तोड़ देना चाहता है। वह केवल एक ऐसी सत्यता की खोज में है जो उसे इस दुखान्त जीवन से मुक्ति दे सके। इसी उद्देश्य के लिए वह सांसारिक और सामाजिक स्वतन्त्रता पर बहुत जोर देता है और ऐसी कविताओं में वह उर्दू कविताओं के लक्षण तथा उसकी हृदयग्राही रमणीयता का आधार अपनाता है।

वह आज की वैज्ञानिक खोजों और उनके प्रयोगों का अपने अनुभवों द्वारा स्वागत करते हुए यह भी नहीं चाहता कि आज का विज्ञान मनुष्यता के सुन्दर विचारों को हड़प जाए। उसकी दृष्टि में विज्ञान और कविता का सम्बन्ध अवैज्ञानिक है।

राबर्ट फ्रास्ट का युग कविता और साहित्य में नए-नए अनुभवों का दौर था। लेकिन उसने पुरानी साहित्यिक परम्पराओं को कभी नहीं छोड़ा। उसने जनसाधारण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों तथा भावों को साधारण भाषा में व्यक्त किया। न्यूइंगलैंड की ग्रामी बोली ही उसकी कविता की वाणी थी, परन्तु वह किसी विशेष भाग की बोली का प्रच भी नहीं करना चाहता था। यह प्रारम्भ से ही चढ़ाव-उतार का कवि था। आरो अवरोह के समान ध्वनियों द्वारा स्वर में संगीत भरना ही उसकी काव्य-कला का मु गुण है। दूसरा गुण काव्य के समस्त अंगों का सुन्दर तथा मार्मिक प्रयोग है। इ गुणों के कारण वह हर प्रकार के व्यक्तियों में प्रसिद्ध था। वह अपनी कविता में ए एक ऐसा अनूठा चित्रण करने वाला चितेरा दृष्टिगोचर होता है जो विभिन्न प्रका की बौद्धिक दशाओं तथा मनोवृत्तियों को विभिन्न प्रकार के चित्रों द्वारा प्रदर्शि करना जानता होता कि उनके वास्तविक परिणाम वही निकलें जो वास्तव में व चाहता है। उसकी कला की एक विशेषता अपने व्यक्तिगत विचारों और जनसाधारणी करण का बहुअंगी समन्वय है।

Birches उसकी बड़ी सुन्दर कलाकृति है। उसमें उसने मानवीय बौद्धि दशाओं, मनोवृत्तियों को अभिव्यक्त किया है जिसमें वह कल्पना के सहारे आकाश क छू लेने का प्रयास करता है और इस आशा को छोड़ना भी नहीं चाहता। इस कवित में एक लड़का अपनी इच्छाओं का वर्णन इस प्रकार करता है।

"मेरी इच्छा यह है कि मैं बस थोड़ी देर के लिए पृथ्वी से कहीं दूर च जाऊँ और फिर जल्दी पृथ्वी पर वापस आकर जीवन व्यवसाय में संलग्न हो जाऊँ।"

वास्तव में वह एक महान कवि था जो अनात्मिक शांति का पिपासु होने अतिरिक्त स्वयं धरा के अमर सौन्दर्य और मानवी संघर्षमयी जीवन की तरंगों अद्‌भुत चितेरा होने का इच्छुक हो। मैं यह समझता हूँ कि श्री नेहरू के अन्तर क कवि फ्रास्ट को चाहता था। इसका कारण यह है कि स्वयं उनके जीवन का ए विशेष पहलू उस कवि के विचारों से समानता रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकलदीप सिंह

अंग्रेजी कविता : एक दिशा-संकेत

प्रगति और परम्परा के संघर्ष में ही मनुष्य के विकास की गतिविधि निहित है। विकास के क्रम में कभी प्रगति प्रबल दीखती है तो कभी परम्परा। किन्तु चिरविजयिनी प्रगति के अनुसार परम्परा अपना रूप बदलती जाती है। वह रूढ़ियों से उन्मुक्त होती जाती है। परम्परा की विकसनशीलता ही उसकी जीवन्तता है। और यह जीवन्तता ही वस्तुतः प्रगति है।

प्रगति-परम्परा का संघर्ष हर देश में एक-सा नहीं होता। किसी-किसी देश में परम्परा ही अपने रूढ़ रूप में ताकतवर बनी रहती है। परम्परा का यह रूढ़ रूप साहित्य में भी प्रतिबिम्बित होता है। प्रगति कमजोर पड़ जाती है। अपने स्वभाव के अनुसार प्रगति लोकोन्मुख नहीं हो पाती।

प्रस्तुत निबन्ध में हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि किस प्रकार इंग्लैंड में धर्मोन्मुख और पलायनोन्मुख परम्परा आधुनिक अंग्रेजी साहित्य में अब तक देखी जा रही है। आधुनिक साहित्यकारों में किस प्रकार प्रच्छन्न रूप से वही परम्परा दीख रही है जो पुराने इंग्लैंड में भी स्थूल रूप में दीखती थी। और किस प्रकार प्रगति की गति धुंधली आज भी बनी हुई है।

पाश्चात्य देशों में छोटे-छोटे स्वार्थों की टकराहट होती रही। पूंजीवाद जन्य स्वार्थों के कारण बड़े-बड़े मानवघाती युद्ध हुए। एक राष्ट्र दूसरे को निगल जाने के लिए सदा तत्पर रहा। आर्थिक विपन्नता बढ़ती गई। प्रकृति की ओर से अधिक सुविधाएँ नहीं मिल सकीं। आबादी घनी होती चली गई। लड़ाइयाँ, असन्तोष, अशान्ति! सामूहिक व्यवस्था की ओर से विमुखता बनी रही। फलतः व्यक्ति को दुखान्तता (जो व्यक्तिवादी परम्परा की आधार पीठिका है) का सामना करना पड़ा।

ऐसा लगता है कि व्यक्तिवादी काव्य के पारस्परिक विकास की एक पतली धारा अंग्रेजी रोमांटिक युग से ही दीखने लगी। प्रगति और परम्परा के बीच से गुजरती हुई अंग्रेजी कविता आगे बढ़ने लगी। वर्ड्सवर्थ के साथ कुछ कवियों ने जीवन और जगत को निकट से परखा पर "पैन्थेइज़्म्" के कारण यथार्थ नहीं सामने आया। दूसरी ओर कीट्स और उनके साथ के कुछ कवियों ने शारीरिक सीमा में भौतिकता को महत्व दिया तथा मांसल सौन्दर्य को ही सब कुछ समझा। पहली बार खुलकर वैयक्तिकता, भौतिकता से आ जुड़ी। लेकिन इस युग में भी अध्यात्म पृष्ठभूमि के रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रहा। कालेरिज ने बुद्धि और आत्मा का समन्वय करना चाहा। शैली ने अध्यात्म या आत्मवाद के प्रकाश में सामाजिक क्रान्ति को देखा। बायरन का विद्रोह अराजक व्यक्तिवाद के रूप में प्रगट हुआ। कुल मिलाकर रोमांटिक युग यथार्थ से आँख मिला सकने में असमर्थ-सा रहा।

रोमांटिक युग के पूर्व (Metaphysical School of poetry) कविता के क्षेत्र में जो दार्शनिक धारा चली थी वह सूक्ष्म तो होती गई किन्तु सबल भी होती गई। डान, वागन, हरवर्ट आदि ने दर्शन के माध्यम से भावों का बौद्धिकीकरण किया। टी० एस० इलियट की मानसिक पृष्ठभूमि के निर्माण में इस स्कूल का बहुत बड़ा हाथ है।

विकास की प्रक्रिया में रोमांटिक कवियों की प्रतिक्रिया हुई। विक्टोरियन युग में यद्यपि दो समानान्तर धाराएँ चलती रहीं किन्तु प्रबलता रही 'कला कला के लिए की'। आर्नल्ड और टेनिसन की सामाजिकता और नैतिकता की प्रतिक्रिया हुई। 'बचनन' के (The Fleshy School of Poetry) से प्रभावित होकर रोज़ेटी और स्विनबर्न ने जीवन से हटकर कला का पूर्ण रूप से समर्थन किया। प्रीरेफेलाइट स्कूल की प्रबलता रही। अंग्रेजी कविता "कला कला के लिए" का समर्थन कर शारीरिक सुख की सीमा में आबद्ध हो गई। रूप-रस-गन्ध-स्पर्शादि की सीमा में आकर कविता अवश्य यथार्थोन्मुख होती रही किन्तु यह यथार्थोन्मुखता जन-जीवन के साथ नहीं जुड़ सकी। राजनैतिक-सामाजिक समस्याओं से उलझने वाले कवि·मोरिस और वर्न्स जैसों का उचित मूल्यांकन नहीं हो सका।

पूँजीवाद की बढ़ती हुई व्यवस्था में जहाँ का साहित्य पनपता है, संस्कृति पनपती है वहाँ बहुत कम ऐसे साहित्यकार होते हैं जो अपनी सामन्ती सीमा से ऊपर उठकर लोकतान्त्रिक व्यवस्था की ओर नजर उठा सकें। गल्सवर्दी, शॉ और वेल्स आदि की भाँति कुछ समाजोन्मुख लेखक भी आये किन्तु उनकी कड़ी आलोचना ही हुई, भले ही उनके साहित्य का प्रभाव अगली पीढ़ी में बढ़ता ही गया। वेल्स को स्वप्नदर्शी कहा गया, शा को तमाशबीन। गल्सवर्दी को परम्परा-विरोधी कहा गया।

पेटर ने भी सामाजिक समस्याओं से दूर हटकर जीवन और कला के सम्बन्ध-सूत्रों को अत्यन्त ही व्यक्तिवादी ढंग से देखा। पेटर के विचारों का गहरा प्रभाव उस काल के कवियों पर पड़ा और बाद के कवियों पर भी कम नहीं पड़ा। पूंजीवादी व्यवस्था में औद्योगिक विकास से जो सामाजिक विद्रूपता उत्पन्न होती है वे प्रायः व्यक्तिवादी विचारों को ही जन्म दे सकती है। आस्करवाइल्ड जैसे अद्भुत व्यक्तित्व का आविर्भाव इन्हीं परिस्थितियों में हुआ। वैयक्तिक विलासिता को किस प्रकार दार्शनिक रूप देने का प्रयत्न किया गया इसे आस्कर वाइल्ड की कुछ उपपत्तियों से समझा जा सकता है।

दरअसल, डिकेडेन्ट कवि अपने युग के अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित थे। एक तरफ विज्ञान और उद्योग का चक्रारोही विकास था तो दूसरी ओर इसके फलस्वरूप अध्यात्म या रहस्य का पतन। इस स्थिति में जो कवि लेखक आये, वे अपने को इसी स्थिति के अनुरूप बनाते गये। इस काल के कवि अनैतिकता, कृत्रिमता, वैयक्तिकता, दम्भ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असामाजिक भौतिकता के प्रति मात्र उत्सुकता के बीच विरकर जो कुछ लिखते रहे उससे सामाजिक कुरूपताएँ (Morbidity) ही फैलती रहीं। सामाजिक अस्वस्थता के प्रति इनकी उत्सुकता आश्चर्य की वस्तु है। 'कृत्रिम' शब्द आज भी अवांछनीयता से लिपटा है किन्तु आस्कर वाइल्ड का कहना है कि जीवन का प्रथम कर्तव्य यथाशक्ति कृत्रिम होना है। जितना कृत्रिम हुआ जा सके होना चाहिए। और जीवन का दूसरा कर्तव्य क्या है—इसका अन्वेषण, उनकी दृष्टि में अब तक नहीं हुआ है। वे कहते हैं—. (To be natural is to be obvious and to be obvious is to be inartistic.

अर्थात् स्पष्टता में कलात्मकता नहीं होती है।

यह स्पष्ट है कि आस्कर वाइल्ड की मनःस्थिति, कला की निरपेक्षिता, दैहिक-सुख, कृत्रिमता और वैयक्तिक विचित्रता परस्पर कितनी मिली हुई है। इसीलिए उन्हें सिद्धान्त गढ़ना पड़ा कि कला सुन्दर या असुन्दर नहीं होती। समाज से साहित्य को अलगाने वाला आस्कर वाइल्ड का व्यक्तित्व एक बहुत 'बड़ा प्रयत्न' था। 'दी पिक्चर ऑफ डोरियन ग्रे' की छोटी-सी भूमिका में उनके विचार देखे जा सकते हैं।

इस कलावाद के प्रचार का नेतृत्व जिनके हाथ में था वे थे सिन्मन्स साहब जिनका कहना है कि Art begins when man wishes to immoralise the most vivid moment he has lived.

कहने का तात्पर्य कि 'अनैतिकीकृत क्षण' की विशेषता बाद में बढ़ती चली गई। और कला का सम्बन्ध स्थापित हुआ वस्तुओं से, मनुष्य से नहीं (Art in relation with things not with men)। कला जड़ सिक्का बन गई व्यापारिक युग में। और कला कलाकार्य न होकर 'प्राइवेट फन्टासी' बन गई। इस प्राइवेट फन्टासी ने आगे चलकर कविता की टेकनीक में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। बिम्ब, प्रतीक के अन्धभक्तों की रचनाओं में अनगढ़ंत के रूप में आई जिसे सैद्धान्तिक रूप देने का कार्य स्पष्ट रूप से किया टी० एस० इलियट ने।

और टी० एस० इलियट जैसे व्यक्तित्व के आविर्भाव की भूमिका पहले से तैयार हो रही थी। प्रमुख प्रीरेफेलाइटिस्ट रोजेटी ने वैयक्तिक प्रेम, प्रेम-जन्य आशा-निराशा, मृत्यु की सीमाओं में जीवन को देखा और इन्द्रिय प्रभावों (Sense impressions) की ओर संकेत किया। वैयक्तिक-शारीरिक-सुख के प्रति विशेष आग्रह था इनका या इनके अन्य प्रीरेफेलाइट मित्रों का। और इस आग्रह का अर्थ ही होता है अबौद्धिक भावुकता। कीट्स की परम्परा को आगे बढ़ाया गया और मूल प्रवृत्ति (Primal instinct) को साहित्य का आधार बनाया गया। रोजेटी ने कहा Poetry is passionate for it deals with primal instinct and is sensuous for it appeals through senses. अर्थात् उन्होंने भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया इन्द्रियों को। इसीलिए कहा जाता है कि रोजेटी के लिए इन्द्रियाँ 'आत्मा' की पुनीत तथा प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रीरेफेलाइटों का असमाजिक शारीरिक सुखवाद बीसवीं शताब्दी के प्रमुख कवियों में पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिकता का स्वर भी पूर्णरूप से अंग्रेज़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता की परम्परा में लगा रहा। क्या कारण है कि टी० एस० इलियट ने प्रभाव ग्रहण किया ब्राउनिंग से—डॅने से। इन कवियों ने अपनी आध्यात्मिकता को बौद्धिकीकरण कर के व्यक्त किया। अर्थात् सैक्स और अध्यात्म (मृत्यु भी, सम्भवतः) की खिचड़ी पकाने का काम अंग्रेज़ी कविता ने अधिक किया।

इटालियन कामुकता (Eroticism) का प्रभाव तो अंग्रेजी कविता पर पड़ा ही, फ्रायड का भी कम प्रभाव नहीं पड़ा। फ्रायड ने सेक्स और मिथ (या अध्यात्म कह लें) को एक पलड़े पर रखा। अंग्रेज़ी कविता की पारम्परिक धारा ही ऐसी रही। किसी एक आलोचक ने कहा था, (Sexual ecstacy transfigured by spiritual rapture is unique in English literature.) कि अंग्रेज़ी साहित्य की यह एक अद्भुत विशेषता है कि यह आध्यात्मिक और वासनात्मक आनन्द के समन्वित रूप को लेकर चलता है। यही 'विशेषता' अंग्रेज़ी कविता को समाजोन्मुख होने से वंचित करती रही। यही अंग्रेज़ी कविता की प्रतिक्रियावादी परम्परा है। इस परम्परा से टी० एस० इलियट कौन कहे, स्पेण्डर, डे लिविस आदि जैसे तथाकथित प्रगतिशील कवि भी प्रभावित रहे।

इसी परम्परा के फलस्वरूप अंग्रेज़ी कविता बिम्बों और प्रतीकों के प्रभाव में आई और ठोस यथार्थ से दूर बनी रही। समाज से हटकर अंग्रेज़ी कविता व्यक्ति में सीमित हो गई। चेतन से हटकर अचेतन में चली गई। जीवन से हटकर कला में मिल गई। और समाज का गौरव छिन्न हो गया। मनुष्य को निम्न स्तर से देखा जाने लगा। हार्डी ने मनुष्य को परिस्थितियों में (भाग्य) कुलबुलाता हुआ असमर्थ रेंगने वाला कीड़ा-मकोड़ा कहा। इसी का प्रभाव हुआ कि अंग्रेज़ी कविता में आगे चलकर कुण्ठा तथा अनास्था का स्वर दीखने लगा। टी० एस० इलियट ने लन्दन को (The Waste Land) बंजर कहा आदमी को (The Hollow Man) खोखला कहा। यह अंग्रेज़ी कविता का असमाजिक और अमानवीय रूप है। न सामाजिक व्यवस्था में विश्वास रह गया न मनुष्य के गौरव में। यह विचारणीय है कि किस तरह पूंजीवादी-राजनीति का खोखलापन साहित्य में कटा-छँटा सिद्धान्त बनकर आता है।

भौतिक विज्ञान और औद्योगिक विकास को व्यवस्थित करनेवाली किसी सामूहिक दृष्टि के अभाव में ऐसा ही होता है।

यीट्स एक प्री रेफेलाइट चित्रकार के पुत्र थे। संस्कार तो था ही। परम्परा तो अपनी थी ही। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया में उन्हें फ्रेन्च प्रतीकवाद की छाया में सन्तोष मिला। विज्ञान से भागकर आदमी या तो अचेतन में प्रवेश करेगा नहीं तो अध्यात्म में जाएगा। यीट्स एक (Passionate metaphysical seer) भावुक दार्शनिक द्रष्टा बनकर रह गए। डन और हरबर्ट की परम्परा विकसित हुई। किन्तु विकासोन्मुख सामाजिकता अवरुद्ध हुई। यीट्स महोदय को 'प्रजातान्त्रिक समानता' 'प्रगति' 'समाजवाद' आदि जैसे शब्दों से घृणा थी। इसी के फलस्वरूप उनका सम्पर्क आर्थर सिमन्स, प्री रेफेलाइट या दि येलो बुक ग्रुप से था। स्वप्न से पीड़ित एक उदासी का जाल यीट्स की रचनाओं (मुख्यतः The Wind Among the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Reeds : the Dolls) में पाया जाता है।

अब देखने की ज़रूरत है कि कला के लिए स्वप्न लोक, यथार्थ और स्वप्न का द्वन्द्व, दर्शन, प्रतीक तथा काम आदि चीज़ें कवि को राजनीति के किस आधार पर ले जाती है। लुई मैकनीस ने कहा था (The facts are that Yeats had a budding fascist inside himself) घुमा-फिराकर यीट्स में फासिज़्म का बीज था।

ब्रीजेज का ईसाई धर्म में अन्धविश्वास था। इस अन्धविश्वास के कारण ही सौन्दर्य, जीवन, जगत के प्रति उनका दृष्टिकोण न वैज्ञानिक रहा, न यथार्थोन्मुख। वे निराधार भविष्यवादिता (Futurism) से आक्रान्त रहे।

किप्लिग की भाँति मेसफिल्ड भी संकीर्ण राष्ट्रवादियों की भाँति इंगलैण्ड और इंगलिश के अन्धप्रेम में डूबे रहे। 'डाउवर' में वालटर डिला मेयर की भाँति मैसफिल्ड भी परियों, भूतों तथा रहस्यमयी छायाओं की विस्मयकारी अभिव्यक्तियाँ देते रहे। यह क्या था ? एक पलायन ही था यथार्थ से।

जार्जियन कवियों (डवल्यू डेविज, डिलामेयर, रावर्टबुक, ड्रिंकवाटर, फ्रीमन, जे० सी० स्क्कायर, सर एडवार्ड मार्स आदि) पर विचार करने पर ऐसा लगता है कि वे मानसिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक, और सामाजिक समस्याओं या अन्तर्द्वन्द्वों से दूर भाग गए। प्रकृति के मधुर रूप के चित्रण में लगे रहे। यह भी एक पलायन ही था। विकसित औद्योगिक समाज की समस्याओं को सहने का साहस इनमें नहीं था। 'जार्जियन मुवमेन्ट' १९२२ ई० तक रहा जब टी० एस० इलियट का दी वेस्टलैण्ड (१९२२) प्रकाशित हुआं।

इस बीच (Hulme) ह्यू म ने (वर्गशाँ के दर्शन का भक्त) एफ. एस. फ्लिन्ट और रिचार्ड एल्डिग्टन आदि को मिलाकर विम्बवादियों का संगठन किया। रिम्बाँ, मेलार्मे, वर्ले, वाल्देयर की विचार-धाराओं से प्रभाव ग्रहण किया गया किन्तु इस आन्दोलन की जड़ यथार्थ में नहीं थी अतः इसका विकास समाप्त हो गया। वास्तविकता से भागकर ही विम्ब या प्रतीक का सहारा लिया जाता है।

१९२० ई० के बाद अंग्रेजी कविता में एक ताजगी-सी आई किन्तु जटिल बौद्धिकता का प्रवेश हुआ और कविता पुनः अपनी प्रतिक्रियावादी परम्परा में सट गई। एफ० आर० लिविस ने हापकिन्स को आधुनिक युग का विशिष्ट कवि माना। किन्तु हापकिन्स भी कीट्स और प्रीरेफेलाइट्स की परम्परा से दूर नहीं हट सके। एडिथ सिटवेल ने कविता लिखना बन्द कर दिया। यीट्स रहे नहीं। टी० एल० इलियट कविता के क्षेत्र में एक 'आन्दोलन' के रूप में आये। पो के प्रथम प्रतीकवादी काव्य (Ulalume) यूलाल्यूम का प्रभाव टी० यस० इलियट पर पड़ा। किन्तु वैज्ञानिक भौतिक बोध के अभाव ने इनको भी पीछे हट जाने के लिए मजबूर किया। इनकी बौद्धिकता धार्मिक रंग में घुल गई। भावनाओं की अतिरिक्त महत्ता बढ़ा दी गई। डान और हरवर्ट आदि मेटाफिजिकल कवियों की भाँति इन्होंने 'चिन्तन' और 'वासना' को एकसाथ 'ट्विस्ट' किया। धर्म से आधुनिक युग की समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सकता है। धर्म और आधुनिकता को सम्मिश्रित करने के कारण ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी रचनाएँ उलझी तथा गुम्फित हो गईं। टी० एस० इलियट ने भी अपनी पुरा परम्परा को नई शैली में आगे बढ़ाया। फ्रायड का दर्शन भी था ही। टी० एस० इलि के अलावा अधिकांश कवियों ने अचेतन में प्रवेश किया और अनगढ़ क्रम-विहीन असं पंक्तियों की कविताएँ करते रहे। 'जटिलता' कविता का गुण हो गई। जन जीवन निकट कविता न आई, कुछ बुद्धिजीवियों की मानसिक क्रीड़ा का साधन बन गई।

१९३० और १९४० ई० के बीच कुछ और कवि उभरे जिनमें आडेन, डे विस, स्टेफन स्पेन्डर, मैकनीस, डायलन प्रमुख रहे। इन लोगों ने टी० एस० इलि की सीमा को पहचाना। उनकी 'बंजरता' को क्योर करने का बीड़ा उठाया। लोगों ने अलग हटकर काव्य को जीवन के निकट लाने का प्रयत्न किया। किन्तु इन प्रयत्न भर ही रहा। कुछ दिनों में ही डे लिविस ने सामाजिक और राजनैतिक आ से विश्वास खो दिया। वे अपनी व्यक्तिवादी परम्परा में आकर जुड़ गए। स्पेन्ड ने अपनी पुस्तक (Life and the Port) में घोषित किया कि जीवन की मौलि चीजों से ही कविता का सम्बन्ध है। आडेन हृदय की शुद्धि पर जोर देने लगे। इ तरह लगभग सभी यथार्थ की टकराहट नहीं सह सके, पीछे लौट गये। सर ओ वर्ट सिटवेल, एडिथ सिटवेल, हरवर्ट रीड, सैसून आदि भी अपनी परम्परागत सीमा आकर सिमट गए जिसका विरोध प्रगतिवादी विचार करता रहा।

१९५०-५१ ई० के आसपास डेविड गैसक्वायन का व्यक्तित्व प्रभावशाली थ किन्तु इन पर सुर्रियलिज्म का प्रभाव विशेष था जिसका एक पहलू धार्मिकता भी है धार्मिक प्रवृत्ति के कारण वैज्ञानिक युंग ने इनको ऐसे ही खोटा प्रमाणित कर दिया।

इस प्रकार देखते हैं कि अंग्रेजी कविता के क्षेत्र की व्यक्तिवादी परम्परा, का धर्म, अहं, आत्मा, मृत्यु आदि में उलझकर धुँधली हो गई। उनके आगे कोई उसे रा न दीखी। स्थिति में एक खीझ-सी उत्पन्न हुई और एक आन्दोलन आया जो घनघो रूप से 'प्रतिगामी' था। यह था (Apocalytitac movement) एपोकलिटि मुवमेंट। इस आन्दोलन के प्रमुख कवि थे हेनरी ट्रीस, जे० एफ० हेन्ड्री और जी० एस फ्रेज़र। हेनरी ट्रीस ने अपनी पुस्तक (How I See Apocalypse) में अपने विचा को स्पष्ट रूप से रखने का प्रयत्न किया है। इस आन्दोलन का मुख्य स्वर 'अराजकत का था। व्यक्ति की स्वतन्त्रता और कविता की स्वतन्त्रता इनका नारा था। दर्श विहीन आन्दोलनों की भाँति यह आन्दोलन भी बिखर गया। इसने भी ईश्वर नवीनीकरण का प्रयत्न किया। धार्मिकता और वैयक्तिक उच्छृंखलता का ए हास्यास्पद समन्वय का रूप इसमें देखने को मिलता है।

इन सब असंगतियों ने एक नई परिस्थिति पैदा की। कवियों की एक ऐ पीढ़ी सामने आई जो अपनी अराजकता और उच्छृंखलता के कारण अत्यधिक प्र लित हुई। वह है क्षुब्ध पीढ़ी। अमेरिकन बीटनिक-पीढ़ी की भाँति यह पीढ़ी भी कि भी सामाजिक व्यवस्था के विरोध में प्रगट हुई। क्षुब्ध पीढ़ी के कवि किसी भी नैतिक को नहीं मानते। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में उनका विश्वास नहीं है। न भूत को स्वीकार करते हैं न भविष्य को। वर्तमान को स्वीकार भी करते हैं तो सन्दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नजर से । अपने अस्तित्व में भी इन्हें अनास्था है । किसी भी प्रकार के नियन्त्रण को ये अस्वीकार करते हैं । ये अपने असामाजिक, अव्यवस्थित जीवन को निर्भीकता के साथ व्यक्त करते हैं । इनकी आस्था न कला से है न वस्तु से । ये अपने परिवेश पर क्षुब्ध हैं । ये अपने-आप पर भी क्षुब्ध हैं । किसी प्रकार की मान्यता से ये क्षुब्ध हैं । इनकी रचनाओं में पूँजीवाद-जन्य व्यक्तिवाद की घनघोर विकृतियाँ व्यक्त हो रही हैं । इन कवियों ने अपनी अव्यवस्था के सिद्धान्त को साहित्य में भी प्रचारित करने का प्रयत्न किया है । अकहानी, अनाटक, अकविता, अयथार्थ आदि के नारे इन लोगों की ओर से उठ रहे हैं । साहित्य या जीवन की परम्परा को छिन्न-भिन्न करना इनका उद्देश्य हो गया । इस पीढ़ी का कोई एक सिद्धान्त नहीं है । हर कवि अपनी अलग उच्छृंखलता लिये हुए है । निरर्थक आक्रोश के प्राणहीन कठपुतले हैं ये ।

किन्तु इस क्षुब्ध पीढ़ी की सीमा के बाहर भी कुछ ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाओं में जीवन्तता के कुछ तत्त्व पाये जाते हैं । उनकी रचनाओं में कुछ अंश तक प्रगतिशीलता की झलक पाई जाती है । मैक डायरमिड का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है । इनका मार्क्सवाद के प्रति कुछ झुकाव है किन्तु इनकी प्रगतिशीलता असंगतियों तथा रोमान्टिक तत्वों से भरी है । नई पीढ़ी में 'क्रिस्टोफर लॉग' का भी नाम लिया जा सकता है किन्तु इनकी भी सीमा 'प्रेम' के चारों ओर चक्कर काट रही है । न्यू लाइन्स (१९५६) नाम से नये कवियों की कविताओं का एक संग्रह आया । पेंगिवन की ओर से दी न्यू पोयट्री (The New Poetry, १९६३) नाम से एक दूसरा संग्रह आया । इसके अतिरिक्त अभी 'न्यू लाइन्स, दूसरा, (१९६३) के नाम से संग्रह आया है ।

इन सभी संग्रहों में, विश्व विद्यालयों के प्राध्यापक आदि ही विशेष रूप से हैं । इन संग्रहों की कविताएँ अतिरिक्त बौद्धिकता से बेतरह बोझिल हैं । इनके पाठक नहीं के बराबर हैं । इनका उद्देश्य भी जन-साधारण से मिलना या उनके लिए लिखना नहीं है । वे अपने दो-चार मित्रों के लिए कविताएँ लिखते हैं और उन्हीं की पसन्दगी से सन्तुष्ट रहेते हैं । जन-जीवन से दूर-सी हो गई है अंग्रेजी कविता । हाँ, एक बात अवश्य ध्यान देने की है कि अंग्रेजी कविता किसी प्रकार की सैद्धान्तिक या तार्किकता से दूर हटती जा रही है । यह अचेतन के ऊहापोह से भी दूर हट रही है । सहज जीवन को सहज शैली में कहने की ओर अंग्रेज़ी कविता झुक रही है । अधिकांश कवियों की कविताएँ सरल गद्य के निकट पड़ती जा रही हैं । एलिजाबेथ जेनिंग्स की रचना 'एडमोनिसन' गद्य है बिलकुल । इसी तरह कई उदाहरण लिए जा सकते हैं ।

अन्ततः कहा जा सकता कि अंग्रेजी कविता आज बिखराव की स्थिति से गुजर रही है । कई धाराएँ समानान्तर चल रही हैं । पर किसी एक धारा की प्रमुखता नहीं स्थापित हो सकी है अभी । सभी धाराएँ कमोबेश चल रही हैं । किन्तु आज के लोकतान्त्रिक युग में जिस धारा को आना चाहिये नहीं आ रही । अभी भी कविता के क्षेत्र में किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता (Commitment) स्वीकार करने की जागरूकता नहीं दीख रही है । चेतनशीलता का स्वर सदा से दबता आया है । लेकिन अब जन-जीवन की माँग झुठलाई नहीं जा सकती ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामसेवक सिंह

जेम्स जॉयस कृत 'युलिसिस' : एक कथा प्रयोग

: १ :

जिस 'युलिसिस' के प्रकाशन से टी० एस० एलियट ने यह माना था कि 'वर्तमान संसार को कला में सफलतापूर्वक उतारने का प्रयत्न एक कदम आगे बढ़ा है', उसी को धारावाहिक प्रकाशित करने के लिए 'दी लिट्ल रिव्यू' को न्यूयॉर्क की कोर्ट ने सौ डालर जुर्माना किया था और अमेरिका में उसके प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाया था। परिणाम हुआ था, उसकी अधूरी और अवांछित आवृत्तियाँ। प्रकाशन के समय से लेकर आज तक इस कृति को एक समस्या के रूप में देखा गया है। किसी ने जेम्स जॉयस को अर्द्धविक्षिप्त करार दिया तो किसी ने 'गलत समझा गया जीनियस'। उससे मिलने पर उसकी होने वाली पत्नी कुमारी बारनैकूल तक ने कहा था : 'मेरा अन्दाज है, यह आदमी यों तो जीनियस है, लेकिन है दिमाग का गन्दा।' उस आदमी को ही नहीं उसकी 'युलिसिस' को भी अश्लील करार दिया गया था। यह एक आश्चर्य की बात है कि जॉयस की सभी कृतियों के प्रकाशन में कठिनाइयाँ खड़ी हुई थीं। ज़ब सम्पादकों ने पांडुलिपि को स्वीकार किया तो मुद्रकों ने छापने से इनकार किया। जब प्रकाशकों ने छापना स्वीकार किया तो संसार ने अश्लील घोषित किया और जब अश्लीलता का जुर्म हटा तो अनैतिकता और ईश्वरनिन्दा का दोष पाया गया। जब अन्त में यह जुर्म भी निराधार सिद्ध हुआ तो लोगों ने जॉयस को देशद्रोही ठहराया। इसी प्रकार जिस किसी कृति पर आयरलैंड में प्रतिबन्ध लगा वह इंग्लैंड में छपी और जब इंग्लैंड में प्रतिबन्ध लगा तो अमेरिका ने छापा। मगर कुल मिलाकर इतना तो कहा ही जा सकता है कि जॉयस ने साहित्य के क्षेत्र में जो प्रयोग किये थे उन्हें या तो लोगों ने ठीक से समझा नहीं अथवा स्वीकार करने से इनकार किया। जॉयस के तीन उपन्यासों में जब 'फिनेगन्सवेक' एकदम अस्पष्ट (Obscure) है, 'दी पोर्ट्रेट ऑफ दी आर्टिस्ट' काफी दूर तक लेखक की पहली कृति होने का भान कराता है। 'युलिसिस' में ही लेखक की टेकनीक का पूरा-पूरा विकास दीख पड़ता है। इस उपन्यास में लेखक ने क्या और किस प्रकार कहना चाहा है, यहाँ उसी पर संक्षेप में विचार किया जाएगा।

पहले कथ्य। 'युलिसिस' की शैलीगत दुरूहता को एक क्षण के लिए भूलकर यदि ढाँचे पर गौर किया जाए तो मालूम पड़ेगा कि बाह्य विशृंखलता के बावजूद उसमें एक कहानी अन्तस्थ है। सन् १९०४ की १६वीं जून को आयरलैंड की राजधानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डबलिन में जो कुछ भी घटित होता है उसकी एक झाँकी यहाँ प्रस्तुत है। सुबह सोकर उठने के बाद से लेकर पुनः रात को सो जाने तक के दरम्यान तीन चेतनाएँ—लिओपोल्ड ब्लूम, स्टीफेन डेडालस और मॉली ब्लूम किस प्रकार अन्य कितनें ही इन्सानों की तरह अपनी चिन्तायें लिये दिन व्यतीत करते हैं, यही इस उपन्यास में दिखाया गया है। ब्लूम की दिनचर्या है : एक कसाई की दुकान से नाश्ते के लिए माँस लाना, एक अखबार के कार्यालय में होते हुए नेशनल लाइब्रेरी में जाना, एक शवयात्रा में भाग लेना, एक लड़की की स्मृति में दिवा-स्वप्न देखना और अपने छिपे प्रेम की अभि-व्यक्ति करना, एक प्रसूतिगृह में विद्यार्थियों के साथ बैठकर अंग्रेजी के लेखकों की शैली में पैरोडी करते हुए नयी पत्रकारिता पर प्रकाश डालना, और फिर अन्त में डेडालस को साथ लेकर अपने घर वापस जाना।—ये और इस तरह के कितने ही अन्य छोटे-मोटे कामों में व्यस्त ब्लूम थक-चूर अपने घर आकर उस पत्नी के साथ सो जाता है जो पति के अंक में होकर भी अपने प्रेमी ब्लेजेज़ बॉयलन की याद करती है। ब्लूम की नजर के सामने से होकर जो कुछ भी गुजरता है वह उसी पर विचार करता है, कोई रिमार्क देता है। बार-बार वह भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिये योजनायें बनाता है लेकिन हर बार उसे अपनी बेवफा पत्नी और ब्लेजेज़ बॉयलन के प्रेम की याद एक टीस दे जाती है। उसके लड़के की बचपन में ही मृत्यु हो जाने से उसे किसी ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जिसे वह पुत्रवत रख पाता। ऐसा ही व्यक्ति है स्टीफेन डेडालस—एक सुन्दर युवक जिसे साहित्य में रुचि है तथा जो स्वयं अपनी माँ की मृत्यु के समय प्रार्थना न कर सकने के कारण दुखी है। जबकि ब्लूम यहूदी है और डबलिन में रहकर भी ऐसा महसूस करता है जैसे किसी अनजान देश में रह रहा हो, डेडालस अपने ही देश में रहकर कलाकार होने के कारण इस शहर के जीवन से निर्लिप्त है। इन दोनों को ही जैसे एक-दूसरे की खोज रही हो। ब्लूम को अपने मृत पुत्र का एक स्थानापन्न चाहिए था और चाहिए था अपनी शादी करने योग्य लड़की के लिए अच्छा वर। और इन दोनों के लिए डेडालस उपयुक्त था। इतना ही नहीं ब्लूम के मन में साहित्य और कला के प्रति जो प्रेम था उसकी अभिव्यक्ति वह डेडालस से बातें करके कर पाता था। यह डेडालस और कोई नहीं लेखक स्वयं है। डेडालस लेखक डबलिन की सड़कों पर घूम-घूमकर थक गया, उसे कहीं अपनापा नहीं दीखा। यहाँ तक कि विद्यामन्दिर से वेश्यागृह तक यात्रा करने के पश्चात् भी वह किसी प्रकार का स्थायित्व अनुभव नहीं कर सका। जैसे उसके जीवन की धुरी ही गायब हो। ब्लूम और डेडालस कई बार एक-दूसरे से मिलते हैं; लेकिन अन्त में वेश्यागृह से जब वे साथ घर आते होते हैं तब कैबमैन में शरण लेते हैं। वे वहाँ अपने व्यक्तित्व की सही झाँकी देते हैं। यहाँ उनकी चेतनायें एकदम अलग प्रकार की होती हैं। शायद लेखक जोर देकर यह कहना चाहता है कि हर एक की चेतना और उसका व्यक्तित्व ही नहीं उसकी नियति भी अलग है। उपन्यास के अन्त में जब ब्लूम सो जाता है, उसकी पत्नी उसके पास ही सोई हुई अपने प्रेमी की याद करती होती है। धीरे-धीरे करीब चालीस पेज का स्वगत समाप्त करते-करते उसकी पलकें भारी हो जाती हैं। यहीं उसके चरित्र का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निखार आता है। इसके पहले सारे दिन उसकी उपस्थिति का भान होता रहता; किन्तु यहाँ आकर ही उसके अस्तित्व का पूर्णरूप से ज्ञान होता है। उसके अस्तित्व क महत्व इतना अधिक है कि ब्लूम दिन भर उसकी स्मृति से ही ग्रस्त रहता है।

कहानी के इसी अस्थिपंजर पर जॉयस ने विचारों का खून और माँस चढ़ा है। यदि कहानी उसके पूर्ववर्ती यथार्थवादी (Materialist) लेखकों (जिनमें खास एच० जी० वेल्स, आरनोल्ड वेनेट और गाल्सवर्दी) जैसी होती तो किसी प्रकार क कठिनाई ही न होती। 'युलिसिस' में जो कुछ भी ऊपर से दीख पड़ता है उतना नहीं है, बल्कि बहुत कुछ ज्यादा है। तह-पर-तह और विचार-पर-विचार—सब कु सुविचारित और सुनिश्चित। इसीलिए तो सन् १९०४ से लेकर १९२२ तक इस उ न्यास का लेखन चलता रहा। वर्षों तक काम करने के बाद इतनी जटिलता ला स्वाभाविक ही था।

'युलिसिस' में एक साथ कई बातें कही गई हैं। मुख्य रूप से यह कहा ज सकता है कि यह उन दो यात्रियों की कहानी है जो अपने घर लौटने के लिए व्याकु हैं। कुटिल संसार के कुचक्र से मुक्त परिवार के सुख की कल्पना मात्र से जिन्हें रोमां हो आता है, किन्तु दुर्भाग्य से जिनका कोई घर नहीं है। रात के दो बजे भी सा दिन व्यस्त रहकर व्यतीत करने के बाद स्टीफेन लिओपोल्ड ब्लूम के घर कॉफी पी के लिए चला ही आता है क्योंकि वह अपने ही देश में एकदम अकेला, निष्कासि महसूस करता है और ब्लूम के लिए तो अपना घर भी पराये के घर जैसा है। ज उसकी पत्नी उसी की सेज में सोकर किसी अन्य व्यक्ति की स्मृतियाँ सँजोये, वह घ कहाँ ? जेम्स जॉयस ने भी अपना घर बहुत पहले छोड़ दिया था। उनके जीवन क अधिकांश विदेशों में ही बीता था। बड़े विश्वास से उन्होंने 'दी पोर्टेट ऑफ दी आर्टिस में लिखा था : 'इस देश में (आयरलैंड) जन्म के समय ही आत्मा को अपंग करने लिए मनुष्य पर एक जाल फेंका जाता है। आप मुझसे स्वदेश, भाषा और धर्म क बातें करते हैं। मैं तो कोशिश करूँगा कि इन्हीं जालों की सहायता से उड़ जाऊँ (पृ० २३४)। उन्हें जिस चीज में विश्वास नहीं था उसकी चर्चा करना भी मंजूर नह था। चाहे वह अपना देश अथवा अपना धर्म ही क्यों न हो। जो अनुभव उन्हें सत्य दर्शन कराये उसके माध्यम से अपनी जाति को एक नई चेतना (Conscience) दे था। इसीलिए अपने देश, धर्म, समाज और स्थानिक राजनीति से अलग होकर 'युलि सिस' में इन दो यात्रियों की कहानी लिखी। यदि गुलिवर, काँदीद और रासेलास क नवीन संस्करण लिओपोल्ड ब्लूम है तो ब्लूम का प्रतिरूप ग्रीक यात्री ओडीसिय है। सही बात यह है कि १६ जून, १९०४ तो मनुष्य की उस यात्रा का एक अंश जिसकी संज्ञा है जीवन। कौन जाने, समय और स्थान के बन्धन में बँधा मनुष्य कि दिशा में प्रयाण कर रहा है। किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वह एक चि यात्री है।

होमर के महाकाव्य 'ओडेसी' में दस वर्ष के ट्रॉय युद्ध के बाद ओडीसियस क घर पहुँचने में आठ वर्ष लग गये। इस बीच उसका पुत्र अठारह वर्ष का हो गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपने पिता की खोज में निकल पड़ा था। पेनिलोपी अपने प्रशंसकों की बेतुकी बातें सुन-सुनकर भी अपने पति की प्रतीक्षा करती रही। यहाँ 'युलिसिस' में सुबह से लेकर रात के दो बजे तक ब्लूम नाना प्रकार के दैनिक काम करके घर लौटता है अपनी बेवफा पत्नी से मिलने। अन्य साम्य हैं : बातूनी स्कूल मास्टर और नेस्टर; अश्लील इशारे करने वाली गर्टी डोवेल और सुकुमारी नॉसिका आदि। यद्यपि जॉयस के मन में इस उपन्यास को लिखते समय होमर की 'ओडिसी' का ही ढाँचा था, उन्होंने छपने के समय अध्यायों के शीर्षक निकाल दिये। होमर ने ओडीसियस की कहानी को चौबीस भागों में बाँटा है। जॉयस ने सिर्फ तीन भाग ही किये हैं। और उन तीन हिस्सों को अठारह घटनाओं में बाँटा है। ऑडेसी का पहला खंड 'टेलिमैकिया' उस महाकाव्य की भूमिका तैयार करता है : टेलिमॉक्स का अपने पिता ओडीसियस की खोज में भटकना।' युलिसिस' का स्टीफेन आठ बजे सुबह मार्टेलो टॉवर में नाश्ता करके निकलता है, दस बजे एक स्कूल में इतिहास पढ़ाता है, और ग्यारह बजे मैन्डीमाउन्ट के समुद्री किनारे पर टहलता है। इसके बाद 'युलिसिस' का मुख्य भाग आता है जिसमें बारह घटनायें पिरोई गई हैं। इन बारह घटनाओं में थोड़े अन्तर के साथ ओडीसियस ब्लूम की यात्रा का वृहत वर्णन है : लिओपोल्ड ब्लूम का सुबह आठ बजे एक्लीज स्ट्रीट में नास्ता लेना (ओडीसियस का कैलिप्सो के साथ होना); दस बजे स्नान (लोटसईटर्स के प्रदेश में गमन); ग्यारह बजे शवयात्रा में (हेड्स=नरक में जाना); बारह बजे अपने अखबार के कार्यालय में (योलस द्वीप में); एक बजे भोजन (लेस्ट्रीगोनियन्स नरभक्षियों के देश में); दो बजे पुस्तकालय में (स्काइलस और चैरिब्डिस से घिरा हुआ); तीन बजे किताबों की दुकान में (वॉडरिंग रॉक्स के पास); चार बजे आरमॉड होटल में बारमेड्स के साथ शब्दहीन संगीन सुनना (साइरेन्स का प्रदेश); सायं पाँच बजे सैलून में नागरिकों के साथ बैठकर मानहानि सहना (साइक्लोप्स लोगों के बीच); आठ बजे गर्टी मैकडोवेल के साथ छेड़छाड़ (नॉसिका के साथ); दस बजे रात को प्रसूतिगृह में (ऑक्सेन ऑफ दी सन) और बारह बजे रात को वेश्यागृह में जाना (सर्सी जादूगरनी का ओडीसियस से मिलना)। इन वर्णनों के बाद की कहानी ब्लूम के घर लौटने की कहानी है ठीक वैसे ही जैसे 'ओडेसी' में तीसरा भाग। स्टीफेन वैसे सारा दिन (अधिकांश) अनुपस्थित ही रहा है लेकिन सायंकाल वह ब्लूम के साथ बातें करने लिए आ मिलता है। दोनों काफी देर तक साथ रहते हैं; लेकिन कहानी के इस छोर पर मुख्य पात्र मौली ब्लूम है। वापस आते समय लिओपोल्ड ब्लूम का एक बजे रात को ड्राइवर के यहाँ थोड़ी देर रुकना (सुमियस के यहाँ ओडीसियस का शरण लेना), दो बजे रसोईघर में एक्लीज़ स्ट्रीट (इथाका) और पौने तीन बजे सुबह अपनी शय्या पर अपनी पत्नी मॉली के साथ (ओडीसियस का पेनेलोपी से मिलन)।

यह है कहानी का ढाँचा जिसमें मूल भाग है दोनों ही यात्रियों ओडीसियस और लिओपोल्ड ब्लूम का गृह-प्रयाण। किन्तु दोनों कहानियों में साम्य से वैषम्य की मात्रा अधिक है। ब्लूम डब्लिन की जिन सड़कों और गलियों में लुढ़कता है वे अपने ही जमाने की हैं। मनुष्य आज भी यात्री है; परन्तु उसकी और ओडीसियस की यात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कितनी विषमता है ! 'युलिसिस' में इस बात पर जोर दिया गया है कि जीव परिवर्तनशील होकर भी प्रवहमान है, निरन्तर आगे की ओर बढ़ता रहता है। बीसवी शती के शहर डबलिन को नरक के सिवा और क्या कहा जाय जहाँ स्टीफेन औ ब्लूम ही नहीं, बल्कि मैकडॉवेल और माँसल मॉली ब्लूम तक अकेला महसूस करती है इतना ही नहीं, बहिर्मुखी चरित्रों की आत्मा का खोखलापन भी स्पष्ट है। वे अकेलेप से भागने के लिये मैत्री करते हैं; लोगों से सम्बन्ध बाँधते हैं। ब्लूम के अकेलेपन क कारण है : उसके पुत्र की असामयिक मृत्यु जिसकी याद उसे शव-यात्रा के समय त प्रसूतिगृह में फोरफॉय के लड़के के जन्म के समय आती है; उसके अपने पिता की आत्म हत्या की याद; स्वयं भार्या क्लिफोर्ड से प्रेम करके भी अपनी बेवफा पत्नी से दुखं होना; उसकी शंका कि उसकी पुत्री भी अपनी माँ जैसी ही है, पिता-पुत्री के बीच ए दूरी बनाये रहती है, और सबसे अन्त में उसका एक यहूदी होना है। यहूदी पैसे क लोभी होने के कारण आज की व्यापार-प्रधान संस्कृति का प्रतिनिधित्व अच्छी प्रका कर सकता है। मगर आजका कलाकार भी यहूदी जैसा ही है। जिस देश में राज नीतिक भाषणों की तारीफ होती हो, छोटी-छोटी बातों को महत्व दिया जाता हो सेंटिमेंटल गीतों को अच्छी कविता माना जाता हो, उसमें स्टीफेन जैसा युवक कैसे सुखी हो सकता है। उसका न कोई घर है, न धर्म और न धन्धा। उसकी रहन-सहन का तरीका ही मनुष्य के भविष्य की घोषणा करता है। उसने धर्म का त्याग इसलि किया है कि उसे धर्म का दास बनना स्वीकार्य नहीं। उसने परिवार को छोड़ा है तो इसलिये कि उसके परिवार में कोई उसकी कक्षा का व्यक्ति नहीं और कोई उसको समझता नहीं। यदि वह अपने मित्रों के साथ भी नहीं निभा पाता तो इसलिये कि वे इतने संवेदनशील नहीं जितना वह है, इसलिये वे लोग उसे घृणा करते हैं। वह प्रेम और मैत्री के लिए जन्मा ही नहीं है। इसके ठीक विपरीत ब्लूम सामाजिक है और लोगों से सम्बन्ध रखने में विश्वास रखता है। उसका दुर्भाग्य यह है कि हर स्थान पर उसकी अपनी पारिवारिक स्थिति उसके व्यवहार पर हावी हो जाती है। लोगों के बेल-गाम व्यंगों से बचने के लिए स्टीफेन सिनिक की तरह व्यवहार करता है। उसको बार-बार ऐसा लगता है कि आयरलैंड में लोग उसे हैमलेट की तरह सिर्फ बर्दाश्त करते हैं, निभाते हैं, उसे सम्मान नहीं देते। उसकी स्थिति 'एक विदूषक की तरह है जिसे मिलता हैं इनाम यदि राजा खुश हुआ, और मिली मौत यदि वह नाराज हुआ।' ('युलिसिस', पृ० २६)। वह दुखी इसलिए है कि वह अपनी दम तोड़ती माँ के सिर-हाने खड़ा होकर भी उसकी आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना न कर सका। उसे मनुष्य में कोई रुचि नहीं, क्योंकि उसे ऐसा लगता है जैसे मनुष्य ने आज तक के इतिहास में घटनाओं की अनुत्तरदायित्वपूर्ण हवाएँ ही बुनी हैं : 'जो हवायें बुनते हैं, उनके भविष्य में रिक्तता के सिवा और क्या हो सकता है ?' ('युलिसिस', पृ० २२)। इसके साथ ही स्टीफेन को आयरलैंड की वर्तमान स्थिति का भान है। जिस देश में दो क्रूरताएँ : राजा और पुरोहित (Priest) शासक हों। इस देश में रहकर कितनी ही जिम्मेदारियाँ उसके सिर पर हैं। वह उन्हें ईमानदारीपूर्वक निभाना चाहता है; लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैमलेट की तरह अशक्त है। सामान्य पारिवारिक सुख से वंचित अपने ही शहर में वहिष्कृत, जिम्मेदारियों के बोझ से दबे हुए स्टीफेन और हैमलेट में कितना साम्य है। इस बात की पूरी प्रतीति स्टीफेन को है। जैसे हैमलेट ने पोलोनियस का मजाक उड़ाया था उसी प्रकार स्टीफेन ने मिस्टर डिज़ी का। इतना ही नहीं, जिस तरह हैमलेट की सम्वेदनशीलता, उसकी उदासी, उसकी सालिलोक्वियों में व्यक्त हुई है उसी प्रकार स्टीफेन की मनःस्थिति की अभिव्यक्ति संज्ञा-प्रवाह (Stream of consciousness) में : खास तौर से समुद्र के किनारे टहलते समय। उसने शेक्सपियर की त्रासदी 'हैमलेट' का अपना मौलिक विश्लेषण किया है लेकिन उसे तब तक प्रकाशित नहीं करेगा जब तक कि उससे उसे आर्थिक लाभ न हो। और प्रकाशन की कोई सम्भावना नहीं है। यह भी उसके अकेलेपन का एक कारण है।

ब्लूम और स्टीफेन नाना प्रकार की समस्याओं पर गम्पूरतापूर्वक विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'यह सच है कि हम देश को नहीं बदल सकते। अच्छा हो, यदि हम चर्चा का विषय ही बदल दें।' यात्रा शुरू करने के समय ब्लूम समाज की मान्यताओं को मानकर चला था, किन्तु शाम होते-होते उसके विश्वास डिगने लगे थे। डबलिन अपनी तमाम विशेषताओं के साथ वर्तमान संसार का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ की जनता गन्दी राजनीति को वैसे ही नापसन्द करती है जैसे संसार के अन्य-हिस्सों में दूसरे लोग। यहाँ कला उसी प्रकार सस्ती और सौदे की वस्तु बन गई है जिस प्रकार अन्यत्र। यहाँ की कला को स्टीफेन ने 'किसी नौकर का टूटा हुआ दर्पण' ('युलिसिस' पृ० ८) कहा है। इस शहर में अब कला की नई देवियाँ—व्यापार, आपेरा-संगीत, प्रेम, प्रचार, उत्पादन, वाणी-स्वातन्त्र्य, मताधिकार और मनोरंजन आदि हैं। आयरलैंड अब 'एररलैंड' (Errorland) हो गया है और डबलिन 'डिडलम' (Diddllem) एक निरर्थक नाम। अतः इस शहर का निवासी भी ठीक वैसे ही धुरीहीन है जैसे दुनिया के किसी और हिस्से का व्यक्ति। इससे भी आगे बढ़कर कहा जा सकता है कि यह उपन्यास कुल मिलाकर हमारे अस्तित्व का एक संक्षिप्त रूप है। इसमें हमारे जीवन के लगभग सभी अनुभवों का समावेश है। जन्म (प्रसूति-गृह का दृश्य), शिक्षा (विद्यालय में), बचपन (मार्टेलो टावर का दृश्य), धर्म (लोटस-ईटर्स का वर्णन), दर्शन (समुद्र के किनारे घूमते समय स्टीफेन का संज्ञा-प्रवाह), संगीत (आरमाँड होटल), पत्रकारिता ('फ्रीमैन' अखबार के कार्यालय में), साहित्य (पुस्तकालय में), शहरी जीवन (वाँडरिंग रॉक्स में), सेक्स (मॉली ब्लूम के स्वप्न में), राजनीति (किरनान में) तथा मृत्यु (पैडी डिगनम की शव यात्रा) इसलिये यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार डबलिन वर्तमान विश्व का संक्षिप्त संस्करण है उसी प्रकार १६ जून, १९०४ वर्तमान जीवन के किसी भी एक दिन का नमूना है।

जाहिर है कि इन सारी बातों को समेटने के लिए जब उपन्यासकार ने लेखनी उठायी होगी तो उसके लिए आवश्यक रहा होगा कि वृहद पैमाने पर संकेतों, प्रतीकों और पैटर्नों का प्रयोग करता। वर्तमान जीवन को साकार और मुखर करने के लिए 'ऑडेसी' और 'हैमलेट' के साथ समानान्तर बनाते हुए नयी वास्तविकताओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिस्थापित करना अपने-आप में एक भारी प्रयोग है ।

: ३ :

जैसे विचार के क्षेत्र में जेम्स जॉयस ने प्रयोग किया वैसे ही शैली के क्षेत्र में भी । 'फिनेगन्स वेक' में नये शब्दों की इतनी भरमार है कि पढ़ते-पढ़ते ऊब आने लगती है, और कितनी जगहों पर तो अर्थ भी नहीं खुलते । गागर में सागर भरने का प्रयत्न स्पृहणीय जरूर है मगर सिर्फ प्रयोग की दृष्टि से । उपन्यास की दृष्टि से (वैसे कुछ आलोचक 'फिनेगन्स वेक' को एक कविता मानते हैं) यह कौशल बहुत श्लाघ्य नहीं है । 'युलिसिस' में नये शब्दों का उपयोग जरूर हुआ है मगर यहाँ महत्व की वस्तुएँ दूसरी ही हैं, जैसे कि ऊपर कहा गया है, तीन कहानियों को एक साथ जोड़कर वर्तमान युग के जीवन की करुणा को व्यक्त करना कोई आसान काम नहीं था और जो शैली उस समय प्रचलित थी उसमें सब-कुछ कह सकना भी सम्भव नहीं था। इसलिये दुजार्दिन, हेनरी जेम्स, कॉनरॉड, डोरोथी रिचार्डसन और मार्सल प्रूस्त आदि सभी पूर्वगामी लेखकों की शैलियों को परिपक्व और विकसित बनाकर जॉयस ने अपने उपन्यास का सर्जन किया ।

'युलिसिस' में जॉयस का मूल प्रयत्न रहा हैं पाठकों को उपन्यास के माध्यम से जीवन के सीधे सम्पर्क में लाना । बिना दखल दिये जीवन को अपने सही रूप में लेखक ने हमारे समक्ष रखा है । 'दी पोर्टेट ऑफ दी आर्टिस्ट' में उन्होंने लिखा था कि कलाकार का व्यक्तित्व धीरे-धीरे वैयक्तिकता और अस्तित्व के घेरे से बाहर निकल जाता है और अन्त में अपनी कृति का स्रष्टा कलाकार उस कृति के अन्तस में, उसके बाहर, उसके ऊपर अथवा उससे बिलकुल अलहदा होता है । यह बात 'युलिसिस' के लिए शतप्रतिशत ठीक है । निर्वैयक्तिकता प्राप्त करने के लिए ही इस उपन्यास में संज्ञा-प्रवाह शैली (Stream of Consciousness Technique) का प्रयोग किया है।

हम अपने व्यवहार में स्वयं को जितना अभिव्यक्त कर पाते हैं उससे कहीं ज्यादा हमारे मस्तिष्क के अन्दर होता है । हर क्षण दिमाग कुछ-न-कुछ सोचता रहता है । यदि किसी व्यक्ति को सही रूप में उद्‌घाटित करना हो तो उसके दिमाग के अन्दर चल रहे नाटक को बाहर लाने से हो सकता है । इसलिए जॉयस ने अन्य पूर्वगामी लेखकों की तरह 'इन्टीरियर मोनोलोग' (Interior Monologue) का प्रयोग किया है । कहीं सालिलोक्वी के माध्यम से, तो कहीं फ्लैश बैक से हमारे भूत, भविष्य और वर्तमान को एक में गूँथने का प्रयत्न किया है । जहाँ गर्टी मैकडॉवेल एक चट्टान पर बैठी अपने प्रशंसकों को खेलते देखती रहती है (नॉसिका प्रसंग, पृ० ३२९)और लियोपोल्ड ब्लूम उसको अपनी प्यासी नजरों से देखता होता है, वहाँ अप्रत्यक्ष इन्टीरियर मोनोलॉग का सर्वोत्तम प्रयोग हुआ है क्योंकि यहाँ गर्टी के दृष्टिकोण से, उसी के चेतना-प्रवाह की सहायता से दृश्य का वर्णन किया गया है । अर्थात् जॉयस ने अपनी ओर से एक शब्द भी कहे बगैर गर्टी के मन में जो कुछ चल रहा था उसको कागज पर उतार कर उस समय के सम्पूर्ण दृश्य की झाँकी दी है । इसी तरह चेतना-प्रवाह को नियन्त्रित करने के लिए 'फ्री असोसियेशन'(Free Association)का भी प्रयोग हुआ है जिसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार-शिला हैं स्मृति, मार्ग-दर्शक हैं ज्ञानेन्द्रियाँ और रूपदाता है कल्पना। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है मॉली ब्लूम की सालिलोक्वी जिसमें संज्ञा अपनी पूरी वक्रता के साथ उतारी गई है।

कविता और नाटक की टेकनीक की भी सहायता कहीं-कहीं ली गई है। रात के बारह बजे ब्लूम और स्टीफेन वेश्यागृह जाते हैं और वहाँ से बिल्कुल शराब में धुत लौटते हैं। यहाँ लेखक बड़ी सफाई से इस वेश्यागृह और इन दो यात्रियों का मिलन अपने शब्दों में न करके उन्हीं की अस्वस्थ मानसिक स्थिति का चित्रण करके करता है। ब्लूम और स्टीफेन के मस्तिष्क के अन्दर ही एक नाटक खेला जा रहा है : सारी घटनाएँ तिरकर पुनः घटित हो रही हैं। अतः जो कुछ भी उन्होंने वहाँ कहा था, किया था, वह सब दुहराया जाता है। इस घटना के आलेखन के लिए उनकी वेशभूषा, व्यवहार और शब्दावली आदि सभी कुछ के लिए निर्देश दिये गए हैं। इस टेकनीक से फायदा यह है कि लेखक से भूलकर भी अपने विचार व्यक्त करने की गलती नहीं हुई। और उन दो चरित्रों की कितनी ही अन्य छिपी इच्छाओं को प्रकट करने में सहायता मिलती है।

फिल्मों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि वे दो डाइमेंशन की होती हैं। इस सीमा को दूर करने के लिए वहाँ टाइम और स्पेस-मॉटेज (Time-and-Space-Montage) टेकनीक का प्रयोग होता है जिसमें समय को जोड़ने के लिए, भूत का वर्तमान और वर्तमान का भविष्य से सम्बन्ध बताने के लिए 'मल्टिपुल व्यू' (Multiple View) स्लो-अप्स (Slow-ups), फेड-आउट्स (Fade-outs), कटिंग (Cutting), क्लोज-अप्स (Close-ups), पैनोरमा (Panorama) और फ्लैश-बैक (Flash-back) का उपयोग होता है। 'युलिसिस' में स्पेस-मॉटेज का सर्वोत्तम प्रयोग "वॉडरिग राक्स'—प्रसंग में हुआ है। यहाँ छोटे-छोटे अठारह दृश्य हैं। चूंकि एक ही समय कई स्थान पर कई चीजें घटित हो रही हैं और सबका वर्णन आवश्यक है लेखक ने छोटे-छोटे डीटेल्स का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध बताने के लिए क्रास-रेफरेंस (cross-reference) दिया है। (इस टेकनीक का अच्छा प्रयोग आल्डस हक्सले ने अपने उपन्यास 'Point Counter Point' में किया है।

चेतना-प्रवाह को उपन्यास में उतारने में दो मुख्य कठिनाइयाँ हैं : एक तो यह कि प्रत्येक चरित्र की संज्ञा अलग किस्म की होती है; और दूसरी यह कि संज्ञा हमेशा प्रवहमान होती है। वह कभी स्थिर नहीं होती। इसलिए जॉयस ने प्रयत्न-पूर्वक इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए कुछ खास उपायों (devices) का सहारा लिया है। उन्होंने पहले तो मनोवैज्ञानिकों द्वारा मान्य अनुषंगों के रूप को स्वीकार कर लिया और मस्तिष्क के अन्दर होने वाली हलचल को उसी के अनुकूल बना दिया। दूसरे कितने ही बिम्बों और प्रतीकों की सहायता से वह सब कह दिया जो सीधे ढंग से नहीं कहा जा सकता। एक उदाहरण लें—अपनी माँ के मरने के समय स्टीफेन प्रार्थना नहीं कर सका। यह बात बार-बार स्टीफेन को याद आती है और उसके हृदय को कुरेदती रहती है। इसे वह 'Agenbite of Inwit' कहता है। यह अपराध-भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ अपनी माँ के प्रति नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज के प्रति है । प्रथम घटना इस बिम्ब की भूमिका तैयार होती है और उसके बाद तो नेस्टर, प्रोटियस तथा सर्स प्रसंगों में इस बिम्ब का जिक्र आता है । ठीक इसी प्रकार एक बड़ा मजेदार उदाहरण है—ब्लूम अपनी जेब में एक भुना हुआ आलू रखता है । यह उसके लिए एक प्रकार का ताबीज है । (और यह बात उसने वेश्या बेला को बताई थी) । वह बार-बार अपनी अँगुलियों से छूकर देख लेता है कि आलू अपनी जगह पर है कि नहीं क्योंकि जब भी वह कोई काम करने चलता है उसको विश्वास दिलाने के लिए कुछ चाहिए । खास तौर से ऐसे बहादुरी के कामों (?) के समय जैसे कसाई की दुकान से माँस लाना । जब वह उलझन में पड़ता है तब भी उसके हाथ उसी आलू पर जाते हैं, जैसे कि उस समय जब कि वह अपनी पत्नी के प्रेमी ब्लेजेज बॉयलन से लड़ने की स्थिति में होता है। कभी-कभी कुछ खास शब्द इन्हीं बिम्बों और प्रतीकों की तरह काफी महत्वपूर्ण होते हैं । 'Metempsychosis' (पुनर्जन्म) शब्द का उच्चारण मॉली ब्लूम सुबह-सुबह करना चाहती है मगर कर नहीं पाती । बड़ी मुश्किल से वह इतना ही कह पाती है 'met him pike hoses' । यह शब्द कैलीप्सो प्रसंग में पहली बार आता है तब जब ब्लूम से मॉली उसका अर्थ पूछती है । इसके बाद ब्लूम उस शब्द को भूल नहीं पाता । नॉसिका, साइरन, आक्सेन-ऑफ-दी' सन् प्रसंगों में बारी-बारी से उसे इस शब्द की याद आती रहती है । उसका कारण यह है कि जॉयस इस उपन्यास में पुनर्जन्म पर भी विचार करना चाहते थे । ब्लूम के लिए तो यह शब्द विशेष रूप से महत्वपूर्ण था पारिवारिक तथा सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में असंतोष होने के कारण जीवन की निस्सारता का भाव जो था उसे ।

'युलिसिस' पर यह दोष लगाया जाता है कि उसमें घटना-बाहुल्य है और घटनाएँ असंतुलित तथा असम्बद्ध हैं । वह इसलिए कि सामान्य चरित्रों की संख्या जरूरत से ज्यादा (unmanageable) है, और भौगोलिक दृष्टि से जिब्राल्टर, पेरिस भारत तथा इंगलैंड जैसे शहरों-देशों में घटनाएँ घटित होती हैं । इतना ही नहीं घटनाओं का विस्तार बहुत बड़ा है—स्टीफेन के विद्यार्थी जीवन से लेकर पेरिस में रहने के समय तक, ब्लूम तथा मॉली के भोले बचपन से लगाकर अब तक का जीवन । कितनी बड़ी है परिधि यह ! किन्तु इन सबको जॉयस ने जिस प्रकार गूँथा है वह आश्चर्यजनक है। इस उपन्यास में 'युनिटी' (unity) के अभाव का दोष अवांछित है । 'युलिसिस' की सारी कहानी सिर्फ एक दिन (१८ घण्टों) की है तथा एक ही शहर (डबलिन) की है । वर्णन दो जगहों से शुरू होते हैं : एक तो मार्टेलो टावर से जहाँ प्रातःकाल बक मुलिगन और स्टीफेन बातें करते होते हैं, तथा दूसरी जगह है मॉली ब्लूम का घर जहाँ से चौथा प्रसंग शुरू होता है। दोनों ही प्रसंग एक ही समय शुरू होते हैं : करीब आठ से दस बजे के बीच तथा घटनाओं का विकास भी एक-एक घन्टे के अन्तर पर बताया जाता है । हाँ, 'ऑडेसी' से जो समानान्तर बताये जाते हैं वे अपनी सामयिक विशेषताओं के साथ । आज का मनुष्य ओडिसियस जैसा साहसिक नहीं, जो अपनी भुजाओं के बल पर पोजीडॉन नामक देवता के गुस्से को भी बर्दाश्त कर सके। वह तो लियोपोल्ड ब्लूम है जो एक निकृष्टको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शहर की गलियों और सड़कों पर मारा-मारा फिरता है। इसलिए 'युलिसिस' एक महाकाव्य के पैटर्न पर होकर एक प्रहसन (burlesque) है जिसमें वर्तमान मानव की करुण स्थिति पर व्यंग्य किये गए हैं। यदि ओडीसियस नरभक्षियों (Lestrygonians) के प्रदेश में गया था ('ऑडेसी', अध्याय १०) तो 'युलिसिस' का ब्लूम सिर्फ इसलिए परेशान था कि उसे लंच खाने के लिए कोई स्थान नहीं मिल पा रहा था। मगर दोनों घटनाओं में समान बात यह है कि दोनों में ही खाने की बात है। डबलिन के एक सस्ते-से होटल में जब ब्लूम बैठा तो उसे वहाँ माँस की प्लेट से मनुष्य के माँस की मँहक आने लगी थी। ब्लूम वैसे ही आश्चर्य प्रकट कर रहा था जैसे कि ओडीसियस ने किया होगा जब लेस्ट्रिगोनियन्स उसके मित्रों को खा रहे थे। इसी प्रकार हर एक दृश्य और प्रसंग किसी-न-किसी प्रकार होमर की 'ऑडिसी' की घटनाओं पर आधारित है। परन्तु उसका अपना अलग-अलग रंग है, अलग टेकनीक है और अलग प्रतीक है। इन सबके बावजूद एक बात कही जा सकती है कि बिना होमर को बीच में लाये भी 'युलिसिस' की कहानी पूर्ण है।

: ४ :

कुल मिलाकर इतना कहना समीचीन होगा कि 'युलिसिस' एक प्रयोगकृति है जिसमें नाना प्रकार के उपायों (devices) की सहायता से तीन मुख्य पात्रों के साथ अन्य कितने ही चरित्रों के संज्ञा-प्रवाह को अंकित किया गया है। और उनके माध्यम से आज के जीवन की व्यथा और असहायता पर प्रकाश डाला गया है। विचार के क्षेत्र में जैसे असाधारण प्रयोग जॉयस ने किए हैं वैसे ही शैली के क्षेत्र में भी। यहाँ उनकी एक झाँकी ही प्रस्तुत की जा सकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिकृष्ण दे

आज का बालसाहित्य

"मुझे एक बार महिलाओं की एक संस्था में बालसाहित्य पर व्याख्यान देने के लि आमन्त्रित किया गया···मैंने उस सभा में देखा कि प्रायः सभी महिलाओं के हाथों ऊन और सलाइयाँ हैं। फिर भी मैंने इसलिए व्याख्यान शुरू कर दिया कि वे मेरी ओर देख रही थीं। मैंने बालसाहित्य की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए देश में बालसाहित्य की स्थिति की चर्चा आरम्भ की। थोड़ी देर तक बोलने के मैंने देखा कि एक महिला खड़ी हो गई। शायद कोई प्रश्न पूछना चाहती होगी, आशा से मैं रुक गया। मैंने सोचा, चलो एक महिला ने तो ध्यान से सुना। कि जब उस महिला ने प्रश्न पूछा तो मेरा बुरा हाल हो गया। उसने पूछा, "क्षमा क क्या आप ये बता सकेंगे कि आपके इस स्वेटर की बुनाई का नमूना आपकी श्रीमत ने कहाँ से प्राप्त किया था ?" और मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया। मेरी सारी आ धुँधली हो गई। मुझे लगा कि आज संसार का शायद ही ऐसा कोई देश हो जो बालसा को महत्त्व देता हो ?" ये विचार ब्रिटिश कौंसिल के चीफ़ लायब्रेरियन श्री जे० फर्ग्युसन के हैं। सचमुच आज बालसाहित्य का वह महत्त्व नहीं है, जो होना चा जबकि यह बच्चों के विकास के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना भोजन कपड़ा। बालसाहित्य की यह उपेक्षा केवल अविकसित देशों में ही हो, यह बात है। आज के विकसित देशों में भी बच्चों के साहित्य की बुरी दुर्दशा है। जो विक देश हैं, वहाँ आर्थिक और व्यापारिक पहलू इतना प्रबल है कि वह जीवन के भावना पक्ष को उभरने ही नहीं देता। वहाँ जीवन के मूल्य इतने कुण्ठित और गिरे हुए हैं कि अध्ययन की रुचि जागृत कर, स्वस्थ मानसिक विचारधारा का पोषण असम सा हो जाता है। अविकसित देशों में इन स्थितियों को विपरीत रूप मिलता है। आर्थिक असमानताएँ इतनी अधिक होती हैं कि इस मानसिक विचारधारा को वि सित होने का अवसर ही नहीं मिलता। इसके अलावा साहित्य के प्रचार-प्रसार इतनी अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है कि लोग उससे बहुत जल्दी सीन हो जाते हैं। इस तरह प्रायः सभी देशों में बालसाहित्य किसी-न-किसी रूप उपेक्षित बना हुआ है।

अविकसित देशों में बालसाहित्य की उपेक्षा के कारणों को यदि कुछ तक स्वीकारें भी तो प्रश्न यह उठता है कि विकसित देशों में यह उपेक्षा क्यों है

वास्तव में बच्चे, साहित्य-समाज और संस्कृति के लिए नवागत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं। यह सच है कि प्रत्येक युग की अपनी विशिष्टताएँ होती हैं, किन्तु बच्चों का उतना ही महत्व होता है, जितना होना चाहिए। आज की दुनिया में जहाँ हम एक ओर लोगों को प्रस्तर-युग से निकलते हुए देखते हैं, दूसरी ओर पूर्वी सभ्यता में पुराने विचारों और परम्परागत नियमों का कठोर पालन देखते हैं, तीसरी ओर नई विचार-धारा, नई खोज और जीवन के नये मूल्यों की स्थापना के लिए व्यस्त पश्चिमी सभ्यता को पाते हैं—वहाँ बच्चों के जीवन और उनकी समस्याओं का रूप भी उतना ही वैविध्य लिए हुए होता है। किन्तु इस वैविध्य के बीच भी एक समान विचारधारा की जो सूक्ष्म रेखा है, वह बच्चों के सुनियोजित और महत्वपूर्ण विकास की ओर इंगित करती है। यह रेखा कभी-कभी इतनी प्रभावहीन और धूमिल हो जाती है कि बच्चों के जीवन के मूल्यों का कोई महत्व नहीं रह जाता। यह तभी होता है जब कोई ऐसी विचारधारा अधिक प्रभावशाली बन जाती है, जो आज के युग के अनुकूल होती है। यह ठीक है कि युग के साथ साहित्य, संस्कृति और मानव जीवन के रूपों में भी अन्तर आता है, पर यह परिवर्तन बच्चों के जीवन पर किसी सीमा तक प्रभाव-शाली बनने देना चाहिए, यह बात विचारणीय है। इस परिवर्तन के कारण, उन्हें स्थस्थ मानसिक विचारधारा वाला व्यक्ति बनाने वाले मूलभूत आधारों तथा मनो-वैज्ञानिक नियमों का परिवर्तन तो नहीं किया जा सकता। इसलिए तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम उन मूलभूत आधारों को यों अनावश्यक समझकर अलग न करें, बल्कि बच्चों के विकास में उनकी महत्ता को ध्यान में रखकर उनका उचित उपयोग करें।

बालसाहित्य की रचना के मूलाधार वे ही तथ्य तथा मनोवैज्ञानिक नियम हैं, जो बच्चों को स्वस्थ मानसिक विचारधारा वाला व्यक्ति बनाने के लिए आवश्यक हैं। बालसाहित्य बच्चों के उन अंकुरों को पुष्ट करता है, जो बड़े होकर उन्हें जीवन के सत्य को पहचानने में सहायता करते हैं। पूर्वी योरप के ज्वीस कबीलों में तो यह प्रथा है कि जब तक शिशु माँ की गोद में है, पिता उसकी विशेष चिन्ता नहीं करता। किन्तु जैसे ही वह पढ़ने लगता है, उसका सम्मान बढ़ने लगता है। यह सम्मान उसके अध्ययन के स्तर के साथ आगे बढ़ता जाता है। बच्चे को समाज में उसकी योग्यतानु-सार उचित सम्मान देकर उसकी प्रतिभा और विकास की गति को बल प्रदान करते हैं।

आज विश्व जिन नये सिद्धान्तों और विचारों को लेकर बढ़ रहा है, उसमें बच्चों की अपनी पृथक स्थिति नहीं है। उनकी रुचि, मनोवृत्ति और स्वाभाविक विकास की गति का कोई महत्त्व नहीं रहा। आज तो हर देश अपनी नीतियों और विचारधाराओं में ही बच्चों को भी रंग लेना चाहता है।

रूस में लिखा जाने वाला आज का बालसाहित्य भले ही काल्पनिक कथाओं की आधारभूमि पर खड़ा हो, पर उसमें नई दुनिया का आभास अवश्य मिलेगा। आज आसमान में उड़ने वाली बात केवल कल्पना तो नहीं रह गई, उसमें विज्ञान की प्रगति भी किसी-न-किसी रूप में सम्मिलित होगी। इसलिए ऐसी क्रियाशील कल्पना तथा उसे जागृत करने वाले साहित्य को ही रूस की साम्यवादी विचारधारा स्वीकारती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ यदि जीवन का निर्माण साम्यवादी विचारधारा के प्रतिकूल होता देखते हैं अभिभावक अपने बच्चों को तुरन्त सुधारने का प्रयत्न करने लगते हैं। रूस में बच्चों के लिए पौराणिक-धार्मिक कथाओं का कोई महत्त्व नहीं है। ये कथाएँ हृदयहीन संसार को बढ़ावा देती हैं। ये तो वहाँ के बच्चों के लिए अफीम की गोली की भाँति समझी जाती हैं। वहाँ यदि बच्चा रूसी सिपाही, वैज्ञानिक, उड़ाका या मज़दूर बनता है तो उसे विकास की दिशा में अग्रसर समझा जाता है। आज के रूसी बालसाहित्य में पुरानी सभ्यता और परम्परा को भूलकर नई मान्यताओं को ग्रहण करने की बात होती है। वहाँ बच्चों के प्राकृतिक और स्वाभाविक विकास पर बल न देकर, उन्हें नई साम्यवादी विचारधारा से अवगत कराया जाता है।

जर्मनी में दो महायुद्धों के बाद बच्चों के साहित्य के रूप में बहुत से परिवर्तन आ गए हैं। वहाँ बचपन से ही यह देखा जाता है कि बालक में ऐसी विचारधारा जन्म ले जो उसके जीवन के मूल्य और उद्देश्यों को जानने के योग्य बना सके। जर्मनी में बच्चों को आरम्भ से ही 'जीवन-युद्ध' में लड़ने योग्य एक कर्मठ सिपाही बनाने के प्रयत्न किए जाते हैं। किन्तु इसका वास्तविक परिणाम यह होता है कि वे जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने के योग्य नहीं रह पाते, उनमें चरित्र की दृढ़ता का अभाव होता है; उनमें उत्तरदायित्व सम्हालने की तत्परता नहीं रह जाती, उनके जीवन में आत्म-विश्वास की भावना नहीं जागृत हो पाती और उनके कार्यों का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं रह जाता। आज जर्मनी के बालसाहित्य में वहाँ की राजनैतिक विचारधारा बच्चों को आप्लावित किए रहती है। यह वहाँ की स्थितियों के अनुकूल भले ही हो, पर उनके जीवन में वह रस नहीं रहता जो कि प्रकृति-प्रदत्त है। बड़े होने पर वे बच्चे अपने जीवन को एक विशेष प्रकार के साँचे में ढला हुआ पाते हैं जिसमें कि किसी प्रकार का परिवर्तन लाने की आशा नहीं रहती।

अमरीका में आर्थिक प्रवृत्तियाँ इतनी प्रबल हैं कि वहाँ का बालसाहित्य एक निश्चित उद्देश्य लेकर लिखा जा रहा है। यह उद्देश्य, वहाँ की विचारधारा के अनुसार बच्चों के जीवन को प्रशस्त बनाता है। अमरीका में आज जीवन को सुखी ढंग से बिताना एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसलिए वहाँ के बालसाहित्य में जीवन के इसी पक्ष को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति मिलती है। पुस्तकों का बच्चों के लिए कहाँ और कितना महत्त्व है, यह बात भी प्रायः निश्चित-सी ही है। वहाँ जीवन के भावनात्मक पक्ष पर कम, व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल दिया जा रहा है। अमरीकी बालसाहित्य, काल्पनिक परिकथाओं, जादूभरी कहानियों को नहीं स्वीकारता। ये विषय बच्चों के लिए घातक तथा कुप्रभाव डालने वाले माने जाते हैं। वे जीवन का सही मूल्य जानने में भूल कर सकते हैं। ऐसे साहित्य के स्थान पर उन्हें सत्य बातों का ज्ञान कराना अधिक समीचीन होता है। मशीन कैसे बनती है, हवा में कैसे उड़ते हैं, पानी पर जहाज़ कैसे चलता है आदि बातें अधिक उपयोगी मानी जाती हैं। अमरीकी बच्चों के साहित्य में मनोरंजन का पक्ष तो पर्याप्त मात्रा में होता है किन्तु उसका भावनात्मक पक्ष बच्चों की स्वाभाविक रुचि, मनोवृत्ति और विचारों के अनुकूल होने की अपेक्षा व्यावहारिक अधिक होता है। वह किन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी शक्तियों से संचालित होता है, जिनकी लगाम बड़ों और पूँजीवादी विचारधारा वाले लोगों के हाथ में होती है।

फ्रान्स में अमरीकी बच्चों के साहित्य का विपरीत रूप मिलता है। वहाँ बच्चों को युवावस्था के लिए तैयार किया जाता है। सुखी जीवन बिताने के लिए उन्हें जीवन से संघर्ष करना सिखाया जाता है। वहाँ जीवन का भावनात्मक पक्ष प्रबल होता है और मनोरंजन का कोई महत्त्व नहीं होता। वहाँ तो एकमात्र उद्देश्य होता है कि बच्चे युवक बनकर जीवन की परिस्थितियों से संघर्ष करके उन्हें अपने अनुकूल बनाना सीखें। किन्तु अमरीका में बच्चों के मनोरंजन और उनके सुख का पूरा ध्यान रखा जाता है। वहाँ बच्चों के लिए माता-पिता के आदेश ही सब-कुछ होते हैं। उनकी अपनी भावनाओं का कोई महत्त्व नहीं होता। दूसरी ओर फ्रान्स के बच्चों में युवावस्था के अंकुर उगाए जाते हैं, जो भविष्य में उन्हें जीवन का एक सफल उपभोक्ता बनाते हैं।

और जब भारतीय बालसाहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं तो लगता है कि हम बच्चों को सदियों पीछे ले जाना चाहते हैं। वही जादूभरी घाटियाँ, परिकथाएँ, पुराणों की कहानियाँ घुमा-फिराकर सुनाते रहते हैं। बच्चों का एक प्रमुख पत्र पिछले दस से भी अधिक वर्षों से वही पुरानी दास्तान दुहराए जा रहा है। दूसरी ओर हम आगे बढ़ने का, नई दुनिया का सपना देखते हैं। पर यह भूल जाते हैं कि नई दुनिया के सपनों को साकार करने वालों को हम पुराने ही साँचे में ढाले जा रहे हैं। यहाँ के बालसाहित्य के लेखक और प्रकाशक अधिकांश ऐसे हैं, जो इसकी ओट में धन कमाने का उद्देश्य-मात्र लेकर चलते हैं। शायद इसीलिए बच्चों के प्यारे चाचा नेहरू ने एक बार कहा था, "दुर्भाग्य है कि जो लोग पुस्तकें लिखते और प्रकाशित करते हैं, उनमें से बहुत कम ऐसे हैं जो यह सोचते हैं कि बच्चों की वास्तविक माँग क्या है ?"

आज के जीवन में बच्चों का जो स्वरूप है, वह किसी-न-किसी राजनीतिक अथवा पिछड़ी हुई सामाजिक विचारधारा से प्रभावित है। बच्चों को जिस मनोवैज्ञानिक साहित्य और व्यवहार की आवश्यकता होती है, उसे बिल्कुल ही अलग कर दिया गया है। तद्युगीन समाज और वातावरण के अनुकूल बच्चों को बनाना तो आवश्यक है, किन्तु उनकी मूल-प्रवृत्तियों को विकसित न होने देना, उनके प्रति अन्याय है। इससे वे एक ऐसा मॉडल बनकर तैयार होते हैं, जो किसी एक विशेष कम्पनी में ढला हुआ होता है।

आज संसार के प्रायः सभी देशों में बच्चों की स्वतन्त्रता, प्रवृत्ति और विचारधारा का कोई मूल्य नहीं रह गया। पर क्या यह गुत्थी यूँ ही अनसुलझी ही रहेगी ? बदलते हुए युग और प्रतिमानों के साथ इसे भी सुलझाना होगा और ऐसे बालसाहित्य की रचना करनी होगी जो इस नये परिवेश में रहकर भी अपनी मूल विशेषताओं और प्रवृत्तियों को कम न होने दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक हिन्दी कविता में 'विराट्' तत्त्व

विराट्ता के प्रति आकर्षण और उसके सामने समर्पण की भावना मनुष्य में आदि काल से आज तक किसी-न-किसी रूप में चली आ रही है। वेदों से लेकर आज तक के साहित्य में यह विराट्' तत्त्व—अपने अलग-अलग रूपों में—अभिव्यक्ति होता रहा है। मनोविज्ञान के अनुसार यह विराट् साधना मनुष्य की स्वाभाविक हीनताओं और अक्षमताओं की काल्पनिक संसार में पूर्ति है। यह स्वाभाविक ही है कि मनुष्य अपने ज्ञान और शक्ति की सीमित परिधियों से तंग आकर किसी विराट् तत्त्व की ओर आकर्षित हो—फिर चाहे वह इस विराट् की धारणा ईश्वर के रूप में करे या किसी महान आदर्श के रूप में। कई बार तो लगता है कि यह विराट् तत्त्व शायद महान साहित्य का एक स्थायी उपकरण है। खैर इस बारे में काफ़ी मत्भेद की गुंजाइश है, लेकिन साहित्य में इस विराट् तत्त्व के महत्त्व को बहुत कम लोग झुठला सकेंगे। यह विराट्ता न केवल किसी साहित्य को विशाल और व्यापक चित्रफलक देती है, बल्कि पाठक की आदिम समर्पण भावना को जगाकर, उसकी केन्द्रापगामी प्रवृत्तियों को उभार कर, उसे उस स्थिति के लिए प्रस्तुत करती है, जिसे मनोविज्ञान में तन्मयता या तादात्म्य की स्थिति कहा जाता है, और जिसे कलाओं के तथा प्रकृति के सौन्दर्यानन्द का प्रमुख आधार माना जाता है। यदि कविता मनुष्य के हृदय की मुक्तावस्था का, जिसे शुक्लजी रसदशा कहते हैं, साधन है, तो कविता में विराट्तत्त्व उसकी इस क्षमता का प्रमुख स्रोत है। पर कविता में विराट् तत्त्व की भूमिका सिर्फ इतनी ही नहीं है। विराट् तत्त्व न केवल कविता की विषय-वस्तु को ही गरिमा देता है, बल्कि कविता की शिल्प-शैली को भी उदात्त बनाता है। यूनानी दार्शनिक लोंजाइनस ने जिस उदात्त तत्त्व को काव्य में इतना अधिक महत्त्व दिया है, उसके वस्तुपक्ष के मूल में भी, स्वयं लोंजाइनस के अनुसार महान् विचारों की उद्भावना के रूप में यह विराट् तत्त्व ही रहता है।

साहित्य में यह विराट्-तत्त्व कई रूपों में व्यक्त होता है। भागवतकार ने जब आकाश, वायु, सलिल, पृथ्वी, नक्षत्रों, नदियों और दिशाओं को हरि का शरीर कहा तब वह अपने ढंग से इसी विराट्-भावना की अभिव्यक्ति कर रहा था।[1] खलील जिब्रान की अधिकतर कविताओं के आकर्षण का एक प्रमुख आधार यही विराट् तत्त्व

१. खं वायुमग्निं सलिलं महीश्च ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमाणि
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरम् यत्किंचभूतं प्रणमेदनंन्यः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उनकी गुलामी नामक कविता की ये पंक्तियाँ देखिये :

सात हज़ार बरस पहले से, जब मैंने पहली बार जन्म लिया था, आज तक
मैं ज़िन्दगी के गुलामों को अपनी भारी बेड़िया खींचते हुए देखता रहा हूँ
मैं पृथ्वी के पूर्वी और पश्चिमी छोर तक गया हूँ
मैंने सभ्यता के जुलूसों को उजाले से अंधेरे में जाते देखा है
और देखा है कि हर एक नरक तक खींचा गया है
गुलामी के जुए में जुती हुई अपमानित आत्माओं द्वारा
मैं बेबीलोन से काहिरा तक और एनदावर से बग़दाद तक गया हूँ
मैं कांगो के कूलों से फ़रात के तटों तक समय के साथ-साथ चला हूँ
नील के मुहानों से असीरिया के मैदानों तक
अेथेन्स की रंगभूमियों से रोम के गिरजाघरों तक
और हर जगह गुलामी को
अज्ञान के एक गौरवपूर्ण जुलूस में घूमते देखा है।

हिन्दी की प्राचीन कविता में और आधुनिक छायावादी कविता में भी, इसका प्रयोग रहस्य-भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए खुलकर हुआ है। पर हिन्दी की रूमानी कविता में विराट्-तत्त्व ने अपनी अभिव्यक्ति एक दूसरे रूप में भी प्राप्त की है। बच्चन कहते हैं :

सृष्टि के आरंभ में मैंने उषा के गाल चूमे
बालरवि के भाग्य वाले दीप्त भाल विशाल चूमे
प्रथम संध्या के अरुण दृग चूमकर मैंने सुलाये
तारिका कलि से सुसज्जित नव-निशा के बाल चूमे
वायु के रसमय अधर पहले सके छू होठ मेरे
मृत्तिका की पुतलियों से आज क्या अभिसार मेरा
कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।

इसे प्रकृतिगत विराट्ता की रूमानी अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

छायावादोत्तर हिन्दी कविता में विराट् तत्व के तीन प्रमुख रूप देखे जा सकते हैं। देशगत या भौगोलिक, कालगत या ऐतिहासिक और मानवीय। देशगत विराट्ता प्रगतिशील कविता में आकर एक अन्तर्राष्ट्रीय भावनावाद के रूप में साकार हुई है और इसका सबसे सुन्दर उदाहरण है नरेश मेहता की लम्बी कविता 'समय देवता'।

'समय देवता' अपने समय के संसार के भूगोल और इतिहास का एक विराट् चित्र है। सजग अलंकृति से सुसज्जित यह लम्बी कविता विश्व की प्राकृतिक संरचना का एक स्नेह-सिक्त चित्र ही नहीं, प्रकृति और वर्ग-स्वार्थों की बाधक शक्तियों के विरुद्ध जूझती हुई विराट् प्रगतिशील मानव-शक्तियों की वाणी भी है। भिन्न-भिन्न देशों की प्रकृति और लोक-जीवन का उदार मानववादी दृष्टि से किया हुआ यह चित्रण हिन्दी कविता में अभूतपूर्व है। इस कविता से कई उद्धरण देने का लोभ संवरण करना काफ़ी कठिन है। पहले दूर से, इस घूमती हुई पृथ्वी का एक चित्र देखिये :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूनानी मुनि प्लेटो की मुद्रा में बैठे समय सनातन
घूम रही मेरी पृथ्वी में आँख गड़ाए देख रहे क्या ?
बिछा हुआ है देव तुम्हारे प्रलय-सृजन की आँखों का आकाश
हमारे देशान्तर औ अक्षांशों के इन लम्बे बाँसों पर

और सोवियत धरती का यह चित्र :

यह यौवन की भूमि सोवियत
जहाँ मनुज की उसके श्रम की होती पूजा
पूंजी औ साम्राज्यवाद की तोड़ बेड़ियाँ
हाथों में नवजीवन की उल्काएँ लेकर मनुज खड़ा है, कुतुब सरीखा
उसके चलने में लोहा है
कौन रोक सकता है मानव को चलने से
जिसके संग संग ही आदिकाल से इन्द्र चल रहा
मनुज चल सके इसीलिए तो सूर्य चल रहा
सबसे पहले इसी भूमि पर श्रम की जयजयकार हुई थी
एक पुरुष लेनिन की वाणी शतकंठी हुंकार हुई थी
धीमे बोलो समय देवता !
उसी पुरुष की यह समाधि है
अभी-अभी जो कर्म-निरत था
अब आँखें आकाश मींचकर श्रम के सपने देख रही हैं !

इन पंक्तियों में विराट्-तत्त्व के एक तीसरे रूप—मानव का विराट् रूप में चित्रण का भी एक सुन्दर उदाहरण है।

चीन का यह चित्र देखिए :

यह जो पीली भूमि दीखती देव !
यही है पीत सूर्य की पीली वसुधा
जिसका होता क़हवा मीठा
श्रमण चीन का पीला चीवर अल्ताई पर बिछा हुआ !
वे अफ़ीम के खेत उदुम्बर रंगों में डूबे सोये हैं।
किन्तु आज तो चीन देश की वसुधा माता
झुलसी हुई मृतप्राय है
वे विदेश पूँजी की कीलें जो छाती में ठुकी हुई थीं
तीस वर्ष के बाद आज वे उखड़ रही हैं
मेरी चीनी माता की आँखों में कोई भाव नहीं है
राग प्रेम कुछ नहीं बचा है
केवल नयन-गगन में भूख-प्यास की चीलें मँडराती हैं
आज वर्दियां तीस साल के बाद उतरतीं
लगातार बारूद उगलते बन्दूकें भी हाँफ रही हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछली सारी फ़सलों के वे महल जल गये
जिनके हरे गलों में टँके हुए तावीज़-गुलामी टूट रहे हैं
जाओ कालिदास के बादल चीनी धरती बुला रही है।
जाओ हे सत्तरंगी सूरज चीन देश में भोर हुई है।

और अमेरिका ?—

डमरू जैसा देश दिख रहा अमरीका का
कोलम्बस के पोत लगे थे इसके तट पर
उपनिवेश औ शोषण के हित
गगन विचुम्बित इन महलों की मनुज नींव है
जिनमें पैसे का निवास है
एटम औ उदजन बम है नभगामी महलों के कर मे
चाह रहे जो सृष्टि-धरा को केवल हिरोशिमा कर देना
इसने पैसों की ईंटों से चाहा ऊँचे महल बनाना
किन्तु बन गये आज दैत्य ये
खड़े हुए हुंकार कर रहे,
जिनकी अंधकार की लम्बी परछाहीं से
अतलांतिक औ महा पैसेफ़िक कांप रहे हैं।

निस्सन्देह हिन्दी की किसी और कविता में सामयिक विश्व का ऐसा विराट् चित्र नहीं मिलता। भौगोलिक और ऐतिहासिक विराट्-तत्व की प्रगतिशील अभिव्यक्ति शमशेर की एक कविता में भी बड़े सुन्दर ढंग से हुई है।

देखो न हकीकत हमारे ज़माने की कि जिसमें
होमर एक हिन्दी कवि सरदार जाफ़री को
इशारे से अपने क़रीब बुला रहा है
कि जिसमें फ़ैयाज खाँ बिटोवन के कान में कुछ कह रहा है
मैं शेक्सपियर का ऊँचा माथा उज्जैन की घाटियों में झलकता हुआ देख रहा हूँ
और कालिदास को वेमर के कुंजों में विहार करते हुए...
मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टेच्यू उतना ही प्यारा है
जितना मास्को का लाल तारा
मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुन रहा हूँ
जो वोल्गा से आये।

कविता में देश और काल की सब संकीर्ण परिधियों को तोड़कर उभरने वाली हमारे ज़माने की हकीकत की व्यंजना बड़े सुन्दर ढंग से की गई है।

परम्परागत शैली में एक सूफ़ी मस्ती को मिलाकर इसी सत्य की अभिव्यक्ति नीरज ने इस प्रकार की है :

इसको भी अपनाता चल, उसको भी अपनाता चल
राही हैं सब एक डगर के सब पर प्यार लुटाता चल !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई नहीं पराया सारी धरती एक बसेरा है
इसका खेमा पश्चिम में तो उसका पूरब डेरा है
श्वेत बरन या श्याम बरन हो सुन्दर या कि असुन्दर हो
सभी मछरियाँ एक ताल की क्या तेरा क्या मेरा है
गलियाँ गाँव गुंजाता चल, पथ-पथ फूल बिछाता चल
हर दरवाज़ा रामदुआरा सबको शीश झुकाता चल !

प्रगतिशील विराट् तत्त्व की अभिव्यक्ति मेरी अपनी एक कविता में इस प्रकार हुई है :

तुम ठीक कहती हो कि मैं तुम्हें···
लेकिन मैं क्या करूँ
मेरे ज्ञान ने मेरी संवेदनाओं के क्षितिज कितने फैला दिये हैं
कि दुनिया के कोने-कोने में मैं अपने दोस्तों और दुश्मनों को देख रहा हूँ
मेरे दोस्त :
जो मेरे दुश्मनों से एक निर्णायक लड़ाई में जूझ रहे हैं
और पैरिस के किसी चौराहे पर फहरता हुआ मजलूमों का एक बुलन्द इरादा,
जंजीबार में उठी हुई मुट्ठियों का एक जुलूस,
न्यूयार्क में रंगभेद के खिलाफ़ कड़कता हुआ एक नारा
मुझे इस तरह रोमान्चित कर जाता है
जिस तरह महीनों की जुदाई के बाद तुम्हारा पहला आलिंगन !
और टोकियो में एक मजबूरन टूटी हुई हड़ताल,
लियोपोल्डविल में एक गिरफ़्तारी,
सिंगापुर में एक झुकी हुई गर्दनों का वापस लिया हुआ आन्दोलन
मेरे दिल पर अवसाद का इतना बोझ रख जाता है
कि मैं घंटों किसी से बात भी नहीं कर पाता !

ऐतिहासिक विराट्ता के कुछ सुन्दर उदाहरण रांगेय राघव के खण्डकाव्य 'मेधावी' में मिलते हैं। इतिहास का मानवीकरण करके उसकी विराट्ता का वर्णन देवराज की कविता 'इतिहास-पुरुष' की इन पंक्तियों में मिलता है :

व्यापक मैं हूँ विराट्
रोम-रोम में मेरे ज्ञान क्रिया भावाकुल चित्त लोक बस रहे हैं
बेगिनती चेतना की स्वप्न-बोध किरणों के
तार उलझ-फँस रहे हैं
मैं हूँ सहस्र नेत्र : लाख रंग रूपों पर
दृग मेरे गड़ रहे हैं
मेरे हजार बाहु संसृति के कण-कण को
बरबस पकड़ रहे हैं
मेरी विशाल बुद्धि सूर्य-चन्द्र-तारों के ताप-वेग नाप रही
मेरी अतर्क्य शक्ति जल, थल, समीर, व्योम, विद्युत को चाँप रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में प्रगतिवाद ने हिन्दी कविता को विराट् तत्त्व की अभिव्यक्ति के जितने अनुकूल अवसर दिये, उतने हिन्दी की किसी अन्य आधुनिक प्रवृत्ति ने नहीं दिये।

अरविन्दी प्रभाव में पनपनेवाली एक नई काव्य-प्रवृत्ति—सनातन 'सूर्योदयी' कविता में एक विशेष प्रकार की स्पेस-धर्मी विराट्ता के दर्शन होते हैं। यह विराट्ता रहस्यवादी विराट्ता से मिलती-जुलती होते हुए भी बहुत हद तक उससे भिन्न है। ऐसे विराट् तत्त्व के कुछ उदाहरण वीरेन्द्र कुमार जैन की कविताओं में मिलते हैं। इसी स्कूल के एक नये कवि श्री वारीन्द्र कुमार की एक कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं :

भेद कर व्यक्तित्व अपना कुछ इस तरह मैं फैल जाता
शून्य महदाकार के अस्तित्व में ही डूब रहता
न वात्याचक्र होता, न भँवरों की घिरन ही
न रेत पर अंकित अजाने चिह्न ही।
न होता दुःख, न होती सुख की बिछलन
किन्तु होता सिर्फ़
सप्तरंगी किरण-जल से प्लावित—यह अनन्त आकाश
नीलाभ, स्वर्णिम और स्वर्गिक !

और जहाँ तक प्रयोगवादी कुण्ठित लघुमानवों का सवाल है, इन बिचारे बौने कवियों को अपनी क्षुद्र अहंताओं, कुण्ठाओं और विकृतियों के वर्णन से ही फ़ुरसत कहाँ मिली कि ये अपने से बाहर निकलकर विराट्ता को देख सकते। पर फिर भी विराट्ता ने उन्मेश के कुछ क्षणों में इन कवियों को भी कभी-कभार अपना माध्यम बनाया ही है। लघु मानववादियों के नेता अज्ञेय में यह क्षमता अन्य लघुमानवों की अपेक्षा अधिक रही है। उनकी एक कविता है :

चुप-चाप चुप-चाप
झरने का स्वर हम में भर जाए,
चुप-चाप चुप-चाप
शरद की चाँदनी
झील की लहरों पर तिर आए,
चुप-चाप चुप-चाप
जीवन का रहस्य
हमारी आँखों में गहराए,
चुप-चाप चुप-चाप
हम पुलकित विराट् में डूबें
और विराट् हममें, मिल जाए
चुप-चाप चुप-चाप···

विराट् में चुपचाप डूबने का यह चित्र वास्तव में सुन्दर है और इस बात का प्रमाण है कि अहम्वादी व्यक्ति भी विराट् के पवित्र स्पर्शों से वंचित नहीं रखे जाते, बशर्ते कि उनमें कुण्ठाओं और विकृतियों से बाहर निकल सकने का थोड़ा भी माद्दा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० श्रीमती गिरीश रस्तोगी

संस्कृत नाटकों में संगीत की परम्परा

वैदिककाल से ही जन-जीवन के बीच नाटक का किंचित् स्वरूप विद्यमान था। वैदिक साहित्य, इतिहास, पुराण और लोकगीत आदि से प्रेरणा पाकर ही संस्कृत नाटक परिष्कृत रूप में हमारे सम्मुख आए। ऋग्वेद-काल में नृत्य, गीत, वाद्य तथा अभिनय, संवाद एक-दूसरे से अभिन्न थे। संगीत के साथ-साथ नाटक का जन्म हो रहा था। उसका विकास अवश्य स्वतन्त्र रूप में नहीं हो पाया था। लोक-जीवन में प्रचलित नाटक नृत्य-गीत से पूर्ण होते थे क्योंकि जनता की रुचि यथार्थ जीवन के ठोस धरातल की ओर उतनी नहीं थी जितनी उत्सव मनाने, आनन्दानुभव करने तथा हर्षातिरेक में मस्त हो जाने की ओर थी। इसी कारण वे नाचकर, गाकर, अभिनय किया करते थे और अपनी मनोरंजन-प्रिय प्रवृत्ति को संतुष्ट करते थे। भरतमुनि ने जन-जीवन में नाटक की ओर यह विशिष्ट प्रेम-प्रवाह एवं रोचकता देखकर नाटक-कला को नियमों में बांधकर उसका गंभीर विवेचन किया और उसे एक परिष्कृत तथा विकसित साहित्य का रूप प्रदान किया। डॉ० दशरथ ओझा का कथन है—

"जन-नाटक तो स्वाभाविक रूप में जन-समुदाय में विद्यमान था ही, केवल इतना ही अवशिष्ट था कि जन-नाटकों का अभिनव संस्कृत रूप उपस्थित किया जाय जिससे समस्त वर्णों एवं सभी जातियों का मनोरंजन तथा उन्नयन हो। यही काम भरतमुनि ने किया।"[1]

अस्तु यह नितान्त सत्य है कि जन-समूह की रंजन-प्रवृत्ति को देखते-समझते हुए सर्वप्रथम भरत ने ही नाट्यशास्त्र में नाटक के साथ-साथ संगीत का भी विशद विवेचन किया।

संगीत की यह धरोहर हमें संस्कृत नाटकों में अपने अक्षुण्ण रूप में प्राप्त होती है। नाट्य-कला तथा संगीत-कला के शास्त्रीय विवेचन के उपरान्त संस्कृत में साहित्यिक नाटकों की परम्परा विकसित हो चली। इन संस्कृत-नाटकों का उद्देश्य भाषा एवं भावों के योग द्वारा उस रस का साधारणीकरण करना व काव्यानन्द की अनुभूति कराना था, जिसे 'ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है।'[2]

१. डॉ० दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ० १६।
2. "The Sanskrit play does not attempt to present a realistic view of everyday life. It relies largely on evoking the right sentiments (Rasas). The play's purpose is accomplished of this evoking of sentiments appropriate to the theme is brought about by the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसी 'काव्यानन्द' की सृष्टि करने के हेतु संस्कृत नाटककारों ने संगीत का प्रश्रय लिया क्योंकि संगीत मानव-मन को अधिक स्पर्श करता है अतः आनन्दानुभूति का कारण होता है। एक विशेष बात केवल यह है कि इन नाटकों में नृत्य एवं वाद्य का जितना प्रयोग हुआ है उतना गीत का नहीं। विभिन्न उत्सवों के शुभावसर पर प्रजा के नृत्य का वर्णन किया गया है। स्थान-स्थान पर वाद्य-वादन की चर्चा की गई है। फिर भी सम्पूर्णतः दृष्टि डालने पर यह अवश्य ज्ञात हो जाता है कि नाटककारों को संगीत-कला का पर्याप्त ज्ञान था और साथ ही जनता के बीच प्रचलित उत्सवों तथा जनता की नाचने-गाने की प्रवृत्ति के विषय में ज्ञान था। इसी कारण उन्होंने समयानुसार ताल, लय, स्वर, राग, नृत्य, वादन, आदि का शास्त्रीय रीति से भी वर्णन किया है।

संस्कृत नाटकों में संगीत का प्रयोग जिन अवसरों पर जिन रूपों में किया गया है वह निम्न प्रकार से है—

१. नाटक के प्रारम्भ होने से पूर्व नान्दी के अन्तर्गत अथवा नान्दी के उपरान्त सूत्रधार अथवा नटी के द्वारा गान।
२. राज-दरबार में नृत्य, वादन तथा गीत।
३. विविध उत्सवों पर प्रजागण द्वारा आनन्दातिरेक में नृत्य एवं सहगान—उदाहरणार्थ मदनोत्सव आदि।
४. संगीतशाला में नृत्य, गान तथा वादन-शिक्षा।

भरत के नाट्यशास्त्र में विहित नियमों के अनुसार नाटक प्रारम्भ होने से पूर्व कुछ अन्य कार्यों का सम्पन्न होना अनिवार्य था। उदाहरणार्थ मृदंग की ध्वनि के उपरान्त वाद्य-वादन और पुनः तांडव नृत्य के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश होता था। इस दृष्टि से नाटक से पूर्व संगीत द्वारा दर्शक-मंडली को आकर्षित किया जाता था और नाटक के अनुकूल वातावरण की सृष्टि की जाती थी। पूर्व-संगीत द्वारा नाटक की सफलता के लिए ईश्वर-स्तुति की जाती थी। सूत्रधार के रंगमंच पर आने पर भी नट, नर्तक आदि द्वारा संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता था ऐसा कई नाटकों से ज्ञात होता है। 'वेणी संहार' नाटक के प्रथम अंक में सूत्रधार कहता है—

"एते खल्वार्यविदुराज्ञया पुरुषाः सकलमेव शैलूषजनं व्याहरन्ति-
प्रवर्त्यन्तामपरिहीयमानमातोद्यविन्यासादिका विचयः।"

(ये राजकर्मचारी आर्य विदुराज्ञा से सभी नटों को आज्ञा देते हैं कि वे गाना, बजाना और नृत्य बिना किसी न्यूनता के करते जाएँ।)

सूत्रधार कहता है—

"तत्किमिति परिपार्श्विक, नारम्भ्यसि कुशीलवैः सह संगीतकमेलकम्।"[1]

(भाई, नटों के साथ सांगोपांग संगीत आरम्भ क्यों नहीं करते ?)

grace and skill of the language and gestures."
—Wilson, Raghavan, Vidyabhushan : The theatre of the Hindus : P. 214.

१. भट्टनारायण : वेणी संहार : प्रथम अंक : पृ० ९-१२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार 'मुद्राराक्षस' नाटक में सूत्रधार रंगमंच पर आकर कहता है—

"तद्यावद् इदानीं गृहं गत्वा गृहिणीमाहूय गृहजनेन सह संगीतकमनुतिष्ठामि ।"[1]

इसी प्रकार 'मृच्छकटिक' में भी सूत्रधार कहता है—

"अये, शून्येयमस्मत्संगीतशाला, क्वनुगता कुशीलवा भविष्यन्ति "[2]

इन नाटकों के अतिरिक्त कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'[3] और भास के 'प्रतिभानाटक'[4] के प्रथम अंक में भी सूत्रधार के कहने पर नटी द्वारा संगीत-प्रयोग का वर्णन किया गया है । यह प्रक्रिया हमें सभी नाटकों में मिलती है ।

संगीत का दूसरा स्वरूप हमें राज-दरबारों में प्राप्त होता है जो राजदरबारियों की संगीत-प्रियता तथा संगीत के प्रचलन का संकेत करता है । नाटक के पात्र राजा राजकुमारी के रूप में संगीत के अनन्य प्रेमी दिखाये गए हैं । डा० वी० राघवन् का कथन इस मत को और भी पुष्ट कर देता है—

"नृत्य और गीत प्राचीन भारत में उच्च कोटि की दरबारी-कलाओं में से हैं ये नृत्य एवं गीत गाँवों तथा गलियों में दिखाये जानेवाले लोकगीत एवं लोकनृत्य नहीं थे । राज-महलों में नाट्य के लिए पृथक् शालाएँ होती थीं ।[5]

कालिदासकृत 'मालविकाग्निमित्र' में नायिका मालविका दरबार में राजा के सम्मुख 'छलिक' नृत्य करती है । उसका गुरु गणदास नृत्य प्रारम्भ होने से पूर्व दरबार में कहता है—

"महाराज शर्मिष्ठा द्वारा प्रकाशित मध्यम लय समन्वित चतुष्पद गान है, उस में छलिक नामक अभिनय से चमत्कृत गान प्रस्तुत होगा ।[6]

इस नृत्य के साथ अभिनय, गान, वाद्य तथा मुद्राओं का समन्वित रूप चलता है । अतएव यह ज्ञात होता है कि गान के साथ नृत्य का भी चलन था । 'स्वप्नवासवदत्ता' में राजा उदयन तथा वासवदत्ता के वीणा-वादन का उल्लेख किया गया है।[7] प्रतिहारी कहती है—

"शृणोत्वार्यः । अद्य भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा वादिता । तां श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्-घोषवत्याः शब्द इव श्रूयत इति ।"

१. विशाखदत्त : मुद्राराक्षस : प्रथम अंक : पृ० ६ ।
२. शूद्रक : मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० ११ ।
३. कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पृ० ७० ।
४. भास : प्रतिभानाटक, प्रथम अंक, पृ० ४ ।
5. "Dance and music are highly evolved court-art in ancient India. They were not the folk-arts to be shown on the streets or near the village shrines. The palaces contained seperate halls for Natya."

—Wilson, Raghavan, Vidyabhushan, The theatre of the Hindus, P. 156

६. कालिदास : मालविकाग्निमित्र, पृ० ५६ ।
७. भास, स्वप्नवासवदत्ता : अंक ६, पृ० २०६ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अंक में राजा उदयन भी कहते हैं—

"अभ्यास के समय दी हुई शिक्षाओं में भी मेरी ओर देखते हुए जिसने हाथ से मिजराव छूट जाने पर बिना ताल-लय के वीणा बजाई, उसी की याद आ रही है।[1]

संस्कृत नाटकों में प्रजा के मध्य विविध उत्सवों के आयोजनों का उल्लेख है। ये उत्सव नाच-गाकर मनाती थी। कर्पूरमंजरी' नाटक में वटसावित्री महोत्सव के अवसर पर 'चर्चरी' नृत्य का दृश्य विस्तारपूर्वक दिखाया गया है, जिसमें दूर नर्तकी गोलाकार होकर गीत गाती है और गोलाकार में स्थित होकर ही कलात्मकता के साथ ताल का ध्यान रखते हुए विविध भावों एवं मुद्राओं का प्रदर्शन करती हैं। नाटककार ने उस दृश्य का अतीव मोहक वर्णन किया है—

"किङ् किणीकृतझणज्झणसन्याः कण्ठगीतिलययन्त्रितताल्म्।
योगिनीव लयनर्तनलीलां तारनूपुररवं विरचयन्ति॥"[2]

भवभूति के 'मालतीमाधव' के दशम अंक में भी महोत्सव में बंधुवर्ग तथा अवलोकितादिजन के नृत्य का उल्लेख मिला है।

कुछ संस्कृत नाटकों से यह भी संकेत मिलता है कि राजमहलों में 'संगीत-शाला' का प्रबन्ध रहता था जहाँ संगीत सभा के विविध आयोजन हुआ करते थे। कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में 'संगीतशाला' का उल्लेख किया है।[3] भवभूति के 'मालतीमाधव' नाटक से भी द्वितीय अंक में संगीत शाला का नाम आया है।[4] इसी प्रकार 'मृच्छकटिक' नाटक में सूत्रधार द्वारा 'शून्येयमस्मत्संगीतशाला'[5] का संकेत मिलता है।

प्रयोजन की दृष्टि से संस्कृत नाटकों में संगीत का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में हुआ है—

१. रसानन्द की सृष्टि के लिए।
२. लोक-रंजनार्थ।
३. वातावरण की सृष्टि के लिए।
४. प्रकृति-चित्रण अथवा ऋतु-वर्णनार्थ।
५. पात्रों की मानसिक भावाभिव्यक्ति के लिए।
६. पात्रों की संगीत-प्रियता के प्रदर्शनार्थ।

वस्तुतः वैदिक काल में अन्य पुराणों में तथा जन-समुदाय के बीच नाटकों में संगीत का जो रूप विद्यमान था वही संस्कृत नाटकों में उपलब्ध होता है। संस्कृत नाटकों का मुख्य उद्देश्य नाट्यशास्त्रानुसार रसानन्द की सृष्टि करना रहा है, अतः संगीत को भी उसी के सहायक रूप में लिया गया है। कारण यह है कि इन नाटकों में

---

१. वही, अंक ५; पृ०
२. राजशेखर, 'कर्पूरमंजरी', श्लोक १७, पृ० ६८-६९।
३. कालिदास, 'मालविकाग्निमित्र', प्रथम अंक, पृ० ९।
४. भवभूति, 'मालतीमाधव', पृ० ८४।
५. शूद्रक, 'मृच्छकटिक', पृ० ११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें 'गान्धर्व' संगीत ही अधिक मिलता है जो अत्यन्त कलात्मक, गम्भीर प्रकृति का शुद्ध-पवित्र संगीत होता था तथा जिसका सम्बन्ध देवस्तुति से होता था। इसे मार्गी संगीत भी कहते थे। 'मृच्छकटिक' में नायक चारुदत्त के लिए 'गान्धर्व श्रोतुं गतस्य' का प्रयोग कवि शूद्रक ने किया है,[1] जिससे गान्धर्व संगीत के प्रचलन का आभास होता है।

इसके साथ-साथ संस्कृत नाटकों में संगीत का प्रयोग लोकरंजनार्थ भी हुआ है। स्थान-स्थान पर प्रजाजन के बीच, उत्सव-विशेष पर, नृत्य, गान, वाद्य-वादन इत्यादि का चित्रण इसी प्रवृत्ति के कारण हुआ है। संगीत द्वारा मनोरंजन केवल प्रजा तक ही सीमित नहीं है, पात्रों में भी यह रंजन-प्रवृत्ति पाई जाती है। विशेषता यही है कि लोकरंजन के लिए किसी प्रकार के हल्के अथवा अत्यन्त प्रचलित संगीत का प्रयोग नहीं होता था वरन् जनता उसी संगीत में आनन्द लेती थी जो उच्च कोटि का होता था।

नाटकों के प्रारम्भ में ईश्वर-स्तुति, वाद्य-वादन तथा सूत्रधार अथवा नटी द्वारा गान इत्यादि का मुख्य प्रयोजन वातावरण की सृष्टि करना ही रहा है। इस प्रकार का संगीत दर्शकों को आकृष्ट करके चारों ओर नाट्य-विषय से सम्बन्धित वातावरण की सृष्टि करता था। राजदरबारों में भी नृत्य, वादन, गान आदि का जो आयोजन किया गया है वह एक ओर तो राजाओं की संगीत-प्रियता एवं कला-सम्मान का प्रदर्शन है, दूसरी ओर दर्शकों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र एवं तत्कालीन संगीत के ज्ञान का परिचायक है।

संगीत द्वारा प्रकृति-वर्णन अधिक नाटकों में नहीं उपलब्ध होता है। जिन नाटकों में ऋतु-वर्णन के लिए संगीत का प्रयोग किया गया है वह अवश्य प्रशंसनीय है। 'वेणीसंहार' नाटक में संगीत आरम्भ करने के लिए सूत्रधार की आज्ञा होने पर परिपार्श्विक पूछता है—'कतमं समयमाश्रित्य गीयताम्'[2] अर्थात् 'किस ऋतु के आधार पर गाया जाए ?'

सूत्रधार कहता है—

'शरत्समयमाश्रित्य प्रवर्त्यतां संगीतकम्'[3]

(शरत्समय पर आधारित संगीत आरम्भ करो।)

स्पष्ट है कि ऋतु, समय आदि का ध्यान करके संगीत की योजना की जाती थी। भास के 'प्रतिमानाटक' में सूत्रधार के कहने पर नटी द्वारा गाये गए गीत का उल्लेख है जिसमें शरद ऋतु के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।[4] इसी प्रकार 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में अत्यन्त मधुर शब्दों में नाटककार कालिदास ने ग्रीष्म ऋतु के आगमन की सूचना दी है। सूत्रधार के कहने से नटी रंगमंच पर गाती है—

---

१. शूद्रक, 'मृच्छकटिक', पृ० १५१।
२. भट्टनारायण, 'वेणीसंहार', पृ० ६।
३. वही, पृ० ११-१२, प्रथम अंक।
४. भास, 'प्रतिमानाटक', पृ० ४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेशरशिखानि ।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि ॥'[1]

(स्त्रियाँ अतीव कोमलता से हाथ से पकड़कर शिरीष के उन पुष्पों के कर्णफूल बनाती हैं, जिनके तन्तुओं की नोकें अत्यन्त कोमल हैं और जो काले भौंरों द्वारा धीमे से चूमे गए हैं ।)

संस्कृत नाटकों में ऐसे संगीत का अभाव है जिसके द्वारा पात्रों के मानसिक घात-प्रतिघात तथा भावों की अभिव्यंजना हो सके । संगीत-कला की यह मनोवैज्ञानिकता, पात्रों के भावों के उतार-चढ़ाव तथा अन्तर्द्वन्द्व से उसका सम्बन्ध हमें हिन्दी-नाटकों में ही मिलता है । संस्कृत के एक-दो नाटकों में ही नृत्य-वादन एवं गीत का सम्बन्ध पात्र की मन-स्थिति से दीखता है । 'मालविकाग्निमित्र' में नायिका मालविका जब राजा के सम्मुख दरबार में 'छलिक' नृत्य करती है तब उस नृत्य के साथ उसका गान मालविका की मानसिक स्थिति, उसके हृदय में उठते हुए प्रेमांकुरों का प्रतीक है । राजा के प्रति अपने भावों का समर्पण अभिनय द्वारा सांकेतिक रूप में करते हुए वह गाती है—

'हे नाथ इस जन को स्वानुरागिनी जानना'[2]

इस प्रकार के भावों एवं अन्तर की गहराई को संकेत द्वारा अपने प्रेमी के सम्मुख प्रस्तुत करने का यह कौशल इस नाटक में द्रष्टव्य है । इस प्रकार की गहनता का स्वर-प्रदर्शन संस्कृत-नाटकों में बहुत कम मिलता है ।

संगीत का अन्तिम प्रयोजन संस्कृत-नाटकों में पात्रों की कला-कुशलता तथा संगीत-प्रियता के प्रदर्शनार्थ रहा है । 'स्वप्नवासवदत्ता' का पात्र राजा उदयन कला-प्रेमी है । कला-प्रियता व कुशलता का सर्वोत्तम उदाहरण 'मृच्छकटिक' का नायक चारुदत्त है । वह संगीत के साथ-साथ ऋग्वेद तथा सामवेद का सच्चा अनुभवी एवं ज्ञाता है । रेभिल नामक गायक से संगीत सुनने के उपरान्त चारुदत्त का कथन उसकी संगीत-प्रियता के साथ-साथ कवि-शूद्रक की कला-प्रियता का भी परिचायक है—

**'रक्तं च नाम मधुरं च समं स्फुटं च
भावान्वितं च ललितं च मनोहरं च ।'**

(वह गीत अनुरागवर्धक, मधुर, समतायुक्त, स्पष्ट इत्यादि भावों से युक्त तथा अत्यन्त मनोहर था ।)

**'तं तस्य स्वरसंक्रमं मृदुगिरः श्लिष्टं च तन्त्रीस्वनं,
वर्णानामपि मूर्च्छनान्तरंगतं तारं विरामे मृदुम् ॥
हेलासंयमितं पुनश्च ललितं रागद्विरुच्चारितं,
यत्सत्यं विरतेऽपि गीतसमये गच्छामि शृण्वन्निव ॥'**[3]

(उसकी वह मधुर वाणी, स्वरों का उतार-चढ़ाव, शब्दों का अनुगामी वीणा का शब्द,

NOT TO BE ISSUED

१ कालिदास, 'अभिज्ञानशाकुन्तल', पृ० ७० ।
२. कालिदास, 'मालविकाग्निमित्र', पृ० ६० ।
३. शूद्रक, 'मृच्छकटिक', तृतीय अंक, पृ० १५३-१५४ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत के वर्णों का मूर्च्छना के समय ऊँचे तथा विराम में मृदु स्वर से बोलना तथा सह रुककर पुनः लय के साथ दो-दो बार गाये हुए संगीत का बोलना बड़ा सुन्दर था सच तो यह है कि गान-समय के बीत जाने पर भी मैं उस गीत को सुनता-सा रहा हूँ।)

चारुदत्त के इस कथन में स्वर, ताल, लय, गीत के वर्ण, मूर्च्छना, आरोह-अवरो तथा संगीत के अमिट प्रभाव का बड़ी सुन्दरता से चयन किया गया है। यह भी सि होता है कि जनता में शास्त्रीय संगीत को समझने तथा उससे आनन्दित होने सामर्थ्य थी।

संस्कृत-नाटकों में संगीत के नृत्य, वाद्य, गीत तीनों अंगों की दृष्टि से अवलोकन करें तो हमें नृत्य और वाद्य का ही प्रयोग अधिक दृष्टिगत होता है। गी का प्रयोग एवं उनकी संख्या बहुत कम है। एक गीत तो 'मालविकाग्निमित्र' में मा विका 'छलिक' नृत्य के साथ गाती है जिसका उद्धरण ऊपर दे दिया गया है। दूस गीत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए नटी गाती है—'ईष पच्चुम्बितानि.........।' यह विशुद्ध गीत है जिसमें नृत्य का आश्रय नहीं लिया ग है। श्रीहर्ष के 'नागानन्द' नाटक में भी एक गीत प्राप्य है जो पार्वती-स्तुति के रूप है। वीणा बजाते हुए मलयवती गाती है—

> 'उत्फुल्लकमलकेसरपरागगौरद्युते ! मम हि गौरि।
> अभिवाञ्छितं प्रसिध्यत, भगवति ! युष्मत्प्रसादेन ॥'[1]

(खिले हुए कमल के केसर की धूलि की तरह गौरकान्ति को धारण करनेवाली ऐश्वर्यसम्पन्न भगवती गौरी ! आप मेरे ऊपर दया कीजिए, जिससे मेरी मनोकाम पूर्ण हो।)

निष्कर्ष यह निकलता है कि संस्कृत-नाटकों में शास्त्रीय संगीत तथा संगीत नर्तन, वादन, गायन तीनों रूप मिलते हैं, किन्तु नर्तन-वादन अधिक प्रयुक्त हुए हैं वस्तुतः संस्कृत-नाटकों से पूर्व भी नृत्य और वाद्य का ही अधिक प्रचलन था। ज नाटकों में भी नृत्य की प्रधानता थी। यही कारण है कि जन-प्रवृत्ति के प्रतीक-स्वरू नृत्य, गान तथा वाद्य को इन नाटककारों ने स्वीकार किया। संस्कृत के बहुत-से नाट में तो संगीत का उल्लेख ही नहीं है। इस अभाव तथा विशुद्ध गीत मात्र के अभाव एक कारण यह हो सकता है कि सभी संस्कृत-नाटकों में गद्य-पद्य का सम्मिश्रण कि गया है। पद्यात्मक श्लोकों में लय होने के कारण संगीत का किंचित् सौन्दर्य आ जा है। डॉ० कीथ का कथन है—

"वैदिक काल और उसके बाद भी संस्कृत-नाटकों में पद्य का प्रयोग मनोरं तथा भक्ति के रूप में गीत के महत्त्व की दृष्टि से होता था। इसके अतिरिक्त हम वर्तमान नाटक महाकाव्य की पद्यात्मक प्रणाली से अत्यधिक प्रभावित हैं।"[2]

---

१. श्रीहर्षदेव, 'नागानन्दम्', प्रथम अंक, विद्याविलास प्रेस, बनारस, १९४८, पृ० ३३।
2. Dr. Kieth : sanskrit Drama p. 23.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० बेचन

परशुराम की प्रतीक्षा : कोयला और कवित्व

आज से चौबीस साल पहले हिन्दी के प्रगतिवादी आलोचक श्री शिवदानसिंह चौहान ने दिनकरजी के विषय में लिखा था कि दिनकरजी क्रान्ति की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करनेवाले 'नाशवादी' कवि (Anarchist) हैं।[1] सन् १९६३ ई० में प्रकाशित दिनकर के काव्यसंग्रह 'परशुराम की प्रतीक्षा' को देखकर शिवदानजी की उपर्युक्त अभ्युक्तियाँ हठात् याद आ जाती हैं। परशुराम का आह्वान करते हुए लगभग ३२ पृष्ठों की एक लम्बी कविता दिनकर ने लिखी है। इसीलिए ८० पृष्ठों के इस संग्रह का नाम 'परशुराम की प्रतीक्षा' रखा गया है, जिसकी पहली कविता 'परशुराम की प्रतीक्षा' है। इस 'नाशवादी (एनारकिस्ट) परम्परा के प्रतीक परशुराम हैं जिनके दुर्धर्ष चरित्र का चित्रण भारतीय साहित्य में हुआ है। कवि के अनुसार वह परशुराम आधुनिक भारत (स्वतन्त्र भारत) का होनेवाला नया नेता है। कवि ने कल्पना की है कि आज के वर्तमान नेता हमारे देश की सुरक्षा करने में असमर्थ हैं—

"जो सत्य जानकर भी न सत्य कहता है,
या किसी लोभ के विवश मूक रहता है,
उस कुटिल राजतन्त्री कदर्य को धिक् है,
यह मूक सत्यहन्ता कम नहीं अधिक है।
चोरों के हैं जो हितू, ठगों के बल हैं,
जिनके प्रताप से पलते पाप सकल हैं,
जो छल-प्रपंच, सब को प्रश्रय देते हैं,
या चाटुकार जन से सेवा लेते हैं;
यह पाप उन्हीं का हमको मार गया है,
भारत अपने घर में ही हार गया है।
नेता निमग्न दिन-रात शान्ति चिन्तन में,
कवि कलाकार ऊपर उड़ रहे गगन में।
यज्ञाग्नि हिन्द में समिध नहीं पाती है,
पौरुष की ज्वाला रोज बुझी जाती है।[2]

यह नया परशुराम कुछ नहीं चाहता, केवल देश की सुरक्षा के लिए प्रहरी का कार्य करेगा—

---
१. आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० १६८।
२. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० १-४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मत डरो, सन्त यह मुकुट नहीं माँगेगा,
धन के निमित्त यह धर्म नहीं त्यागेगा।
तुम सोओगे, तब भी यह ऋषि जागेगा,
ठन गया युद्ध तो बम-गोले दागेगा।"

आज की समाजवादोन्मुखी शासन-व्यवस्था में ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना न वादी विचारधारा मानी जायगी। 'नाशवादी' विचारधारा को मानने वाले दो प्रका होते हैं। एक वर्ग तो व्यक्ति को समाज से ऊँचा समझता है और दूसरा वर्ग सामू जीवन को व्यक्ति से अधिक महत्व देता है। व्यक्ति या समूह की सत्ता पर जोर हुए भी दोनों वर्ग यह मानते हैं कि राज्य का विनाश हो जाय।[1] दिनकरजी व (परशुराम) की सत्ता का जयगान करते हैं, किन्तु उसका क्षेत्र थोड़ा विकसित हुए समाज से भी जोड़ देते हैं। परिणामस्वरूप इनका यह एनारकिस्ट थॉट उप दोनों प्रकारों का समन्वय है—

"विक्रमी रूप नूतन अर्जुन जेता का,
आ रहा स्वयं यह परशुराम त्रेता का।
यह उत्तेजित, साकार क्रुद्ध भारत है,
यह और नहीं कोई, विशुद्ध भारत है।"[2]

'एनार्की' कविता में कवि ने भारत की वर्तमान नाशवादी भावना और छी झपटी का सजीव चित्र खींचा है। संग्रह की कविताओं में नया भारत मुखरित हो है। दिनकरजी युग-कवि हैं—उन्होंने स्वयं अपने को 'काल का चारण' कहा है। बोध का ज्ञान दिनकरजी को सदैव रहा है। इसलिए समग्र समकालीन परिस्थिति कवि ने अपने काव्य का विषय बनाया। दिनकर के समान शायद ही हिन्दी का ऐसा कवि होगा जो युग के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह इतनी सजगता से कर हो। इस दृष्टि से बड़े-छोटे मार्क्सवादी कवि भी दिनकरजी से पीछे छूट जाते हैं नये परिप्रेक्ष्य पर कविता लिखते हुए 'मार्क्स की दाढ़ी में जुएँ'[3] ढूँढ़नेवाले कवि भी ज्यादा जोश एवं चमत्कार अपनी नयीं कविताओं में उत्पन्न करते हुए कहते हैं "गांधी की रक्षा करने को गांधी से भागो'।[4] गांधी ने ही कभी कहा था, जब काय और हिंसा में चुनाव करने का प्रश्न उठे तो हिंसा को चुनना चाहिए।[5]

अपने एक रेडियो भाषण में भी कवि ने कहा था कि "आज जो हिंसा-अहिं की बातें करता है वह देश को कमजोर बनाता है।" कवि का यह कथन विचार है। नयी कविता के युग में भी दिनकर क्रियाशील रचनाकार हैं—नयी कविता तथाकथित नवीन शिल्प के प्रयोगकर्ता कवियों से भी अधिक। यह बात दूसरी है

१. Anarchist Thought in India—Adi H. Doctor. P. 2.
२. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० १६।
३. नागार्जुन, धर्मयुग १९६२ ई०।
४. परशुराम की प्रतीक्षा पृ० ५८।
५. सर्वोदय तत्व दर्शन, पृ० ६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी कविता के कवि दिनकरजी को नयी कविता का कवि न मानें और शायद दिनकर भी अपने को नयी कविता का रूढ़िवादी कवि मानने से इनकार कर सकते हैं, किन्तु दिनकरजी की कविता नये परिप्रेक्ष्य में नयी हैं। "नये को वास्तव में नया होना चाहिए, जीवन के ठोस प्रश्नों से सम्बन्धित जीवन की नयी शक्तियों का प्रतिनिधि।"[1]

शिवदानजी के द्वारा अभिव्यक्त नये साहित्य की इससे ज्यादा सही अन्य परिभाषा नहीं हो सकती है। दिनकरजी यह स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं कि उनकी नयी कविताएँ वस्तुतः नयी हैं। कई एक इंटरव्यू में, इनकी कविताओं को नयी कविता कहने वालों के प्रति, इन्होंने शिकायत व्यक्त की है। खैर! कवि की धारणा चाहे जो कुछ भी हो किन्तु शिवदानजी की व्याख्या के अनुसार दिनकर की नयी कविताएँ वस्तुतः नयी हैं। इन कविताओं में जीवन के ठोस नये प्रश्नों को उठाया भी गया है और उसका समाधान भी खोजा गया है। इसीलिये ये सारी कविताएँ कवि की नयी शक्तियों का परिचय देती हैं। समसामयिक चेतना ही आधुनिकता और नवीनता का पर्याय है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' के बाद सन् १९६४ में प्रकाशित उनका काव्य संग्रह 'कोयला और कवित्व' इसका सुन्दर उदाहरण है। इस संग्रह में कवि ने आत्म-चिंतन किया है, अपने को खोजा है, पहचानने की कोशिश की है और कभी-कभी to be or not to be वाली स्थिति का भी परिचय दिया है। डॉ० रामविलास शर्मा[2] ने उचित ही इस संग्रह को थकन, द्विधा और प्रयत्न का काव्य कहते हुए दिनकर की उपर्युक्त हीन भावना पर आघात किया है (क्योंकि दिनकर अपनी कविताओं को नयी कविता कहने की हीन भावना से आक्रान्त हैं)। डॉ० शर्मा कहते हैं—"शायद अपनी पुरानी कविताओं से खुद ही कुछ ऊबकर दिनकरजी ने कुछ नये ढंग की नयी कविताएँ भी लिखी हैं। वे इस संग्रह में हैं, इससे पहले के भी एकाध संग्रह में हैं जहाँ वह कष्ट-साध्य अलंकारों के सहारे कविता में चमत्कार पैदा करने का प्रयत्न करते हैं, वहाँ उनका स्वर सच्चा नहीं लगता। इस तरह की रचनाएँ दिनकरजी की प्रतिभा के योग्य नहीं है, वैसे ही जैसे बहुत ज्यादा गर्जन-तर्जन करने वाली पंक्तियाँ—जहाँ-तहाँ कुछ इस संग्रह में भी हैं—हमें प्रभावित नहीं करतीं। किन्तु दिनकरजी पुरानी कविता का अनुसरण और नये कवियों का अनुकरण—किये बिना भी बहुत सुन्दर पंक्तियाँ—काफी सुन्दर कविताएँ लिखते हैं। वह उन थोड़े से कवियों में हैं, जिनकी प्रतिभा निरन्तर विकसित होती जा रही हैं।"

गत १९५४ ई० में प्रकाशित 'नीलकुसुम'[3] की भूमिका में भी दिनकरजी ने नये कवियों की कविताओं के प्रति आकर्षण का भाव व्यक्त किया था जो सिद्ध करता है कि दिनकरजी के मन में नयी कविता का कवि कहलाने की इच्छा है। किसी भी

---

१. आलोचना (२७) शिवदानसिंह चौहान, पृ० ४।
२ जनशक्ति साप्ताहिक, पटना, १९ अप्रैल, १९६४, पृ० १०।
३. "मैं प्रयोगवाद का अगुआ नहीं, पिछलगुआ कवि हूँ—हिन्दी कविता का आकाश बदल रहा है। जो नया क्षितिज सामने चमक रहा है, उसी ओर खड़ा होकर मैं स्वागत में 'नील कुसुम' बिखेरता हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि के लिए ऐसी प्रवृत्ति घातक होती है। ऐसा होने से वह कवि अपनी मौलिक काव्य रचना का आधार छोड़कर समकालीनों से प्रभावित होता चलता है, जिससे कालांतर में साहित्य का बड़ा अहित होता है। आधुनिक कविता के युग में (१९६४ ई० में) किसी काव्य-संग्रह का नाम 'कोयला और कवित्व' रखना उचित ही है। कोयला यथार्थ भाव, भाषा और शैली का परिचायक है, जिसमें कवित्व उत्पन्न हुआ है। प्रधान कोयला है। हालाँकि 'कोयला और कवित्व' में कार्य कारण सम्बन्ध होता है। इन शब्दों की व्याख्या के लिए बिहार के नाटककार लोहासिंह उर्फ प्रो० रामेश्वर सिंह 'कश्यप' के लिखे नाटक 'नीलकण्ठ निराला' से निराला के कथोपकथन को उद्धृत किया जा रहा है—

> **"राग में रसोई में**
> **कविता की कला**
> **और पाकविज्ञान में**
> **बड़ा कार्यकारण सम्बन्ध है।**
> **तुम साहित्य-प्रेमी हो**
> **इसीलिए कहता हूँ,**
> **जीवन से साहित्य वैसे ही**
> **बनता है जैसे निकली हैं**
> **इत्र और औषधियाँ**
> **कोयले से,**
> **भावों को सब्जी के समान ही**
> **पड़ता है पकाना**
> **धीमी आँच में।"[1]**

दिनकरजी कोयला और कवित्व की व्याख्या करते हुए एक विदुषी को उनके इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि कला फलाशा से युक्त होती है या वियुक्त और कोयले का उत्पादन बढ़ाने को यदि गीत लिखे जाएँ तो कैसा रहे ?—

> **"देवि ! कला के लिए कला से आप व्यर्थ चिढ़ती हैं।**
> **कर्म, विकर्म, अकर्म एक ही आरोहण के पद हैं।**
> **एकमात्र आश्रय अकर्म ही है समस्त कर्मों का।**
> **और जानती ही होंगी, दुर्लभ अकर्म यह क्या है।"**
> **प्रेरित किसी लोभ से अथवा भीत किसी शंका से,**
> **कोयले की उत्पत्ति बढ़ाने को हम जब लिखते हैं,**
> **वह लेखन की क्रिया कर्म होती है; और क्रिया यह,**
> **सीमित नहीं मानवों तक; पशु भी उसको करते हैं,**
> **प्रेरित क्षुधा, भीति या जैविक किसी अन्य चिन्ता से।[2]**

१. नीलकण्ठ निराला; पृ० ४०।
२. कोयला और कवित्व, पृ० ७२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक कवि गद्य और पद्य की भाषा में कोई अन्तर नहीं समझते। दिनकर के नव्य-काव्य विकास में यह विशेषता देखने योग्य है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' और 'कोयला और कवित्व' नामक काव्य-संग्रहों में कवि ने भाषा के इस चमत्कार को दिखाया है। एक स्थान पर कवि ने भाषा सम्बन्धी अपनी मान्याओं को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"मैं गद्य की सुस्पष्टता को कविता में खपाये बिना संतोष नहीं पाता।"[1]

संग्रह की सारी कविताएँ गद्य की अभिव्यंजना शक्ति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। 'दिनचर्या' इस दृष्टि से उत्कृष्ट कविता है और आधुनिक हिन्दी कविता के लिए प्रतिमान उपस्थित करती है।

भाषाभिव्यंजना के कतिपय आधुनिक प्रयोगों के कारण 'उर्वशी' को भी एक 'मार्डन' रचना मानना होगा। हिन्दी के नवोत्थित आलोचक कुमार विमल ने 'उर्वशी' की इन विशेषताओं का गहन अध्ययन प्रस्तुत करते हुए लिखा है—'उर्वशी' में हम एक ही साथ 'मैटाफिजिकल टेम्पर आव मार्डन फिजिक्स' और 'साईण्टिफिक टेम्पर आव मार्डन फिलासफी को पाते हैं, जो निश्चित रूपेण हिन्दी कविता के लिए एक अभूतपूर्व बात है।—'उर्वशी' में कई ऐसे प्रसंग हैं जहाँ दिनकर ने दर्शन और विज्ञान के समीकरण को, जो मानव-मस्तिष्क की अत्याधुनिक उपलब्धि है, काव्यात्मक धरातल पर रखने की सफ़ल चेष्टा की है।[2]

आज की नई कविता-धारा के परिप्रेक्ष्य में दिनकरजी की काव्यधारा का अध्ययन करने पर अंग्रेजी-साहित्य की आधुनिक काव्यधारा के सम्बन्ध में स्टीफेन स्पेंडर की १९६३ ई० में प्रकाशित नई पुस्तक 'दी स्ट्रगल ऑफ दी मार्डन' की विश्लेषणात्मक एवं ऐतिहासिक समीक्षा याद हो जाती है। स्पेंडर ने आधुनिक कविता के परिप्रेक्ष्य में दिनकर ऐसे कवियों को समकालीन कवियों की कोटि में रखा है और हिन्दी की नई कविता के रूढ़िवादी कवियों के समान कवियों को आधुनिक कवियों में रखा है। किन्तु उस दृष्टि से विचार करने पर लगता है कि दिनकर आधुनिक कवि हैं—आधुनिकता की सारी सम्भावनाएँ दिनकर में मौजूद हैं, जिसकी अभिव्यक्ति अभी शेष है। कुरुक्षेत्र और उर्वशी उस विकास की भूमिका में दो मील स्तंभ हैं। कुरुक्षेत्र और उर्वशी के सामाजिक रूप से एक श्रेष्ठ युगान्तरकारी महाकाव्य का लेखन दिनकरजी के द्वारा होगा, जिसका नायक होरी के समान कोई-लघु-मानव' होगा। दिनकरजी ने सन् १९६१ ई० में इस पंक्ति के लेखक के समक्ष कहा था कि यह युग 'लघु-मानव' का है। इन बातों को सुनकर शायद यह प्रश्न हो सकता है कि दिनकर की कृतियों द्वारा इस प्रकार की अभिव्यक्ति का कोई प्रमाण नहीं मिलता। बल्कि दिनकरजी की सद्यः-प्रकाशित रचना 'परशुराम की प्रतीक्षा' में तो कवि ने स्पष्ट रूप से परशुधर के रूप में एक डिक्टेटर की कल्पना की है। आज के युग में यह भावना प्रतिक्रियावाद का द्योतक हो सकती है।

यह बात सही है कि दिनकरजी ने परशुराम के रूप में एक कठोर व्यक्तित्व

१. कल्पना, फरवरी १९५३।
२. नई कविता: नई आलोचना और कला, पृ० ७४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उत्तरोत्तर गान किया है—

"मुख में वेद, पीठ पर तरकश, कर में कठिन कुठार विमल,
शाप और शर दोनों ही थे, जिस महान ऋषि के संबल।"[१]

× × ×

"मुख में वेद, पीठ पर तरकस, कर में कठिन कुठार,
सावधान, ले रहा परशुधर फिर नवीन अवतार।"[२]

× × ×

गावो कवियो! जयगान, कल्पना लानो,
आ रहा देवता जो, उसको पहचानो।
है एक हाथ में परशु, एक में कुश है,
आ रहा नये भारत का भाग्य पुरुष है।[३]

किन्तु दिनकरजी के आगामी नायक का यह असली रूप नहीं है—डी० ए लौरेंस ऐसे लैंगिक कवि की कविताओं का भावानुवाद और उसके आधार पर का सृजन उनके समस्त आगामी काव्य को प्रभावित करेगा ही, जिससे नया 'लघुमान नायक उभरेगा।

शायद दिनककजी के अन्तःप्रदेश में यह लघुमानव अपना रूप संवार है। मेरा विश्वास है कि उसके हाथ में परशु नहीं होगा बल्कि अपना कुठार फेंक नव-निर्माण में प्रवृत्त होगा। जिस तरह परशुराम ने किया था—'जब उनका (प राम) प्रतिशोध शान्त हो गया, उन्होंने कोंकण के पास पहुँचकर अपना कुठार स में फेंक दिया और वे नव-निर्माण में प्रवृत्त हो गये।'[४] दिनकर के इस नये मा को कुरुक्षेत्र में ही परशु-कुठार, चाप और तरकस से घृणा हो चुकी है। भीष्म-पिता की आत्मग्लानि और तत्सम्बन्धी स्खलन इसका सुन्दर प्रमाण है—

"कर में चाप, पीठ पर तरकस,
नीति-ज्ञान था मन में,
इन्हें छोड़ मैंने देखा,
कुछ और नहीं जीवन में।"[५]

× × ×

"कर पाता यदि मुक्त हृदय को,
मस्तक के शासन से,
उतर पकड़ता बांह दलित की,
मन्त्री के आसन से।[६]

इसलिए ऐसा नेता नहीं चाहिए। बल्कि ऐसा नेता चाहिए जो 'मन्त्री' आसन छोड़कर 'दलितों' को गले लगा ले।

१. रश्मिरथी (तृतीय संस्करण), पृ० १२।
२. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ४२।
३. ...वही..., पृ० १५
४. परशुराम की प्रतीक्षा, दो शब्द।
५. कुरुक्षेत्र पृ० ६३।
६. कुरुक्षेत्र, पृ० ६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो नई कविता-पुस्तकें

१—'प्यासा निर्झर'
२—'प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी'

सृजन के सन्दर्भ में पुरानी पीढ़ी की सक्रियता के प्रमाण उक्त दो कविता-संग्रहों का सम्बन्ध क्रमशः नरेन्द्र शर्मा तथा रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की लेखनी से है। छायावादी कविता के विघटन के दौर में ये कवि कतिपय अंशों में उसी छायावादी कविता की लीक पर और अनेक अंशों में उससे भिन्न नई लीकों का प्रवर्तन करते हुए कविता की भूमि पर उतरे थे। छायावादी काव्य में कविता की क्रमशः अस्पष्ट होती हुई आकृति को इन कवियों ने एक स्पष्टता दी थी, उसे आकाश की ऊँचाइयों से उतारकर लौकिक सन्दर्भों के बीच ग्रहण किया था। उसकी समस्त वायवीयता तथा प्रच्छन्नाभिव्यक्ति को उपेक्षित करते हुए बहुत कुछ अभिधा की भूमि पर उसे अपने व्यक्तिगत हर्ष-उल्लास, अधिकांशतः पीड़ा तथा वेदना की—जिसका सम्बन्ध या तो उनके अपने प्रणयी मन से था या फिर साँसारिक भूमियों में मिलनेवाली कटुता तथा विक्षोभ से—अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर सबके समक्ष प्रस्तुत किया था। केवल भावभूमि की दृष्टि से ही नहीं, भाषा को नई सादगी देने तथा उसे अपने अन्तर्मन की कसक, आकुलता, आसक्ति तथा तृष्णा आदि की सशक्त वाहिका बनाकर उसका नया संस्कार करने में भी इन कवियों का स्मरणीय योग था। जिस भावभूमि को लेकर इन कवियों ने कविता के क्षेत्र में पदार्पण किया था, वह इनके अपने अर्थ में भले ही कितनी प्राणवान तथा इनकी अपनी भोगी हुई हो, नये सामाजिक सन्दर्भों तथा उभरती हुई प्रगतिशील चेतना के क्रम में, कालान्तर में वह ग्राह्य न हुई, फलतः इन कवियों के स्वर भी या तो मंद पड़ते गये या इन्हें अपनी लीकें बदलने के लिए विवश होना पड़ा।

नरेन्द्र शर्मा के काव्य-विकास से जो लोग थोड़ा भी परिचित हैं, जानते हैं कि छायावादी भूमिका से प्रारम्भ कर उनकी कविता क्रमशः उत्तर-छायावादी लौकिक भूमि से गुज़रती हुई, सामयिक प्रभाववश सामाजिक चेतना की भूमि पर क्षण भर ठहरकर अन्ततः उस व्यापक रहस्य तथा अध्यात्म की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी जो उनके परवर्ती कविता-संग्रहों—'हंसमाला', 'कदलीवन', 'अग्निशस्य' आदि की भूमि है। उसे विशुद्ध रहस्य तथा अध्यात्म की भूमि तो नहीं माना जा सकता परन्तु भौतिकता तथा अध्यात्म के समन्वय की भूमि वह अवश्य है। मिट्टी की ओर कुछ काल देख लेने के पश्चात् सन् १९४६ में ही 'हंसमाला' संग्रह की प्रस्तावना में कवि ने घोषित किया था—"मुझे आज भौतिक चिन्तन एकांगी लगता है। हमें अपने जीवन-दर्शन को अधिक व्यापक और मानवीय बनाना होगा जिसमें भौतिक प्रसार तथा चेतना की गहराई दोनों ही विद्यमान हों।" नरेन्द्र शर्मा अपने इस वक्तव्य के प्रति कितना सजग रहे हैं, इसका प्रमाण उनके 'प्यासा निर्झर' तक का सारा काव्य-विकास है, जो 'हंसमाला' के बाद के [illegible] वर्षों के समय को अपनी परिधि में समेटे हुए है। 'मन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्बलताओं के कवि' का बढ़ती हुई वय के साथ सामाजिक संघर्षों की लीक छोड़कर व्यक्तिगत शान्ति तथा समरसता खोजने के क्रम में रहस्य तथा अध्यात्म की भूमि में पहुँचकर अन्ततः उसमें रम जाना सहज स्वाभाविक भी है। नरेन्द्र शर्मा की विशिष्टता इस अर्थ है कि उनका अध्यात्मवादी चिन्तन केवल वैयक्तिक भूमिकाओं में ही सिमट कर नहीं रह गया है, उन्होंने उसे समष्टि के हित, समष्टि तक प्रसारित करना चाहा है। व्यक्ति को केन्द्र में न रखकर सम्पूर्ण मानवीय जीवन को उच्चतर चेतना की भूमि तक पहुँचाने में उसे सार्थकता देने का प्रयास किया है। इस सन्दर्भ में 'प्यासा निर्झर' कविता की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

अपने सिवा और भी कुछ है, जिस पर मैं निर्भर हूँ,
मेरी प्यास हो न हो जग को, मैं प्यासा निर्झर हूँ।

कवि की इस समष्टि चेतना के मूल में निश्चित रूप से उस प्रगतिशील चेतना का सन्दर्भ है जो 'प्रवासी के गीत' जैसी कृतियों की भावभूमि के दौरान में बिजली की भाँति कौंधकर व्यक्तिगत निराशा तथा वेदना में डूबे उनके मन को आलोकित कर गई थी। प्रगतिशील चेतना की भूमि पर वे बहुत काल तक नहीं ठहरे, परन्तु उस भूमि पर उनका अल्पकालिक ठहराव भी इस कारण उनके लिए महत्वपूर्ण है कि उसने उन्हें समष्टि-चिन्तन की नई दिशा दी, एक 'क्षयग्रस्त कवि' को उसके क्षय से उबारा। आज वे रहस्य तथा अध्यात्म के सन्दर्भ में अपनी इस चेतना को प्रसारित कर रहे हैं, यह अलग बात है।

'प्यासा निर्झर' संग्रह में पिछले दस वर्षों की अवधि में रची गई उनकी कविताएँ संग्रहीत हैं। कृति की भूमिका में अपने को 'मनोभूमि का कृषक' मानते हुए उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं—एक आज के युग में कविता और पाठक के बीच—प्रकारांतर से कवि और पाठक के बीच क्रमशः बढ़ते हुए अन्तर का, दूसरा कविता—एक प्रकार से समूचे साहित्य-सृजन के सन्दर्भ में व्यष्टि और समष्टि चेतना के आनुपातिक महत्व का। वे कवि और पाठक के बीच के अन्तर को न केवल अहेतुक मानते हैं, वह शीघ्र से शीघ्र समाप्त हो सके, इसीलिए समष्टि चेतना का प्रसार भी चाहते हैं। अपने कवि को उन्होंने इसी भूमि पर सक्रिय करना चाहा है। प्रस्तुंत संग्रह की अधिकांश कविताएँ मिट्टी तथा मानव-जीवन के सन्दर्भ में ही उनके चिन्तन की अध्यात्मपरक भूमिका को उद्घाटित करती हैं। कतिपय कविताएँ सामाजिक विषमता, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, पाखण्ड आदि से सीधे ही अपना सम्बन्ध जोड़ती हुई व्यंग्यात्मक शैली में समाज की कल्याण-कामना को व्यक्त करती हैं। कुछ, विशेषकर संग्रह के अन्तिम अंशों में कविता की प्रकृत भूमि पर कवि के प्रणयी-मन, प्रकृति-प्रेम आदि की मनोरम-व्यंजना करती हैं। दाम्पत्य-प्रेम को केन्द्र में रखकर रची गई कतिपय कविताएँ भी संग्रह में हैं जो अपनी मानवीय भूमिका में सच्ची काव्य-संवेदना के साथ प्रणय के स्वस्थ स्वरूप को सामने रख सकी हैं।

दोसौ चालीस पृष्ठों के इस कविता-संग्रह का अधिकांश कवि के चिन्तन की समन्वयवादी, अध्यात्मपरक रुझानों का परिचायक है। मिट्टी का मोह, सांसारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के प्रति आसक्ति, कर्मनिष्ठा (निष्काम कर्म) इस प्रकार की प्रायः सब कविताओं में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। कवि की आध्यात्मिक चेतना कहीं भी इतनी प्रगल्भ नहीं होने पाई है कि उसे मिट्टी से पृथक कर सके, जैसा कि विशुद्ध अध्यात्मवादियों के साथ प्रायः ही देखा जाता है। मिट्टी तथा मानव-जीवन या लोक-जीवन के प्रति अपने प्रेम को सहेजे हुए ही कवि ने रहस्यमयी सत्ता की जिज्ञासा, मिट्टी का तन लिए धरती पर उसके अवतरण की कामना, सूक्ष्म चेतना का आह्वान, चिन्मय रसकी वृष्टि की इच्छा प्रकट की है। कहा जा सकता है कि उसका सारा तत्व-चिन्तन और उसका सारा प्रसार मिट्टी के लिये, मिट्टी के हित में ही हुआ है। अध्यात्मपरक भूमिका पर पहुँचे हुए कवि की वाणी में उपदेशात्मकता की गंध आ जाना स्वाभाविक है—संग्रह की कुछ कविताएँ इसे प्रमाणित करती हैं—परन्तु नरेन्द्र शर्मा का कवि अभी उन मसीहाओं की कोटि तक नहीं पहुँचा है जो केवल उपदेश ही देते हैं और सारे तत्व-चिन्तन को आत्मसात कर चुकने का दम्भ करते हैं। कवि का प्रतीक प्यासा निर्झर है, इसी कारण उसकी दार्शनिक चिन्तना मात्र जिज्ञासा के स्तर तक ही पहुँच सकी है, उससे आगे की भूमियों पर जाकर उसने कवि या पाठक को छलने का प्रयास नहीं किया है। जीवन तथा जगत के लिये कल्याणकारी बातों को सुनने तथा जानने के लिए भी चूँकि कवि तत्पर है इसी कारण ग्रहण की गई बातों के कतिपय स्थलों पर उपदेश की भूमिका तक पाठकों के बीच पहुँचाने का उसका प्रयास खलता नहीं। हम तो इसे उसकी निश्छल मानवीयता का प्रदर्शन ही मानते हैं।

संगह की अधिकांश कविताएँ कथ्य-प्रधान हैं—शैली-प्रधान नहीं। शिल्पगत प्रयोगों की भूमिका में न जाकर अपने कथ्य को ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रति कवि विशेष सचेष्ट रहा है। शिल्प के अतिरिक्त प्रयोग वही करते हैं जिनके पास कहने को बात नहीं होती। नरेन्द्र शर्मा की स्थिति ऐसी नहीं है। उनके पास गम्भीर कथ्य है, इस कारण उन्होंने प्रयोगवादी भूमिका अदा नहीं की। कविताओं की कथ्य-प्रधानता कतिपय स्थलों पर द्विवेदी युग के वर्णन-विवरण का भी आभास देने लगी है, यद्यपि अनेक कविताओं में कवि ने अपने कथ्य को आलंकारिकता या रूपकों के परिवेश में प्रस्तुत कर कविता के प्रति सही न्याय करने की कोशिश की है। कुछ कविताएँ—(मुक्ति-पर्व, मारीच, निशा अँधियारी, दुष्ट कुमार आदि) पौराणिक आख्यानों पर आधारित हैं जिन्हें-यत्र तत्र कवि ने नये अर्थ भी देने चाहे हैं। विवरण तथा वर्णन की प्रचुरता इन कविताओं में विशेष रूप से दिखाई पड़ती है, परन्तु आख्यान से सम्बन्धित होने के कारण उनका इस साँचे में ढलना स्वाभाविक था। इन सारी कविताओं को देखकर नरेन्द्र शर्मा के काव्य-विकास की गति बहुत कुछ पन्त से अपनी अनुरूपता सूचित करती प्रतीत होती है। पन्त उत्तर-छायावादी दौर से नहीं गुज़रे अन्यथा छायावाद-प्रगतिवाद तथा अध्यात्मवाद के सोपान उनकी कविता ने भी तय किये हैं। पन्त का अध्यात्मवादी काव्य एक विशिष्ट दर्शन के सन्दर्भ को लिए हुए है जब कि नरेन्द्र शर्मा की दार्शनिक रुझानें अभी इस प्रकार की किसी विशिष्टता से नहीं बँध पाई हैं। गीता के निष्काम कर्म की चर्चा अवश्य कुछ अधिक हुई है तथा कतिपय कविताएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्टतः अद्वैत दर्शन का संकेत देती हैं। समग्रतः, अभी वे सामान्य भूमिका पर ही हैं। इस सामान्य भूमिका से ही उन्होंने पन्त की भाँति भव तथा मानव के परित्राण का संकल्प लेकर उच्चस्तरीय चेतना के नये जीवन को धरती पर उतार लाने के लिए 'परम व्योमचारी' का आह्वान किया है—

जीवन की अँधियारी रात हो उजारी—
धरती पर चरण धरो तिमिर-तोम-हारी—
परम-व्योम-चारी ।

लोक-जीवन या भव-जीवन के प्रति सच्ची संवेदना की दृष्टि से कवि की इन कविताओं का विशेष महत्व है। उसके चिन्तन की सरणि से अपना मतभेद रखनेवाले पाठक हो सकते हैं, ज्ञान-विज्ञान के आधुनिक सन्दर्भों में जो स्वाभाविक भी है, परन्तु उसके मूल में निहित कवि की निश्छल संवेदना तथा ईमानदार आग्रह को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह बात नरेन्द्र शर्मा के लिये ज़ोर देकर कही जा सकती है जो अपने कवि-कर्म के समूचे दौरान में सहज, निश्छल आत्माभिव्यक्ति के विशेष कायल रहे हैं। सच्ची कविता की भूमि से भी इन चिन्तन-प्रधान कविताओं के लिए दो-एक बातें कही जा सकती हैं। चिन्तन या दर्शन कविता की पगडंडी से गुजरकर ही कविता के भीतर स्थान पाने के अधिकारी बनते हैं, अन्यथा कविता की स्थिति निरीह हो उठती है। पन्त के बहुत से परवर्ती काव्य के लिये यह कथन सत्य है, और बावजूद कवि की सजगता के, इन कविताओं में भी अनेक उसी प्रकार विचार-बोझिल हो उठी हैं। अवधी या ब्रज के कतिपय बिल्कुल अप्रचलित शब्दों को ढोने वाली और अनेक स्थलों पर पौराणिक या तन्त्र-मन्त्रपूत भारी भरकम वैदिक-सी शब्दावली—यहाँ तक कि वाक्यावली तक से युक्त भाषा ने भी इस निविड़ता को बढ़ाने में योग दिया है। इसके विपरीत 'सोलह वर्ष', 'कौन वह किशोरी', 'यह दिन भी बीता जाता', 'मैं तुमको देख रहा हूँ', 'जंगल', 'विरह-मिलन', 'तुम्हें देख,' 'दाम्पत्य-गाथा', 'पनिहारिन,' 'पल्लव दल सुकुमार', 'मुद्रित दृग तुम्हारे', 'मिलन-रैन' जैसी वे कविताएँ भी हैं जो अपनी सहज मानवीय भूमिका में काव्य सत्ता के प्रति न्याय करती हुई पाठक के अन्तस्तल को 'प्रवासी के गीत', 'पलाशवन' तथा 'मिट्टी और फूल' की कविताओं की ही भाँति छूती हैं। ये कविताएँ हीं स्मरण दिलाती हैं नरेन्द्रशर्मा के समर्थ, सच्चे कवि का, और विश्वास उत्पन्न करती हैं कि बावजूद चेतनावादी धरातल के, नरेन्द्र शर्मा की काव्य-संवेदना आगे भी इस सहज मानवीय भूमिका से ही जुड़ी रहेगी। हम तो इन्हीं कविताओं में नरेन्द्र शर्मा के प्रकृत-कवि के दर्शन करते हैं, औरों की बात जो भी हो। इस मानवीय भूमिका में ही हम उनके कवि को इस प्रखर सामाजिकता से दीप्त देखना चाहते हैं जो 'प्यासा निर्झर' की भूमिका की इन पंक्तियों में साकार हुई है, और कविता में रूपायित होने की बाट जोह रही है—"अहंता-ममता-जन्य व्यक्तिवाद, व्यक्तिगत, संपत्ति की मान्यता पर आश्रित व्यापारिक क्रय-विक्रय, उत्पादक की अपेक्षा वितरक-प्रबन्धक-बिचौलिया की बढ़ी हुई सत्ता और हाथ की तुलना में हाथ के मैल की अधिक महत्ता ने जो साँस्कृतिक संकट पैदा किया है, वह कविता का काल बनकर कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सामने खड़ा है।" नरेन्द्र शर्मा के कवि में इस चुनौती को स्वीकार करने की सामर्थ्य है, आवश्यकता एक हल्के मोड़ की है—उस मोड़ की जहाँ पहुँचकर कविता समाज की सीप में एक आबदार मोती के रूप में चमकती है, अपने सामाजिक तथा मानवीय सन्दर्भों में जितनी सशक्त, अपने सौन्दर्य में उतनी ही भास्वर तथा प्रखर। कवि तथा पाठक के बीच की दूरी को भी यही कविता कम कर सकती है।

'प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी' अंचल की नई-पुरानी कविताओं को मिला-जुलाकर तैयार की गई नव्यतम काव्यकृति है। उत्तर-छायावादी कवियों में 'अंचल' सबसे विशिष्ट रहे हैं। विशिष्ट इस अर्थ में कि नरेन्द्र शर्मा तथा बच्चन से विपरीत उनकी कविता में परिस्थितियों की विषमता से विक्षुब्ध मन के हाहाकार की अपेक्षा उत्कट रूपासक्ति, उद्दाम तृष्णा तथा भयानक विह्वलता की स्थितियाँ प्रत्यक्ष हुई हैं। यह 'मधूलिका' तथा 'अपराजिता' की भावभूमि है, जिनकी कविताएँ कुछ ऐसा आभास देती थीं, मानो कवि की इस तृष्णा तथा उद्दामता का कोई अन्त ही न हो। बाद के 'किरण बेला', 'लाल चूनर', 'वर्षांत के बादल' तथा 'विराम-चिह्न' संग्रहों में कवि के स्वरों की कुछ बदली हुई भूमिकाएँ भी प्रत्यक्ष हुई और पिछली भावभूमि भी अपेक्षाकृत मँज-सँवरकर सामने आई। प्रस्तुत संग्रह प्रणयासक्ति, रूपतृष्णा तथा अन्य श्रृंगारी-मनोभावनाओं की अपेक्षाकृत इसी संयमित भूमिका को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। 'अंचल अपने काव्य-विकास में अपने अन्य समानधर्मों की तुलना में अधिक धारावाहिक तथा स्पष्ट रहे हैं। जो लीक उन्होंने प्रारम्भ में पकड़ी थी, बीच की भावावेशजनित कुछ तथाकथित प्रगतिशील कही जाने वाली कविताओं को छोड़ दिया जाय (अंचल ने स्वतः स्वीकार किया था कि उनकी सामर्थ्य इस भावभूमि पर काव्य-रचना करने की नहीं है, इसे उनकी ईमानदारी ही कहा जायगा) तो निर्द्वन्द्व भाव से वे उस पर अन्त तक चलते रहे हैं और आज भी चल रहे हैं। उन्होंने अपने को छलने का और एक प्रकार से हिन्दी के सामान्य कविता-प्रेमी पाठक को भ्रम में डालने का प्रयत्न नहीं किया। अपनी काव्य-प्रेरणा, काव्य-भूमि तथा संवेदना-क्षेत्र को वे समझते रहे हैं, और थोड़ा-बहुत भटकाव के बावजूद उसी पर आश्वस्त भाव से टिके रहे हैं। समीक्षक को भी उन्होंने सुविधा दी है, अपने कवि को और पाठक को भी। अपने परिचित क्षेत्र में, जिसमें अपनी विशिष्ट काव्य-रचना में वे माहिर हैं—उन्होंने भले ही अनेक स्तर प्रदर्शित किये हों, रहे वे उसी के भीतर हैं। आयु के साथ क्रमशः उनकी भावनाओं में एक सन्तुलन आया है, वे अधिक स्वच्छ भी हुई हैं। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में 'मधूलिका' या 'अपराजिता' सा बरसाती नदी का वेग न होकर शारदीया स्रोतस्विनी का अपेक्षाकृत सहज प्रवाह है। यहाँ शिकवे अधिक हैं, आर्त पुकार है, कचोटभरी विह्वलता है, उस प्रणयिनी या प्रणय के सन्दर्भ में जो गत की वस्तु बन चुका है फिर भी हृदय से मिटा नहीं है, तन-मन पर नशे के समान छाया हुआ है। एकाध फुटकल कविताओं को छोड़ दिया जाय तो अधिकांश कविताओं की भावभूमि यही है। गत प्रणय की आकुलताभरी स्थितियों में कवि यहाँ मौन चाहता है—सर्वत्र मौन—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुप रहो वन पंखियों की रूपगंधी ओ हवा
आज तो कुछ भी कहीं, कोई नहीं है, चुप रहो
चुप रहो अनुगूँजते, ओ शंखवर्षी बादलो
गुनगुनाती ओ गुफाओ, कंदराओ चुप रहो।

गत प्रणय की इस भूमिका से टकराकर पहली बार यहाँ कवि की आस्था तथा विश्वा चूर-चूर हुए हैं। उसके स्वरों में एक छिपी हुई व्यथा तथा करुणा बार-बार झाँ उठती है। इस भूमिका में भी कवि प्यार और उसके दर्द से पृथक नहीं होना चाहता—

'मेरा दर्द रहे नित जीवित, तुम केवल इतना करना'…

प्यार के दर्द को जीवित रखने के लिये इस प्रकार की विनय कविताओं में भी प्रका रांतर से की गई है। भावनाओं में एक गति सर्वत्र है और लगता है कि आज भ 'अंचल' का हृदय-कोष इस प्रकार की रचनाओं के लिये भरा-पूरा है। प्रणय-जनि सुख-दु:खमयी अनुभूतियों की अनेक भंगिमाएँ कविताओं में उभरी हैं। कल्पना के धनी कवि ने रूप तथा सौन्दर्य की कतिपय स्थलों पर आकर्षक छवियाँ प्रस्तुत की है जो पहले भी उसके काव्य का सत्य थीं और आज भी हैं। भाषा ने कवि का सा आद्यंत दिया है, वही मिली-जुली भाषा, जो इस प्रकार के गीत तथा कविताओं के लिए प्राय: टकसाली बन गई है।

अपनी समग्रता में 'अंचल' की ये कविताएँ उनके प्रणयी मन की बहुरंगी अभि व्यक्तियाँ हैं। इनमें वह मांसलता नहीं है जिससे उनकी पिछली रचनाएँ आवश्य रूप से सम्बद्ध रहा करती थीं और जिसे लक्ष्य करके ही एक समय आचार्य वाजपेयी ने उन्हें प्रकृतिवादी कहा था। वे प्यार के दर्द से भरे-पूरे एक प्रौढ़ कवि-हृदय की उपलब्धि हैं।

डॉ० गोपाल राय

चारु चन्द्रलेख : प्रथम वाचन की एक प्रतिक्रिया

यह निर्विवाद है कि किसी कलाकृति का मूल्यांकन करने के लिए उसका प्रथम दर्शन या प्रथम वाचन पर्याप्त नहीं होता, पर पुस्तकों के विषय में यह एक कठोर सत्य है कि अधिकांश पाठक—पेशेवर विशिष्ट समालोचकों को छोड़कर—किसी पुस्तक को सामान्यत: एक ही बार पढ़ पाते हैं। अत: किसी पुस्तक के प्रचार-प्रसार में प्रथम वाचन की प्रतिक्रिया का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। सामान्यत: इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हम अपने मित्रों से कहते-सुनते हैं, और पठन-रुचि पर शोधकार्य करने वाले विद्वानों के निष्कर्ष हैं कि पठन-रुचि के विकास तथा किसी पुस्तक के लोकप्रिय होने में ऐसी प्रतिक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

'चारु चन्द्रलेख' पर 'आलोचना-३०' में डॉ० रमेश कुन्तल मेघ का एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गम्भीर अध्ययन प्रकाशित हुआ है—इतना गम्भीर (?) कि हिन्दी के साधारण पाठकों की बात तो अलग है, कदाचित् विशिष्ट पाठकों को भी उसे ग्रहण करने में सर खुजलाना पड़े और फिर भी कुछ हाथ न आये।

मैंने 'चारु चन्द्रलेख' नवम्बर १९६३ में, उसके प्रकाशित होते ही, पढ़ा था, और प्रथम वाचन की अपनी प्रतिक्रियाओं को लिपिबद्ध कर लिया था। मित्रों के बीच इसकी चर्चा भी हुई थी। आज मैं उसे हिन्दी के व्यापक पाठक समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ।

'चारु चन्द्रलेख' को पढ़कर मुझे निराशा हुई। मैंने इसे 'उपन्यास' समझकर पढ़ना आरम्भ किया था, जो यह वास्तव में नहीं है।

आज तक उपन्यास की कोई सर्वमान्य कसौटी नहीं बन पाई है, पर इतना सब मानते हैं कि उपन्यास में एक कल्पना-प्रसूत किन्तु यथार्थ संसार का चित्रण होता है। 'चारु चन्द्रलेख' की उपन्यास की दृष्टि से सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसमें जो संसार कल्पित किया गया है, वह यथार्थ किंवा विश्वसनीय नहीं है। यद्यपि पं० व्योमकेश शास्त्री (जो वस्तुतः लेखक ही है) के मतानुसार "कथा का स्वर विश्वसनीय है" पर मुझे ऐसा नहीं प्रतीत होता। बार-बार मन में प्रश्न उठता है कि क्या विवेच्य कथा-पुस्तक में वर्णित अतिलौकिक घटनाएँ सम्भावना की कोटि में आ सकती हैं? इस कथा-पुस्तक में अतिलौकिक घटनाओं या कार्यों की इतनी भरमार है कि इसे पढ़ते वक्त लगता है, जैसे हम किसी तिलस्मी और मायावी संसार में विचरण कर रहे हैं! चन्द्रलेखा का आकाशमार्ग से उड़ना, कोटिवेधी रस सिद्ध करते हुए उसका गुरु गोरक्षनाथ और भगवती त्रिपुर भैरवी का संवाद सुनना, त्रिपुर भैरवी के छिन्न-मस्ता रूप का वर्णन, सीदी मौला के अद्‌भुत अनुभव तथा उसका भगवान बुद्ध के साक्षात् दर्शन करना, अशोक चल्ल के यहाँ राजा सातवाहन का तारादेवी के दर्शन करना आदि अतिलौकिक घटनाएं—इस प्रकार की घटनाओं से कथा भरी हुई है—तनिक भी विश्वसनीय नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि इन कार्यों को पात्रों के मानसिक विकारों से उद्‌भूत प्रतिभास के रूप में नहीं, वास्तविकतः घटित घटनाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कहीं-कहीं इनका वर्णन मानसिक विकारोद्‌भूत प्रतिभासों के रूप में भी है, पर उनके लिए पर्याप्त मनोवैज्ञानिक कारण नहीं दिये गए हैं। इस प्रकार के प्रतिभास मनोविश्लेषण की अपेक्षा रखते हैं, जिसका इस कथा-पुस्तक में अभाव है। इस कथा-पुस्तक की सैंकड़ों घटनाओं के बारे में यह सन्देह उठता है कि 'क्या ऐसा हो सकता है'? आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन घटनाओं की कल्पना साम्प्रदायिक पुस्तकों के आधार पर की है, प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर नहीं। पर क्या साम्प्रदायिक ग्रन्थों में वर्णित अतिलौकिक घटनाएं घटित हैं? क्या द्विवेदीजी ऐसा मानते हैं? प्रश्न सन्देह की कुज्झटिका में खो जाता है।

यह तो अतिलौकिक घटनाओं की बात हुई। लेखक ने विवेच्य कथा-पुस्तक में वर्णित सामान्य कार्यों को भी विश्वसनीय बनाने का प्रयास नहीं किया है। चन्द्रलेखा का व्यवहार (और इसलिए उसका चरित्र भी) आरम्भ से लेकर अन्त तक असामान्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सिद्ध योगिनी बनने के पूर्व भी उसका व्यवहार स्त्रीजनोचित नहीं है। क्या कथा-कार का सचमुच ऐसा विश्वास है कि बत्तीस स्त्रीलक्षणों से युक्त नारी या सर्प-फण पर नृत्य करते खंजन का शकुन देखने वाली स्त्री राजरानी होती है ? क्या मृणाल देवी और चन्द्रलेखा (यदि ये ऐतिहासिक पात्र हैं) के साथ ऐसा घटित हुआ था ? क्या ऐसा अतीतकाल में वस्तुत: किसी के साथ घटित हुआ था ? ज्योतिष (और लेखक के भी) के इस विश्वास को विश्वसनीय बनाने में लेखक को सफलता नहीं मिली है।

'चारु चन्द्रलेख' में किसी भी पात्र का चरित्र प्रभावोत्पादक नहीं बन पाया है। प्रथम तो इसके सभी पात्र रहस्य के झुटपुटे में अस्पष्ट बने रहते हैं। कथा का प्रधान पुरुष पात्र सातवाहन सर्वत्र निष्क्रिय, चिन्तनमूढ़ और दृढ़ संकलपरहित व्यक्ति के रूप में दिखाई पड़ता है। आत्मशक्ति और दृढ़ निश्चय जैसी कोई वस्तु उसके चरित्र में है ही नहीं। वह विद्याधर भट्ट, बोधा प्रधान और मैना के हाथों का खिलौना मात्र है। इस प्रकार के पुंसत्वहीन, ढुलमुलयकीन और चिन्तनमूढ़ व्यक्ति के रूप में सातवाहन को प्रस्तुत कर उपन्यासकार ने युग को कौन सा सन्देश देना चाहा है, इसका पता नहीं चलता।

मैना—मैनसिंह—जो आनन-फानन में अद्भुत कार्य सम्पन्न कर डालती है, वह उसके वय, लिंग और परिस्थिति को देखते हुए विश्वसनीय नहीं लगता। उसकी वीरता और कुशलता असामान्य की सीमा का स्पर्श करती है।

इस कथा-पुस्तक में चिन्तन है, आध्यात्मिक विचारों का मन्थन है, गम्भीर तत्त्ववाद है, भावनाओं की मार्मिक अभिव्यंजना भी है, पर यथार्थ, जिसके अभाव में उपन्यास की कल्पना नहीं की जा सकती, का स्पन्दन इसमें नहीं सुनाई पड़ता।

'चारुचन्द्रलेख' की सबसे बड़ी शक्ति और सिद्धि है, इसकी भाषा। जहाँ कहीं लेखक को सौन्दर्य या वस्तुवर्णन का अवसर मिलता है, वह उपमाओं की ऐसी मोहक झड़ी प्रस्तुत करता है, रूपक का ऐसा भव्य-ठाट बाँधता है, सटीक शब्द प्रयोग का ऐसा कौशल दिखाता है कि बस पढ़ते ही बनता है। कथा-वर्णन में लेखक (अपने पात्रों के माध्यम से) किस्सागोई का वह उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसकी तुलना 'सहस्र रजनी चरित्र' की शाहजादी से ही की जा सकती है। भावनाओं के उच्छल प्रवाह को वाणी देने में भी लेखक को अद्भुत सफलता मिली है। रानी चन्द्रलेखा के प्रति राजा सातवाहन के गम्भीर, करुण और कभी-कभी उद्वेलित हो उठने वाले प्रेमभाव के प्रभावशाली वर्णन मनोमुग्धकारी हैं। मैना का अहेतुक आत्मसर्पण, बोधा प्रधान का निर्व्याज सेवा-भाव, नाटी माता और भगवती विष्णुप्रिया का सहज-वात्सल्य तथा भक्तिभाव समर्थतम वाणी पाने में समर्थ हुए हैं। 'चारु चन्द्रलेख' की भाषा संस्कृत गद्यकाव्यों का स्मरण दिलाती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि उपन्यास की दृष्टि से 'चारु चन्द्रलेख' की भाषा उपयुक्त नहीं है। सीदी मौला की संस्कृतनिष्ठ काव्यात्मक भाषा विश्वसनीय नहीं बन पाई है। उसका तुलसी की पंक्ति ('कहियत भिन्न न भिन्न') का उद्धरण तो हास्यास्पद प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल मिलाकर 'चारु चन्द्रलेख' विश्वसनीयता का वातावरण उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हुआ है। वह भले ही 'धार्मिक साधनाओं का सन्दर्भ-ग्रन्थ' हो। धर्म और इतिहास का भ्रमर-चम्पक कुयोग हो, 'मध्य-काल के इतिहास की पुनर्रचना' हो 'अन्तरानुभूति' का महाकाव्य हो, पर यह 'उपन्यास' नहीं है। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ने इसे एक नयी विधा 'चारु कथा लेख' कहा है, पर डॉ० मेघ को इस नवीन नाम-करण की सार्थकता अभी सिद्ध करनी है। हम इसे गद्यकाव्य ही क्यों न कहें ?

अन्त में मैं यह स्वीकार करता हूँ कि 'चारु चन्द्रलेख' को पढ़कर एक तरफ निराशा हुई तो दूसरी तरफ आनन्द भी कम नहीं मिला। बाह्य सौन्दर्य और भावों का ऐसा मार्मिक तथा सशक्त वर्णन मैंने इधर नहीं पढ़ा था।

श्रीमती विजय चौहान

रेखा

स्वतन्त्रता के बाद के अनेक हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग की शिक्षिता नारियों की, बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों में पैदा होनेवाली 'एडजस्टमेण्ट' की समस्याओं का चित्रण किया गया है किन्तु आधुनिक नारी को केवल आर्थिक संघर्ष और सैक्स-कुण्ठा के परिप्रेक्ष्य में ही रखकर समझने की कोशिशें की गई हैं। नारी के दृष्टिकोण से विवाहित जीवन की समस्याओं का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण कम लेखकों ने किया है 'चित्रलेखा' में भगवती बाबू ने स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों, प्रेम, पाप तथा पुण्य के विषय में दार्शनिक तथा कलात्मक स्तर पर अनेक प्रश्न उठाये थे। तब से लेकर भगवती बाबू ने अनेक उपन्यास लिखे हैं और बदलते हुए सामाजिक यथार्थ के साथ उनकी शैली और दृष्टिकोण भी बदला है।

प्रस्तुत उपन्यास में रेखा नाम की एक प्रतिभाशाली युवती का चित्रण है जो अपने अधेड़ प्रोफ़ेसर प्रभाशंकर के प्रति आकर्षित होती है। प्रभाशंकर विधुर हैं और एक विवाहित स्त्री देवकी के साथ उनका सैक्स सम्बन्ध है। रेखा के प्रति प्रभाशंकर को आकर्षित होते देखकर देवकी चेतावनी देती है। "इससे बचकर रहने में ही तुम्हारा कल्याण है। यह तुमसे अवस्था में बहुत छोटी है, तुम्हारी लड़की के बराबर, और मौक़ा पड़ने पर यह खतरनाक भी साबित हो सकती है।"

प्रभाशंकर रेखा के अनिंद्य यौवन के प्रति आकर्षित हुए और रेखा उनकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति और सुन्दर व्यक्तित्व के प्रति। दोनों ने आपस में शादी कर ली। लेकिन रेखा को सुख न मिल सका, क्योंकि पति उम्र में उससे बहुत बड़े थे। झूठे पाति-व्रत्य का आडम्बर रचकर अपनी आत्मा को धोखा देने की बजाए वह अपने शरीर की भूख को विभिन्न पुरुषों से शारीरिक सम्पर्क स्थापित करके शान्त करने का यत्न करती है। उसका विश्वास है कि "भूख प्रकृति है, उसे दबाना प्रकृति के साथ अन्याय

'रेखा' : लेखक भगवतीचरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन, मूल्य नौ रुपये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना होता है—बुद्धि इतना जानती है। उपवास करना, अपने को प्रताड़ित करना यह सब अन्धविश्वास की परम्परा है। वैज्ञानिक और स्वस्थ बुद्धि के स्तर से अलग की चीज़!" किन्तु उसकी अन्तर्रात्मा चेतावनी देती है, "यह शरीर की भूख बुद्धि नष्ट कर देती है।" सोमेश्वर, रेखा के साथ 'अफ़ेयर' ख़त्म करके अमेरिका चला जाता है, जब रेखा को पता लगा कि वह माँ बनने वाली है तो वह लेडी डॉक्टर की सहायता से 'अबॉर्शन' करवा लेती है क्योंकि मन से वह अभी भी प्रभाशंकर के प्रति समर्पित थी। इसके बावजूद रेखा में एक विचित्र हिंस्र पागलपन पैदा हो जाता है और वह स्वस्थ युवकों को अपने प्रति आकृष्ट करती है—निरंजन कपूर को; अपनी तरुणी मंगेतर शीरीं को छोड़कर रेखा के पीछे पागल हो जाता है। उधर प्रभाशंकर शीरीं की खूबसूरत माँ रत्ना चावला से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं और उन्हें यह एहसास होता है, "शरीर का अपना एक अलग स्थान है आत्मा से पृथक।" दोनों एक-दूसरे को यंत्रणा देते हैं। प्रभाशंकर रेखा को मारना-पीटना शुरू कर देता है। लेकिन रेखा उन्हें छोड़कर नहीं जाती, क्योंकि प्रभाशंकर की उदारता और मानवता के बल पर वह ज़िन्दा है, फिर भी शशिकान्त, और उसके बाद अपनी सबसे नज़दीकी सहेली ज्ञानवती के प्रेमी कलाकार शिवेन्द्र के प्रति भी वह आकर्षित होती है। लेकिन वह ज्ञानवती से अधिक समझदार है, इसीलिए ज्ञानवती को सलाह देती है कि शिवेन्द्र से शादी न करे, क्योंकि शिवेन्द्र ज़िन्दगी में लेना जानता है देना नहीं।

अन्त में रेखा डॉक्टर योगेन्द्रनाथ के प्रति आकर्षिक होती है जो रेखा को समझाता है कि शरीर की कमज़ोरियों पर विजय पाना असम्भव नहीं है। लेकिन रेखा अपनी आत्मा को कुण्ठित करके शरीर की कमज़ोरियों पर विजय पाने के लिए तैयार नहीं। योगेन्द्रनाथ शारीरिक सम्बन्ध को आत्मिक सम्बन्ध से अलग नहीं मानता। भगवती बाबू ने योगेन्द्रनाथ के द्वारा अपने उपन्यास के मूलभाव को व्यक्त किया है—"प्रेम आत्मा और शरीर इन दोनों के समान भाव से एक-दूसरे में लय की प्रक्रिया का नाम है।" रेखा के जीवन के अन्तर्द्वन्द्व का मुख्य कारण यही है कि उसने शारीरिक भूख की अवहेलना करके प्रभाशंकर से शादी की है—और वह इस ग़लती से चिपकी रहना चाहती है।

उपन्यास के अन्तिम दो परिच्छेद अत्यन्त मार्मिक हैं। रेखा अपनी कुण्ठाओं और अतृप्तियों से बचने के लिये घर के कामकाज में व्यस्त रहती है लेकिन वह घुटन के बीच में ज़िन्दा नहीं रह सकती क्योंकि "एक घुटन सैकड़ों मृत्यु के बराबर होती है।" योगेन्द्रनाथ उसे इस भँवर जाल से त्राण दिलाने के लिए एक स्वीडिश विश्वविद्यालय की नौकरी स्वीकार कर लेता है। रेखा योगेन्द्रनाथ के बग़ैर ज़िन्दा नहीं रह सकती, न ही वह योगेन्द्रनाथ के साथ जा सकती है, क्योंकि प्रोफ़ेसर को पक्षाघात हो जाता है। प्रभाशंकर रेखा के आगे यह क़बूल कर लेते है कि रेखा से शादी करके उन्होंने उसके प्रति अन्याय किया है। "अपने शरीर की भूख को तो मैं जानता था लेकिन तुम्हारे शरीर की भी कोई भूख हो सकती है इस बात को मैं भूल गया था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात से द्रवित होकर रेखा वहीं बैठी रहती है और जब वह एयर पोर्ट पहुँचती है तो योगेन्द्र का प्लेन जा चुकता है, और जब वह घर लौटती है तो देखती है कि हार्ट अटैक से प्रभाशंकर की भी मृत्यु हो चुकी है। इस प्रसंग में यह अन्ना केरेनीना की-सी ट्रैजेडी है, अन्तर इतना है कि अन्ना ने अपने प्रेमी व्रॉन्स्की की रेलगाड़ी तले लेटकर अपने प्राण दे दिए और रेखा के साथ भाग्य ने क्रूर खिलवाड़ किया, जिसके लिए कुछ हद तक स्वयं रेखा भी उत्तरदायी है। यह जानते हुए भी कि डॉक्टर प्रभाशंकर के साहचर्य्य में रहकर वह अतृप्त रहेगी और 'अतृप्ति से ही पागलपन पैदा होता है' वह मानसिक रूप से केवल प्रभाशंकर के प्रति ही समर्पित है। वह दूसरे पुरुषों से निर्भीक भाव से प्रणय-सम्बन्ध स्थापित तो करती है लेकिन हर बार बाद में उसे अपराध की अनुभूति होती है, जिसकी वजह से वह कोई भी ठोस क़दम उठाने में असमर्थ रहती है। यह विरोधाभास शिक्षिता भारतीय महिलाओं में अभी तक मौजूद है और रेखा के चरित्र के इसी विरोधाभास ने उपन्यास को सशक्त बनाया है।

लेकिन सफल चरित्र-चित्रण और सशक्त थीम के बावजूद प्रभाशंकर की 'अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति' 'रेखा का फ़र्स्टक्लास फ़र्स्ट' होना, कार ड्राइव करना, एम्बेसीज़ की पार्टियों में जाना, स्कॉच पीना, और फिर पति को "मेरे आराध्य ! मेरे देवता !" कहना कुछ बेतुका लगता है। इसी तरह 'एकेडमी अवार्ड' वाली फ़िल्म का ज़िक्र तो किया गया है लेकिन फ़िल्म का नाम नहीं बताया गया, इम्पीरियल होटल के 'सुसज्जित' कमरे की सजावट का भी एक चलता हुआ हवाला दिया गया है।

'लो ब्लड प्रेशर' के मरीज़ को कॉरोनरी थ्रॉम्बॉइसिज़ बहुत कम होता है और इस उपन्यास में पृष्ठ ३२९ पर जिस 'थरोनरी आम्बेसिज' का ज़िक्र है—शायद वह कॉरोनरी थ्रॉम्बॉइसिज़ ही है। शायद यह छपाई की ग़लती हो।

अन्त में, यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि 'रेखा' मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर लिखे गए आजतक के सभी हिन्दी उपन्यासों से बेहतर है और आधुनिक नारी की समस्याओं को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से समझने का प्रशंसनीय प्रयास है।

महेन्द्र भटनागर

दो नये उपन्यास

उपन्यास नामक साहित्य-रूप के प्रतिपाद्य अथवा क्षेत्र की चर्चा करते समय सैद्धान्तिक ग्रन्थों में प्रायः लिखा मिलता है कि उपन्यास का क्षेत्र अतिविस्तृत है, वह सभी विषयों को अपने में समेट लेता है, सामान्य से सामान्य प्रसंगों, घटनाओं तथा चरित्रों के लिए

१. वे दिन—श्री निर्मल वर्मा, प्र० राजकमल प्रकाशन, मूल्य रु० ५.५०।
२. छोटे-छोटे सवाल—श्री दुष्यन्त कुमार, प्र० राजकमल प्रकाशन, मूल्य रु० ७.००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उसमें पर्याप्त स्थान-अवकाश है, उसमें अति साधारण, महत्त्वहीन, रोज़मर्रा की ज़िन्दगी का भी चित्रण किया जा सकता है आदि—इन सभी बातों का व्यावहारिक रूप श्री निर्मल वर्मा-कृत 'वे दिन' और श्री दुष्यंत कुमार लिखित 'छोटे-छोटे सवाल' नामक उपन्यासों में देखा जा सकता है। इसमें संदेह नहीं, ऐसी रचनाओं में कथारस अथवा कथा-सौष्ठव का अभाव रहता है। मंथर और बोझिल गति से कथानक आगे बढ़ता है। पाठक पढ़ते समय प्रायः ऊब उठते हैं। चरित्रांकन का भी कोई विशेष कौशल उनमें दृष्टिगोचर नहीं होता। जब उनमें जीवन के किसी विशिष्ट पक्ष का गहराई से अवलोकन भी नहीं पाया जाता तब तो पाठकों को ऐसे उपन्यासों से कुछ भी प्राप्ति नहीं होती। ऐसे उपन्यास सतही बनकर रह जाते हैं।

'वे दिन' का परिवेश एवं पृष्ठभूमि अभारतीय हैं। लेखक ने योरोप के युद्धोत्तर समाज का चित्रण किया है; जो आस्थाहीन व लक्ष्यहीन है। चेकोस्लोवेकिया में चूंकि लेखक स्वयं रहा है अतः देशकाल का विवरण सही माना जा सकता है। क्रिसमस की छुट्टियों में आई एक सैलानी महिला रायना के अभिशप्त जीवन की अवसादपूर्ण गाथा 'वे दिन' में कही गई है। मात्र रायना की असाधारणता ही कुछ चमत्कार उत्पन्न करती है; उसमें कोई गहरी मनोवैज्ञाविकता खोजना असंगत ही होगा। रायना की मनोदशा को उपन्यासकार यदि और गहराई से आँकने की चेष्टा करता तो सम्भवतः 'वे दिन' अधिक सफल उपन्यास सिद्ध होता।

'छोटे-छोटे सवाल' तो और भी सामान्य कोटि का है। उसका किस्सा शैक्षिक जगत् से अधिक सम्बद्ध है। प्राइवेट शैक्षणिक संस्थाओं में व्याप्त असंगतियों एवं भ्रष्टाचार का नग्न रूप 'छोटे-छोटे सवाल' में चित्रित किया गया है। इसमें संदेह नहीं लेखक में यथार्थ को चित्रित करने की अच्छी क्षमता है। उसके पात्र भी सजीव हैं पर, कुल मिलाकर उपन्यास प्रभावहीन है। अन्त में अस्वाभाविकता भी पर्याप्त है। निष्कर्ष रूप में जिन छोटे-छोटे सवालों की ओर संकेत किया गया है वे रचना को निरर्थक बना देते हैं। हिन्दी-उपन्यास के वर्तमान विकास को देखते हुए ये दोनों उपन्यास अति साधारण कोटि के हैं।

मधुरे

लौटती लहरों की बाँसुरी

भारतभूषण अग्रवाल नई कविता के सुपरिचित कवि हैं। 'लौटती लहरों की बाँसुरी' (शीर्षक से इस बार भी कविता का भ्रम होता है!) से वह एक नई दिशा की ओर मुड़े हैं—कविता से उपन्यास की ओर। परन्तु उनका यह पहला उपन्यास भविष्य

१. लौटती लहरों की बाँसुरी : भारतभूषण अग्रवाल, प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, पृ० संख्या १६४, मूल्य ३·५०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति आस्था के कुछ सूत्र-संकेत भले ही छोड़ता हो, वर्तमान की उसकी उपलब्धि निश्चय ही किसी समर्थ और शक्ति-सम्पन्न कृति की उपलब्धि नहीं है।

'लौटती लहरों की बाँसुरी' को लेकर लेखक का आग्रह है कि वह 'दिवा-स्वप्न की शैली में एक भावुक मन की अन्तर्कथा' है। पुस्तक की अतिशय भावुकता को जैसे वह स्वयं स्वीकारता है और उसका अस्तित्व-बोध उससे एकाधिक जस्टीफिकेशन की माँग करता है। शायद इसी कारण से उपन्यास के नायक अशोक को एक कवि बनाया गया है और अनेक स्थलों पर अनेक पात्रों के मुँह से कहलवाया गया है कि वह अत्यधिक भावुक है, अतिशय सेन्सटिव !

अशोक एक लम्बे अर्से बाद कलकत्ता आया है—दफ्तर के किसी काम से। फोन करते हुए आज भी उसके हाथ बेतरह काँप रहे हैं, जैसे आज से बीस वर्ष पूर्व। पृष्ठभूमि में शायद तब भी अमिता थी आज भी अमिता है। और तब बीस वर्षों का वह अन्तराल जैसे पिघलकर बहने लगता है। अशोक अपने अतीत से साक्षात्कार करता है जब अपनी युवावस्था में वह किसी भयावह आकर्षण से बंधा अमिता की ओर खिंचा था। अमिता से हुई एक नाटकीय भेंट उसके जीवन की महत्वपूर्ण घटना बन गई जिसकी कोख से ही आगे की लगभग अनुमानित और प्रत्याशित ट्रेजेडी जन्मती है। अमिता के भाई को पढ़ाकर उसके परिवार का सम्पर्क उसे मिला परन्तु सामाजिक विधि-निषेध और आर्थिक वैषम्य की मोटी दीवार हमेशा उनके बीच रही और उसे तोड़ने की कोई कोशिश भी दोनों में से किसी ने की हो ऐसा नहीं लगता है। अशोक ने उसे महसूस भले ही किया हो और उसके उस ऐहसास में आवेश की निष्क्रियता भले ही हो, सुचिन्तित संघर्ष का माद्दा एकदम नहीं है। कारण शायद यह है कि उसके उस प्रेम की असफलता को ही लेखक एक सिद्धि मानकर चला है ! शायद इसी कारण लेखक को उसकी भावुकता की इस कदर आवश्यक-अनावश्यक वकालत करनी पड़ी है। परन्तु इससे भी बात कुछ बनी नहीं है वह भावुकता उसे अकर्मण्य बनाती है जैसे सब कुछ को नतशिर स्वीकारना ही उसकी नियति है, उसकी विवशता है।

'अज्ञेय' के समान एक ओढ़ी हुई पीड़ा का 'दर्शन' भी कहीं-कहीं मिलता है, परन्तु 'अज्ञेय' की दार्शनिक भंगिमा और एकाधिक स्थलों पर मिले पीड़ा के उदात्त रूप का इस कृति में नितान्त अभाव है। सारा उपन्यास कालेज के रोमानी और कविता के अशरीरी प्रेम से भरा है। न तो उसमें जीवन के किसी उदात्त पहलू के दर्शन होते हैं और न ही प्रेम को लेकर कोई नया दृष्टिकोण मिलता है। अशोक और अमिता के प्रेम की असफलता ही अपने में एक प्रयोजन हो तो बात अलग है अन्यथा सारा उपन्यास निष्प्रयोजन है। कहानी की सहजता और विषयगत रोचकता को ही उसकी उपलब्धि माना जाये तो बात दूसरी है क्योंकि कवि होने के बावजूद साधारण बात को प्रायः ही साधारण ढंग से भारतभूषणजी कह सके हैं।

उपन्यास का शिल्प अलबत्ता ध्यान आकर्षित करता है। उसका शिल्प और शीर्षक की सांकेतिकता एक अन्तर्सम्बन्ध में जुड़े-बँधे हैं। अतीत में हुए प्रेम की अनुभूति का साक्षात्कार अपने में एक रोचक अनुभव है। लम्बे अन्तराल के पार अनुभूति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह संगीत कुछ वैसा ही जादू पैदा करता है जैसे लहरों पर तैरकर आती हुई बाँसुरी की गूंज। चूंकि अनुभूति का सम्बन्ध अनिवार्य रूप से अतीत से है इसलिए स्वाभाविकतः ही किसी ऐसे शिल्प की आवश्यकता थी जो सहज रूप में अतीत की रेखाओं को वर्तमान के समानान्तर उभारता चले। लेखक का आग्रह उसे 'अन्तर्कथा की शैली' कहने का रहा है लेकिन यह शैली भी चेतना-प्रवाह पद्धति का ही एक भाग है इसीलिए उसका शिल्प बहुत कुछ 'परती : परिकथा' और 'आरोग्य-निकेतन' के शिल्प जैसा है। फोन करते समय अतीत की स्मृति से पैदा हुई बदहवासी, वीरेन्द्र के प्रति व्यक्त किया गया आक्रोश, वीणा और अमिता के साथ खाने की मेज़ पर बैठकर कोई एक ऐसा संकेत-शब्द जो अतीत का सारा परिप्रेक्ष्य उभार देता है आदि साहचर्य के कुछ ऐसे स्वाभाविक सूत्र हैं जो वर्तमान को अतीत से जोड़ते चलते हैं कहानी को बिना कहीं उलझाये हुए। और उपन्यास का यह उलझावहीन सहज शिल्प ही उसे एक सुपाठ्य रचना के गुण से सम्पन्न करता है।

उपन्यास की भाषा और उससे सम्बन्धित प्रयोग को लेकर कुछ कहना भी शायद असंगत नहीं होगा। चूँकि उपन्यास का लेखक एक कवि है इसलिए स्वाभाविक तौर पर उपन्यास की भाषा में कविता का भ्रम होता है। यह ठीक है कि गद्य और पद्य की भाषा के एक होने का नारा वर्षों पहले लगाया गया था परन्तु दोनों की शैली के स्वाभाविक अन्तर को दूर करने का प्रयास और उसकी सफलता का अनुपात हमेशा ही असम रहा है। और आज तो यह परेशानी और भी अधिक है जब कविता का आग्रह गद्यात्मकता की ओर है और कहानी अत्यधिक संकेतों-प्रतीकों और नवीन शब्द-प्रयोग की ओर बढ़ रही है। परन्तु 'बतराती' और 'प्रस्थानोद्यताओं' जैसे शब्द न तो सहज ही लगते हैं और न सार्थक ही। उपन्यास में अंग्रेजी भाषा और शब्दों का भी खुलकर प्रयोग हुआ है। वीणा के सामने अमिता और अशोक के बीच कई-कई वाक्य अंग्रेजी में चलते हैं। (भले ही कोष्ठकों में उनका हिन्दी अनुवाद दे दिया गया हो) और खीझकर वीणा को कहना पड़ता है कि वह भी अंग्रेजी समझती है ! तब तो स्थिति पर सचमुच हँसी आती है जब अमिता के घर के रसोइये और नौकरों को भी अशोक अंग्रेजी में जवाब देता है !

सब मिलाकर शायद यह कहा जा सकता है कि 'लौटती लहरों की बाँसुरी' कोई बड़ी उपलब्धि या हिन्दी कथा-साहित्य की कोई महत्वपूर्ण कृति भले ही न हो परन्तु शिल्प और विषय के स्तर पर उसकी सहजता लेखक के भविष्य के प्रति आस्था पैदा करती है। निष्प्रयोजन घटना प्रवाह और कैशोर भावुकता से बचकर यदि वह जीवन को उसकी सहज गरिमा के साथ प्रस्तुत कर सका तो निश्चय ही वह किसी श्रेष्ठतर कथा-कृति को जन्म देगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० कुमार विमल

हिन्दी-साहित्य और बिहार

(द्वितीय खण्ड)

यह पुस्तक इतिहास और साहित्यिक सर्वेक्षण के बीच की चीज है, क्योंकि यह न किसी विपश्चित् अनुसन्धाता की रचना है और न किसी साहित्यिक परिव्राजक की। इसमें यथोपलब्ध सामग्री का उपयोग विवरणात्मक परिचय की पद्धति पर किया गया है जबकि साहित्येतिहास-लेखन का कार्य बहुलांश में अनुसन्धानात्मक होता है। अतः पहली नज़र में यह ग्रन्थ अनुसन्धायक नहीं, किसी संकलनकर्त्ता के कार्य जैसा प्रतीत होता है। किन्तु गहराई से विचार करने पर इसकी महत्ता के संलक्ष्यक्रम पटल खुलने लगते हैं। स्वयं आचार्य शिवपूजन सहाय ने इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड की भूमिका में विद्या-विनम्र होकर नहीं, बल्कि पूरी बौद्धिक तटस्थता के साथ ऐसे कार्य की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए इसकी रेखांकित विशेषता का निर्देश इस प्रकार किया था :—

(क) "यद्यपि मेरी दृष्टि में यह इतिहास हिन्दी-संसार को 'शिवसिंह सरोज' के समान भी जँचने योग्य नहीं है, तथापि आधुनिक शोध-युग के अनुसन्धान-परायण सज्जनों के लिए यह आधार-शिला मात्र तो होगा ही।"

(ख) "इस शोध-समीक्षा-प्रधान युग में कोई साहित्यिक इतिहास सर्वथा निर्दोष और सर्वांगपूर्ण नहीं हो सकता; क्योंकि साहित्यिक अनुसन्धान की प्रगति दिन-दिन प्रखर होती जा रही है और नवीन शोधों के फलस्वरूप पुरानी स्थापनाएँ एवं परम्पराएँ परिवर्तित होती जाती हैं, अत जो कुछ प्राप्त हो चुका है, वह हिन्दी-संसार के सामने जब उपस्थित कर दिया जाएगा, तभी विज्ञ विद्वानों द्वारा त्रुटियों का मार्जन हो सकेगा।"

अतः आज का कोई खरा और निष्पक्ष विचारक इस ग्रन्थ पर जो सावधान टिप्पणी देगा, उसे बहुत पहले ही स्वर्गीय आचार्य सहाय ने प्रायशः अपनी कृति के प्रति रहनेवाली आशुतोष आसक्ति से मुक्त होकर स्वीकार कर लिया था। आशय यह है कि साहित्येतिहास-लेखन के महत्त्व की दृष्टि से यह ग्रन्थ 'नींव का रोड़ा' है। फलस्वरूप, ईद्दक्तया एक 'अनपढ़ शिला-खण्ड' के समान रहने पर भी और तथ्य-निरूपण के सन्दर्भ में आगमिष्यत् शोधों से इसकी अनेक स्थापनाओं के खण्डित हो जाने की प्रशस्त सम्भावनाओं के बावजूद इसका महत्त्व सर्वथा निर्विवाद है, क्योंकि बिहार के साहित्यिक इतिहास के सम्बन्ध में इतना व्यवस्थित (यद्यपि सूचनात्मक) शोध-कार्य इससे पहले नहीं हुआ था। अतः मेरी दृष्टि से इस ग्रन्थ को इतिहास-लेखन की दिशा में एक प्रास्थानिक प्रयत्न का महत्त्व अवश्य मिलना चाहिए। बहुत कोताही करने पर भी हिन्दी-जगत् को आचार्य शिवपूजन सहाय का धन्यवाद इसलिए करना

सम्पादक—आचार्य शिवपूजन सहाय, प्रकाशक—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना: प्रथम संस्करण, पृष्ठ-संख्या ४१२—मूल्य ८.०० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा कि उन्होंने अन्धकार के धौरहर में पड़े हुए बिहार के अनेक साहित्यकारों को प्रत्यूष की पहली किरण दिखला दी। कम-से-कम, इस ग्रन्थ का प्रथम खण्ड तो निश्चय ही बिहार से सम्बद्ध हिन्दी साहित्येतिहास के 'अन्धकार-युग' की पहली दीवाली है।

इस ग्रन्थ-योजना के पीछे आचार्य शिवपूजन सहाय का यह उद्देश्य था कि बिहार के लेखकों, कवियों, सम्पादकों और पत्रकारों ने हिन्दी की जो सराहनीय सेवा की है, उसके महत्त्व को हिन्दी साहित्येतिहास के सन्दर्भ में उपस्थित किया जाए ताकि बिहार का साहित्यिक गौरव घोर अन्धकार और विस्मृति के गर्भ में छिपा हुआ नहीं रहे। बहुमूल्य शोध-सामग्री से मुक्त आलोच्य खण्ड के ललित 'वक्तव्य' में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के वर्तमान निदेशक डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' ने आचार्य सहाय की इस ग्रन्थ-योजना के सम्बन्ध में उचित ही लिखा है कि 'आचार्य शिवपूजन सहाय के जीवन की जो थोड़ी अभिलाषाएँ शेष थीं, उनमें से एक इस ग्रन्थमाला का प्रकाशन भी था।"...

प्रस्तुत ग्रन्थ में उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध की सामग्री उपस्थित की गई है। सम्पूर्ण पुस्तक तीन अध्याय और छह परिशिष्टों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में ४३, द्वितीय अध्याय में ९१ और तृतीय अध्याय में ६९ साहित्यकारों का विवरणात्मक परिचय है। प्रथम अध्याय में केवल उन्हीं साहित्यकारों को रखा गया है जिनकी निश्चित जन्म-तिथियाँ ज्ञात हो सकी हैं और जिनमें से अनेक की निधन-तिथियाँ भी उपलब्ध हैं। इसी तरह द्वितीय अध्याय में उन साहित्यकारों का परिचयात्मक उल्लेख है, जिनका जन्म-काल उन्नीसवीं शती पूर्वार्द्ध में ही अनुमित है। इन साहित्यकारों में लगभग ३७ की रचनाएँ अनुपलब्ध हैं। तदनन्तर, तृतीय खण्ड में केवल उन साहित्यकारों के परिचय हैं, जिनका जन्म-काल उक्त अवध में ही अनिश्चित है। इन अध्यायों की तुलना में पुस्तक के अन्त में संलग्न छः परिशिष्ट कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, क्योंकि इनसे पुस्तक की शोधोपयोगिता यथेच्छ सम्वर्द्धित हो गई है। दूसरे परिशिष्ट में भूदेव मुखोपाध्याय जैसे हिन्दी-सेवी बिहारवासी बंगाली पर पर्याप्त सामग्री दी गई है, जिन्होंने बिहार की अदालतों में फारसी और कैथी लिपि के स्थान पर नागरी लिपि को प्रचलित कराने का उल्लेखनीय प्रयास किया था।

आलोच्य खण्ड के विश्लेषण से यह पता चलता है कि इसके स्वायत्तकाल अर्थात् उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध से बिहार में गद्यकाल का आरम्भ हो गया था तथा गद्य-साहित्य की अनेक विधाएँ अपना स्पष्ट रूप ग्रहण कर चुकी थीं। विधा-विकास की दृष्टि से रामलोचन मिश्र-कृत 'आत्मजीवनी' तथा भिन्नक मिश्र-रचित 'विद्यावती' उपन्यास हिन्दी गद्य-साहित्य के क्रोश-स्तम्भ तथा तत्तत् विधा-सम्बन्धी अत्याधुनिक कृतियों के समर्थ पूर्वपुरुष हैं। यह काल-खण्ड विषम-वैविध्य की दृष्टि से भी कम आकर्षक नहीं है। इसमें साहित्यकारों ने मांस-भक्षण-मीमांसा से लेकर खेचरी-षट्कर्म तक पर शास्त्रीय ग्रन्थ लिखे हैं। इतना ही नहीं, इस युग के एक साहित्यकार—श्री मोहनलालजी ने 'दाँत-बिजली-बल', 'रगड़-बिजली-बल' और 'वायु-विद्या' नामक तीन-विज्ञानविषयक पुस्तकों का भी प्रणयन किया है। अतः इस युग को हम सृजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैविध्य और रुचि-वैचित्र्य के प्रकर्ष का काल कह सकते हैं। यों इस युग में काव्य-शास्त्र पर सर्वाधिक पुस्तकें रची गई हैं। केवल वैजनाथ द्विवेदी ने ९ काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों (श्री सीतारामाभरण-मंजरी, नखशिख, रामरहस्य, वृत्तनिदोष-कदम्ब वाम-विलास, उद्दीपन-शृंगार-मंजरी, अनुभव-उल्लास, चित्राभरण और भूषण-चन्द्रिका) की रचना की है, जिनके आधार पर इन्हें हिन्दी काव्यशास्त्र का एक समर्थ आचार्य घोषित किया जा सकता है।

—प्रो० कैलासचन्द्र मिश्र

तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि

प्रस्तुत पुस्तक तान्त्रिक वाङ्मय के अद्वितीय विशेषज्ञ, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज जी के तन्त्रशास्त्र विषयक विशाल अध्ययन तथा साधना द्वारा उपलब्ध अनुभूतियों के संक्षिप्त संकलन का फल है। इस अत्यन्त मूल्यवान् ग्रन्थरत्न के प्रककाशन से शाक्त-साहित्य के दर्शन तथा चिन्तन-धारा पर अतिशय ज्ञानवर्धक प्रकाश पड़ता है। जैसा कि विद्वान् लेखक ने प्रस्तावना में स्वयं कहा है कि 'प्रस्तुत निबन्धा-वली में इसी उद्देश्य से सर्वसाधारण के अविदित इस शाक्त दृष्टिकोण के कतिपय प्रसिद्ध दार्शनिक तथ्यों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। यह दृष्टिभङ्गी तान्त्रिक साहित्य का एक वैशिष्ट्य है, इसमें सन्देह नहीं।' 'तान्त्रिक साहित्य' शब्द से शाक्त और शैवा-गम तथा तन्मूलक ग्रन्थ ही लिए गए हैं। वैष्णव आगमों में भी शक्ति-विषयक दृष्टि यद्यपि उपलब्ध होती है तथापि उसकी आलोचना पृथक् रूप से होनी चाहिए, ऐसा समझकर इसमें उसे स्थान नहीं दिया गया है।

भारतवर्ष के समग्र दार्शनिक तत्त्व चिन्तन के मूल में तीन चिन्तन-धाराएँ प्रमुख रूप से दीख पड़ती हैं, अद्वैत, द्वैताद्वैत और द्वैत। विभिन्न समयों में, देश काल की विविध परिस्थितियों के कारण, अनेकानेक भारतीय मनीषियों ने अपने-अपने बुद्धिभेद के अनुसार, विभिन्न प्रकार की दृष्टिभङ्गियाँ उपस्थित की हैं और इन दृष्टियों के आधार पर नाना प्रकार के साधना-पथों का प्रवर्त्तन हुआ है। तान्त्रिक साहित्य बहुत दिनों तक तान्त्रिक दार्शनिकों की गोपनीयता-वृत्ति तथा लोकाचार के विपरीत साधना-पद्धति के कारण उपेक्षित, हेय तथा अप्राप्य बना रहा। आर्थर आवलन महोदय ने आगम-समिति की स्थापना करके भारतीय दर्शन और साधना के इस परम मूल्यवान् तथा विशाल साहित्य की ओर देश के विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया तथा तन्त्र-विषयक 'शक्ति एण्ड शाक्त', (दि वर्ल्ड एज पावर,) 'दि प्रिंसिपल आफ़ तन्त्र' आदि ग्रन्थों की रचना करके तथा अनेक तान्त्रिक ग्रन्थों का प्रकाशन कराके भारतीयों की भ्रान्त

तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि :—ले० म० म० डॉ० गोपीनाथ, कविराज; प्रकाशक—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना। मूल्य ७'०५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारणाओं का निराकरण और उपेक्षा के कारण विनाशोन्मुख इस महान और अप्रतिम विशाल वाङ्मय की बहुत कुछ रक्षा की। सर्वश्री प्रबोधचन्द्र बागची, चिन्ताहरण चक्रवर्त्ती म० म० हर प्रसाद शास्त्री तथा पं० गोपीनाथजी कविराज के ग्रन्थों द्वारा तन्त्र शास्त्र का महत्त्व और तान्त्रिक दर्शन एवं साधना की प्राचीनता विस्तार और प्रभाव आज हम समझने लगे हैं।

तान्त्रिक साहित्य में शाक्त दृष्टि के मूल में जो शक्ति है, वह चिद्रूपा है। जड़ शक्ति नहीं। शक्ति पद से यहाँ कूटस्थ ब्रह्म या पुरुष का ग्रहण नहीं किया जाता। 'चितिः स्वतन्त्रा विश्व सिद्धिहेतुः' इस प्रकार की चिद्रूपा शक्ति यहाँ ग्रहण की जाती है। यह शक्ति शिव से अभिन्न होने पर भी विश्व-सृष्टि की मूलभूता है। इसका परिणाम नहीं होता, परन्तु प्रसार तथा संकोच होता है। भोक्ता और भोग्य भी शक्तिरूप हैं। सम्पूर्ण विश्व शक्ति की लीला है और इस अपने अभिनय की प्रेक्षिका भी शक्ति ही है। शक्ति का इस प्रकार संक्षिप्त निर्देश करके (१) सत्य का परम स्वरूप तथा महाशक्ति की लीला। (२) भगवत्कृपा का रहस्य, (३) भगवान् का जीवोद्धार क्रम-दीक्षा, (४) तन्त्र का स्वरूप, आविर्भाव और भेद, (५) परम शिव की पृष्ठभूमि, (६) शक्ति-साधना, (७) तान्त्रिक पूजा का परम आदर्श, (८) षट् चक्र भेद, (९) देह-विज्ञान, (१०) सृष्टि का उन्मेष, (११) सामरस्य या महामिलन, (१२) महाशक्ति— श्री श्री मां (१३) देह और कर्म, (१४) इच्छा शक्ति, (१५) अमरत्व-साधन पर शाक्त दृष्टि, (१६) शुष्क ज्ञान और दिव्य ज्ञान (१७) जपविज्ञान, (१८) नादतत्त्व, (१९) शाक्त दृष्टि से गुरुतत्त्व आदि अट्ठाइस निबन्धों का संकलन इस ग्रन्थ में किया गया है। स्थानाभाव के कारण उनका विस्तृत विवेचन यहाँ नहीं किया जा सकता।

ज्ञानगंज, वृन्दावन, आदि सिद्ध क्षेत्रों का स्वरूप निरूपण और रहस्य तथा योग-द्वारा वज्रदेह की प्राप्ति आदि ऐसे विषय हैं जो बुद्धिगम्य न होकर अलौकिक अनुभूति की अपेक्षा रखते हैं। उनके वर्णन पढ़कर साधारण बुद्धिजीवी मानव, जो इन विषयों का वैज्ञानिक दृष्टि से साक्षात्कार और प्रमाण माँगता है, अवश्य ही चकित, स्तम्भित तथा आश्चर्य से अभिभूत तो होगा किन्तु उसकी जिज्ञासा की पूर्ण तृप्ति और उसकी शंकाओं का समाधान नहीं हो सकता। इसी प्रकार इन निबन्धों में ऐसे अनेक स्थल हैं जो आपाततः परस्पर विरोधी कथनों से कदर्थित प्रतीत होते हैं और जिन्हें स्वयं लेखक ने बुद्धिगम्य नहीं माना है, फिर भी अनुभव के तारतम्य तथा दृष्टिभङ्गी के भेद के आधार पर उनमें समन्वय और सङ्गति बैठालने की चेष्टा की गई है।

हिन्दी साहित्य में तन्त्र साहित्य के परम विद्वान् कविराजजी के ये ग्रन्थ अनेक दृष्टियों से परम उपादेय, ज्ञानवर्धक, तथा विचारोत्तेजक हैं। कविराजजी की, तन्त्रतत्त्व और तन्त्र-साधना विषयक यह प्रौढ़ गवेषणा उनके प्रगाढ़ पाण्डित्य, विशाल अध्ययन, मौलिक चिन्तन तथा सिद्ध महामानवों के चरणों में बैठकर उपलब्ध किये हुए साधन-रहस्यों की विलक्षण अनुभूति के आलोक से उद्भासित हो रही है। साधन-पथ पर चलनेवाले साधनों के लिए इसमें अनेक उपादेय निर्देश संनिविष्ट हैं। तत्त्व जिज्ञासु दार्शनिकों के लिए विविध दृष्टिभङ्गियों का समन्वयात्मक प्रसाद यहाँ उपस्थित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मानविकी पारिभाषिक कोश

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENCYCLOPAEDIA OF HUMANITIES

सम्पादक : डॉ० नगेन्द्र

हिन्दी को ज्ञानात्मक साहित्य से समृद्ध करने का अभिनव प्रयास !

इस कोश की योजना की पूर्ति पाँच खण्डों में होगी :

साहित्य खण्ड : सम्पादक डॉ० नगेन्द्र
दर्शन खण्ड : सम्पादक डॉ० बी० एस० नरवणे
मनोविज्ञान खण्ड : सम्पादक डॉ० पद्मा अग्रवाल
समाजशास्त्र खण्ड : सम्पादक डॉ० श्यामाचरण दुबे
ललित कला खण्ड : सम्पादक डॉ० सुरेश अवस्थी

दो खण्ड प्रकाशित हो गये

साहित्य खण्ड

पाश्चात्य का साहित्य एवं साहित्यशास्त्रीय संकल्पनाएँ हमारी साहित्यिक गतिविधियों एवं उपलब्धियों, धाराओं और सिद्धान्तवादों को एक अवधि से प्रभावित कर रही हैं। "साहित्य खण्ड" में पाश्चात्य संकल्पनाओं और सिद्धान्तवादों की सोदाहरण, सामान्य व्याख्याएँ-परिभाषाएँ प्रस्तुत की गयी हैं, तथा समानान्तर भारतीय संकल्पनाओं के सन्दर्भ में उनके तुलनात्मक निरूपण के साथ-साथ उनके हिन्दी-पर्यायों का निर्धारण किया गया है।

मूल्य १२.५०

दर्शन खण्ड

दर्शनशास्त्र के क्षेत्र की पाश्चात्य संकल्पनाओं के पर्याय एवं परिभाषाएँ प्रस्तुत करने वाला खण्ड। भारतीय दर्शन की एक अपनी लम्बी परम्परा है; आधुनिक युग में उसका अध्ययन जिन पाश्चात्य सिद्धान्तों और शब्दों में किया जाता है, उसके लिए "दर्शन खण्ड" अतीव उपयोगी सिद्ध होगा। दर्शन-शास्त्र के प्राध्यापकों एवं छात्रों के लिए आवश्यक रूप से संग्रहणीय सन्दर्भ-ग्रन्थ।

मूल्य १२.५०

अन्य खण्ड शीघ्र ही प्रकाशित होंगे !

राजकमल

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६ पटना-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रैमासिक **आलोचना** के

स्थायी ग्राहक बनिये, और इसके चार-खण्डीय

स्वातन्त्र्योत्तर-हिन्दी-साहित्य-विशेषांक

की प्रतियाँ १८ रुपयों की जगह केवल १२ रुपये में पाइए !

फुटकर में इन खण्डों का मूल्य इस प्रकार होगा :

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक—१	:	जनवरी ६५ का अंक	: ६ रुपये
,, ,, २	:	अप्रैल ६५ का अंक	: ४ रुपये
,, ,, ३	:	जुलाई ६५ का अंक	: ४ रुपये
,, ,, ४	:	अक्तूबर ६५ का अंक	: ४ रुपये

स्वातन्त्र्योत्तर-हिन्दी-साहित्य-विशेषांक

में लगभग १२० निबन्ध होंगे

हिन्दी आलोचना पर	४
हिन्दी कविता पर	५
हिन्दी उपन्यास पर	१
हिन्दी नाटक, एकांकी, रेडियो तथा रंगमंच पर	३
हिन्दी कहानी पर	३
हिन्दी निबन्ध पर	१
हिन्दी में बाल-साहित्य, समाजशास्त्रीय साहित्य तथा वैज्ञानिक साहित्य पर	३
हिन्दी में हिन्दीतर भारतीय तथा विदेशी साहित्य पर, एवं विदेशों में हिन्दी साहित्य पर	१४
हिन्दी में शोधकार्य पर	१
साहित्य के नये मानमूल्यों, आधुनिकता और सामयिकता, परम्परा और प्रयोग, लेखक और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, लेखक और मानववाद, लेखक और युग के केन्द्रीय प्रश्न, सौन्दर्यशास्त्र के नये आधार, इत्यादि सामयिक प्रश्नों पर	१९
साहित्यिकों के रेखाचित्र	३१
श्रेष्ठतम कृतियों के पुनर्मूल्यांकन	२७
जनपदीय भाषाओं का नया साहित्य	८

प्रत्येक अंक को रजिस्टरी से पाने के लिए
१४ रुपये का मनीआर्डर आज ही भेजिए !

राजकमल

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६ पटना-६

श्री ओंप्रकाश, मैनेजिंग डाइरेक्टर, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि०, ८ फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली के लिए श्री सत्यप्रकाश गुप्ता द्वारा नवीन प्रेस, दिल्ली में मुद्रित ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक शिवदानसिंह चौहान

३३ आलोचना

R
28
दि 37 आ
अं-32

...ी साहित्य विशेषांक की रूपरेखा	शिवदानसिंह चौहान
...ष्टि और समाजवादी यथार्थवाद	नवलकिशोर
...स्त्र	व्लादीमीर वाइद्ले
...ीन कथा-चरित्र	डॉ० बेचन
... और हिन्दी की नयी कविता	गोविन्द रजनीश
आस्था और नयी कविता	डॉ० छोटेलाल दीक्षित
अपभ्रंश कथा-काव्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री
कामायनी की अतिलौकिक अन्तर्योजना	डॉ० रमाशंकर तिवारी
अंग्रेज़ी कविता : एक दिशा संकेत	सकलदीप सिंह
जेम्स जॉयस कृत 'युलिसिस' : एक कथा-प्रयोग	रामसेवक सिंह

राजकमल प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पा लो च ना

पूर्णांक ३२ नवांक ६ अक्तूबर, १९६४

वार्षिक मूल्य १२)
एक अंक का ३)

प्रत्येक अंक रजिस्ट्री से पाने के लिए १४)

सूची

● *सम्पादकीय*

—स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक १

● *सिद्धान्त विवेचन*

—मार्क्सवादी कलादृष्टि और समाजवादी यथार्थवाद
नवल किशोर ५

—कला का जीव-शास्त्र
व्लादीमीर वाइड्ले २१

—आधुनिक कविता और रस सिद्धान्त
डॉ० सावित्री सिनहा ३६

—आधुनिकता और नवीन कथा-चरित्र
डॉ० बेचन ४२

● *हिन्दी-साहित्य*

—यौन परिकल्पनाएँ और हिन्दी की नयी कविता
गोविन्द रजनीश ४८

—...स्था और नयी कविता
...छोटेलाल दीक्षित ५४

...ाहित्य

...काव्य

...शास्त्री ६२

...लौकिक

... ७५

—जेम्स जॉयस कृत 'युलिसिस' : एक कथा प्रयोग
रामसेवकसिंह ९८

● *प्रस्तुत प्रश्न*

—आज का बाल साहित्य
हरिकृष्ण देवसरे १०८

—आधुनिक हिन्दी कविता में 'विराट्' तत्त्व
रणजीत ११२

● *साहित्य और कला*

—संस्कृत नाटकों में संगीत की परम्परा
डॉ० श्रीमती गिरीश रस्तोगी ११८

● *मूल्यांकन*

—परशुराम की प्रतीक्षा, कोयला और कवित्व
डॉ० बेचन १२५

—दो नई कविता-पुस्तकें
डॉ० शिवकुमार मिश्र १३१

—चारु चन्द्रलेख : प्रथम वाचन की एक प्रतिक्रिया
डॉ० गोपाल राय १३६

—रेखा
श्रीमती विजय चौहान १३९

—दो नये उपन्यास
डॉ० महेन्द्र भटनागर १४२

—लौटती लहरों की बाँसुरी
मधुरेश १४३

—हिन्दी साहित्य और बिहार
डॉ० कुमार विमल १४५

—...ांत्रिक वाङ्मय में ...नदृष्टि
...लाशचन्द्र मिश्र १४७

पुस्तकालय, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

सम्पादकीय

... सन् १...२ 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य' के मूल्यांकन का वर्ष होगा—लगभग ८०० पृष्ठों के एक वृहत विशेषांक के माध्यम से जिसका प्रकाशन चार खण्डों में अगली जनवरी से आरम्भ हो रहा है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के ये नेहरू-कालीन १५-१६ वर्ष हिन्दी में साहित्यिक सृजन और विकास के अभूतपूर्व वर्ष रहे हैं।

पुरानी और नयी पीढ़ी के प्रतिभासम्पन्न लेखकों ने इसमें समान रूप से योग दिया है। उनके कृतित्व का मूल्यांकन और हिन्दी साहित्य के सम्मुख नित्य उठनेवाले प्रश्नों का गम्भीर विवेचन पुराने युगान्त और नये युगारम्भ की वेला में एक अनिवार्य दायित्व था, जिसकी पूर्ति के लिए हिन्दी के लगभग ११५ मूर्धन्य आलोचक और विद्वान सहयोग कर रहे हैं इस विशेषांक में, जिसकी रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत है।

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

नया ऐतिहासिक सन्दर्भ : नये प्रभाव : नया परिप्रेक्ष्य : नयी प्रवृत्तियाँ : नयी उपलब्धियाँ : नयी समस्याएँ : नये दायित्व। — शिवदानसिंह चौहान — १६

१. निबन्ध : विभिन्न विधाओं की उपलब्धियों का मूल्यांकन

१—हिन्दी आलोचना : विकास की प्रक्रिया — डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी — १६
(अ) छायावादी समीक्षा : सीमा और सम्भावना — डॉ० विजयशंकर मल्ल — १२
(ब) प्रगतिवादी समीक्षा : सीमा और सम्भावना — डॉ० चन्द्रभूषण तिवारी — १२
(स) नयी समीक्षा : सीमा और सम्भावना — विश्वम्भर 'मानव' — १२
२—हिन्दी कविता : प्रवृत्यात्मक विवेचन और मूल्यांकन — डॉ० जगदीश गुप्त — १६
(क) हिन्दी कविता : प्रगतिशील — डॉ० शिवकुमार मिश्र — १२
(ख) हिन्दी कविता : प्रयोगशील — रामशंकर मिश्र — १२
(ग) हिन्दी कविता : गीत — ठाकुरप्रसाद सिंह — १२
(घ) हिन्दी कविता : प्रबन्ध-काव्य — डॉ० रामदरश मिश्र — १२
३—हिन्दी उपन्यास : यथार्थ जीवन और युग के केन्द्रीय प्रश्नों का रूपायन — डॉ० रामगोपालसिंह चौहान — १६
४—हिन्दी नाटक : विकास की भूमिका — डॉ० सुरेश अवस्थी — १६
५—हिन्दी एकांकी तथा रेडियो नाटक — चिरंजीत — १२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—हिन्दी कहानी : नयी प्रवृत्तियाँ और उपलब्धियाँ — डॉ० नामवरसिंह — १६

(अ) हिन्दी की १२ श्रेष्ठ कहानियाँ : पुरानी पीढ़ी का योगदान — मधुरेश — १२

(ब) हिन्दी की १२ श्रेष्ठ कहानियाँ : नयी पीढ़ी की उपलब्धियाँ — धनंजय वर्मा — १२

७—हिन्दी-निबन्ध — डॉ० रामखेलावन पाण्डेय — १२

८—हिन्दी में बाल-साहित्य — मन्मथनाथ गुप्त — १२

९—हिन्दी में समाजशास्त्रीय साहित्य—मौलिक तथा अनूदित — राजाराम शास्त्री — ८

१०—हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य—मौलिक तथा अनूदित — भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव — ८

११—हिन्दी का रंगमंच : राष्ट्रीय रंगमंच का सूत्रपात ? — वीरेन्द्र नारायण — १२

१२—हिन्दी में भारतीय साहित्य — गोपालकृष्ण कौल — १२

(क) हिन्दी में उर्दू शायरी — शमशेर बहादुरसिंह — १६

(ख) हिन्दी में उर्दू कथा-साहित्य — दीवान बीरेन्द्रनाथ — १६

(ग) हिन्दी में बंगाली कथा-साहित्य — सकलदीप सिंह — १६

(घ) हिन्दी में पंजाबी साहित्य — शमशेरसिंह नरूला — ३

(ङ) हिन्दी में मराठी साहित्य — शरद्चन्द्र मुक्तिबोध — ३

(च) हिन्दी में गुजराती साहित्य — श्रीमती शान्ता गांधी — ३

(छ) हिन्दी में उड़िया साहित्य — युगजीत नवलपुरी — ३

(ज) हिन्दी में तमिल साहित्य — डॉ० राजगोपालन — ३

(झ) हिन्दी में तेलुगु साहित्य — अयाचित हनुमत् शास्त्री — ३

(ञ) हिन्दी में कन्नड साहित्य — प्रो० नागप्पा — ३

(ट) हिन्दी में मलयाली साहित्य — वेल्लयाणि अर्जुनन — ३

१३—हिन्दी में विश्व-साहित्य — डॉ० भगवतशरण उपाध्याय — १२

१४—हिन्दी में शोध-कार्य : सीमाएँ और सम्भावनाएँ — डॉ० विजयेन्द्र स्नातक — १२

१५—विदेशों में हिन्दी-साहित्य — डॉ० प्रभाकर माचवे — १२

२. सामयिक प्रश्न

१—साहित्य के नये मान-मूल्य — डॉ० नन्ददुलारे वाजपेयी — ८

२—साहित्य के नये मान-मूल्य — नेमिचन्द्र जैन — ८

३—आधुनिकता और सामयिकता — डॉ० नगेन्द्र — ८

४—आधुनिकता और सामयिकता — गिरिजाकुमार माथुर — ८

५—परम्परा और प्रयोग — अमृतराय — ८

६—परम्परा और प्रयोग — डॉ० रामखेलावन पाण्डेय — ८

७—लेखक और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य — डॉ० रामविलास शर्मा — ८

८—लेखक और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य — बालकृष्ण राव — ८

९—लेखक और मानववाद — डॉ० एहतेशाम हुसेन — ८

१०—लेखक और मानववाद — डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी — ८

११—लेखक और युग के केन्द्रीय प्रश्न — सज्जाद जहीर — ८

१२—सौन्दर्यशास्त्र के नये आधार — डॉ० रमेशकुन्तल मेघ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३—सौन्दर्यशास्त्र के नये आधार	डॉ० कुमार विमल	८
१४—हिन्दी साहित्यालोचन की भाषा तथा शैली	कल्याणमल लोढ़ा	८
१५—हिन्दी में प्रसार के आधुनिक साधन : संकर-संस्कृति का विकास और साहित्यिक मूल्यों का प्रश्न	श्रीमती विजय चौहान	१२
१६—'भारतीय' साहित्य के विकास की समस्या	कृष्णा कृपलानी	८
१७—'भारतीय' साहित्य के विकास की समस्या	डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा	८
१८—विश्व-साहित्य में हिन्दी तथा भारतीय साहित्य के प्रवेश की समस्या	डॉ० रघुवंश	८
१९—विश्व-साहित्य में हिन्दी तथा भारतीय साहित्य के प्रवेश की समस्या	प्रकाशचन्द्र गुप्त	८

३. साहित्यिक रेखा-चित्र : व्यक्तित्व और कृतित्व का आकलन

१—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	डॉ० भगीरथ मिश्र	४
२—राहुल सांकृत्यायन	भदन्त आनन्द कौसल्यायन	४
३—बाबू गुलाबराय	डॉ० सत्येन्द्र	४
४—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	भगवतीचरण वर्मा	४
५—रांगेय राघव	डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'	४
६—गजानन माधव मुक्तिबोध	हरिशंकर परसाई	४
७—मैथिलीशरण गुप्त	डॉ० विनयमोहन शर्मा	४
८—सुमित्रानन्दन पंत	नरेन्द्र शर्मा	४
९—महादेवी वर्मा	डॉ० शम्भूनाथ सिंह	४
१०—रामधारीसिंह 'दिनकर'	डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'	४
११—हरिवंशराय 'बच्चन'	डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन'	४
१२—हजारीप्रसाद द्विवेदी	डॉ० इन्द्रनाथ मदान	४
१३—भगवतीचरण वर्मा	अमृतलाल नागर	४
१४—यशपाल	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	४
१५—जैनेन्द्रकुमार	डॉ० देवराज उपाध्याय	४
१६—उदयशंकर भट्ट	क्षेमचन्द 'सुमन'	४
१७—उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	जगदीशचन्द्र माथुर	४
१८—स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय'	विद्यानिवास मिश्र	४
१९—अमृतलाल नागर	इलाचन्द जोशी	४
२०—इलाचन्द जोशी	वाचस्पति पाठक	४
२१—नरेन्द्र शर्मा	भारतभूषण अग्रवाल	४
२२—शमशेर बहादुरसिंह	अशोक वाजपेयी	४
२३—गिरिजाकुमार माथुर	डॉ० कैलाश वाजपेयी	४
२४—अमृतराय	प्रकाशचन्द्र गुप्त	४
२५—नागार्जुन	केदारनाथ सिंह	४
२६—डॉ० नन्ददुलारे वाजपेयी	डॉ० बच्चन सिंह	४
२७—डॉ० नगेन्द्र	डॉ० कुमार 'विमल'	४
२८—डॉ० रामविलास शर्मा	रणजीत	४
२९—धर्मवीर 'भारती'	[illegible] सिंह	४
३०—फणीश्वरनाथ 'रेणु'	डॉ० नर्मदेश्वर प्रसाद	४
३१—मोहन 'राकेश'	रमेश बक्षी	४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. मूल्यांकन : आलोच्य काल की श्रेष्ठतम कृतियों का पुनर्मूल्यांकन

१—अतिमा : कला और बूढ़ा चाँद	बालकृष्ण राव	६
२—लोकायतन	इलाचन्द्र जोशी	६
३—उर्वशी	डॉ० जगदीश पाण्डेय	४
४—हम विषपायी जनम के	डॉ० रवीन्द्र 'भ्रमर'	४
५—कुछ कविताएँ, कुछ और कविताएँ	कुंवर नारायण	६
६—धूप के धान	राजीव सक्सेना	४
७—अन्धा-युग	डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव	६
८—चाँद का मुँह टेढ़ा	विष्णुचन्द्र शर्मा	६
९—प्यासा निर्झर	डॉ० सियाराम तिवारी	६
१०—झूठा-सच	डॉ० केशरीनारायण शुक्ल	४
११—भूले-बिसरे चित्र	डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित	६
१२—जहाज का पंछी	डॉ० गंगाप्रसाद पाण्डेय	४
१३—बूँद और समुद्र	डॉ० विश्वम्भर उपाध्याय	६
१४—चारुचन्द्रलेख	डॉ० शिवनाथ	४
१५—मैला आँचल, परती : परिकथा	श्रीकृष्णदास	६
१६—वलचनमा	कृष्णनन्दन 'पीयूष'	४
१७—सुखदा	डॉ० गोपाल राय	४
१८—शहर में घूमता आईना	डॉ० मक्खनलाल शर्मा	४
१९—कब तक पुकारूँ ?	गोविन्द रजनीश	४
२०—सागर, लहरें और मनुष्य	डॉ० लक्ष्मीकान्त शर्मा	४
२१—रूपान्तर	मेहताब अली	४
२२—कोणार्क	डॉ० कुंवरजी अग्रवाल	४
२३—आषाढ़ का एक दिन	डॉ० महेन्द्र भटनागर	४
२४—पथ के साथी	डॉ० सावित्री सिनहा	४
२५—कलम का सिपाही	नवल किशोर	४
२६—हरीघास पर क्षण भर, अरी ओ करुणा प्रभामय	डॉ० बेचन	६
२७—यह पथ वन्धु था	डॉ० लक्ष्मीधर मालवीय	४

५. हिन्दी क्षेत्र की प्रमुख भाषाओं का नया साहित्य

१—हिन्दी क्षेत्र की भाषाओं का नया-साहित्य : एक सर्वेक्षण	डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय	१२
२—मैथिली का नया साहित्य	नागार्जुन	३
३—भोजपुरी का नया साहित्य	हरिशंकर उपाध्याय	३
४—ब्रज का नया साहित्य	डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया	३
५—अवधी का नया साहित्य	डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित	३
६—राजस्थानी का नया साहित्य	डॉ० नरेन्द्र भानावत	३
७—मालवी का नया साहित्य	डॉ० श्याम परमार	३
८—छत्तीसगढ़ी का नया साहित्य	डॉ० सावित्री शुक्ल	३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त-विवेचन

नवलकिशोर

मार्क्सवादी कला-दृष्टि और समाजवादी यथार्थवाद

(१)

मार्क्सवादी विचारधारा ने कला और साहित्य के सम्बन्ध में एक सर्वथा विशिष्ट दृष्टि को जन्म दिया है। द्वन्द्वात्मक विकास की मार्क्सवादी धारणा के अनुसार उत्पादन-सम्बन्धों और उत्पादक शक्तियों के संघर्ष से जीवन का भौतिक-विधान बदलता है और चूंकि भौतिक-विधान अन्ततोगत्वा बौद्धिक विधान को निर्धारित करता है, अतः उसके बदलते ही कानून, राजनीति, धर्म, दर्शन और कला आदि सभी बदलने लगते हैं। इस तरह कलागत मूल्यों का सम्बन्ध आर्थिक आधार से अनिवार्यतः होता है, किन्तु यान्त्रिक भौतिकवाद के समान यह दृष्टिकोण यह नहीं मानता कि कलाकृतियाँ आर्थिक प्रक्रियाओं और आवश्यकताओं का प्रतिबिम्ब मात्र हैं। इनमें संश्लिष्ट सामाजिक यथार्थ का चित्रण होता है, सीधे आर्थिक सम्बन्धों का निरूपण नहीं और यद्यपि अन्तिम निर्णायक तत्व आर्थिक आधार ही होता है, किन्तु धर्म, दर्शन, परम्परा आदि भावगत तत्वों का भी उनकी रचना में भारी योग होता है।[1] भावगत प्रकरण भी एक सीमा तक इतिहास के क्रम को प्रभावित करते हैं, अतः कला की भी सामाजिक विकास में निश्चित भूमिका होती है। मार्क्सवादी कलात्मक दृष्टिकोण साहित्य को समाजवादी व्यवस्था की स्थापना में एक अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण साधन के रूप में अपनाए जाने पर जोर देता है।

मार्क्सवादियों के अनुसार साहित्य का वर्ग-संघर्ष से अनिवार्य सम्बन्ध है। जिन-जिन समयों में वर्ग-संघर्ष की जैसी स्थिति रही है, साहित्य में उसकी प्रतिक्रिया अवश्य मिलती है। साहित्य और कला को प्रभुवर्ग की सेवा में नियोजित किया जाता रहा है, किन्तु श्रेष्ठ कलाकारों ने, चाहे उनका सचेत दृष्टिकोण प्रभुवर्ग की नैतिकता से ही सम्मत रहा हो, सहज मानवीय संवेदना से प्रेरित होकर अपनी रचनाओं में वर्ग-समाज के अन्यायपूर्ण मानव-सम्बन्धों पर सचेतन या अचेतन रूप में टीका की है। वास्तविकता के चित्रण के प्रति अपने आग्रह के कारण वे विकासमान शक्तियों के उत्कर्ष को चित्रित करने में समर्थ हुए हैं और एक कलाकार के रूप में उनकी सहानुभूति सदैव उत्पीड़ित मानवता के साथ रही है। जो व्यक्ति अपने युग के सामाजिक जीवन में पाये जाने वाले हर प्रकार के अत्याचार और असत्य से घृणा करने में समर्थ होता है, वह क्रान्ति-

---

१. द्रष्टव्य : उपन्यास और लोक-जीवन—रैल्फ फाक्स (अनु० नरोत्तम नागर)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारी वर्ग का विचारक बन जाता है।[1] जिन सांस्कृतिक परम्पराओं ने मानव-चेतना को विकासोन्मुख और सम्पन्नतर बनाने में योग दिया है और जो अन्यायपूर्ण सामाजिक सम्बन्धों को बदलने की आकांक्षा जगाती हैं, वे मानवता की स्थायी निधि हैं। अतीत की इसी मानवतावादी परम्परा से प्रगतिशील कलाकार को अपना नाता जोड़ना है।

मार्क्सवादी विचारकों के अनुसार मार्क्सवाद कलाकार को इतिहास के विकास की दिशा का सही ज्ञान देता है और उसे मानवजाति के भविष्य को लक्षित कर पाने की दृष्टि देता है। आज के युग की सम्पूर्ण विरूपताएँ और विषमताएँ पूँजीवाद की देन हैं। "दो सौ वर्ष पहले का इतिहास साक्षी है कि पूँजीवाद के अन्तर्गत मानव-सम्बन्धों का कोई न्याय-संगत मानवोचित या कहें 'डेमॉक्रेटिक' नियमन असम्भव सिद्ध हुआ है, कि पूँजीवाद वर्ग-वैषम्य, शोषण, भुखमरी, बेकारी, जातिभेद और युद्धवाद जैसी कुत्साओं का जनक और पोषक रहा है। पूँजीवाद में विज्ञान का उपयोग उत्पादन बढ़ाने और विध्वसंक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण के लिए किया जाता रहा है और अबुद्धि-वाद का प्रयोग सामाजिक चेतना को खोखला करने के लिए। फलतः पूँजीवाद में व्यक्ति और समाज के जीवन को खतरा बढ़ता जाता है।"[2] जबकि निराशावादी कलाकार वर्तमान स्थिति को सत्य मानकर विश्व के ध्वंस और सभ्यता के विनाश की संभावना से हताश हो चुके हैं, मार्क्सवादी कलाकार एक नई सृष्टि की प्रसव-पीड़ा के द्रष्टा हैं और पीड़ित वर्ग द्वारा किये जा रहे मुक्ति-संग्राम में हाथ बटाते हैं। वे वर्तमान का चित्रण भविष्य की नियामक शक्तियों को अभिव्यक्ति देते हुए करते हैं। कलाकार का कर्तव्य है कि वह पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष में सर्वहारा का साथ दे और समाजवादी व्यवस्था में उसका लक्ष्य होगा उस व्यवस्था को पुष्ट एवं विकसित करना।

मार्क्सवादी कला-समीक्षकों के अनुसार पूँजीवादी जगत में साहित्य और कला का ह्रास हो रहा है। बुर्जुआ संस्कृति म्रियमाण हो चुकी है, अतः बुर्जुआ कलाकार मानवता के भविष्य के प्रति विश्वास खो चुके हैं। बुर्जुआ कला जनता के जीवन से दूर हट गई है और मनुष्य को संघर्ष से विमुख करती है। जनता से भय, भविष्य से निराशा, कुढ़न और खीझ, मनुष्य से घृणा, नयी समाजवादी संस्कृति को कोसना—ये आज के पूँजीवादी भाव-जगत् की विशेषताएँ हैं। इसके विपरीत देश-प्रेम, संसार की जनता का भाई-चारा, भविष्य में दृढ़ आस्था, आशा और उल्लास—ये शोषण से लड़ने वाली और नया समाज रचने वाली जनता के भाव-जगत् की विशेषताएँ हैं।[3] मार्क्सवादी कला-दृष्टि ही सच्ची और महान् कला को जन्म देने में समर्थ है। उनकी स्थापना है कि साम्यवादी देशों के अलावा"···विश्व के अन्य पूँजीवादी देशों के साहित्य और कला-संस्कृति में भी जो प्रवृतियाँ आज मनुष्य की प्रगति की आकांक्षी हैं, जिनसे आशा और उम्मीद का स्वर फूटता है, जिनमें जीवन के प्रति अनुराग और मानव-प्रेम है, जो

1. Lifshitze—देखिए 'Literature and Marxism' Ed. by Angel Flores.
२. शिवदानसिंह चौहान : आलोचना, २६ जनवरी ६४
३. डा० रामविलास शर्मा : स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य (पृ० ३०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थायी विश्व-शान्ति, आजादी और जनवाद की समर्थक हैं वे सारी प्रवृत्तियाँ मार्क्स और मार्क्सवाद से किसी-न-किसी सीमा तक अवश्य प्रभावित हैं, क्योंकि सत्यान्वेषी कलाकार जीवन की वास्तविकता से विमुख नहीं हो सकते।"[1]

मार्क्सवाद के अनुसार कलाकार का लक्ष्य है संघर्षशील मानवता के क्रान्ति के प्रयत्नों को बल देना। कला लोगों को वैचारिकी दीक्षा देने और उन्हें समाजवादी लक्ष्य की स्थापना में योग देने के लिए प्रेरित करने में सर्वाधिक उपयोगी उपकरण है। मार्क्सवाद, उसके व्याख्याताओं के अनुसार साहित्य और कला को उचित दिशा देता है क्योंकि "रचनात्मक कलाकार के लिए मार्क्सवाद वास्तविकता को समझने की एक कुंजी है। वह उसे जीवन की तरतीब को देखने में मदद देती है और यह बताती है कि उसमें प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति क्या है। यह सचेत रूप में मानव को पूर्ण महत्व प्रदान करती है और इस अर्थ में यह अन्य सभी विश्व-दर्शनों में अधिक मानवतावादी दर्शन है।"[2]

मार्क्सवाद-भावित कलात्मक दृष्टिकोण को समाजवादी यथार्थवाद की संज्ञा दी गई है, जिसका विवेचन अगले पृष्ठों में है।

(२)

रूस में सन् १९३२ ई० में सोवियत लेखकों का एक नया संगठन निर्मित किया गया। इसी समय से वहाँ कला और साहित्य ने विशेष दिशा ग्रहण की। इस दिशा का प्रेरक 'समाजवादी यथार्थवाद' का सिद्धान्त था, जिसे आधारभूत-साहित्यिक प्रतिमान घोषित किया गया। सन्, २० के आसपास विभिन्न सिद्धान्तों पर विवाद सम्भव था, किन्तु सन् १९३२ के बाद मूलभूत साहित्यिक सिद्धान्त के सम्बन्ध में लेखकों के वैचारिक मतभेद का अन्त करने के लिए उक्त सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की गई। मैक्सिम गोर्की इस अभियान के प्रमुख नेता थे। एक नये मानववाद की प्रतिष्ठा को क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग का ध्येय बताते हुए उन्होंने इसमें साहित्यिकों के अनिवार्य योगदान सम्बन्धी कर्त्तव्य का निर्देश किया। इस नये मानववाद के विषय में उनका कथन इस प्रकार है :—

"क्रान्तिकारी सर्वहारा का मानववाद सुस्पष्ट है। वह मानवजाति के प्रति प्रेम के लच्छेदार और मधुर मुहावरे घोषित नहीं करता। इसका ध्येय संसार-भर के सर्वहारा को पूँजीवाद के शर्मनाक, खूनी और वहशी जुए से स्वतन्त्र करना है व लोगों को यह सिखाना है कि वे स्वयं को नक्कूशाहों (Philistines) के निमित्त स्वर्ण एवं विलासोपकरण जुटाने के लिए कच्चे माल के रूप में क्रय-विक्रय की जाने वाली वस्तुएँ न समझें। पूँजीवाद विश्व को उसी तरह अवलांछित करता है जिस प्रकार कि एक जीर्णवृद्ध, जो जीर्णावस्था के रोगों का गर्भाधान कराने के अति-रिक्त नपुंसक है, एक स्वस्थ युवा स्त्री के प्रति अतिक्रमण करता है। सर्वहारा मानववाद का कार्य एक श्रमजीवी से प्रेम की प्रतीकात्मक घोषणाएँ नहीं माँगता, वह हर मजदूर

१. शिवदानसिंह चौहान : साहित्यानुशीलन (पृ० १४५)।
२. उपन्यास और लोक-जीवन (पृ० ५९)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अपने ऐतिहासिक-मिशन की चेतना की, सत्ता पाने के अधिकार की……, धन-लोलुपों से……परोपजीवियों से, फासिस्टों तथा हत्यारों से अमिट घृणा की, उन सब तथ्यों से जो कष्ट के कारण हैं और उनसे जो करोड़ों लोगों के कष्ट पर जीते हैं, घृणा की माँग करता है।"[1]

गोर्की के अनुसार कला साहित्य को समाजवादी समाज की स्थापना के प्रयत्नों में उचित रूप से सहायक बनाने के लिए उन पर कम्युनिस्ट पार्टी का आवश्यक नियन्त्रण होना चाहिए। पार्टी-नियन्त्रण का अनुमोदन करते हुए उसने कहा है कि साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले पार्टी के सदस्यों का साम्यवादी विचारधारा का (जो दुनिया-भर के मजदूरों को आजादी की आखिरी लड़ाई लड़ने के लिए संगठित करती है) शिक्षक बनना ही पर्याप्त नहीं है : आवश्यक है कि पार्टी-नेतृत्व नैतिक दृष्टि से आधिकारिक शक्ति हो जो लेखकों में, उनके बीच जो-कुछ घटित हो रहा है उसके प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व की चेतना का समावेश करे। गुण के वैविध्य को रखते हुए सोवियत-साहित्य संयुक्त तथा सामूहिक रूप में संगठित होकर समाजवादी संस्कृति का शक्तिशाली अस्त्र बने।[2] उसके अनुसार समाजवादी यथार्थवाद का कलात्मक आदर्श इसी लक्ष्य की पूर्ति करता है :

समाजवादी यथार्थवाद घोषित करता है कि जीवन कर्म है, रचनात्मक है, जिसका उद्देश्य है मनुष्य की सर्वोत्तम वैयक्तिक योग्यताओं का प्रकृति की शक्तियों पर विजय के लिए, पृथ्वी पर जीवित रहने के महान् आनन्द के लिए निर्बाध विकास। इस पृथ्वी को अपनी आवश्यकताओं में अनवरत वृद्धि के अनुरूप सम्पन्न कर वह एक ही परिवार के रूप में संयुक्त मानवजाति का भव्य वासस्थान बनाना चाहता है।[3]

समाजवादी यथार्थवाद यथार्थ जीवन के चित्रण को ही कला की कसौटी मानता है, किन्तु यह यथार्थवाद वास्तविकता को मात्र वस्तुपरक रूप में अंकित करने वाले यथार्थवाद से भिन्न है; यह समाजवादी हैं, जो कलाकार को समाजवाद के प्रसार के लिए ही अपनी कला का उपयोग करते हुए वास्तविकता के निरूपण का निर्देश देता है। साम्यवादी विचारधारा आज की दुनिया को वर्गसमाज से वर्गहीन समाज के संक्रमण-कालीन दौर में देखती है। तदनुसार कलाकार का कर्तव्य है कि वह विश्व की जनवादी शक्तियों द्वारा पूँजीवाद के विरुद्ध छेड़े गए महान् संघर्ष का कलात्मक रूपायन करते हुए प्रतिगामी शक्तियों के अन्तिम पराभव की घोषणा करे। एक सोवियत लेखक के अनुसार "समाजवादी यथार्थवाद का उद्भव तब होता है जबकि मानवजाति को बुर्जुआ समाज के भयंकर अन्तर्विरोधों का सामना करना पड़ता है, जबकि वर्गयुक्त से वर्गहीन समाज की ओर संक्रमण (Agenda) कार्यावली में होता है, जबकि आमलोग (Masses) समाजवाद के लक्ष्य के प्रति प्रयत्नशील होते हैं और उसे प्राप्त करने के

---

1. Maxin Gorki : 'Culture and the People'
2. Maxim Gorki on Literature (P. 263)
3. Ibid (P. 264)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए संघर्ष का आरम्भ हो जाता है।"[1] पूँजीवादी देशों में कलाकार को सर्वहारा के पक्षधर साहित्य की रचना करनी होगी और साम्यवादी देशों में जहाँ शोषण-मुक्त समाज अस्तित्व में आ गया है, उसे समाजवादी समाज के निर्माण के लिए जनता द्वारा किये जाने वाले गौरवमय प्रयत्नों को चित्रित करने के ध्येय को सम्मुख रखना होगा। समाजवाद की ओर मानवता की प्रगति-सम्बन्धी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विकास-मूलक धारणा को स्वीकार कर कलाकार 'वास्तविकता' को 'उसके क्रान्तिकारी विकास' में चित्रित करने की सामर्थ्य पाता है और वास्तविकता का ऐसा चित्रण ही समाजवादी यथार्थवाद का अभिप्रेत है। वर्तमान समाज को स्थिर न मानकर उसको ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया का अंग मानना और विकसित होते समाजवादी समाज का चित्र देना ही कलाकार का कर्तव्य है। समाज-विकास के क्रम को उक्त ऐतिहासिक परि-प्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना समाजवादी यथार्थवाद की कृतियों का लक्ष्य होना चाहिए। यथार्थ-जीवन में प्रगतिशील और विकासमान तथा प्रतिक्रियामूलक और मरणशील तत्वों का सदा संघर्ष होता रहता है। एक कलाकार को जीवन के इन विरोधों की तस्वीर उतारनी चाहिए, ऐतिहासिक विकास की मुख्य प्रवृत्तियों को स्पष्टतया समझना चाहिए, जो भी नया है उसका समर्थन और जो भी पुराना है उसका विरोध पूर्ण शक्ति के साथ करना चाहिए। इसलिए एक साहित्यिक कृति के वैचारिक मूल्य (Ideological value) को निर्धारित करते समय पहले हमें यह निश्चय करना चाहिए कि क्या वह कृति समाज में विद्यमान वर्ग-विरोधों को उनके सभी रूपों में उद्घाटित करती है और क्या यह उद्घाटन पर्याप्त गम्भीरता लिए है। जीवन के विरोधों (Contradictions) को छिपाने का कोई भी प्रयत्न वास्तविकता को विकृत करता है, साहित्य की वैचारिकी उग्रता (Ideological militancy) को घटाता है और उसकी प्रभावोत्पादकता को कम करता है।[2]

समाजवादी यथार्थवाद साहित्य और कला को सामान्यजन की शिक्षा के लिए सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम मानता है, अतः कलाकार का कर्तव्य है कि वह लोगों को समाजवादी विचारों में दीक्षित करने के लिए अपनी कला का उपयोग करे। समाज-वादी कला श्रमिक जनता के हितों से सम्बद्ध है। अतः सर्वहारा-संघर्ष और समाज-वादी निर्माण की कसौटी पर ही उसकी परख होनी चाहिए। साहित्य-रचना में इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि विषय-वस्तु और रूप (Content and form) दोनों की ही दृष्टि से वह ऐसा हो कि जनता उसे समझ सके और वह पूँजीवाद को समाप्त करने तथा समाजवाद का निर्माण करने में जनता को सहायता दे सके।

समाजवादी यथार्थवाद इस प्रकार वास्तविकता के एक विशेष दृष्टि से चित्रण की माँग करता है और लेखक के सामने समाजवाद के प्रसार का कर्तव्य रखता है।

समाजवादी यथार्थवाद की परिभाषा देना बड़ा कठिन है। १९५४ की लेखक-कांग्रेस में एक सोवियत साहित्यकार ने शिकायत के स्वर में कहा था कि विदेशी कम्यूनिस्ट

1. Nikolai Gei : Soviet Literature 10, 1963.
2. Chou Yang : China's New Literature. (P.47)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक जो समाजवादी यथार्थवाद की निश्चित परिभाषा का आग्रह करते हैं क्यों नहीं सम- झते कि इसका एकदम ठीक निरूपण नहीं किया जा सकता, यह एक योग नहीं है कि किसी विशेष अनुपात में 'पौज़िटिव हीरो' (Positive hero), विरोधी सामाजिक स्थिति और आसुतजल (Distilled water) आदि को मिलाने के लिए कह दिया जाए। केवल सोवियत साहित्य के अनुशीलन द्वारा समाजवादी यथार्थवाद को समझने की सलाह ही उस लेखक ने दी। सोवियत लेखक-संघ के अधिनियमान्तर्गत एक व्यवस्था के अनुसार समाजवादी यथार्थवाद सोवियत कलात्मक साहित्य और साहित्य-समीक्षा की आधारभूत पद्धति है, जो कलाकारों से सचाई और ऐतिहासिक मूर्तता (Histori- cal concretness) के सहित वास्तविकता का उसके क्रान्तिकारी विकास की भूमिका में चित्रण करने की माँग करती है। कलात्मक चित्रण की सत्यशीलता और ऐतिहासिक मूर्तता के साथ समाजवाद की दिशा में श्रमिकों के सैद्धान्तिक रूपान्तरण (Ideologi- cal transformation) और शिक्षण (Education) की समस्या को ध्यान में रखा जाना भी आवश्यक है।[२]

समाजवादी यथार्थवाद की कला ने मनुष्य को सर्वप्रथम और सर्वोपरि विषय बनाया है। मानवीय मनोरागों का चित्रण उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि में ही किया जाना चाहिए क्योंकि यह कलात्मक दृष्टि मनुष्य को उसके वातावरण से संपृक्त मानती है और मानती है कि उसकी आध्यात्मिक विशेषताओं तथा उस समाज-व्यवस्था का जिसने उसके अस्तित्व का निर्माण किया है आपस में गहरा सम्बन्ध है। समाजवादी यथार्थवाद समष्टि के प्रति आग्रहशील है और 'टिपिकल' (प्रतिनिधि) को प्रस्तुत करने को ही कला का ध्येय समझता है। 'प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि पात्रों' का सच्चा चित्र देना ही कलाकार का कर्तव्य है। जॉर्ज लुकाच के अनुसार यथार्थवादी साहित्य की कसौटी 'टाइप' है, जो पात्रों और परिस्थितियों दोनों में ही सामान्य और विशिष्ट को आवयविक एक-सूत्रता में आबद्ध करने वाला संश्लेषण (Synthesis) है। इसलिए मनुष्य और समाज को उनके एक या दूसरे पक्ष को प्रधानता देने के स्थान पर एकीभूत सत्ता के रूप में चित्रित किया जाना चाहिए। जो कलात्मक प्रवृत्तियां एकान्त अन्तर्दर्शन या एकान्त बहिर्दर्शन से निर्णीत होती हैं, वे समान रूप से वास्त- विकता को दरिद्र और विकृत बनाती है।[३]

समाजवादी यथार्थवादी साहित्य की यह अनिवार्य शर्त है कि वह आम लोगों के लिए बोधगम्य हो, क्योंकि जैसा कहा जा चुका है कि साहित्य का कार्य साम्यवाद के लिए नैतिक प्रावधान तैयार करना है। लोगों को भावनात्मक शिक्षा देने के लिए और उनमें समाजवाद की चेतना पैदा करने के लिए साहित्य के प्रसार क्षेत्र का अधिक- से अधिक व्यापक होना आवश्यक है। इसलिए साहित्य और कला के क्षेत्र में उन व्यक्तिवादी चेष्टाओं का विरोध किया जाता है, जो उनको जनता से दूर हटाती हैं।

1. Soviet Literature during the Thaw (1954-57) (द्रष्टव्य: पृ० ४)
2. Soviet Literature Today, by Georgy Reavey (पृ० २०)
3. Studies in European Realism by George Lucacs (Preface. P. 6)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोवियत समीक्षक रूपवाद (formalism) की निन्दा करते हैं, रूपवाद से उनका तात्पर्य ऐसी कला से है जो अमूर्त (Abstract) है, जिसने प्रयोगों को स्वयं में ही साध्य समझ लिया है और जिसमें मानवीय मनोरागों को उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि सहित उपस्थित नहीं किया जाता। रूपवाद में यों सन् १९२५ तक विद्रोह और नूतन प्रयोग दोनों के तत्त्व थे, किन्तु शीघ्र बुर्जुआ समाज से उसका मेल बैठ गया, क्योंकि उससे पूँजीवादी व्यवस्था को कोई सच्चा खतरा उत्पन्न नहीं हुआ। अमूर्तवाद सहित सभी रूपवादी प्रवृत्तियाँ--संग्रहालयों में प्रदर्शनीय वस्तुएँ मात्र बन गईं···बुर्जुआ वर्ग रूप-सम्बन्धी क्रान्ति को प्रोत्साहन देता है किन्तु एक समाजिक क्रान्ति को समर्थन नहीं दे सकता।[1] मार्क्सवादी कला-समीक्षकों की दृष्टि में रूपात्मक प्रयोग समाजवादी वास्तविकता के चित्रण को अधिक प्रभावशाली बनाने के नाते ही अभिनन्दनीय हो सकते हैं : "मार्क्सवादी फॉर्म को अस्वीकार नहीं करते क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें कला को ही अस्वीकृत करना होगा। हम केवल वस्तु (Content) के लिए रूप (Form) के प्रतिष्ठापन को, फॉर्म के आदर्शीकरण को, फार्म की तुच्छ अज्ञानतापूर्ण अराधना को, रूपवाद के रहस्यमय सम्प्रदायों के सृजन को पूर्णतः तथा असंदिग्ध रूप से अस्वीकार करते हैं।[2]

समाजवादी समीक्षक इस बात को अस्वीकार करते हैं कि सामान्य जनता तक पहुँचने के लक्ष्य को मुख्यता देने से उच्चकोटि की कलाकृतियों के सृजन का मार्ग बन्द हो जाता है। उनका कहना है कि प्रतिभा सम्पन्न कलाकारों की कृतियाँ सदैव लोकप्रिय होती हैं।[3] यद्यपि एक सोवियत समीक्षक Ioganson ने श्रेष्ठ कलाकृति की लोकप्रियता का आग्रह करते हुए भी स्वीकार किया है कि कुछ ऐसे कलाकार होंगे ही, जिन्हें लोग स्वीकार नहीं करेंगे, वे कलाकारों के कलाकार होंगे और नये मार्गों के अन्वेषकों के रूप में, नई सम्भावनाओं का उद्घाटन करने वाले प्रयोगशील स्रष्टाओं के रूप में विद्यमान रहेंगे।[4]

समाजवादी यथार्थवाद कला की उद्देश्यपरकता के प्रति आग्रहशील है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह कला को प्रोपैगैण्डा बना देना चाहता है। किसी साहित्यिक कृति के मूल्य को आँकते समय कलात्मक ढंग से यथार्थ को रूपायित करने के प्रश्न को महत्त्व न देना और लेखक की यथार्थ-सम्बन्धी समझ की गहराई तथा पहुँच की सूक्ष्मता को देखने के स्थान पर मात्र उसकी वर्ग-निष्ठा को देखना कुत्सित-समाज-शास्त्रीयता (Vulgar Sociology) है, जिसका १९२० ई० के करीब के वर्षों में मार्क्सवादी विचारों के क्षेत्र में प्रभुत्व था।[5] महान् साहित्य का सदैव उद्देश्यपरक होना आवश्यक है क्योंकि उसका लक्ष्य उच्चादर्शों की दिशा में मनुष्य के भावों और

1. Culture and Life : 3, Moscow···1964 : Range of Realism, by Nedoshivin.
2. Literature and Reality : Haward Fast (P. 58)
3. Studies in European Realism (Page, 269 पर गोर्की पर विचार) द्रष्टव्य।
4. 'Soviet Literature Today' by Reavy (P. 22)
5. Soviet Literature Today by George Reavy—The Writers & Critic. (P. 107)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों को संस्कार प्रदान करना है, किन्तु ऐसा करते समय वह विचारों को आरोपित नहीं करता, जीवित मानवों के जीवित कृत्यों द्वारा अपेक्षित प्रभाव पैदा करता है। एंगेल्स के शब्दों में 'उद्देश्यपरकता का उदय बिना उस पर जोर दिए परिस्थिति तथा कर्म में से अपने आप होना चाहिए, और यह कि लेखक इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि जिन सामाजिक द्वन्द्वों का वह चित्रण करता है, उसका कोई बना-बनाया ऐतिहासिक हल भी पाठकों को दे।'[1] कला-सृष्टि के लक्ष्य के रूप में समाजवादी यथार्थवाद एंगेल्स की इस भविष्यवाणी को सामने रखता है—कि भविष्य की कला में सैद्धान्तिक गम्भीरता व दृष्ट ऐतिहासिक अर्थ का शेक्सपीयरीय जीवन्तता और प्रभावोत्पादकता के साथ पूर्ण एकीकरण होगा।

'प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि पात्रों'[2] का सच्चा चित्र देना समाजवादी यथार्थवाद के अनुवर्ती कलाकारों का ध्येय है। शेक्सपीयर, बालज़क, पुश्किन और ताल्सताय को मुख्यतः उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है: कि कलाकार किस प्रकार पात्रों के माध्यम से अपने युग को पूर्णता से अभिव्यक्त कर सकता है। रैल्फ फॉक्स ने समाजवादी यथार्थवाद का उद्देश्य ऐसे मानव का चित्रण बताया था, जो इतिहास की प्रगति के साथ कदम मिलाकर चलता है और अपने भाग्य का खुद मालिक बनने की क्षमता से युक्त है।'[3] सोवियत समीक्षकों के अनुसार उपन्यासों में चरित्रांकन के इसी महाकाव्योचित आदर्श का अनुसरण किया गया है। उनमें ऐसे नायक हैं जिनका जीवन किसी लक्ष्य के लिए अर्पित है, जिनके सामने प्राप्त करने को एक उद्देश्य है और एक सामाजिक कर्तव्य है या एक ऐतिहासिक मिशन है। वैज्ञानिक, ट्रैक्टर-ड्राइवर, इस्पात-श्रमिक आदि सोवियत-समाज के कुछ प्रतिनिधि पात्र हैं, जो समाजवादी समाज के निर्माण में जुटे हुए हैं। इन पात्रों को निर्धारित लक्ष्यों में सफलता का वरण करते हुए चित्रित किया जाता है। एक आशावादिता से सोवियत कृतियाँ आपूर्ण होती हैं। इस आशावादिता के समर्थन में कहा गया है कि सोवियत उपन्यास इस मान्यता को लेकर चलता है कि मनुष्य इतिहास का शिकार नहीं है, योद्धा है। उसमें श्रमजीवी लोगों की इच्छा-शक्ति, साहस और गुण को प्रकट किया गया है, जो प्रथम बार इतिहास के सचेतन निर्माता बने हैं।[4] किन्तु ऐसे सोवियत उपन्यास भी संख्या में कम नहीं हैं, जिनमें आरोपित लक्ष्यों की प्रमुखता है और साँचे ढाले निर्जीव इन्सान हैं। इस अभाव के प्रति सोवियत लेखक और आलोचक सजग हैं। आलोचक पर्तजोव (Pertzeov) ने ऐसी सतही पात्र-सृष्टि की निर्मम आलोचना करते हुए इस बात पर ज़ोर दिया है कि व्यक्ति-मानव को समस्याओं के केन्द्र में रखा जाना चाहिए, अन्यथा निष्प्राण और सिद्धान्त-रूढ़ पात्रों की ही रचना होगी। उसने लेखकों को, मनुष्य को सैनिक या किसी अन्य व्यवसाय के स्वामी के रूप में नहीं एक व्यक्तित्व के रूप में

---

१. एंगेल्स : (उपन्यास और लोकजीवन (ले० रैल्फ फॉक्स से उद्धृत, पृ० १०६)
२. एंगेल्स : द्रष्टव्य मिस हार्कुरेट को लिखा गया पत्र।
३. द्रष्टव्य : उपन्यास और लोकजीवन (अनु० नरोत्तम नागर)
४. Soviet Literature 2, 1964, Irreconcilable Positions.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने का निर्देश दिया है : "यदि मनुष्य युद्ध का निर्णायक तत्त्व था और है तो ऐसा वह निश्चित रूप से मानव-प्राणी के रूप में—एक व्यक्तित्व के रूप में है, केवल सैन्य व्यवसायी के रूप में नहीं।"[१]

समाजवादी यथार्थवाद जैसा कि कहा जा चुका है साहित्य को श्रमिक वर्ग को समाजवाद की चेतना में सैद्धान्तिक रूप से ढालने के लिए उपकरण समझता है। इसलिए साहित्यकार से अपेक्षा की जाती है कि वह लोगों के जीवन से तात्कालिक रूप में सम्बद्ध प्रकरणों (Topics) पर ही लिखे। लोगों के हितों का सही प्रतिनिधित्व करने का दावा कम्यूनिस्ट पार्टी करती है। तदनुसार पार्टी के इस महत्व को स्वीकार करने पर ही साहित्यकार कलात्मक संस्कृति के निर्माण में योग दे सकता है। पार्टी ही मार्क्सवाद के आलोक में, जो सामाजिक और ऐतिहासिक विश्लेषण का अव्यर्थ साधन है, घटनाओं की सही व्याख्या कर सकती है। इसलिए कलाकार की सैद्धान्तिक ईमानदारी और कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रति उसकी निष्ठा को वास्तविक महत्व की कला-कृतियों के सृजन के लिए अनिवार्य समझा जाता है।[२] स्टालिन ने कलाकार को 'मानवात्मा का अभियन्ता' (Engineer of the human soul) घोषित किया था। ख्रुश्चेव ने भी मई १९५९ में हुई लेखकों की तृतीय महासभा में लेखकों को अपनी कृतियों के सैद्धान्तिक और कलात्मक स्तर को ऊँचा उठाते हुए, "कर्मकारों को साम्य-वादी शिक्षा देने के कार्य में, बहु-राष्ट्रीय सोवियत संस्कृति के विकास में, उच्च सौन्दर्या-त्मक अभिरुचि के निर्माण में, साम्यवादी नैतिकता के प्रचार में पार्टी और सरकार के सक्रिय सहयोगी बने रहने"[३] का सन्देश दिया। लेखकों की बीसवीं महासभा में बड़े विनोदी लहजे में सुप्रसिद्ध सोवियत उपन्यासकार शोलोखोव ने सगर्व कहा था कि "हम लेखकों के पार्टी से अनुबन्ध उन बन्धनों से भी अधिक पवित्र हैं जो हमें अपनी पत्नियों से बाँधते हैं।"[४]

उक्त दृष्टिकोण के अनुसार पार्टी चूंकि जनता के वास्तविक हितों का प्रति-निधित्व करती है, अतः पार्टी-निर्देशों का अनुपालन जनवादी कलाकार के रचना-स्वातन्त्र्य को बाधित नहीं करता। 'कलाकार की स्वतन्त्रता' के नारे को पूंजीवादी-जगत् में असामाजिक और व्यक्तिवादी रचनाओं को प्रोत्साहित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। पूंजीवादी समाज में 'कलाकार की स्वाधीनता' सम्बन्धी धारणा एक भ्रम मात्र है; क्योंकि ऐसे समाज में जो पैसे के बल पर टिका हो, जहाँ मजदूर गरीब और बदहाल हों और मुट्ठी-भर अमीर कामचोरी में दिन गुजारते हों, कोई वास्तविक और सच्ची स्वाधीनता हो ही नहीं सकती। लेखक क्या पूंजीवादी प्रकाशक से स्वतन्त्र हो सकता है ? मजदूर वर्ग का साथ देने वाला, संघर्ष, विजय और निर्माण में उसके

1. Soviet Literature Today by George Reavey (V. Pertzeov quoted P. 127)
2. Culture and Life : 2, Moscow, 1964
३. उद्धृत Soviet Literature During the Thaw, 1954-57 (P. 24-25)
४. द्रष्टव्य : Soviet Literature 2, 1962 (Speech of Sholokhov)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ बढ़ने वाला, ऊँचे वर्गों के बदले कामकाजी अवाम की सेवा करने वाला साहित्य ही सही अर्थों में आजाद हो सकता है।[१] साम्यवादी कला-समीक्षकों के अनुसार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता इस बात पर निर्भर है कि वह किन सामाजिक शक्तियों की सेवा करता है, किन विचारों को प्रकट करता है और उन्हें किस प्रकार गतिशील रूप देता है। अतः अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का वास्तविक निर्णायक तत्व कलात्मक अभिव्यक्ति की वस्तु है। वही कलाकार स्वतन्त्र है जो एक न्यायोचित उद्देश्य को मानकर उसके लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर देता है—यदि वास्तव में उसका उद्देश्य जनता के अनुभव द्वारा न्यायोचित प्रमाणित कर दिया है; क्योंकि सत्य का सर्वोच्च प्रतिमान वही है। जब कलाकार मानववादी लक्ष्यों के लिए संघर्ष करता है, जब वह लोगों के कल्याण की ज्वलन्त कामना से प्रेरित होता है और उसका संघर्ष इस कल्याण को निकटतर लाने में सहायक होता है, जब वह कभी अपना मार्ग बदलने की बात नहीं सोचता क्योंकि वह जानता है कि जिस मार्ग को उसने ग्रहण किया है वह श्रेष्ठ है तो वह उच्चकोटि की आन्तरिक स्वतन्त्रता को दृष्टिकोण और अभिव्यक्ति के सामंजस्य में पा लेता है।[२]

समाजवादी यथार्थवाद के अनुसार लोगों के जीवन और संघर्ष का, उनके हितों और उनकी आकांक्षाओं का रूपायन ही कला का लक्ष्य होना चाहिए। एक सोवियत लेखक के अनुसार "समाजवादी-यथार्थवाद-यथार्थवाद का सर्वश्रेष्ठ रूप है, जो मानवजाति के इतिहास में सर्वोच्च विचारों—समाजवाद के विचारों—के आलोक में कला द्वारा जीवन की अनेकरूपता और जटिलता को प्राप्त करने की संभावना प्रदान करता है। इस यथार्थवाद को सच्चे मानववाद से पृथक् नहीं किया जा सकता। कला वह है जो मनुष्य को प्रेरणा देती है और आह्वान करती है, संघर्ष और निर्माण के पथ को ज्यादा सही रूप में देखने में उसकी मदद करती है।"[३]

समाजवादी यथार्थवाद के व्याख्याता पूँजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण के इस युग में 'आलोचनात्मक-यथार्थवाद' की उपस्थिति को परिलक्षित करते हैं। वे उसे समाजवादी यथार्थवाद का सहयोगी स्वीकार करते हैं और उन यथार्थवादी कलाकारों का आदर करते हैं जो पूँजीवाद की विकृतियों की निन्दा करते हैं, सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों को समादृत करते हैं और पूँजीवाद से त्रस्त श्रमजीवी जनता की आशाओं को अभिव्यक्त करते हैं। लेकिन वे आलोचनात्मक-यथार्थवाद को समाजवादी यथार्थवाद से अभिन्न नहीं मानते, दोनों को कला की ऐतिहासिक प्रगतियों की विभिन्न देन मानते हैं। 'समाजवादी यथार्थवाद' आलोचनात्मक यथार्थवाद की अगली मंज़िल है। पूँजीवादी समाज में 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' अब भी बहुत प्रभविष्णु है और

१. देखिए : भाषा, साहित्य और संस्कृति : ले० डा० रामविलास शर्मा (साहित्य और संस्कृति पर लेनिन के विचार, पृ० २०६-२०७)
२. देखिए : Soviet Literature : 2, 1964—Positive Hero and Freedom of Expression by Alexander Karagonov.
३. Real Humanism by Ryurikov, Soviet Literature, 12, 1963.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचनात्मक यथार्थवादी कलाकार वास्तविकता का लोगों के हित में प्रतिबिम्बन कर पतनोन्मुख बुर्जुआ संस्कृति की अमानवीयता का उद्घाटन करते हैं। पर बहुत से आलोचनात्मक यथार्थवादियों के साथ होता यह है कि वे अपनी सारी सदिच्छाओं के बावजूद व्यक्तिवादी बुर्जुआ विश्व-दृष्टिकोण के दबाव में आ जाते हैं, जिसकी प्रगति के प्रति कोई आस्था नहीं है।[1]

समाजवादी यथार्थवाद के प्रतिपादकों के अनुसार अधिकांश आधुनिक पाश्चात्य साहित्यिक व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों को अपनाकर उन महान् यथार्थवादी लेखकों की परम्परा से हट चुके हैं, जिन्होंने अपने काल की शोषण से आक्रान्त वास्तविकता को कभी समर्थन नहीं दिया और जिन्होंने श्रेष्ठतर व्यवस्था की प्राप्ति के हेतु प्रयत्नशील होने की चेतना लोगों में उत्पन्न कर सामाजिक प्रगति में योग दिया। इन समीक्षकों के अनुसार पश्चिम का आधुनिक साहित्य पतनशील है। इसके विपरीत समाजवादी देशों का साहित्य मानववादी भावनाओं से परिपूर्ण है : सोवियत साहित्य के सम्बन्ध में ऐलेक्सी तालस्ताय का कहना है कि 'सोवियत साहित्य से अधिक मानवपरक और कोई साहित्य नहीं है, लेकिन परम्परागत मानववाद से सोवियत मानववाद सिद्धान्ततः भिन्न है। पहले में मनुष्य के प्रति दया, कष्ट-सहन और सहानुभूति के भाव मिलते हैं, किन्तु दूसरे में हमें मनुष्य के सुख के लिए आवश्यक परिस्थितियों के निर्माणार्थ वास्तविक सक्रिय संघर्ष मिलता है···।"[2]

इन विचारकों के मत से पश्चिम के व्यक्तिवादी साहित्यकार अपनी कृतियों में मनुष्य को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने में सर्वथा असमर्थ रहे हैं। आधुनिक पश्चिमी उपन्यासों से सजीव मानव का लोप हो गया है, क्योंकि उपन्यासकीय मनुष्य को समाज से विच्छिन्न, अतः मानवीय गरिमा से वंचित एकाकी प्राणी के रूप में चित्रित करते हैं तथा समाज और मनुष्य के सम्बन्धों की नैराश्यपूर्ण तस्वीर दिखाते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के महान नायकों का स्थान बौने, क्षुद्र और ओछे इन्सानों ने ले लिया है। इसका कारण यह है कि लेखक बुर्जुआ समाज को, जहाँ मनुष्य-मनुष्य के बीच सामाजिक सम्बन्ध संघर्षपूर्ण हैं, अपरिवर्तनीय मान लेता है और उसका मनुष्य जाति के भविष्य के प्रति कोई विश्वास नहीं रहता। बुर्जुआ कलाकार यह मानकर चलते हैं कि जीवन में वीरत्व का कोई स्थान नहीं है, अतः उसका चित्रण भी पाखण्डपूर्ण है। वे सामाजिक द्वन्द्वों का चित्रण न करके भीतरी-संघर्षों, यौन-षड्यंत्रों, हवाई वाद-विवादों, आदिम पशु-प्रवृत्तियों, पागलपन और अपराध-चेष्टाओं का चित्रण करते हैं। वे 'एण्टी-हीरो' विचारधारा के प्रचारक हैं। सोवियत सिने-कलाकार ग्रिगोरी चुखराई के अनुसार इसका कारण यह नहीं है कि हमारे युग में शक्तिशाली व्यक्तियों की कमी है, "किन्तु बुर्जुआ कलाकार उनकी तरफ ध्यान नहीं देते क्योंकि उनका सारा ध्यान व्यक्ति और समाज के वेदनापूर्ण संघर्ष पर केन्द्रित रहता है। जिस समाज की वे पैदावार हैं, उसकी

१. Culture and Life (Mag.) 2, Moscow 1964 : में Anatoly Yegorov का लेख।
२. Soviet Literature Today, by George Reavy में उद्धृत (p. 163)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त कुत्साओं को वे अपनी कृतियों में प्रतिबिम्बित करते हैं । उनके पात्रों का समाज से कोई सम्पर्क नहीं रहता । वे अपने एकाकीपन के अवसाद में खोये रहते हैं—सर्वनाश के भय से ग्रसित । वे विक्षिप्त होकर किसी सहारे की तलाश में हाथ-पैर पटकते हैं और आसमान की तरफ मुँह उठाकर कभी ईश्वर को कोसते हैं तो कभी पागलों की तरह हर चीज़ को तहस-नहस करना शुरू कर देते हैं, या अपने एकाकीपन पर आँसू बहाने लगते हैं ।"[1]

ये बुर्जुआ कलाकर मनुष्य की महानता के प्रति अविश्वस्त हैं और उसे निराशा भय तथा शंका के क्षणों में चित्रित करते हैं । उनकी कृतियों में अपाहिज और हताश मानव की सृष्टि ही हुई है । इन कलाकारों का कहना है कि मनुष्य के विवेकशील होने की धारणा का वैज्ञानिक और दार्शनिक धरातल पर खंडन हो चुका है । (मनोविश्लेषण और अस्तित्ववाद का इस सम्बन्ध में उल्लेख किया जा सकता है), विश्व की घटनाओं ने प्रगति के प्रति विश्वास को हिला दिया है तथा जीवन में स्थिरता और तर्क संगति का अभाव है; अतः कला और साहित्य में मनुष्य का गौरवपूर्ण चित्र देना बेमानी होगा । इन बुर्जुआ लेखकों का यह कलात्मक दृष्टिकोण समाजवादी यथार्थवाद के प्रवक्ताओं के अनुसार पतनशील और अग्राह्य है । यह मानवीय व्यक्तित्व की सम्पूर्णता को विनष्ट करता है ।

समाजवादी यथार्थवाद का कलात्मक दृष्टिकोण मनुष्य को अविवेकशील और जीवन को निरर्थक नहीं मानता । समाजवादी कलाकार मनुष्य के साधारण-बोध के प्रति आश्वस्त हैं और उसे केवल शंका के क्षणों में नहीं, महानता के क्षणों में चित्रित करने के अवसर को मूल्यवान समझते हैं ।[2] लोगों में जो कुछ अच्छा है और नये जीवन के निर्माण में आने वाले अवरोधों से जिस तरह वे जूझ रहे हैं उस सबका चित्रण समाजवादी कृतियों में होता है । समाजवादी कलाकार जिस नायक को प्रस्तुत करते हैं, वह साम्यवादी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किये जा रहे सामूहिक प्रयत्नों में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता हुआ प्रदर्शित किया जाता है । इसीलिए ऐसे पात्र को 'पॉज़िटिव-हीरो' (निश्चयी नायक) का संज्ञा दी गई है । सोवियत साहित्य में निषेधात्मक तत्वों का चित्रण भी किया जाता है किन्तु उन्हें दूर करने योग्य बुराइयाँ मानकर ही । एक सोवियत लेखक के शब्दों में "सोवियत कलाकार जिन्हें 'पॉजिटिव-हीरो' की संज्ञा देता है उन्हें जीवन के प्रमुख वीरों के रूप में अधिक पूर्णता और अधिक विविधता के साथ चित्रित करने का प्रयास करता है । ऐसा वह इसलिए करता है कि उसे सामाजिक प्रगति, मनुष्य और उसके सहज-बोध में दृढ़ विश्वास है, इसलिए कि उसे लोगों से निकट सम्बन्ध की, विश्व की सम्पत्ति के स्रष्टा श्रमजीवी नर-नारियों से प्रेम की अनुभूति होती है । यही वह स्रोत है जिससे वह जीवन के वीरतापूर्ण क्षणों के गान की, मनुष्य के कार्यों की भव्यता के चित्रण की प्रेरणा ग्रहण करता है । जब निराशा, भय और शंका की बात आती है वह इन्हें जीवन और इतिहास के परिप्रेक्ष्य

१. आलोचना २७, जुलाई १९६३ (कला और व्यक्ति)

२. Studies in European Realism : George Lukacs, P. 274

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रदर्शित करता है, मनुष्य की पूर्वनियत, सदा के लिए अस्वीकृत स्थिति के रूप में नहीं। इन्हें अशुभों के रूप में चित्रित किया जाता है, जिन्हें विजित किया जाना चाहिए और किया जायेगा।[1] अतः समाजवादी साहित्य में बुर्जुआ साहित्य में पाये जाने वाले संशयवाद, निराशावाद और वास्तविकता के प्रति नाशवादी अभिवृत्ति (Nihilistic Attitude) को कोई स्थान नहीं मिल सकता।

समाजवादी यथार्थवाद के प्रतिपादक इन दिनों पाश्चात्य कला और साहित्य में प्रचलित "आधुनिकतावाद (Modernism) का विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में 'आधुनिकतावाद' यद्यपि अनेक शाखाओं में रूप ग्रहण करता रहा है और उसकी अनेक प्रवृत्तियाँ हैं, जो प्रकट रूपमें एक-दूसरे की विरोधी लगती हैं, किन्तु वे सब समान रूप से यथार्थवाद और कला में परम्परा का निषेध करती हैं। जीवन के प्रति ह्रासवादी दृष्टिकोण उनकी समान विशेषता है। समाजवादी यथार्थवाद के और आधुनिकतावादी या ह्रासवादी दृष्टिकोणों के बीच संघर्ष ही आधुनिक कला का केन्द्रीय प्रश्न है—ऐसा सोवियत सिद्धान्तशास्त्री और समाजवादी यथार्थवाद के अन्य समर्थक मानते हैं। उनकी दृष्टि में यथार्थवाद की महान् कृतियों की तुलना में 'आधुनिकतावाद' की कलात्मक उपलब्धियाँ नगण्य हैं। 'आधुनिकतावाद' कला के क्षेत्र से एक ओर सारवान वस्तु (Content) का निरसन कर तथा उसके स्थान पर (Form) रूप का प्रतिष्ठापन करने की चेष्टा कर कला को जीवन से विमुख करता है और दूसरी ओर मनुष्य को उसके समस्त गौरव से वंचित कर कला को अमानवीकरण का साधन बनाता है। समाजवादी-यथार्थवाद यथार्थवाद की महान् परम्परा का नव्यतम विकास है, जो इस आधुनिकतावादी अमानवीकरण का विरोध करता है। बुर्जुआ साहित्य-समीक्षक ही अनेक समसामयिक आधुनिकतावादी कृतियों के प्रसंग में उनकी व्यर्थता का अनुभव कर उन्हें अमानवीकरण का दोषी ठहराते हैं।[2] समाजवादी-यथार्थवाद समाजवादी मानववाद के उच्चादर्शों के अनुरूप 'मनुष्य को मनुष्य के मित्र, सहयोगी और बन्धु' के रूप में चित्रित करने का लक्ष्य कलाकार के सम्मुख रखता है।[3]

(३)

गैर-साम्यवादी लेखकों को समाजवादी-यथार्थवाद के प्रति अनेक गम्भीर आपत्तियाँ हैं। समाजवादी यथार्थवाद जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं कलाकारों से मार्क्सवाद को ही मानव के आत्यन्तिक कल्याण का एकमात्र और सम्पूर्ण दर्शन मानने और उसके राजनैतिक कार्यक्रमों का समर्थन करने के लिए कहता है। एक निश्चित विचारधारा के अनुसार साहित्य-रचना करने वाले वर्तमान लेखकों को ही वास्तविक महत्व का अधिकारी समझा जाता है, अन्य लेखकों को अधिक-से-अधिक सहयात्री का गौरव

१. Soviet Literature 2, 1964. Positive Hero and Freedom of Expression by Alexander Karagonov.
२. Romond Williams, New Left Review, no 20, Summer 1963 From Hero to Victim.
3. Soviet Literature 2, 1964.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाता है। विश्व में ऐसे लेखकों की कमी नहीं है जो पूँजीवादी व्यवस्था के वर्ग-वैषम्य के घोर विरोधी हैं किन्तु समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत मनुष्य के सामूहिकीकरण की भी निन्दा करते हैं। ऐसे लेखकों की दृष्टि में मानवादी कलाकार वही हैं जो मनुष्य और उसके कष्टों से, वे चाहे पूंजीवादी जगत् में हों या समाजवादी देशों में, सहानुभूति रखते हैं। जिन सोवियत कृतियों को कलात्मक सफलता मिली है उसका श्रेय लेखकों की मानवीय संवेदना को है न कि समाजवादी यथार्थवाद के सिद्धान्तों के अनुपालन की निष्ठा को। उदाहरण के लिए शोलोखोव के 'The Silent Don' की कलात्मक श्रेष्ठता का कारण है युद्ध, क्रान्ति और गृह-युद्ध से पीड़ित लोगों के प्रति कलाकार के रूप में लेखक की दिलचस्पी, न कि साम्यवादी दृष्टिकोण, हालाँकि उस दृष्टिकोण के प्रति भी लेखक की निष्ठा से इन्कार नहीं किया जा सकता।[1]

सबसे अधिक आपत्ति साहित्य पर पार्टी और सरकार के नियन्त्रण को लेकर है। साहित्यकार को निर्दिष्ट विषयों पर निर्दिष्ट सीमा में लिखने के लिए बाध्य होना पड़ता है। विषयों के स्वतन्त्र रूप से चुनाव के अभाव में लेखक की सृजनात्मक प्रतिभा को निर्बाध विकास का अवसर नहीं मिल सकता और सामाजिक आलोचना के अधिकारों से वंचित कर दिये जाने पर साहित्यकार स्थापित सत्ता का प्रचारक मात्र रह जाता है। इसलिए स्वतन्त्रचेता साहित्यकारों ने इस स्थिति के विरुद्ध सदैव विद्रोह किया है।

स्टालिन के युग में शासकीय आदेशों से बँधकर न चलने वाले साहित्यिकों को अपमान, निन्दा, दण्ड से लेकर आत्महत्या तक की यातनाओं को भोगना पड़ा था। स्वतन्त्र साहित्यकार के लिए अपना अस्तित्व बनाए रखना असम्भव हो गया। इन सब बातों की जानकारी हमें आज रूसी सूत्रों से ही मिल रही है। जिन बहुत से साहित्यिकों को उस युग में साहित्य-संसार से बहिष्कृत कर दिया गया था, उन्हें अब पुनर्प्रतिष्ठा दी जा रही है। इस स्थिति के लिए स्टालिन के व्यक्ति-पूजा (Personality cult) युग को दोषी ठहराया गया है,[2] किन्तु समाजवादी यथार्थ के आलोचकों का कहना है कि साहित्य और कला का पूर्ण विकास तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि उसे अधिकारी-वर्ग के हस्तक्षेप से मुक्त नहीं रखा जाता।

रूस में आज कलाकार को अपेक्षाकृत बहुत स्वतन्त्रता प्राप्त है, किन्तु विरोधी विचारधारा रखने पर किसी लेखक को वहाँ बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। पास्तरनाक के 'डॉ० ज़िवागो' की कलात्मक श्रेष्ठता को लेकर प्रश्न किया जा सकता है, यह भी माना जा सकता है कि नोबल पुरस्कार उसके साहित्यिक गुणों पर उतना नहीं दिया गया जितना राजनीतिक कारणों से (क्योंकि उसमें अक्टूबर क्रान्ति, सोवियत समाज-व्यवस्था और मार्क्सवाद की तीखी आलोचना की गई है) कितु यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि वह एक महत्वपूर्ण कलाकृति नहीं है। लेखक के जीवन-दर्शन को

1. Russian Fiction And Soviet Ideology by Ernest J. Simmovs.
2. 'A Writer's Notes' by drawdlist A. Kron in Soviet Literature during the Thaw.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्वीकार किया जा सकता है, रूसी क्रान्ति और सोवियत व्यवस्था की उपलब्धियों को सर्वथा नजरन्दाज कर केवल दोषों पर दृष्टि रखने के लिए उसकी निन्दा भी की जा सकती है, किन्तु यदि कोई पुस्तक कलाकृति के नाते महत्वपूर्ण है तो क्या उसका प्रकाशन रोका जा सकता है? हो सकता है कि कुछ लोग बिना अनुद्विग्न हुए यह निर्णय देते हुए कि 'पास्तरनाक ने जो कुछ लिखा है वह उसके देश के लिए और जाग्रत मानवता के लिए अपमानजनक है अपनी राजनीतिक-निष्ठा की घोषणा करें,[1] किन्तु जो लोग कलाकार की स्वाधीनता के प्रश्न को महत्वपूर्ण समझते हैं, वे इस कृति के गुण-दोषों के बावजूद इसके कलात्मक महत्व के प्रति उदासीन नहीं हो सकते और इसके लेखक को उसके साहस तथा चारित्रिक निष्ठा के लिए आदर देने को मजबूर हैं।[2]

समाजवादी-यथार्थवाद के सिद्धान्तों की व्याख्या समय-समय पर शासकीय इच्छा के अनुकूल ही की गई है। उसे कम्यूनिस्ट पार्टी के राजनैतिक उद्देश्यों या सरकारी योजनाओं के प्रचार का काम सौंपा गया है। मानववाद की ऊँची घोषणाओं की ओट में समाजवादी यथार्थवाद साहित्यकार को साम्यवादी दलों का मुखापेक्षी बनाना चाहता है और इसे दूसरे जनवादी कलाकार अस्वीकार करते हैं।

पश्चिम के आधुनिक साहित्य में निराशावादी स्वर व्याप्त है। इसमें बहुत-सा ऐसा श्रेष्ठ साहित्य भी है जो निराशा-मूलक होकर भी पराजय का साहित्य नहीं है। उस प्रकार के साहित्य-स्रष्टाओं के निराशावाद का आधार दार्शनिक है। वे महसूस करते हैं कि धार्मिक विश्वासों के ढहने के साथ ही आज के मनुष्य के सामने से जीवन का अर्थ तिरोहित हो गया है। ऐसे लेखक जीवन को एक मानवीय अर्थ देने के लिए व्याकुल हैं, वे किसी सुखद भविष्य का चित्र भले ही न देते हों, मनुष्य को उसकी कठिनाइयों के वहन की सामर्थ्य अवश्य देते हैं।[3] इस साहित्य के प्रति समाजवादी यथार्थवाद का प्रायः निन्दात्मक दृष्टिकोण उसकी सीमाओं को व्यक्त करता है।

समाजवादी यथार्थवाद का अनुगमन करने पर लेखक को अपने कृतित्व को कृत्रिम मूल्य देने पड़ते हैं। सैद्धान्तिक वस्तु के प्रति आग्रह के कारण कलात्मक मूल्यों के उपेक्षित हो जाने का खतरा रहता है। यदि एक उपन्यासकार को पात्रों को चित्रित करते समय टाइप का ही चुनाव करना हुआ और अपनी कृति में आशावादी स्वर को ही अभिव्यक्ति देनी पड़ी तो उसे अपने अनुभव और कृति की अपनी माँग के स्थान पर उन मान्यताओं को प्रमुखता देनी होगी जिनके प्रसार की उससे अपेक्षा की जाती है। कृति की आम लोगों तक पहुँच को एक साहित्यिक प्रतिमान मान लेने का नतीजा होगा उन साहित्यिक प्रयोगों का अवरुद्ध होना जिनकी अनुशंसा के लिए उच्चकोटि की कलात्मक अभिज्ञता अपेक्षित है। यही कारण है कि साम्यवादी जगत् में पश्चिम के उन श्रेष्ठ साहित्यकारों को कोई महत्व नहीं दिया गया है जो व्यक्ति की निजता

---

१. डा० रामविलास शर्मा : समालोचक, अक्टूबर ५९
२. अमृतराय : समालोचक, नव ५९
३. द्रष्टव्य : The Contemporary French Novel by Henri Peyre : Introduction, P. 11

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रति आग्रहशील हैं और उसे विशिष्ट रूप में चित्रित करते हैं तथा जिन्होंने अभि- व्यक्ति के माध्यमों में सर्वथा नवीन प्रयोग किये हैं।

समाजवादी यथार्थवाद की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह लेखक को सामाजिक दायित्व की भावना देता है। पश्चिम के कलाकार जबकि क्षुद्र स्वार्थों में रत या एकाकी मानवों का चित्रण करते हैं, सोवियत लेखक जीवन की क्षुद्रताओं के प्रति घृणा व्यक्त करते हैं और किसी वृहत्तर उद्देश्य की प्राप्ति में लगे सामाजिक मानवों के जीवन के बारे में लिखते हैं।[1] आधुनिक साहित्य-जगत् को समाजवादी यथार्थवाद की सबसे बड़ी देन यही है कि उसने जीवन से संपृक्त साहित्य-रचना का लक्ष्य रखा है।

समाजवादी यथार्थवाद की सीमायें स्पष्ट हैं। किन्तु उसका महत्व यही है कि उसने लेखक के सामाजिक दायित्व पर ज़ोर दिया है। मानववाद के अनुसार मनुष्य की सारी क्रियाओं का लक्ष्य श्रेष्ठतर जीवन की उपलब्धि है और कला भी इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होनी चाहिए। कलाकार की रचनात्मक स्वतन्त्रता को स्वीकार करते हुए भी उसे दायित्व से मुक्त नहीं माना जा सकता। समाजवादी यथार्थवाद को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उसने कला के क्षेत्र में उत्तरदायित्वहीन दृष्टि- कोणों का विरोध किया है। सोवियत उपन्यासकार ओस्त्रोवस्की के शब्दों में 'मनुष्य की सबसे मूल्यवान निधि जीवन है और यह उसे केवल एक बार मिलती है। उसे इस प्रकार जीवित रहना चाहिए कि वह निरुद्देश्यतापूर्ण वर्षों के लिए मर्मान्तक खेद का अनुभव न करे, इस प्रकार जीवित रहे कि मृत्यु के समय कह सके कि 'मेरा सम्पूर्ण जीवन और शक्ति सारी दुनिया में सबसे अधिक सुन्दर लक्ष्य—मानव जाति की मुक्ति के लिए संघर्ष को—समर्पित थे।' कलाकार का लक्ष्य निश्चय ही मनुष्य में इस प्रकार की नैतिक चेतना का संचार है जिससे वह इस धरती पर दूसरे मनुष्यों के साथ मिल- कर मानव-कल्याण के कार्यों में प्रयत्नशील होने में गौरव का अनुभव करे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

1. द्रष्टव्य : Soviet Literature During Thaw (P. 166)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
दि 3 आ
अं -32
4-3,1448
पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

व्लादीमीर वाइद्ले

कला का जीवशास्त्र

१. काफी समय से प्रमुख विचारक एक कोरमकोर विवरणात्मक प्रत्यक्ष ज्ञानवादी कला-सिद्धान्त की प्रशंसा करते आ रहे हैं जो स्वयं कलाकृति से और दर्शक या श्रोता पर पड़ने वाले उसके प्रभाव से सम्बद्ध है। इसके अलावा कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जो इसी दिशा की ओर उन्मुख होते हैं; लेकिन कभी-कभी उनमें मनोवैज्ञानिक सौन्दर्यशास्त्र की पद्धतियों की मिलावट हो जाती है और कभी-कभी वे जन उन पद्धतियों का सामना करने में ही काफी प्रयत्न किया करते हैं। वे उन्हें प्रयोग के परीक्षण में प्रस्तुत करने की अपेक्षा उनकी परिभाषा करने में ही काफ़ी प्रयत्न करते हैं।

कलाकृति एक वस्तु है जो केवलमात्र मानवीय अवबोधन के निमित्त अस्तित्व रखती है। लेकिन यह अपनी बहिर्मुखता के लिए अस्तित्वमान है—अर्थात् प्रत्यक्षीकरण के वैयक्तिक विभेदों के परे या उनसे अलग। जो कोई इस क्षेत्र में परिणामों—निस्सन्देह व्यवस्थाई; किन्तु कम-से-कम सुधार और संशोधन में सक्षम परिणामों—को प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसे समान पादभिन्न (denominator) का तथा ऐसी वस्तुओं के प्रभेदक लक्षणों का विवरण देना चाहिए।

तिस पर भी, ज्योंही कोई इस दिशा में अग्रसर होता है, उसे एक ऐसे तथ्य को साभार स्वीकार करना पड़ता है जो अब तक उन लेखकों के ध्यान से छूट गया है जिन्होंने ऐसे विषयों पर विचार किया है। तथ्य निम्नलिखित है :

२. कलाकृति एवम् जीवित संघटना (organism) के बीच एक सुस्पष्ट परिभाषित रचनागठन (structure) के सादृश्य का अस्तित्व है।

हम "रचनागठन के सादृश्य" की बात करते हैं; न कि धर्म अथवा क्रिया की, क्योंकि कलाकृति "जीवित" शब्द के उचित अर्थबोध के अनुरूप जीवित नहीं रहती। फिर भी हमें रूपकात्मक ढंग से यह जोड़ देना चाहिए कि कलाकृति जीवित ही रहती है और यह रूपकात्मक बोध न तो स्वेच्छापूर्ण है न ही कुतर्कपूर्ण। एक कलाकृति निरन्तर क्रमिक पीढ़ियों की चेतना में अस्तित्वमान रहती है जो उसे जानती और उसका अवबोधन करती है। यह कहा जा सकता है परिवर्तित होते हुए, जीवित रहते हुए वह कृति अस्तित्व रखती है क्योंकि वे पीढ़ियाँ उसे विभिन्न प्रकार से समझती हैं। और क्या यह सत्य नहीं है कि स्वयं से तादात्म्य करते हुए आत्म-पुनर्नवीकरण की यही समान धर्मिता, जो कलाकृति के लिए उपयुक्त है, वनस्पति तथा पशु-जगत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पाई जाती है ? यह भी हो सकता है कि मानव प्रगति इतिहास (ontogenesis) तथा जातीय प्रगति इतिहास (phylogenesis) जैसे प्रत्यय (concepts) कलाकृति में पूरी तरह से अनारोपणीय न हों क्योंकि यह एक जीवित सत्ता की प्रगतिमूलक विक-सित उपज है और यह उसी भाँति की दूसरी कृतियों से सहोदर सम्बन्ध कायम किए रहती है जो कामक्रम से उसकी पूर्ववर्ती या परवर्ती होती हैं। इस तरह हम आगे देख सकते हैं कि क्यों एक कलासिद्धान्त, अथवा उसका कोई अंश, ठीक ही बराबर जीवशास्त्र भी कहा जा सकता है।

फिर भी, ऐसे विषय पर औचित्यमूलक रूपकों अथवा चाहे जितने विशि- सादृश्यों के द्वारा हम प्रकाश डालने की आशा नहीं कर सकते। केवल गठनतत्त्वीय (morphological) अध्ययन अर्थात् प्रकृति विज्ञान एवं मस्तिष्क दोनों पर बराबर लागू होने वाली पद्धति से प्रसूत रूप ही हमें आगामी स्थापनाओं की ठोस नींव डालने के योग्य बनायेगा।

३. जीवित संघटनाओं तथा कलाकृतियों के बीच की गठनतत्त्वीय व्यासक्ति केवल अभी प्रयुक्त की गई शब्दावलियों—"संघटना" (Organism) और "रूप" (Form) ("गठन तत्त्व" शब्द से अभिप्रेत)—के परवर्ती अभिप्रेतों तक ही सीमित नही हैं।

जर्मन स्वच्छन्दतावादियों की सर्वाधिक अनुकूल शब्दावली "संघटना" उनके द्वारा साहित्यिक आलोचना में, और कला के दर्शन तथा राजनैतिक एवं सामाजिक चिन्तन में भी, भूमिका अदा करने के लिए गढ़ी गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि इसका बहुत कुछ ठीक अर्थ लुप्त हो गया। इसलिए इसने प्राकृतिक विज्ञानों के बाहर, 'खण्डों' (Ganzheit) के योग में न घटाये जा सकने वाली किसी भी प्रकार की वस्तु के उस सम्पूर्ण को छोड़कर अन्य किसी भी अर्थ का बोध कराना बन्द कर दिया। फलस्वरूप हम अब यह नहीं जानते कि इसकी मूल धातु 'जीवी' जीवित संघ-टना के समुपयुक्त का भी संकेत करती है अथवा नहीं। इसीलिए जर्मन जीवशास्त्री "संघटनात्मक" या "संघटनावादी" विशेषण पसन्द करते हैं। तथ्य तो यह है कि जीवित संघटना 'खण्डों' से बिलकुल भिन्न गुणों का अभिधान करती है और जैसा कि हम प्रदर्शित करेंगे, कलाकृति केवल एक संघटनात्मक रचनागठन ही नहीं अपितु एक 'संघटनामूलक' भी प्रस्तुत करती है।

जहाँ तक "रूप" शब्द की बात है वह हमें केवल अपने अर्थों के सीमित दायरे में उपयोगी है जब कि वह 'खण्ड' शब्दावली का अनुवाद करता है। इस पर भी जिस प्रत्यय का यह संकेत करता है वह भी उस सादृश्य के लिए बहुत बड़ा है जिसकी परिभाषा करने की हम चेष्टा कर रहे हैं। आरम्भ में 'संघटना के उस सामान्यीकृत प्रत्यय की अपेक्षा यह अधिक उपयोगी हो सकता है जो उसे कई बिन्दुओं पर अधिक ठीक-ठीक निर्धारित करता है। परन्तु सचमुच अनिवार्य सूत्रस्थापनों के लिए यह पर्याप्त नहीं है। जीवित संघटना की तरह कलाकृति एक रूप है, एक 'गेस्टाल्ट' (gestalt) है, किन्तु इसी की भाँति यह कुछ अधिक भी है। और दोनों ही दशाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में किसी सीमा तक यह पूरक विशेषता भी एक समान है।

४. प्रत्येक रूप के निम्नलिखित चारित्र्यतत्व होते हैं : यह उससे नितान्त भिन्न है जो इसका आवेष्ठन करता है अथवा इसकी पृष्ठभूमि का निमित्त होता है; यह उन सह-सम्बन्धी तत्त्वों से निर्मित है जिनके सम्बन्धों को इसे रूपान्तरित या विनष्ट किये बग़ैर नहीं बदला जा सकता; यह एक सम्पूर्ण है जो अपने खण्डों के योग में नहीं घटाया जा सकता; यह क्रम परिवर्तमान है अर्थात् आयामों में, स्थितियों में, या संगीत, सुर और अष्टपदी (जब रागिनी नामक रूप में हम व्यस्त होते हैं) में कई परिवर्तनों के द्वारा भी हम इसे तादात्म्य जैसा पहचानते हैं।

संपुटन तथा संघटन (Geschlossenkeit and Zusammengehorigkeit) नाम से पुकारे जाने वाले पहले दो चारित्र्यतत्व बाद के दो से कम मूलतात्त्विक नहीं हैं, यद्यपि इनका हवाला कभी-कभी दिया जाता है। बाद के दो तत्त्वों से हम गेस्टाट-क्वालिटाटेन' (Gestaltqualitaten) का अभिज्ञान करते हैं जिसे सन् १८९० के अपने अध्ययन में वॉन एहरेनफेल्स (von Ehrenfels) ने वर्णित किया है। इनमें से दूसरे का तो उनसे पहले वर्णन ही नहीं हुआ, जबकि पहले का 'खण्ड' (ganzheit) से, फलस्वरूप व्यापक एवं रूपकात्मक बोध की दृष्टि से संघटना की धारणा से, भ्रम हो जाता है। जो भी हो, पर यह तथ्य बरकरार रहता है कि हमने तबसे जिन प्रत्ययों की परिभाषा की है, और जिन्हें हम अभी निर्धारित कर चुके हैं, वे केवल कलाकृतियों तथा जीवित संघटना को ही नहीं, बल्कि रवों को, ज्यामितिक आकृतियों को, कोहलर (Koehler) के भौतिक गेस्टाल्ट (Physische Gestalten) को, उत्पादित वस्तुओं के पूर्णयोग को, मस्तिष्क की कृतियों के योग को भी आत्मसात करते हैं। प्रत्येक वस्तु या लगभग प्रत्येक वस्तु 'गेस्टाल्ट' है : माचिस की एक डिब्बी और पार्थेनन, शतरंज का एक खेल और 'नवीं सिम्फनी', माइकेल एंजिलोंकृत "मोज़ेस" और चार्ली चेपलिन की मूंछ, मेरा दरबान और उसका आवास, मधुमक्खी का एक छत्ता, एक मधुमक्खी, मधुमक्खियों का एक झुंड। हाँ। यह भी अमहत्वपूर्ण नहीं है कि इस अतिशय व्यापक श्रेणी के अन्तर्गत १९५४ में पेरिस में आत्महत्याओं की संख्या का सांख्यिकी तथ्य, सड़क से मेरी खिड़की तक उठने वाले शोरशराबे की तरह का संवेदनात्मक प्रभावों का एक सामान्य पुंज आदि समाविष्ट नहीं किये जा सकते। इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसा तथ्य हमारे लिए उपयोगी हो सकता है—बशर्ते कि हम पर्याप्त परिभाषा करने में असमर्थ जो भी है उसकी परिभाषा कर दें।

५. वे कौन से गठनतत्त्वीय चारित्र्यतत्व हैं जो जीवित संघटना से सम्बद्ध हैं और उन्हें जड़रूपों से पृथक करते हैं ? ब्यूटेंडिक (B: ytendijk) ने इस प्रश्न को तीस वर्ष पूर्व उठाया और सन्तोषपूर्ण उत्तर दिया था। वे इस तथ्य से (जिसे वे पूरी तरह से समझते तो थे, किन्तु जो उनकी टिप्पणी के प्रसंगानुकूल नहीं था) ज्यादा चिन्तित नहीं थे कि उनका उत्तर उन रूपों के अलावा, जिनकी ओर उन्होंने सीधा इंगित किया था, अन्य रूपों पर भी सार्थक है तथा जिन विशिष्ट चारित्र्यतत्वों का संकेत उन्होंने किया था वे कलाकृतियों के भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके निरीक्षणों ने उन्हें कई सिद्धान्तों को स्थापित करने की योग्यता प्रदान की। इनमें से प्रयोग की दृष्टि से निस्सन्देह सर्वाधिक समृद्ध वह है जिसको उन्होंने "अनियमित नियमत्व" (irregular regularity) कहा है। एक वृत्त (cirle), एक दीर्घवृत्त (ellipse), एक अंडे की आकृति, और चकोतरे नींबू की एक पत्ती की रूप-रेखा की तुलना करने में उन्होंने दिखा दिया कि पूर्वापर सम्बन्ध से प्रत्येक अधिक स्वतन्त्रता की मात्रा की अभिव्यक्ति करता है। यहाँ प्रयुक्त की गई शब्दावली के अनुसार स्वतन्त्रता एक नियम के स्थिरीकरण के साथ सह-अस्तित्व रखती है। एक वृत्त को नियन्त्रित करने वाले नियम की अपेक्षा एक दीर्घवृत्त का नियम कम रूढ़ है और एक अंडे की रूपरेखा में अधिक लचीला। और एक पत्ती के लिए यह नियम तो सर्वाधिक लचीला है तथा शब्दों या अक्षरों के द्वारा सबसे कम सूत्रबद्ध किया जा सकता है, यद्यपि इसी के साथ-साथ हजारों अन्य प्रकार की पत्तियों का निर्धारण करने वाले नियमों के बीच में यह पूर्णरूपेण स्पष्ट तथा तत्कालतः अभिज्ञेय है। आयामों के अलावा वृत्त में विवर्तन नहीं होता; एक दीर्घवृत्त अपनी अत्यधिक संकुचित सीमाओं के अन्दर विवर्तित होता है; अंडे के विवर्तन तो अनेकानेक हैं; और पत्ती के विवर्तन तो असंख्य है। यद्यपि किसी भी अर्थ में असीमित नहीं। इस सम्बन्ध में पशु और वनस्पति रूपों के नियमों के लिए स्वतन्त्रता की गुणात्मक मात्राएँ इसी के संग-संग लगभग सत्य की मात्राएँ भी हैं। रूढ़ि से मुक्ति यह नियम उदार है जो न तो स्वोक्ति को अस्वीकार करता है, और न ही नियम विहीन हो जाता है। यह जीवित वस्तुओं से सम्बन्धित हर वस्तु में हर जगह देखा गया है। इसकी अतीव स्पष्ट अभिव्यक्तियों में से एक तो वह द्विस्तरीय समरूपता है जो संघटनाओं के रचनागठनों (भ्रूणमूलक भी) में विशिष्ट होती है। हमें यह जोड़ देना चाहिए कि यह द्विस्तरीय समरूपता हमेशा हल्की-सी अ-समरूपात्मक होती है और अपनी प्रकृति की वजह से वैषम्य के द्वारा समानता प्राप्त करती है। इसके अलावा जो सांख्यिकी के विषय में सही है वह गतिशास्त्र (dynamics) के विषय में भी; क्योंकि जीवंत तालों या छन्दों (rhythms) जैसे विकास, श्वासप्रक्रिया, रक्तसंचार आदि के छन्द—में से कोई भी तालघड़ी से नियमित नहीं किया जा सकता और कुछ सीमाओं (जो हमेशा चंचलगति है) के अन्दर ये सभी तीव्रगामी या मन्दगामी हो सकते हैं।

अनियमित नियमत्व को, बाइटेंडिक द्वारा जितना माना गया था उससे भी अधिक जीवित रूप का एक सार्वभौम नियम माना जाना चाहिए—वह नियम जो स्वयंमेव स्थापित हो जाने वाले अन्य normative सिद्धान्तों में से अधिकांश में विभिन्न ढंग से प्रतिबिम्बित होता है जब निर्जीव रूपों से इन रूपों के भेदीकरण की समस्या उठती है। किन्तु इन सबके ऊपर अपने प्रयोजन के लिए हमें इस बात पर बल देना चाहिए कि कलात्मक सृजन के किसी क्षेत्र में कला के सभी रूपों पर भी यह नियम समान रूप से सार्थक है। श्वासप्रक्रिया की भाँति संगीतात्मक ताल एक तालघड़ी के द्वारा निश्चित नहीं की जा सकती। किसी भी मूल्यवान कविता का ताल उस किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी छन्द-नियम से मेल नहीं खाता जो या तो उसका ढाँचा बनता है या उसकी सीमाएँ स्थापित करता है। एक पादवेदिका अलंकरण या एक चित्र की रचना में अनुपात या समरूपता के "नियमों" का कभी भी अक्षरशः निरीक्षण नहीं होता या इनके बिना दोष की अभिव्यक्ति ही करते हैं। और सभी में सर्वाधिक "नियमित" वास्तुकार की कला भी जिसे Inductable संगणना के नियमों के अनुरूप होना चाहिए, बिना किसी चमत्कारी विधि के ऐसा नहीं करती। संक्षेप में यही तत्व इसे एक इंजीनियर के बुद्धि-कौशल से पृथक् करता है।

आगे चलकर यह कल्पना नहीं करनी चाहिए कि यह अल्पीकरण—जो हमेशा उस नियम में वर्तमान है जिसे यह समाप्त नहीं करता—इतना रहस्यपूर्ण रहता है कि बिना सूक्ष्म यन्त्रों की सहायता के इसका उद्घाटन ही नहीं हो सकता। किसी भी अंशतः अभ्यस्त कानों को भी यह प्रकट हो जाता है। यह कोरी आँख को भी दृष्ट है बशर्ते कि प्रयोज्य नेत्र दृश्यात्मक रूप की आशंसा में समर्थ हो। यह सच है कि पिछली शताब्दी के मध्य में पार्थिनन की सही नाप-जोख ने यह रहस्योद्घाटन किया कि उसकी सभी प्रलम्ब और ऊर्ध्वलम्ब रेखाएँ वास्तव में वक्र हैं। पहले-पहल यह तथ्य आश्चर्य-पूर्ण लगा, लेकिन यूनानी इसे जानते थे और इसका अनुभव करते थे। इसके विषय में थोड़ा-बहुत विट्रवियस जानता था और क्योंकि पुरातत्त्ववेत्ताओं ने हमारी आँखें भी खोल दी हैं इसलिए हम भी इसका सीधे (कुछ शुभेच्छा के साथ-साथ) प्रत्यक्षीकरण करते हैं। वास्तुकार तो और अधिक अपनी संगणना की तथा उस पदार्थ की, जिसमें उसके विचार स्थापित होते हैं, रूढ़ कठोरता का उल्लंघन करने या सम्भवतः उसे केवल छिपा देने के अन्य साधन भी रखता है। यदि हम इन दीर्घ शताब्दियों में ऐसा पूर्वविधान न भी लेते तो भी इसके निर्माताओं के हस्तकौशल के कारण इमारत में निश्चित ही कुछ न्यूनतम अनियमत्व आ ही जाता। इसके अतिरिक्त यदि हम अपने युग में येन-केन संयोगपूर्ण साधनों के द्वारा इसे 'जीवन्त बनाने' (to vivify) की जरूरत का अनुभव करें तो इस एकमात्र यान्त्रिक कार्य के बहुत कुछ निस्तेज परिणाम ही निकलेंगे। यह एक बार पुनः यह सिद्ध करता है—लघुविरामों में घिरा क्रिया-शब्द इसी पर बल देता है—कि जो 'जीवित' है उसका यह अनियमित नियमत्व कितना अधिक चारित्र्य तत्त्व है, और जीवित रूपों एवं कलात्मक रूपों के आंगिकों के बीच का सेतु कितना सँकरा है।

६. यदि हम अब जीवित संघटना तथा कलाकृतियों में समान रूप से विद्यमान लक्षणों में से विशेष को प्राप्त करने के लिए अपने आरम्भिक प्रत्यय की ओर मुड़ें, तो हम तुरन्त पाएँगे कि 'गेस्टाल्ट' के उपर्युक्त गिनाये गए सभी गुण एक समान धरातल पर अचल नहीं है। Transponibility का भी, जिसका अर्थ तभी तक स्पष्ट है जब तक हम एक रागिनी अथवा देश एवं काल में किसी दूसरी आकृति के विषय में सोचते हैं, उसी अर्थ में उन वस्तुओं पर अभिधान नहीं हो सकता जिनका रूप उनकी भौतिक विशेषताओं में से कुछ से नहीं, बल्कि इनके योग से भी अपार्थक्यनीय है। जहाँ तक कि सभी रूपों के आरम्भिक लक्षणों का सवाल है जो अपने परिवेश से पृथक होगा ही,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय ही कहा जाता है कि यह एक विशेष तथा परिवर्द्धमान मूल्य प्राप्त कर लेता है, चाहे वह एक पौधा, एक पशु, एक वास्तुरूपात्मक ढलनीय कृति, या संगीतात्मक कृति हो। लेकिन जब तक इस पर अलग ढंग से विचार किया जाता है तब जो उस मूल्य में संवृद्धि होती है उसे सूत्रबद्ध करना बहुत कुछ कठिन होता है। यह करने के लिए 'गेस्टाल्ट' का केवल बाह्य अवयवत्व ही नहीं, मूल प्रकृति भी, सम्पूर्ण और उसके खण्ड के बीच के सम्बन्ध भी जाँचने पड़ते हैं।

जैसा कि हम देख चुके हैं कि सर्वदा वास्तविक बन्धनमयी यह सम्बन्धता किसी एक ऐसे तत्त्व में नहीं घटाई जा सकती जो मामूली योग के परिणामस्वरूप मिलेगा किन्तु संक्षेप में रूप का यही अ-योगमूलक चारित्र्य-तत्व इस तरह का नहीं रह पाता जब वह इनमें से एक या दूजा होता है, यद्यपि जब कभी भी यह न तो एक कलाकृति और न ही एक जीवित संघटना होता है तब इसको पर्याप्त ढंग से परिभाषा दी जा सकती है। बाद के दो दृष्टान्तों में केवल खण्ड ही नहीं जोड़े जाते, बल्कि रूप सम्पूर्ण में भी वे संश्लिष्ट नहीं किये जाते। यह सम्पूर्ण ही होता है जो अन्य सभी से पहले उपस्थित होता है और अपने खण्डों में सप्राण हो जाता है। गठनतत्त्वीय तथा प्रजननीय दृष्टिकोण से भी एक जीवित संघटना में सम्पूर्ण खण्डों के पहले आता है। इसका कारण यह है कि एक ओर तो सम्पूर्ण से पृथक खण्डों में न तो जीवन और न ही अर्थ होता है, तथा दूसरी ओर वे एक सापेक्ष अभेदीकृत सम्पूर्ण के प्रगत्यात्मक विभेदीकरण से उद्भूत होते हैं। जहाँ तक एक कलाकृति के बोधगम्य विभेदीकरण का सवाल है, यह चैतन्यमूलक बीज के विभेदीकरण के कारण होता है और इसकी धारणा (शब्द के दोनों अर्थों के अनुसार) इसके संग्रथित खण्डों के माध्यम से नहीं की जा सकती, भले ही वे योग के नियम की अपेक्षा एक अधिक जटिल नियम के अनुसार संग्रथित किये गए हों। व्यापक रूप में अपने अनेक सदस्यों तथा अंगों की तरह खण्ड सम्पूर्ण से ही जुड़े हैं; वे उनसे सम्बन्धित हैं और उनके बिना अस्तित्व नहीं रख सकते, और यदि इसमें उनमें से कुछ न भी हों, तिस पर भी यह स्वयं से तादात्म्य रूप रहता है।

सम्पूर्ण का अपने खण्डों पर इतना प्रचलन भलीभाँति प्रक्षेपण में संवृद्धि, विश्रान्ति तथा उर्वरता की व्याख्या कर देता है जिसके विषय में हम शंकाएँ उठा चुके हैं और जो आरम्भ में अव्याख्येय लगा था। उर्वरता का कोई न्यूनमान—एकता की किसी गुणात्मक मात्रा की तरह जो एक संयोगात्मक समूह की अपेक्षा ऊँची हो—बिना किसी अपवाद के प्रत्येक रूप का चरित्रण कर देता है। लेकिन जब यह एक कलाकृति का या एक जीवित संघटना का प्रश्न होता है, तब यह (संवद्धित) उर्वरता और (अधिक समग्र हुई) यह एकता भी, किसी पूर्ववर्ती प्रक्रिया—जैसे सम्पूर्ण का संविभाग या खण्डों का संश्लेषण के परिणामस्वरूप नहीं, बल्कि सम्पूर्ण में प्राकृतस्थ गुण के रूप में प्रकट होती है। सम्पुटन, संघटन, और उर्वरता एक इकाई का विधान करती हैं, और तीनों ही 'गेस्टाल्ट' के इस केन्द्रीय चारित्र्य तत्व से निसृत होते हुए प्रतीत होते हैं जिसे हम एकता, या अधिक बहिर्गत ढंग से, सम्पूर्ण का अपने खण्डों पर आरोपण कहते हैं। स्वयं को इस पर विश्वास दिलाने के लिए हमें केवल एक बड़े एकान्त वृक्ष, एक जंगली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशु (भले ही पिंजड़े में बन्द), वर्निनी के निकट एक निर्झर की कल्पना करने की; अथवा एक फ्रेम के एक पादपीठ के, दो कविताओं अथवा संगीत के दो तोड़ों के बीच शान्ति के माध्यान्तर के विषय में सोचने की जरूरत है। अन्तिम तीन उदाहरणों में तो और भी पूरक पद्धतियाँ संलिप्त हैं; यदि एक चित्र को फ्रेम की जरूरत है तो इसलिए कि वह उसकी पूर्वाहिति रखती है, अपने अन्तर्गत ही उसे धारण करती है। यह इसी प्रकार होता है कि जिस तरह पौधे या पशु करते हैं। और अपने प्रारम्भ तथा अन्त दोनों में ही एक 'सिम्फनी' शान्ति को अन्तर्निहित—उत्पन्न भी कहा जा सकता है—करती है।

एक मशीन, एक औज़ार, एक उपयोगी इमारत की तुलना एक जीवित संघटना, एक कलाकृति से कीजिए। जब कि उसकी विविधता पर एकरूप की एकता का प्रसार हो जाता है, जब यह विविधता एकता का ही और एक प्रकार से एकता की सम्पुष्टि का ही परिणाम होती है, तब इससे रूप एक ऐसी उर्वरता प्राप्त कर लेता है जो न तो अकार्बनिष्क प्रकृति में और न ही मनुष्य के तकनीकी सृजन में पाई जाती है।

७. रूप के उपर्युक्त दो चारित्र्यों—सम्पूर्ण की प्राथमिकता तथा, अनियमित नियमत्व—में एक तीसरा भी जोड़ देना चाहिए। लेकिन गलतफहमी पैदा किये बगैर इसका नामकरण कठिन है। तो, हम इसे अतिरिक्त या अतिशयता न कहने के लिए "परमोत्कृष्टता" (Surpassingness) कहते हैं।

सभी रूप अपनी आभ्यन्तर अन्तिमता के अर्थात् सम्पूर्ण के सम्बन्धानुरूप उसके खण्डों के धर्म, या वे 'सेवाएँ' जो खण्ड सम्पूर्ण की करते हैं—इस दृष्टिकोण से विचारणीय हो सकते हैं। यह अन्तिमता किसी एक-दूसरे से, स्वयं रूप के अलावा अन्य किसी को अर्पित की गई "सेवाओं" से परमोत्कृष्ट की जा सकती है, लेकिन हम परमोत्कृष्टता के विषय में चर्चा नहीं करना चाहते। एक मशीन के पहियों का प्रयोजन इस मशीन का विधान करना है, जब कि स्वयं मशीन अपने निर्माता द्वारा प्रदत्त लक्ष्य का अनुसरण करती है। एक जीवित प्राणी के अंग उसकी सत्ता का विधान नहीं करते; वे उसके अंग होते हैं। प्रत्युत उसके अस्तित्व के लिए जरूरी सभी धर्मों को वे पूरा करते हैं। अपने मूल प्रयोजन पर आने के लिए हम किसी अन्य के सम्बन्धानुरूप इस सत्ता की अन्तिमता या जीवित प्राणियों के योग की चर्चा नहीं करेंगे। यहाँ हमारा प्रयोजन एक-दूसरे प्रकारकी परमोत्कृष्टता से है : वह परमोत्कृष्टता जिसे जीवित संघटना उपलब्ध करती है जब वे उन लक्षणों को प्रस्तुत करती है जिन्हें कोई हेतुवादी व्याख्या स्वीकार नहीं। उर्वरता एक ऐसा ही लक्षण है जहाँ तक कि यह सभी रूपों के एक समान तत्त्व से निसृत होती है। विशेष रूप से वह उर्वरता विवेच्य है जो बहुत उच्च विभेदीकृत संघटना का चिह्न है और जिसका साग्रहपूर्ण नामकरण किये बिना बच नहीं सकते।

इसके साथ भ्रमित हुए बगैर इसके समानान्तर प्रकृति में रूप निर्माण की इतनी विपुलता और विविधता विद्यमान है कि यह उस सबसे ज्यादा परमोत्कृष्ट हो जाती है जिसे कोई वातावरण के प्रभाव की, वंशानुक्रम के जटिल तन्त्र की, किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष संघटना की विशिष्ट आवश्यकताओं की (अपने-अपने दृष्टिकोण के अनु… देन मान सकता है। आज हमें यह तथ्य की तरह स्वीकार कर लेना चाहिए कि… और वनस्पति रूपों की विविधता को उनके अस्तित्व की दशाओं की अपेक्षाकृत… विविधताओं में नहीं घटाया जा सकता। उदाहरणार्थ, सैकड़ों विभिन्न प्रकार के… पौधे लगभग एकरूप जलीय वातावरण में बढ़ते हैं; तितलियों के पंखों के… विविध रंगभराव उनकी अपेक्षाकृत अपूर्ण नेत्रेन्द्रियों से प्रशंसित नहीं हो सकते और… भी वे अनुकरण की अनिवार्यता का अतिक्रमण कर जाते हैं। बबरशेर और चीते… बाह्य प्रतीतियों के बीच का साफ़ वैषम्य··· (यह अधिक साफ़ तब लगता है जब… यह ज्ञान होता है कि उनके अस्थिपंजर लगभग एक समान हैं) एक सीमित हद तक… स्थानों के आयत्तीकरण के आधार पर व्याख्येय हैं जिन्हें वे क्रमशः अपना निवास बनाते…

यही परमोत्कृष्टता—नये लक्ष्यों की दिशा की ओर नहीं, अपितु एक अप्र… शित समृद्धि की ओर—हमें एक बार पुनः अभिभूत कर लेती है जब हम कला के… की ओर मुड़ते हैं। इस क्षेत्र के लिए निम्नलिखित नियम का सूत्रस्थापन होगा;

एक कलाकृति उसमें कभी नही घटाई जा सकती जो उसमें से एक कलाकृति… बनाने के लिए पर्याप्त हो सके।

जिस तरह बिलकुल सही अनुमानों के अनुसार एक जीविति···उससे सन्… नहीं होती जो उसे पूर्णतः जीविष्णु बना दे, और उन लक्षणों को ग्रहण कर ले… विज्ञान की गम्भीर दृष्टि में केवल फिजूल के अलंकरण हों, उसी प्रकार एक कलाकृति… भी आवश्यक के अतिक्रमण की कामना की प्रकट उद्दण्डता से और पूर्णानन्द से… अधिक प्रदान करने से आश्चर्यचकित करना कभी भी बन्द नहीं करेगी। इस सम्बन्ध… में हम वैयक्तिक··· (जो एक कलाकृति का दूसरी से अन्तर करने में पर्याप्त हो… करते हैं) का, अथवा कुछ सामूहिक या वैयक्तिक शैलियों को चारित्र्य प्रदान करने… वाली विशिष्ट अतिरंजना का हवाला नहीं दे रहे हैं। त्रासदी की शास्त्रीय (क्लासि… कल) विधि में कुछ भी परिवर्तन न करने पर भी रेसाइन (Racine) रचित… त्रासदी अपने निजी नियम का उसी प्रकार अत्यधिक अतिरंजन करती है जिस प्रकार… शेक्सपियर (Shakespeare) का एक नाटक अपने नियम के परे होता है; इस… के अनुसार स्तेन्दाल (Stendhal) की अपेक्षा शातेब्राँ (Chateaubriand) की… 'अतिरंजित' नहीं है। परमोत्कृष्टता बाख (Bach) की लघुकृति में एक उतना… रहस्यात्मक लक्षण है जितना 'ट्रीस्टन' का, उतना ही कोरोट (Corot) का जितना… कि ग्रेको (Greco) का। प्रत्येक कलाकृति का विधान इस तरह होता है कि उन… ऐसा कुछ जोड़ दिया जाता है जिसकी वास्तव में न तो उसमें ही कमी है और न… उसकी पूर्णता में। जिस कृति में केवल पूर्णता होगी, वह जीवनशून्य होगी। एक जीवि… संघटना में, चाहे हम भले ही इसके स्थिर रूपों तक सीमित हो जाएँ, जीवन अपना… साक्षात्कार जीवन की एक अतिशयता से करता है। एक कलाकृति के विषय में… यही सत्य है जब तक कि हम उसमें एक रूप का दर्शन करते हैं। इसका रूपात्… शून्य एक जीवन्त मूल्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) यूनानियों तथा कला-कौशल (techne) सम्बन्धी उसकी पुञ्जीभूत धारणा के समय से, सर्वोपरि तो अरस्तू के समय से जिन्होंने इस धारणा का सिद्धान्तीकरण करके अपने मोड़ के बिन्दु को लक्षित किया, यूरोपियन विचार कलाकृतियों को उपयोगी वस्तुओं तथा निर्मितियों की तात्कालिक निकटता में रखने का अभ्यस्त हो गया है। यूँ तो यह निकटता वास्तविक है। हमारा सरोकार यहाँ वहाँ तो रूपों से होता है जो साथ-साथ धरातल की वे व्यासक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं जो हमारी आँखों के सामने इतनी स्पष्ट होती हैं कि हम सारपूर्ण अन्तरों के विषय में सोचना भूल जाते हैं। यह तो ठीक है कि एक कलाकृति को एक, औद्योगिक उत्पत्ति समझ लेने के भ्रम की अपेक्षा एक जीवित संघटना को मनुष्य के कृतित्व के परिणाम से उत्पन्न किसी प्रकार की वस्तु समझ लेने की गलती कर बैठना कठिन है। और अगर दूसरी ओर हम यह याद रखें कि एक कलाकृति उसी समय एक व्यावहारिक रुचि की भी वस्तु हो सकती है, और उसकी सत्ता के लिए यह सर्वाधिक स्वाभाविक तथा अत्यन्त उस आधार भी है, तब हमें सहमत होना चाहिए कि इस प्रकृति के भ्रम अवश्यम्भावी हैं, तथा तब हम अपनी सभ्यता के सभी कालों तथा सभी चरणों में ऐसी कृतियों के अपनेपन पर विस्मित नहीं होंगे। लेकिन क्या यह एक नितान्त भिन्न दृष्टिकोण को अपनाने तथा कलाकृतियों के एक नितान्त भिन्न सन्दर्भ में रखने का पर्याप्त कारण नहीं है ?

हमने तो यही करने की चेष्टा की है। और पुनः अरस्तू ही हमें इस मार्ग पर बने रहने का हौसला बँधाते हैं क्योंकि उनमें ही हमें वह दर्शन प्राप्त होता है जो उन दोनों ही दिशाओं में पिटी-पिटाई लीकों से भिन्न है; प्रथम, जब वे मनुष्य के उत्पादक कृतित्व की प्रकृति के कृतित्व से तुलना करते हैं; तथा, जब वे त्रासदी में कार्यव्यापार के क्रम-निर्धारण तथा उच्चतर पशुओं के शरीर के रचनागठन के बाबत एक ही शब्दावली में बात करते हैं। थोड़ी देर के लिए हम इस दूसरे अरस्तूवादी विमर्श का अनुसरण करें। जबकि हम जीवित संघटना एवं कलाकृतियों के सादृश्यसम्बन्धी सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना कर चुके हैं, हम अब अत्यधिक आरम्भिक गठनतत्त्व की पद्धति को अपनाकर दूसरी (कलाकृति) के रचनागठन का परीक्षण करेंगे, जैसाकि हम इसे पौधों एवं पशुओं के अध्ययन में लागू होते देखते हैं।

निस्सन्देह ज्यों ही हम यह अध्ययन शुरू करते हैं कि हम एक अनुसन्धान तक पहुँच जाते हैं : जीवन के रूपों तथा कला के रूपों के सादृश्य के चौथे सिद्धान्त तक। यह सिद्धान्त कला-सिद्धान्त के लिए एक ऐसी पद्धति के दृष्टिकोण को ग्रहण करने में शायद सबसे अधिक मूल्यवान है जो संवेदनाओं और संवेगों पर आश्रित न होकर कृतियों के विवरण और तुलना पर आधृत है। यह सिद्धान्त निम्नलिखित है :

(९) प्रत्येक कलाकृति उस तन्तु (Tissue) से निर्मित होती है जिसका तन्तुजाल संघटनाओं के जीवित तन्तुओं का अनुकरण करता है।

चाहे जो कुछ भी हो किसी भी रूप में हमेशा सम्पूर्ण और खण्ड दोनों होते हैं। जब हमारे मस्तिष्क में एक जीवित संघटना का ध्यान रहता है तब ये खण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियाँ कहलाते हैं तथा कलाकृतियों में छोड़कर कहीं भी सम्पूर्ण के प्रति इनका पालन अधिक नजदीकी (साथ-साथ अधिक लचीला) होता है। लेकिन संघटना—यदि वे इन्द्रियों में सप्राण कर दी जाएँ जो अन्ततोगत्वा कुछ दृष्टि एक मशीन के पहियों से तुलनीय भी हैं—एक अन्य रचनागठन को भी प्रस्तुत हैं जिससे अचेतन रूप किसी भी तरह से तुलनीय नहीं है : जसे उनके को (Cellular) के तन्तु, उनका प्रोटोप्लाज़्मपरक पदार्थ। बाद वाला तत्व तो के आलम्बन पर बदलता है, किन्तु अपरिवर्तनीय ढंग से यह जीवित कोशाओं से होता है। यहाँ वे स्थान छोड़ दिये गए हैं जहाँ जीवित न रहकर भी एक धर्म को परिपूर्ण किया करते हैं। शुरू में तो यह विश्वास करने का छल हो कि जहाँ शब्द के सही अभिधेयार्थ के अनुसार जीवन नहीं है वहाँ इस भाँति सम्भावना भी नहीं है। किन्तु संक्षेप रूप में जीवित पदार्थ का यही कोशाओं पदार्थ है जिसका कलाकृतियाँ अनुकरण करती हैं और इस प्रकार से उनके अमहत्व पदार्थ का रचनागठन होता है।

सादृश्य का निकटता से परीक्षण करने तथा प्रमापन करने के पहले हमें लोगों को विश्वास दिलाना है जो इस तथ्य को ही अस्वीकृत करते हैं कि कला के रचनागठन का भी अस्तित्व है एवं यह बिलकुल तर्क के आधार पर 'तन्तु' कहा सकता है। ढलनशील कलाओं के क्षेत्र में ऐसी शंकाओं के विरोध में सर्वोत्तम तर्क मूल कृति का अनुकृति से विभेद होगा, भले ही वह समसामयिक तथा सब लेखा- के अनुसार सर्वोत्कृष्ट हो। मूल की रचना एवं स्थूल संरचना कहलाने वाला कुछ अनुकृति में भी ज्यों-का-त्यों रहता है; केवल विरलता से रचना के प्रत्य- कृत कोमल वर्णों में ही भेद होता है। आकल्पन (design) का लोच एवं दान, रूपरेखा की दृढ़ता अथवा उसमें अतिसूक्ष्मकम्पन या रंग का एक धब्बा दूसरे शब्दों में ये सूक्ष्मसंरचना के गुण हैं जो कृति का जीवन्त तन्तु भी है। इसलिए कि, यह सर्जक के जीवन की व्याख्या करता है; और इसलिए भी कि, वस्तु को जीवन देता है। सामान्य नियम से तो मूल की तुलना में अनुकृति कम होती है। कुछ अपवादों में यह उतना ही जीवन्त होता है किन्तु तब उसका भिन्न हो जाता है—एक दूसरे सर्जक का जीवन ! यह भी तय है ऐसा असम्भव जितना कला में उतना ही प्रकृति में भी असम्भव—है कि वैयक्तिक जीवन प्रत्यक्षीकरण किये बगैर जीवन का प्रत्यक्षीकरण किया जाय; लेकिन दोनों प्रत्यक्षी- पृथक्-पृथक् हैं, एवं वैयक्तिकता का प्रत्यक्षीकरण जीवन के अप्रत्यक्षीकरण की कम तात्कालिक है। कलाचित्रों का मूल्यांकन करने में जो अभ्यस्त हैं उन्हें मालूम कि यदि वे attribution को कूतने से शुरू करेंगे तो वे प्रामाणिकता के सम्बन्ध अधिक खतरा ले लेंगे। सबसे पहले तो वे यह निर्णय करने की कोशिश करते हैं अपने सम्मुख जिस कलाचित्र का वे अवलोकन कर रहे हैं वह मूल है अथवा अनुकृति और यह विचार रखते हुए फिर यह स्थापित करने की कोशिश करते हैं कि जीवन है भी कि नहीं—असली जीवन, इस्तेमाल किया हुआ जीवन नहीं !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रूप' उन्हें कुछ भी उपयोगी नहीं बना सकते। अकसर वे चित्र को ऊपर-नीचे पलटते हैं या उसका अधिकांश ढँक देते हैं जिसके कि उसके एक लघु अंश का अत्यन्त ध्यानपूर्वक परीक्षण कर सकें। इसके प्रति बिना सजग हुए भी वे इस ढंग से यह प्रदर्शित करते हैं कि उस क्षण में उनकी अभिरुचि के अनुकूल केवल वही वस्तु तन्तु है और, फलस्वरूप तन्तु का अस्तित्व है।

इसका अस्तित्व सभी कलाओं में है। इस भाँति से एक मूर्ति के टुकड़े की अपेक्षा एक भवन का खण्ड बहुधा अधिक प्रभावपूर्ण है। एक पूरे राग के पन्ने पलटने वाला संगीतज्ञ दस में से नौ बार सौवीं मीड़ तक यह जानता है कि जिस कृति पर उसने हाथ लगाया है वह जीवित भी है कि निस्पन्द। एक नई पुस्तक के पन्ने खारिज करने वाले विद्वान् के पास दसवें पृष्ठ (और कभी-कभी तो दसवीं पंक्ति) से आगे न पढ़ने के लिए प्रत्येक कारण है यदि वह यह अनुभव करता है कि पढ़ी जाने वाली पुस्तक में भाषा के तन्तुजाल में मूलनाल; जीवन्त ऊर्जा ही नहीं है। यह सब हमेशा ज्ञात रहा है, यद्यपि भले ही अभ्यन्तरतः रहा हो। 'द्रुत', 'जीवन्त', 'सप्राणकरना' जैसे शब्दों का रूपात्मक उपयोग इसे सिद्ध करता है। कम स्पष्ट तो यह है कि ये रूपक मुआमले की बहुत वास्तविक दशा को प्रतिबिम्बित करते हैं। एक कलाकृति का तन्तु इसलिए जीवित प्रतीत होता है कि वह बहुत समीप से—यथासम्भव समीपता से—संघटना के कोशाओं वाले तन्तु की अनुकृति करता है। और यह सब इस प्रकार होता है: यह आद्यन्त लघु विराम के या कम किये हुए आकार की इकाइयों से निर्मित होता है जो अपनी बारी से जीवित कोशाओं के आन्तरिक रचनागठन की अनुकृति करती हैं। बेशक यह अनुकरण बहुत दूर तक नहीं हो सकता, उन सूक्ष्मताओं का स्पर्श नहीं कर सका जिसे केवल दूरबीन के अन्वेक्षण ही उद्घाटित कर सकेंगे। लेकिन इस सब जटिलता की देहरी पर रुककर यह प्रातिभज्ञान से पहली नींव का समग्र कोशात्मक वस्तुरूप के आरम्भिक सिद्धान्त का चातुर्यपूर्वक प्रत्यक्षीकरण, एवं केन्द्रीय भाग तथा प्रोटोप्लाज़्म का वैषम्य अनुभव करता है। इनमें से परवर्ती दो विरोधी तत्वों के बीच के वैषम्य या तनाव के रूप में इकाइयों के अन्तर्गत मिलता है जो सरलता से विविध हो सकती हैं लेकिन जो हमेशा विपरीत तथा पूरक प्रतीत होती हैं—द्विपक्षीय समत्व के सिद्धान्त के अनुसार एक शरीर के हृदयप्रकुञ्चन (Systole) और हृदयप्रसरण (Diastole) या दो अर्द्धांशों की तरह। हम इन अर्धाभास कोशों को 'तनाव की इकाइयाँ' कहेंगे। अब हम उस सूत्र पर आते हैं जो पहले की अपेक्षा अधिक बहिर्गत है:

(१०) पहले पहल प्रत्येक कलाकृति एक तन्तु के रूप में अभ्युदित होती है जो जीवित संघटना के कोशात्मक तन्तु का अनुकरण करती है और आद्यन्त तनाव की इकाइयों से रचित होती है।

यदि इस नियम का संशोधन किया जाए तो ऐसा करने का एकमात्र कारण जीवशास्त्रीय रचनागठन से और अधिक सादृश्य पर बल देना ही होगा। जिस तरह जीवित संघटना स्थानों में मृतक तन्तुओं का उपयोग करती है, उसी प्रकार एक कला-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृति उन सहायक तत्त्वों का अभिधान कर सकती है जो उसके जीवन में तो संश्लिष्ट हों लेकिन स्वयं अपने में निस्पन्द हों। वास्तुकला में ये तत्त्व असंख्य हैं लेकिन जहाँ कहीं भी कृति बहुत कुछ जटिल होती है ये सभी कलाओं में उपस्थित होते हैं। ये इसकी सीपी या अस्थिपंजर का काम करते हैं। इसके अलावा (जीवित संघटना की भाँति) कोशात्मक तन्तु के जीवित एवं मृतक भागों के सातत्य भी है। जहाँ तक अन्त:संचित जीवन्त ऊर्जा की मात्रा का सम्बन्ध है, तनाव की इकाइयाँ असमान हैं, इनके विधायक दोनों तत्त्वों की बीच की आन्तरिक स्थानीय दूरी परिवर्तनीय है। जब यह स्थानीय दूरी किसी मापन से अधिक हो जाती है तब उनकी तीव्रता कम होने लगती है और कुछ दृष्टान्तों में अनास्तित्वमान हो जाती है। फिर भी तनाव की इन इकाइयों पर, केवल इन्हीं पर एक कृति की जीवन्तता निर्भर करती है—यह जीवन्तता उसके रूपात्मक मूल्य से अधिक नहीं है। परवर्ती तत्त्व को इसका विलक्षण, इसका सर्वोच्च मूल्य नहीं माना जा सकता लेकिन ऐसे मूल्य का अभाव भी उसी कृति में अन्य मूल्य का अनुभव कराना सम्भव नहीं बनाएगा। जिन कलाकृतियों के तन्तु की वे रचना करते हैं उनके लिए ये तनाव की इकाइयाँ उसी तरह हैं जिस तरह हमारे शरीर के लिए जीवित कोशाएँ हैं। हम अपने जीवन से भिन्न और कुछ भी हैं; लेकिन हम जीवनविहीन क्या हैं ?

एक दीर्घ, फिर एक ह्रस्व वर्ण, एक स्वराघात पूर्ण वर्ण के बाद आनेवाला सामान्य अक्षर, विपरीत दिशा में जानेवाले स्वर-सामंजस्य का सामना करनेवाला दूसरा स्वर सामंजस्य, एक चाप (Curve), एक प्रतीप चाप, काल और देश में एकगति तथा दूसरी जो उसका अनुकूल प्रतिबोध करे, दो रंग और ध्वनियाँ जो टकराकर एकसूत्र हो जाती हों, दो औंधे तथा पार्श्वस्थित रचनागठन—ये सब उन सबके थोड़े उदाहरण हैं जिन्हें हमने तनाव की इकाइयाँ कहा है। लेकिन ये सभी तंतु—और (जीवित संघटना की तरह) सभी कृतियों में इनके कई भेद निहित हो सकते हैं—इतना आरम्भिक रचनागठन प्रस्तुत नहीं करते। नाना भाँति की तनाव की इकाइयों का इस तरह या उस तरह से मेल कराने से, उन्हें अत्यारोपित करने से और दूसरों पर उनका आच्छादन करवाने से ये तंतु जटिलता की काफी गहन सीमामात्रा तक पहुँच सकते हैं। तिस पर भी यह कभी उतनी महान नहीं होती जितनी कि जीवी या संघटना और उसकी इंद्रियाँ, कभी भी उतनी महान् नहीं होती जितनी कि स्वयं कला-कृति और उसमें पहचाने जा सकने योग्य सप्राण भाग। सप्राण भागों एवं संपूर्ण के प्रति उनके संबन्धों के बीच जो भिन्न बनता है वह संक्षेप में उनकी जटिलता है; तंतुओं में जो बदलता है वह किसी हद तक उनकी मोटाई और, सर्वोपरि उनका घनत्व है। मोटाई को कूतने के लिए हमें इस तथ्य का भी लेखा लेना चाहिए कि तंतु की विशुद्ध रूपात्मक पर्त्त के नीचे बहुधा एक दूसरी पर्त्त है—अर्थ तात्विक पर्त्त जो (भौतिक एवं चेतन दोनों) कलाकृति की "विषय वस्तु" (Content) का उद्घाटन करती है और फिर भी उसके रूपात्मक रचनागठन से सम्बन्धित है। यह कला में जिसका पदार्थ भाषा है, रूपकात्मक चित्रों तथा शिल्प में स्थायी ढंग से मौजूद है लेकिन यह हमेशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत में तथा वस्तुकला में भी कुछ भूमिका अदा करती है। अधिक बहिर्गत "अ-अर्थतात्विक" पर्त्त की तरह, यह तनाव की इकाइयों (आकांक्षाएँ एवं घटना, प्रश्न एवं उत्तर, हर्ष एवं शोक, प्रेरणा एवं असफलता, निषेध एवं स्वीकृति) से मिलकर बनी है। ये तनाव की इकाइयाँ उन दूसरी पर्त्तों की इकाइयों से निरन्तर संपर्क समझौता या संघर्ष कायम किये हैं जो केवल तंतु की मोटाई ही नहीं बढ़ाते अपितु उसकी घनत्व-वृद्धि में भी सहायक हैं।

लेकिन किसी भी दशा में पहले-पहल जो महत्वपूर्ण है वह न तो मोटाई है और न ही तंतु का घनत्व। वह है इसकी मात्र उपस्थिति, इसका जीवन, जिसके बिना स्वयं कृति ही निष्प्राण होगी। एक जीवित तंतु की आवश्यकता—भले ही वह न तो घनत्वपूर्ण हो, न मोटा ही—तब भी साकार होती है जब सामात्यतः "मशीनी काम" के ऊपर "हाथ के काम" को प्राथमिकता दी जाती है, चाहे वह कला का मामला भी न हो। अपनी प्रकृति के कारण हाथ का काम, जिसके अनियमित नियमत्व की प्रशंसा (वास्तुकला के संदर्भ में) हम कर ही चुके हैं, सतहों और रेखाओं को उत्पन्न करता है। संक्षेप में अपने में विशिष्ट इस अनियमत्व के कारण ही ये सतहें और रेखाएँ एक बहुत दुर्बल कोशात्मक तनाव के बीजरूप तंतु का विधान करती हैं, लेकिन जो फिर भी जीवित है, या कम-से-कम एक पूर्णतः जीवंत कृति के अपेक्षाकृत मोटे तंतु में संश्लिष्ट होने के योग्य है। इसके अलावा, तंतु के तंतुपुंज (Woof) में अपनी आंतर बुनावट की तरह तनाव की इकाई का आंतरिक रचनागठन प्रत्येक चरण पर अनियमित नियमत्व के तथा परमोत्कृष्टता के भी उदाहरण प्रस्तुत करता है—दूसरे शब्दों में, एक प्रचुरता और एक विविधता के जो कभी भी एक कोठर आवश्यक की सीमाओं में नहीं बंधी रहतीं। पुनः एक बार हमें इस पर बल देना चाहिए कि कलात्मक रूप का जीवित और सप्राण चरित्र मूलतः इस तंतु में ही चिन्तनीय हो सकता है। यही कारण है कि इस तंतु के, इसके असंख्य विभेदों तथा अगणित संभावनाओं के अध्ययन को इस नये कलासिद्धान्त का एक सबसे महत्त्वपूर्ण अध्याय रचना चाहिए—जिसके विषय में हम यहाँ केवल पहली और बहुत अपूर्ण रूपरेखा दे पाए हैं।

(११) संपूर्ण और अपने खण्डों के बीच के सम्बन्धों के फलस्वरूप प्राप्त कलाकृतियों की स्थूल संरचना के बारे में हमें और भी संक्षेप में चर्चा करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में सबसे पहले जो सामान्य सिद्धान्त प्राप्त होता है वह संपूर्ण की प्रमुखता का है; लेकिन जिस लचर ढंग से इसे लागू किया जाता है, कलाकृति की किसी भी आन्तरिक "मितव्ययता" की कीमत पर जो स्वतन्त्रता हावी होती है, वह हमें तुरंत अनियमित नियमत्व के सिद्धान्त की याद दिला देती है। संपूर्ण खण्डों का पूर्ववर्ती होता है, उनके बीच भेदीकरण करने के दौरान उन्हें उत्पन्न करता है। लेकिन जहाँ तक शेष बात का सम्बन्ध है, कृति के आन्तरिक गठन का संपादन स्वच्छंदतापूर्वक होता है तथा अतीव विभिन्न रूपों से आयत्त किया जा सकता है। खण्ड असंख्य हो सकते हैं या कुछ वे परस्पर सदृश्य हो सकते हैं या भिन्न-भिन्न; उनका अस्तित्व एक ही धरातल पर हो सकता है या सर्वाधिक जटिल, सर्वाधिक रूढ़ वंशानुक्रम से संजोये जा सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इस अधिक्षेत्र में, पहले के विरोध में, जटिलताओं के अन्तर लगभग असीमित हैं। सर्वाधिक सरल पैराटैक्सिस (Parataxis) से लेकर सर्वाधिक गंभीर हाइपोटैक्सिस (Hypotaxis) तक सभी हमें प्रत्येक सम्भव नमूना पेश करते हैं। यही कारण है कि जब हमारा चिन्तन इन रचनागठनों का सामना करता है, तब वह अविलंब कला-कृतियों के एक समान पादमुखभिन्न की ओर नहीं, बल्कि उनकी विविधता तथा उनके प्रतीयमान···की ओर उन्मुख होता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कला का जीवशास्त्र इस बिंदु पर अपनी नैसर्गिक सीमाओं को प्राप्त कर ले। इसका तो केवल यही अर्थ है कि इस क्षेत्र में गठनतत्व से प्रजननशास्त्र की ओर जानेवाले पंथ को पहले से ही देखना आसान है। और आगे यह पंथ विकासवाद के सिद्धान्त की ओर उन्मुख है। इस सम्बन्ध में जिज्ञासा के तीन वातायन खुलते हैं। यहाँ हम साधारणतः उन्हें गिनाएँगे :

(क) व्यक्तिगत कृति का उद्‌गम; वह प्लाज्मा (Plasma) जिससे इसकी वृद्धि शुरू हुई; विभेदीकरण के रूप में देखी गई यह वृद्धि; स्वनियंत्रित विकास एवं चेतना विस्तार; विषम तत्त्वों का संश्लेषण; तंतु तथा स्थूल संरचना के बीच का सम्बन्ध; कृति की प्रौढ़ता।

(आ) कलाकार का उद्‌गत; एक कृति से दूसरी कृति तक रचना गठनमूलक विकास; पुरुष के जैविक स्तर; और उसकी रचना के रूपात्मक (इसलिए जीवंत) पक्ष के बीच सम्बन्ध; प्रतिभा की उम्र में ढलाव और कृतियों में "पारदर्शिता" की वृद्धि के बीच सम्बन्ध।

(इ) मानवप्रगति के इतिहास (Ontogenesis) के इन दो भेदों के बाद जातीय इतिहास (Phylogeneis) की बारी आती है। क्या इन तीनों प्रक्रियाओं के बीच कोई समानांतरता है और वह कहाँ तक जाती है? क्या कला के इतिहास में हम एक विकास (शब्द के बिल्कुल ठीक अर्थ में) का निरीक्षण कर सकते हैं? रूपों के (रचना-गठनमूलक) विकास तथा अपनी मूर्त्त यथार्थता में देखी गई कलाकृतियों के ऐतिहासिक अनुक्रम के बीच विभेद करना पड़ेगा; प्राकृतिक इतिहास तथा कला के इतिहास में (आंशिक) औचित्य उद्‌गमवाद (Orthogenesis)।

अन्त में कला-कृतियों के रचनागठन का अध्ययन शोध के उस क्षेत्र में भी उन कई दृष्टिदशाओं का उन्मीलन करता है जहाँ अब तक विद्वान जनों ने बहुत कम प्रयास किया है; जैसे, कृतियों के स्थायित्व की, शताब्दियों के दौरान उनके उत्तर जीवन की दृष्टि दशाएँ। इन्हीं अधिक्षेत्रों में पुनर्जीवन की या नियमन की कुतूहलपूर्ण दशाएँ घटती हैं। इनके विषय में हम ऊपर भ्रमनिर्देशन कर चुके हैं। जब वे प्रत्येक संगठन के अत्यंत अभियोजित एवं नमनीय प्रकृति के सम्बन्ध से तुलनीय होती हैं तभी वे थोड़ी बहुत व्याख्येय हो पाती हैं। जिस प्रकार सम्भव होने पर एक जीवित संघटना में एक विशिष्ट तंतु दूसरे को स्थानांतरित कर सकता है, जिस प्रकार एक इंद्रिय कम-से-कम दूसरी के धर्म का धारण कर सकती है, और जिस प्रकार एक ग्रंथि की क्रिया (Glandular activity) एक दूसरी ग्रंथि की कमी की पूरक हो सकती है, उसी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कलाकृति में भी कुछ ऐसे गुप्त साधन निहित होते हैं जिनके द्वारा वह प्रयुक्त किये गए प्रतीकों की जीर्णता-शीर्णता (wear and tear) की मरम्मत कर सकती है, अपने रूपात्मक रचनागठन के अप्रयुक्त तत्त्वों को अबतक छिपे गए तत्त्वों से स्थानांतरित कर सकती है, एवं नई पीढ़ियों को नई प्रतीत हो सकती है। कहा जा सकता है कि एक ओर तो यह जीवन है, तथा दूसरा ओर जीवन के औपम्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है। किन्तु इतना स्थायी रहने वाला जीवन का औपम्य किसी ऐसे पर आधारित होना चाहिए जो यथार्थ हो। और जीवनशास्त्रीय ढंग से उन्मुख कलासिद्धान्त इसी यथार्थता का तो अन्वेषण एवं अनुशीलन करता है।

(१२) जहाँ तक हमारा विश्वास है कि सिद्धान्त रूप में संभव, अथवा वास्तव में अस्तित्व मान सिद्धान्तों के ऊपर ऐसे सिद्धान्त का पहला लाभ है कि, चाहे ज्ञान का कितना ही सीसित अंश क्यों न हों, यह प्राकृतिक विज्ञानों तथा मस्तिष्क के विज्ञानों के बीच नजदीक का ऐक्य स्थापित करने में योगदान कर सकता है। हमारे युग का यह एक सबसे जरूरी काम है। इसका दूसरा लाभ यह है कि अपने निर्देशक सिद्धान्तों के द्वारा यह कलाकृतियों का केवलमात्र उनके आत्यात्मिक सार के आधार पर अनुशीलन करने वाले अध्ययनों की संक्षेपरूप सीमाओं का संकेत कर देता है। इस तरह यह कला के एक अधिजीवशास्त्र (Metabiology) की ओर भी निर्देश करता है। किन्तु हमें जो लाभ सर्वाधिक अपील करता है, वह तीसरा है : यह सिद्धान्त हमें मानवीय सर्जना के अर्थों की झलक लेने में सहायता करता है।

चैतन्य के जीवन से जीवन विलंबित होता है। जहाँ प्रकृति का अन्त और चेतना का आरंभ होता है वहाँ निरन्तर प्राकृतिक प्रसव रुक नहीं जाता। मनुष्य प्रकृति को सातत्य प्रदान किये रहता है। लेकिन अकेले नहीं, जैसा कि गलती से यह विश्वास किया जाता है कि अपनी निजी तकनीकी सर्जना-शक्तियों के द्वारा वह प्रकृति का उपयोग करके ऐसा करता है। बलिक, अधिक सीधे ढंग से, उसका अनुकरण करते हुए, उसकी भाँति परिश्रम करते हुए, अपनी कल्पना के रूपों में जीवन की साँसें सम्प्रेषित करते हुए वह प्रकृति को सातत्य प्रदान करता है। कला एक नवीन प्रकृति है जो सत्ता के दूसरे स्तर पर स्थिर हैं; लेकिन उसके अनुशासक नियम कोई नये नियम नहीं हैं। प्रकृति कला में स्वयं का अभिज्ञान करती है; और यदि चेतना भी अपना कुछ अंश कला में संवलित कर देती है तो भी यह तो सत्य रहता ही है कि, अगर चेतना को जीवन्त रहना है तब, वह इस धरित्र पर उन नियमों को रद्द नहीं कर सकती जो कि जीवन के भी नियम हैं।

[अनुवादक :—रमेश कुन्तल मेघ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० सावित्री सिन्हा

आधुनिक कविता और रस-सिद्धान्त

कोई भी शास्त्रीय मापदण्ड चाहे वे कितने ही सार्वभौम और व्यापक क्यों न हों अपने रूढ़ रूप में हर युग के साहित्य के मानक नहीं बन सकते। जीवन में अन्य मूल्यों की भाँति ही ऐक्य और अनैक्य के सह-अस्तित्व का सिद्धान्त इस क्षेत्र में भी लागू होता है। रस काव्य की आत्मा है। आत्मा दिक्-काल के व्यवधान से परे, शाश्वत है। यह जितना बड़ा सत्य है, उतना ही बड़ा सत्य यह है कि आदिम युग और विज्ञान-युग के मानव की रागात्मक अथवा भावात्मक प्रतिक्रियाओं का रूप एक-दूसरे से बहुत भिन्न है। एक ही मूल भाव भिन्न वातावरण में भिन्न प्रकार से व्यक्त होता है। उदाहरण के लिए शृङ्गार-रस को ही लीजिए। विद्यापति के काव्य से लेकर नई कविता तक वह सतत विद्यमान है; पर भक्तिकाव्य का शृङ्गार रीतिकालीन शृङ्गार से भिन्न है; साकेत का शृङ्गार रूमानी कवियों के शृङ्गार से भिन्न है और नई कविता में व्यक्त शृङ्गार भावना पहले के शृङ्गार से बिलकुल अलग है। वीर-गाथा-काल के वीर-रस, भूषण के वीर-रस और आधुनिक कविता की वीर-भावना मूलतः एक होते हुए भी एक-दूसरे से भिन्न हैं। ऐसी स्थिति में यदि आधुनिक युग-बोध और परिवेश के प्रभाव को अमान्य करके हम रस-सिद्धान्त को उसके रूढ़ रूप में ही स्वीकार करना चाहें तो यह ठीक नहीं होगा। जिस प्रकार शरीर से परे आत्मा हमारी पकड़ के बाहर की वस्तु है उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी रूप अथवा विधा से बाहर रस की स्थिति सम्भव नहीं है। कवि की अनुभूतियों का विस्तार अथवा सम्प्रेषण केवल मानसिक और अमूर्त स्थिति में नहीं हो सकता, रूपात्मक स्थिति उसके लिए अनिवार्य होती है। यह रूपात्मक स्थिति भौतिक, सामाजिक अथवा प्राकृतिक परिवेश से गृहीत वस्तु-तत्वों के संयोजन द्वारा ही सम्भव हो सकती है; इस प्रकार हर कृति में आत्मगत अद्वैत का शाश्वत सूत्र देहगत द्वैत के परिवर्तनशील सूत्र में लिपटकर ही सुरक्षित रहता है। हिन्दी कविता पर रस-सिद्धान्त के मानकों का आरोपण करते हुए सबसे बड़ी भूल यही की जाती रही है कि काव्य-सर्जन की प्रक्रिया के द्वैतमूलक और परिवर्तनशील तत्वों को भी अद्वैतमूलक और शाश्वत सिद्ध करके, आधुनिक युग की बुद्धि-सम्पुष्ट रागात्मक संवेदना पर उसका आरोपण किया जाता रहा है। यह बात मैं अधुनातन प्रबन्ध कृतियों को ध्यान में रखकर कह रही हूँ। आधुनिक कविता के प्रसंग में रस-सिद्धान्त के मानकों का प्रयोग केवल उस व्यापक अर्थ में ही हो सकता है जिस अर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रस मानव-संवेदना का पर्याय है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए मैं एक प्रश्न लेती हूँ अंगी रस का। आनन्दवर्धन की उक्ति का अनुवाद है—

"जैसे प्रबन्ध में (आद्योपान्त) व्यापक एक प्रधान कार्य रखा जाता है (और अवान्तर अनेक कार्य उसको परिपुष्ट करते हैं) उसी प्रकार एक प्रबन्ध-व्यापी अंगी रस के साथ अंगभूत अवान्तर रसों के समावेश में भी विरोध नहीं है।"

स्पष्ट है कि अँगी रस का सम्बन्ध कृति के प्रबन्ध-विन्यास से जुड़ा हुआ है। पंचसन्धि-युक्त प्रबन्ध में जिस आधिकारिक वस्तु की नियोजना की जाती है वह आधिकारिक वस्तु प्रासंगिक वस्तु और अवान्तर कथाओं से जुड़ी रहती है; परन्तु इस कारण उसका महत्व कम नहीं होता। इसी प्रकार अंगी रस निरन्तर व्याप्त रहता है, कृति के मूल प्रभाव को व्यंजित करता है, नायक की चित्तवृत्ति में उसकी स्थिति होती है और उसी के माध्यम से वह कृति के उद्देश्य की व्यंजना करता है। जिन आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों की रचना संस्कृत महकाव्यों के आधार पर हुई है, जिनमें घटना और पात्रों की प्रधानता है, उन पर तो अंगी रस के निर्धारण की यह कसौटी लागू की जा सकती है, परन्तु उन विचार प्रधान आधुनिक-प्रबन्ध-कृतियों पर यह शास्त्रीय जकड़-बन्दी कैसे लगाई जा सकती है जहाँ घटनायें और पात्र किसी विचार के वाहक होते हैं। विचार प्रधान काव्य की सर्जन-प्रक्रिया में दो शक्तियाँ साथ-साथ काम करती हैं। तर्कों से बँधे विचार को मानसिक प्रवृत्तियों से चंचल गतिशील भावनाएँ सजीव बनाती हैं। बुद्धि की स्थिरता भावनाओं की द्रवणशीलता में बँधकर हृदय का अंग बन जाती है, तभी विचारक कवि-कलाकार के रूप में अपने दायित्व का निर्वाह करने में समर्थ होता है। विचार-प्रधान कृतियों में समस्या के चित्रण और समाधान की प्रक्रिया का भी कोई निश्चित और रूढ़-रूप नहीं हो सकता। कभी एक ही विचारसूत्र के विविध पक्ष एक साथ चलते हैं, कहीं द्वन्द्व बुद्धिजन्य विचार और प्रवृत्तिजन्य राग में होता है, कहीं एक ही समस्या पर उठाये गए विभिन्न विचार-सूत्र एक-दूसरे से टकराते हुए एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं और इस टकराहट का अन्त विखराव और टूटन में भी हो सकता है। इस प्रकार इन कृतियों में एक ही समस्या से सम्बद्ध-विरोधी तत्व अपने आप ही समाविष्ट हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में इन कृतियों के अंगी-रस के निर्धारण के लिए मूल प्रभाव की व्यंजना, नैरन्तर्य और फलागम में सहायता इत्यादि निकष मेरे विचार से ठीक नहीं उतरते। इन कृतियों में कवि का राग बुद्धि-सम्पुष्ट होता है, उसके सामने एक समस्या रहती है जिस पर विचार करते समय रस-निष्पत्ति की निमग्नता और तल्लीनता नहीं आ पाती, उससे प्राप्त आनन्द बौद्धिक आनन्द होता है जिससे मस्तिष्क की ग्रन्थियाँ पहले खुलती हैं—हृदय उनका अनुसरण करता है। भाव-प्रधान कविता की भाँति विचार-प्रधान कविता में कवि दर्शक अथवा आश्रय मात्र न रहकर विचारक और द्रष्टा होता है। इसलिए आधुनिक कविता के बौद्धिक प्रतिपाद्य के मूल्यांकन के लिए, हमें इन शास्त्रीय विधानों के शिकंजे से बाहर आना पड़ेगा।

लेकिन, फिर प्रश्न उठता है कि क्या ये कृतियाँ रस-विरोधी हैं? और मेरे मन को इसका निषेधात्मक उत्तर नहीं मिलता। इन कृतियों के प्रतिपाद्य में भाव और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि की स्थिति का विपर्यय नहीं है। आस्था-युग के कवि दिनकर की विचार-प्रक्रिया यदि रससिक्त न होती तो "कुरुक्षेत्र" प्रवचन-मात्र रह जाता, यद्यपि अंगी रस की शास्त्रीय कसौटी पर वह काव्य खरा नहीं उतर सकता क्योंकि उसमें युधिष्ठिर का विचारसूत्र समस्या उठाकर पीछे हट जाता है और भीष्म ही समस्या के दोनों विरोधी पहलुओं को समाधान की ओर ले जाते हैं। उर्वशी के अंगी रस के निर्धारण में तो कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी क्योंकि उसमें शृङ्गार के कई सूत्र बिना एक-दूसरे का विरोध किए आगे बढ़े हैं। 'कनुप्रिया' में व्यक्त सहजता के आग्रह तथा भावाकुलता का मूल्यांकन रस के सन्दर्भ में ही उचित रूप में किया जा सकता है, यद्यपि नया भाव-बोध, और नई अर्थवत्ता इसमें आद्यन्त विद्यमान है। 'संशय की एक रात' की उलझी हुई संशय-ग्रस्त संवेदना का मूल्यांकन रागात्मक प्रतिक्रियाओं के परिपार्श्व में ही किया जा सकता है। पर उसके प्रतिपाद्य के विभिन्न अंगों को तोड़कर भाव, अनुभाव, विभाव, और संचारी भावों की खानापूरी करना चाहेंगे तो ग़लत होगा। अत: यदि रस-सिद्धान्त में बौद्धिक और भावात्मक प्रतिक्रियाओं के जटिल, ग्रन्थिल और संश्लिष्ट प्रबन्ध के लिए स्थान है, तो वह निकष ठीक है नहीं तो अच्छा है कि रस-सिद्धान्त अपनी शास्त्रीय गरिमा न खोए और आधुनिकता उसके अनुपयुक्त होकर ही अपने मार्ग पर चलती रहे।

इन प्रबन्ध-कृतियों के अतिरिक्त सामान्य भूमि पर नई कविता और रस का प्रसंग मैं पिछले कुछ दिनों में श्री वात्स्यायन द्वारा दिए गए वक्तव्यों की पृष्ठभूमि में उठाना चाहूँगी। दिल्ली विश्वविद्यालय की विस्तार व्याख्यानमाला तथा दिल्ली की ही संस्था साहित्यिकी के तत्वावधान में वात्स्यायन जी ने नई कविता के सन्दर्भ में रस की चर्चा करते हुए कहा था 'विश्वविद्यालय में विचार रस-सिद्धान्त के सन्दर्भ में होता है, विश्वविद्यालयों में नई कविता जिस रूप में पहुँची है उसमें उसे भरती करने और निकाल बाहर करने में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि वह भरती ही इसलिए की गई है कि उसे अस्वीकृत करके कहा जाए कि वह कितनी अपात्र है।' मैं वात्स्यायनजी को यह याद दिलाना चाहती हूँ कि अनेक प्रतिष्ठित नये कवियों का सम्बन्ध विश्वविद्यालयों से है अथवा पहले रहा है और नई कविता के प्रसंग में रस-सिद्धान्त के औचित्य-अनौचित्य का प्रश्न भी गम्भीरता के साथ केवल उन्हीं नए कवि और आलोचकों द्वारा उठाया गया है जिनका विश्वविद्यालयों से सम्बन्ध है, जो नए भाव-बोध के प्रति सजग और आग्रहशील होते हुए भी शास्त्रीय परम्पराओं की गरिमा को समझने की क्षमता रखते हैं—जो केवल विरोध के लिए विरोध करने को ही बिना रस-सिद्धान्त को समझे हुए, अपने अविश्वविद्यालयी सहकर्मियों की तरह, हवा में फ़ायर नहीं करते। जिस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ये बातें कही गई हैं, वे अब पुरानी पड़ चुकी हैं। आधुनिक कविता के सन्दर्भ में रस-सम्बन्धी विवाद शायद डा० नगेन्द्र के प्रयोगवाद लेख से आरम्भ होता है, जिसमें उन्होंने यह निर्णय दिया था कि "प्रयोगवाद में बुद्धि प्रधान हो गई है और राग गौण इसलिए उसमें रस का अभाव है। पहले तो उसका अर्थ ही हाथ नहीं आता और यदि दिमाग़ को खुरचकर इसका अर्थ निकाल भी लिया जाय तो पाठक के मन का प्रसादन नहीं होता।" प्रथम दो सप्तकों के मैनेरिज़्म,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नूतनता के लोभ और शिल्प के अत्यधिक आग्रह से नई कविता बहुत आगे आ चुकी है। जिस नए भाव-बोध और संवेदन का वह संवहन कर रही है उसमें राग और बुद्धि के क्रम का वह विपर्यय नहीं रह गया है जिसका स्वर दो तारसप्तकों में प्रधान था। अनेक नए कवियों की रचनाओं में द्वन्द्व से अद्वन्द्व, द्वैत से अद्वैत की ओर जाने की सतत चेष्टा दिखाई दे रही है। वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के अन्तर्विरोधों से टक्कर लेने के साथ ही सामंजस्य की ओर उन्मुख होने का भाव भी उनमें विद्यमान है—यह स्थिति रस-विरोधी नहीं है। अब तो मुझे ऐसा लगता है कि नई कविता में रस के प्रश्न को इतना तूल केवल दोनों ओर के मताग्रह के कारण दिया जा रहा है।

रसयुक्त-काव्य और रसमुक्त-काव्य का भेद स्पष्ट करते हुए एक बात यह कही जा रही है कि "रस का काव्य अनिवार्यतया अतीतोन्मुख था। जब द्वन्द्व प्रबल होने लगा तो रस-कवि और भी अतीतोन्मुख होने लगा। प्रगतिवाद भविष्योन्मुख था परन्तु नया कवि वर्तमान में जीता है।" समझ में नहीं आता कि आज से पहले की सम्पूर्ण कविता अतीतोन्मुख कैसे थी? सम्पूर्ण राष्ट्रीय कविता की प्रेरणा के पीछे तत्कालीन, राजनीतिक आन्दोलन तथा तद्युगीन सांस्कृतिक चेतना है। अतीत—इतिहास और पुराण तो वर्तमान की अभिव्यक्ति के निमित्त उपादान मात्र हैं। छायावादी कविता अतीतोन्मुखी कैसे है? रूमानी यथार्थवादी कविता को क्या एक क्षण के लिए भी वर्तमान से असम्पृक्त किया जा सकता है? हिन्दी कविता की हर प्रवृत्ति वर्तमान से प्रेरित होकर भविष्य की ओर उन्मुख हुई है, अतीत-गौरव के महत्व की स्थापना तथा गौरव-गान वर्तमान के सन्दर्भ में ही हुआ है। यदि 'क्षण' में जीने की स्थिति से तात्पर्य क्षणिक भावदीप्त मनःस्थिति से है तो भी यह स्थिति रस-विरोधी नहीं पड़ती; इस प्रकार की स्थिति संचारी रूप में उदित होती है जो बिना किसी स्थायी भाव के सम्भव नहीं है। रूढ अनुभावों, विभावों आदि की जकड़बन्दी की अनिवार्यता यहाँ भी छोड़नी पड़ेगी।

हर युग की श्रेष्ठ कविता वर्तमान से प्रेरित होकर, यथावश्यक अतीत का सहारा लेकर भविष्य की ओर उन्मुख होती है। भविष्योन्मुखता केवल प्रगतिवाद का दाय नहीं है और न नई कविता अतीतोन्मुखता से परे है। न इतिहास की ओर तथा-कथित रस-काव्य लौटा था और न रस-मुक्त काव्य अर्थात् नई कविता लौटी है। यदि नई कविता में प्रतिष्ठित पौराणिक उपाख्यानों और पात्रों की नई अर्थवत्ता वर्त-मान से सम्बद्ध है तो प्रियप्रवास साकेत और रश्मिरथी का भाव-बोध भी वर्तमान से ही प्रेरित था। और फिर, अतीतोन्मुखता को रस-सिद्धान्त की मूल कसौटी कैसे माना जा सकता है? रस और अरस काव्य के बीच में एक व्यावर्तक रेखा अवश्य खींची जा सकती है कि रस-कवि वर्तमान में जीकर भूत और भविष्यत् की ओर बढ़ता है और रस-मुक्त कवि वर्तमान में जीता हुआ उसी में मरना चाहता है, क्योंकि द्वन्द्व और असामंजस्य की स्थिति दीर्घायु नहीं हो सकती। परन्तु अब तो स्थिति यह भी नहीं रह गई है। अनेक पुराने और नए कवि द्वन्द्व से अद्वन्द्व और अनास्था से आस्था की ओर बढ़ रहे हैं, दूसरे शब्दों में वे अनास्था से आस्था और द्वैत से अद्वैत की ओर उन्मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो रहे हैं जिन्हें रस-काव्य का मुख्य अनुबन्ध माना गया है।

पर द्वन्द्व और नास्तिकता का प्रश्न जिस रूप में उठाया गया है उससे बात और भी उलझ गई है। द्वन्द्व को दुलारने की प्रवृत्ति को शाश्वत सिद्ध करने के लिए तर्क दिया जाता है कि भारतेन्दु की कविता रस की थी परन्तु उनके नाटकों में, जिनमें समाज की आलोचना है, रस को विशेष महत्व नहीं दिया गया। आरम्भ के निराला वेदान्ती और आस्तिक हैं, परन्तु बाद में वे समाज के आलोचक और द्वन्द्व से पीड़ित हैं। प्रगतिवाद का आग्रह द्वन्द्व और द्वन्द्ववाद से पीड़ित है। इस प्रकार के संकेतों का रस के सन्दर्भ में केवल एक अर्थ लगाया जा सकता है कि जहाँ कविता की प्रेरणा यथार्थोन्मुखी तथा समाजोन्मुखी होती है वहाँ रस नहीं हो सकता। यह स्थापना ही अपने-आप में ग़लत है। भारतेन्दु ने केवल रस-कविता ही नहीं लिखी उनकी अनेक कविताओं की प्रेरणा भी उतनी ही यर्थार्थवादी और सामाजिक है जितनी उनके नाटकों की।

नई कविता के पहले की हिन्दी-कविता के क्षेत्र में जितनी भी समाजोन्मुखी प्रवृत्तियाँ उदित हुईं वे प्रायः द्वन्द्व से अद्वन्द्व की ओर बढ़ी हैं—चाहे वे भारतेन्दुकालीन हों, द्विवेदीयुगीन हों अथवा छावावाद-परवर्ती। उनमें द्वन्द्व को पाला नहीं गया है। हर समाजोन्मुखी प्रवृत्ति आलोचना और द्वन्द्व से आरम्भ होकर शिवत्व की ओर उन्मुख होती है। पहले का द्वन्द्व व्क्ति और समाज के बीच था, आज के द्वन्द्व का फोकस व्यक्ति पर है। आज व्यक्ति, समाज, देश और विश्व सबके प्रति एक असामंजस्य का भाव है, दुनिया की हर छोटी-बड़ी वस्तु से ऊबा हुआ व्यक्ति जिस नई संवेदना को पाल रहा है उसका सम्बन्ध पूर्वकालीन समाजोन्मुखी चेतना से जोड़कर उस चेतना को भी रसविहीन सिद्ध करने की चेष्टा की जा रही है, जो सर्वथा अमान्य है। पहले का द्वन्द्व भावनात्मक प्रतिक्रियाओं की एक स्थितिमात्र है जिसकी परिणति अद्वन्द्व में होती है। जिस द्वन्द्व की बात आज उठाई जा रही है उसे अन्तिम परिणति रूप में स्वीकारा जा रहा है। इस प्रकार रस के प्रसंग में उठाया हुआ यह सूत्र भी सन्दर्भ से टूटा हुआ है।

आधुनिक कविता के प्रसंग में रस-सम्बन्धी दो मुख्य प्रश्न और उठाए जाते हैं, (१) नई कविता के बौद्धिक प्रतिपाद्य में रस निष्पत्ति की अलौकिकता कैसे आ सकती है तथा (२) नई कविता का सामाजिक कौन है ?

पहले प्रश्न के उत्तर में एक प्रश्न उठता है, क्या मानव मन की बौद्धिक और अनुभूत्यात्मक स्थितियाँ एक-दूसरे की पूर्णतया विरोधी हैं ? काव्यसर्जन—प्रक्रिया के संश्लिष्ट विन्यास में क्या एक की स्थिति दूसरे के निषेध से ही सम्भव हो सकती है ? साहित्य की प्रक्रिया आत्मदर्शन की आध्यात्मिक प्रक्रिया है जो उद्रेक की स्थिति है, अगर प्रतिपाद्य के प्रति कवि का बौद्धिक दृष्टिकोण इस उद्रेक की गतितूर्ण लहरों में समाकर भावानन्द का ही अंश बन जाता है, तो मेरे विचार से ऐसे बौद्धिक तत्व को कविता का घातक नहीं माना जा सकता। बुद्धिद्वारा संचित समाहिति की स्थिति हृदय की मुक्तावस्था की स्थिति से भिन्न है, ऐसा मेरी समझ में नहीं आता। समाहिति की स्थिति आनन्द की ही स्थिति होती है और यह प्रक्रिया सूक्ष्म मानसिक स्तर पर होने के कारण एक प्रकार से आध्यात्मिक या अलौकिक भी कही जा सकती है। नई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता के सामाजिक का निर्धारण करते हुए सबसे पहली बात तो ध्यान में रखने की यह है कि साहित्यिक प्रवृत्तियों के परिवर्तन के साथ सामाजिक की परिभाषा नहीं बदला करती। जब प्रत्येक युग का साहित्य देश और काल की सीमा का अतिक्रमण कर अपना सामाजिक प्राप्त करता रहा है, तब नई कविता में ऐसा क्या है जिससे १९४३ के पहले का सामाजिक उसके मूल्यांकन के लिए अनधिकारी घोषित कर दिया जाए। ऐसे नारे तो नई कविता को युग और वर्ग की मुट्ठी में बाँध उसे संकीर्ण बना देंगे।

नई कविता के प्रतिपाद्य में भी पहले की ही भाँति दो प्रवृत्तियाँ प्रधान हैं—वैयक्तिक काम-भावना और समष्टिगत सामाजिक चेतना। काम-भावना पहले की अपेक्षा स्वच्छन्द और यथार्थ भूमि पर पल्लवित होने के कारण समस्यामूलक अधिक हो गई है, भावमूलक कम रह गई है। इसी प्रकार पहले की समष्टि-चेतना के रूमानी स्वर का स्थान यथार्थवादी धरातल पर उठते हुए आक्रोश के स्वरों ने ले लिया है, जिनमें से कुछ काल्पनिक और बौद्धिक हैं और कुछ की जड़ें इस पृथ्वी में ही हैं। जो सामाजिक पहले देवदास के साथ आँसू बहाता था वह शेखर के साथ भी तादात्म्य कर सकता था। तो फिर, जो सामाजिक 'निशानिमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' की भाव-लहरियों में निमग्न होता था वह 'नये रस' के पिघले फूलों की रसवन्ती आग को पीनेवाले के द्वन्द्व का आस्वादन क्यों नहीं कर सकेगा ? जो सामाजिक 'हुँकार' और 'सामधेनी' की आग और धुएँ की पहचान कर सकता था वह आज के संकट को नहीं पहचान सकता ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। इसके साथ ही यह भी ध्यान में रखने की बात है कि मध्यवर्गीय युवकों की संवेदना का नाम देकर नई कविता की संवेदना को सीमित और संकीर्ण तथा सार्वभौमता के गुणों से विहीन घोषित नहीं किया जा सकता, क्योंकि हिन्दी कविता की ध्वजा मध्यवर्गीय युवकों के हाथ में आज पहली बार नहीं आई है। आवश्यकता इस बात की है कि अब नए और पुराने की रेखाएँ मिटाकर, पक्ष-विपक्ष, वाद-प्रतिवाद के पूर्वाग्रहों और मताग्रहों को छोड़कर नई कविता के प्रसंग में रस-सिद्धान्त के औचित्य-अनौचित्य के प्रश्न पर वाद-विवाद समाप्त कर दिया जाय क्योंकि जिस स्थिति में यह प्रारम्भ हुआ था नई कविता अब उससे बहुत आगे आ गई है और रस-सिद्धान्त का विवेचन भी आज शास्त्रीय जकड़बन्दी से बाहर आकर खुले और व्यापक धरातल पर हो रहा है। ऐसा लगता है कि नई चेतना और शास्त्रीय गरिमा विकास, समन्वय तथा व्यावहारिकता के सिद्धान्तों को ग्रहण कर एक ही गंतव्य की ओर बढ़ रही है। नई काव्य-चेतना और रस-सिद्धान्त की शास्त्रीयता की यह टक्कर हिन्दी कविता के इतिहास में पहली बार नहीं हो रही है। हिन्दी की हर नवोदित काव्य-प्रवृत्ति के मार्ग में 'ब्रह्मानन्द सहोदर' भूत की तरह खड़ा हो जाता है और अपनी प्राचीन वेशभूषा के कारण उसे अपनी ईमानदारी के प्रति आश्वस्त नहीं कर पाता, परन्तु इतिहास साक्षी है कि नई कविता के पहले उदित आधुनिक प्रवृत्तियों में से वही अंश अमरत्व का भागी बना है, जो रस की भूमि पर खरा उतरा है। नई कविता में रस-तत्व का पूर्ण निराकरण देखने वाले विद्वानों का ध्यान मैं इसी तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहती हूँ कि नई-चेतना अब जिस ओर मुड़ रही है वह मार्ग रस के विरोध का नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० दे

आधुनिकता और नवीन कथा चरित्र

नवीनता को आवश्यकता से अधिक महत्व देने वाले आलोचक (ह्रासोन्मुखी) इस से चिन्तित हो रहे हैं कि मानवतत्व का अंग-भंग हो गया है और मानव का व्यक्ति सामाजिक एवं व्यक्तिगत इन दो टुकड़ों में बँट गया है।[1] ये आलोचक कथा साहि में दृष्टिगोचर होनेवाली मानवीय पक्ष की दुर्बलता का मूल कारण यह मानते हैं मनुष्य के आत्मान्वेषण की वृत्ति सीमित, सतही, कुण्ठित या लक्ष्य-भ्रष्ट हो गई इनके अनुसार स्टालिन पुरस्कार प्राप्त कृतियाँ सुसंस्कृत अभिरुचि वाले पाठकों बचकानी लगती हैं। इन कृतियों में डास्तावस्की, विक्टरह्यू गो, और टालस्टाय के न्यासों की तरह चिरंतन मानवीय मूल्यों की स्थापना नहीं हुई है। अतः ये उप क्लासिकल साहित्य नहीं बन पा रहे हैं। यही हाल अमेरिका में प्रकाशित होने 'बेस्ट सेलर' उपन्यासों का भी है।[2]

ऐसे आरोपों का मुख्य कारण यह है कि आधुनिक जनवादी भावनाओं कथाकारों को प्रभावित किया और वे घिसी-पिटी परम्परा को छोड़ नये चारि मूल्यों की स्थापना के लिए नये साहित्य का सृजन करने लग गए। ऐसे नये उपन्य के चरित्र ह्रासोन्मुखी बुर्जुआ आलोचकों के पल्ले नहीं पड़ते।

सोवियत कथाकार कथा साहित्य की पुरानी परम्परा को छोड़कर नई जन परम्परा को कायम कर रहे हैं, जो उनके अपने अनुभव और आभ्यान्तरिक चेतना प्रतिफल है। पुरानी सामाजिक व्यवस्था और घिसे-पिटे मूल्यों से उनका कोई सम्ब नहीं रहा, बल्कि वे समाजवादी समाज के प्रेम और भविष्य में विश्वास करते हैं उपन्यास अपने-अपने स्वतन्त्र उद्‌भव रखते हैं और इन्हें अपनी भूमि से अलग-अ प्रेरणाएँ प्राप्त हैं। इनमें सूक्ष्मतः एक विचारगत नवीनता, भावनाएँ, पात्रों का और उनका भाग्य एक नवीन आस्वाद उत्पन्न करता है। विषय का यह नयापन त पसन्द आ सकता है जब वैसी व्यवस्था में हम जीना चाहें। रूसी उपन्यासों में अ बलिष्ट मानव अपने उद्देश्य में अग्रसर होता हुआ विजय प्राप्त करता है। वहाँ जनता यह समझती है कि जीवन उपन्यास की तरह है और उपन्यास जीवन तरह है।

---

१. आलोचना (उपन्यास अंक) उपन्यास का भविष्य, पृ० २३१।

२. आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

It goes without saying that what I have to say is purely subjective and based on my personal experience. We Soviet writers are united by our love for our socialist society and faith in its future, but we write about different things, each in his own way. The experience of each of us is different."[1]

किन्तु इसके विपरीत पाश्चात्य बुर्जुआ लेखक यह सोचता है कि कल उसका एवं उसके पात्र का क्या होगा जब कि विश्व पर युद्ध के बादल मँडरा रहे हैं और हमारे मित्र कहें कि एक वर्ष के अनन्तर ही तुम पर अणुबम की वर्षा होगी।

"Today the writers of the bourgeois west do not know what will happen to their characters the next day, or to themselves, for that matter. It is hard to think out a novel when your friend says an atom bomb will drop on you in a year's time."[2]

नई पीढ़ी के अधिकांश अमरीकी उपन्यासों में जीवन की आशा और वास्तविकता का बड़ा ही सजीव चित्र उभरा है। मार्क्स कन्लिफ़ ने अमरीकी कथा साहित्य के विषय में लिखा है कि आमतौर पर मानी जाने वाली बातें झूठी हैं। कलाकार शेष समाज से कटा हुआ होता है। ये 'खोई हुई पीढ़ी' द्वारा आम तौर पर स्वीकृत स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त थे। ये नकारात्मक वक्तव्य थे, यह नकारों के युग के अनुकूल ही था। किन्तु ये आनन्दपूर्ण नकार थे। लेखक उतने आशाहीन रूप में कटा हुआ नहीं था, जितना वह अपनी ओर से मानता था। कम-से-कम उपन्यासकार ऐसा नहीं था। छोटी पत्रिकाओं के सांत्वनापूर्ण आपसी सम्पर्क के अतिरिक्त (जिन्हें हमेशा ही नए समर्थक मिलते प्रतीत होते थे), उसे जनसाधारण से भी, जिनकी वह भर्त्सना करता था, आश्चर्यजनक मात्रा में समर्थन मिला। वस्तुतः व्यापक प्रश्नों में कथा-साहित्य का लेखक अपने पाठकों से बहुत दूर नहीं था। बहुसंख्यक अमरीकी उससे सहमत थे कि युद्ध व्यर्थ और भयावह था, नशाबन्दी एक भूल थी, यौन महत्वपूर्ण था, पेरिस और फ्रान्स के दक्षिणी तट का जीवन स्वदेश के जीवन से अधिक स्फूर्तिदायक था। कसे हुए, बनावट से मुक्त गद्य में, जिसे अधिक-से-अधिक विकसित करने की लेखक चेष्टा करता था, ऐसे विषयों की चर्चा सुनना उन्हें अच्छा लगता था। सिंक्लेयर ल्युइस या अर्नेस्ट हेमिंग्वे की शैली में उन्होंने एक ऐसी चीज पाई जो उनकी बातचीत या समाचार पत्र में उनके प्रिय खेल सम्बन्धी लेखक के स्तम्भ से बहुत दूर नहीं थी। फिर भी, लेखक का आग्रह था कि असली और नकली के बीच, संस्कारयुक्त लोगों और जिन्हें मेन्केन 'बूबाइजी' कहते थे (मध्यम वर्ग के लिए फ्रेन्च शब्द 'बूर्जुआजी' को बिगाड़कर) उनके बीच, एक मौलिक अन्तर था। युद्धोत्तर काल के वर्षों में लेखक की पुकार स्वतन्त्रता के लिए थी—व्यक्ति के लिए अपने को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता। इस काल के विचारदर्शन में फ्रायड की देन मार्क्स से कहीं अधिक थी, किन्तु मार्क्सवादी सिद्धान्त बेमेल नहीं प्रतीत होते थे।—यह स्थिति केवल अमेरिका की ही नहीं है।

1. The writer & his craft, Ilya Ehrenburg, P. 39.
2. The writer & his craft, P. 4.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक दृष्टि से युरोप की स्थिति कुछ बेहतर भले ही हो, उसका राजनीतिक और आर्थिक ढाँचा बुरी तरह हिल गया है। और वस्तुतः उसके लेखकों-कवियों, उपन्यासकारों और नाटककारों ने, अमरीका के लेखकों से अधिक इसके कोई चिह्न नहीं दिखाए हैं कि उनके पास कहने को कोई नई बात है या उसे कहने का कोई प्रभावकारी ढंग है।[1]

सोवियत कथाकार इलिया इहरेनबुर्ग ने नई सोवियत सामाजिक व्यवस्था से उभर रहे नए चरित्र का बड़ा ही भव्य एवं यथार्थ चित्र अपने प्रबन्ध 'दी राइटर एण्ड हिज क्राफ्ट' में प्रस्तुत किया है। आधुनिक भारतीय कथा चरित्र भी उसी परिवेश में विकसित हो रहे हैं। इहरेनबुर्ग के विचार भारतीय जीवन के यथार्थ चित्र से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। आधुनिक समाज हमारी आँखों के सामने बन और बिगड़ रहा है। बहुत से ऐसे लेखक हैं जो अभी जीवित हैं, किन्तु प्राचीनता से दूर है, जिनके उपन्यास आज की ज्वलन्त समस्याओं से ओतप्रोत होते हुए भी बिना किसी कलात्मक ह्रास के अमर बन गए हैं—आधुनिक मानव और उसके आपसी सम्बन्ध बदलते जा रहे हैं। हमारे युग के कॉलेज के छात्र उन युवक युवतियों से बहुत कम मिलते-जुलते हैं जो सन् १९२५ ई० में मिलते थे। मानव की मूल वृत्तियाँ, जो अपरिवर्तनशील मानी जाती हैं वह भी शीघ्रता से बदलती जा रही हैं। आधुनिक दम्पति का विकसित प्रेम प्रथम पंचवर्षीय योजना के युग में प्रचलित युवा स्त्री-पुरुषों के प्रेम से भिन्न है।

"Our society is being built before our very eyes. Many novels by authors still living (and far from old) that dealt with burning issues of the day have become, without losing their literary merits, historical novels...People and their relationships and psychology are changing. The heroes...The college students of our day are little like the youngmen and women who attended the workers high schools in 1925. Even emotions formerly considered unchanging change with amazing rapidity and the feelings of a couple in love to-day are different from what young men and women felt in the era of the First Five Year Plan."[2]

भारतीय आलोचक श्री शिवदानसिंह चौहान के अधोलिखित कथन से इलिया हरेनबुर्ग के कथन का समर्थन होता है। भारत नये मूल्यों को अपना रहा है। भारत की स्वतन्त्रता के साथ यह उभरा है—"भारतीय जनता ने आजादी के लिए संघर्ष किया—क्यों? क्योंकि (आजादी) स्वयं एक मूल्य है, शायद सबसे बड़ा मूल्य। आजादी के बिना नये भारत के निर्माण की आकांक्षा एक स्वप्न ही बनी रहती। आजादी की बुनियाद पर ही नये भारत की इमारत खड़ी हो सकती थी। जनवाद दूसरा मूल्य है, जिसके लिए हमारी जनता ने संघर्ष किया, क्योंकि जनवाद में ही आजादी के बाद के भारत की आकांक्षाएँ ठोस मानवीय आधार पा सकती थीं। जन-

१. अमरीकी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३१२।
2. The writer and his craft. Page 2.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाद या डिमोक्रेसी पूंजीवाद का पर्याय नहीं है, न दोनों में कोई अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जनवाद समाजवाद का विरोधी भी नहीं, जैसा कि ह्रासोन्मुखी पूंजीवाद के व्यष्टि विचारकों ने प्रचारित कर रखा है। जनवाद सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक क्षेत्रों में व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्धों का समानता, न्याय और सहयोग के आधार पर नियमन करने वाली व्यवस्था भी है और विश्व-बन्धुत्व की एक उच्चतर भावना भी। 'शान्ति' तीसरा मूल्य है जिसके प्रति हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का सहज आकर्षण रहा है क्योंकि शान्ति— विश्व-शान्ति ही आजादी और जनवाद की सुरक्षा की गारण्टी है और शान्ति के वातावरण में ही किसान की कुदाली धरती से सोना उगलवा सकती है और मजदूर का हथौड़ा नये कारखानों, विद्युत शक्ति पैदा करने वाले बाँधों और राजपथों का निर्माण करके ज़रूरत की चीजें पैदा कर सकता है। ये तीन मूल्य हैं जो हमारी सभी प्रगति-चेष्टाओं के मूलमन्त्र रहे हैं। ये मूल्य ही हमारी राष्ट्रनीति की आधारशिला हैं—गांधी के सत्य अहिंसा के सिद्धान्त, समाजवादियों-साम्यवादियों के शोषणमुक्त वर्गहीन समाज व्यवस्था के सिद्धान्त तथा राष्ट्रों के सहअस्तित्व के लिए पंचशील के सिद्धान्त इन मूल्यों की ही पुष्टि करते हैं, क्योंकि भारतीय जीवन ही नहीं विश्व-जीवन के विकास की सम्भावनाएँ भी इन मूल्यों की स्वीकृति पर निर्भर करती हैं।[1]

परिणामस्वरूप हमारे नैतिक मूल्य भी बदले और परम्परागत मूल्यों में विघटन आया। नए मूल्यों ने पुराने मूल्यों को चुनौती दी। जीवन का सारा दृष्टिकोण ही कुछ इस प्रकार बदलने लगा कि जीवन के सारे स्तर के लिए नई व्याक्या की आवश्यकता महसूस हुई। किन्तु इसकी जड़ में आर्थिक समस्याएँ अधिक थीं, सामाजिक कम। आर्थिक स्थिति में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता थी, जो हो नहीं रही थी। आर्थिक असन्तुलन से शासक और शासित में विषमता उत्पन्न हुई। चारित्रिक असंयम, भ्रष्टाचार, दायित्वहीनता और बेईमानी का नंगा नाच होने लगा। ठीक इसी समय योरोपीय साहित्य ने हमारे साहित्य को भी प्रभावित किया। परिणामस्वरूप आशंका, भय, अनिश्चितता, मूल्यों के विघटन, पतनशील प्रवृत्तियों के उदय, जीवन के प्रति अनास्था, मृत्यु और वेदना की जीवन पर प्रतिष्ठा इत्यादि ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियाँ ही एक सिरे से प्रकट होने लगीं।[2] इस योरोपीय अराजकता का चित्र डॉ० पी० ए० सोरोकिन ने अपने प्रबन्ध "Sexualization of culture" में प्रस्तुत किया है। इस युग का अधिकांश साहित्य अपसामान्य व्यक्ति चरित्रों का चित्र प्रस्तुत करता है—

"Parallel with this secularization has been the use of characters drawn from every day life, housewives and husbands, merchants and workers, farmers and professionals, and other common types. And in the last century, much literature has centred on the personalities and adventures of subnormal and abnormal people, prostitutes and mistress, street urchins and criminals, the mentally and emotionally derailed and other social derelicts".[3]

१. संकेत, पृ० २८४।
२. आलोचना (२५), पृ० २६६।
3. Bhawan's Journal, Feb. 8, 1959, P. 43.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरोप में जो कथा-साहित्य गत कुछ वर्षों में सबसे अधिक प्रचारित हुआ उसमें बुरे चरित्रों, (Bad characters)[1] पाकिटमारों, जुआरियों, चोर-उचक्कों आदि को प्रधानता मिली है। हिन्दी में भी इस दौरान दलालों, जासूसों, वेश्यालयों, पूंजीपतियों और राजाओं के रोमान्सों का कथा-साहित्य कम प्रचलित नहीं हुआ। देश और विदेश के इस क्लिष्ट परिवेश ने आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य को प्रभावित किया, जिसे दो रूपों में देखा जा सकता है। हिन्दी लेखकों की दो प्रवृत्तियाँ इन प्रभावों के कारण विकसित हुई। एक धारा के कथाकार ने अनास्था, घुटन और फ्रस्ट्रेशन को जीवन का अनिवार्य अंग मान लिया। व्यक्ति का महत्व इनके साहित्य में अधिक है। अतः यह साहित्य व्यक्तिमूलक बन गया। 'शेखर' ऐसे पात्रों का व्यक्तिवाद और भुवन-रेखा की काम चेष्टाएँ व्यक्ति स्वातन्त्र्य की वैयक्तिक व्याख्या है। "गुनाहों के देवता" का नायक इसी कुण्ठा का शिकार नायक है। इस व्यक्तित्ववादी और कुंठावादी प्रवृत्ति के बारे में श्री अमृतराय का कहना—" योरोपीय मध्यवर्ग या निम्न मध्यवर्ग की भाँति हूबहू हममें वह चारित्रिक अराजकता, अनास्था, व्यक्तित्व का बिखराव आ गया है ऐसा कहना न केवल कुत्सित समाज शास्त्रीयता है, वरन् हद दर्जे की निराशावादिता है। साहित्यिक चेतना के इतिहास के मानदण्डों पर कसने वाले को यह तथ्य पूर्णतया हृदयंगम कर लेना चाहिए कि युद्ध के बाद का भारत आजाद, प्रजातान्त्रिक पद्धति का भारत है। निश्चय ही हम पूर्ण अनास्था, हताशा और भ्रमविच्छेद के युग से नहीं गुज़र रहे हैं, हमारी सांस्कृतिक जड़ें उखड़ी नहीं हैं वे और भी गहरी पैठ रही हैं, इधर की पुनरुत्थानवादी पर्त को तोड़कर अपनी संस्कृति के व्यापक जनवादी और लोक-परक तत्त्वों तक पहुँच गई है। योरोपीय अराजकता का आरोप हम पर करना अवैज्ञानिक है।—हमारा झुटपुटा प्रभात का है, सन्ध्या का नहीं।"[2]

दूसरे वर्ग के कथाकार जीवन के ह्रास को आधुनिक जीवन की सचाई नहीं मानते। वे यह मानते हैं कि जीवन का शोषण हो रहा है इसीलिए जिन्दगी मुरझाई लगती है। इस शोषण के खिलाफ संघर्ष करना होगा। समाजवादी यथार्थवाद इनका मूलमन्त्र है। इन्होंने टाल्सटाय, प्रेमचन्द, गोर्की आदि की परम्परा ग्रहण की है। कथा-साहित्य के सही लक्ष्य को इन्होंने समझा है, जिस लक्ष्य का विश्लेषण श्री शिवदानसिंह चौहान इस प्रकार करते हैं—"उपन्यास साहित्य का वह अंग है जो बाह्य वास्तविकता को उसके समस्त, संश्लिष्ट प्रवहमान रूप में उपस्थित कर वास्तविकता पर हमारी पकड़ गहरी बनाता है ताकि हम अधिक भावात्मक या आध्यात्मिक दृढ़ता और व्यापक चेतना के साथ वास्तविकता से संघर्ष कर सकें और उसे अपने अनुकूल बना सकें।[3]

व्यंग्य कथालेखक श्री हरिशंकर परसाई एक तीसरे वर्ग के कथाकारों को भी

१. भारतीय पुलिस की भाषा में।
२. "नई समीक्षा (अमृतराय), पृ०-१६१।
३. प्रगतिवाद, पृष्ठ-१५०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकारते हैं—"एक तीसरे प्रकार के लेखकों ने यद्यपि इस सारी परिस्थिति को मानव-समाज की प्रवृत्ति के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा, उसे क्षणिक थकन माना; यथार्थ को उसके समूचे रूप में स्वीकारा भी; परन्तु किसी ढाँचे के आधार पर नहीं बल्कि जीवन से वास्तविकता, निकट सम्पर्क स्थापित कर, सच्चे अनुभव संवेदन ग्रहण कर, कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें यथार्थ के विभिन्न स्तर और विभिन्न कोण उभरे हैं।"[1]

नवीन चारित्रिक मूल्य राष्ट्र-निर्माण के नए संस्थानों द्वारा उभरे हैं। इसीलिए नए चरित्र कथा-साहित्य में आए हैं। फणीश्वरनाथ "रेणु" ने इन नवीन उभरने वाले चरित्रों की ओर संकेत करते हुए लिखा है—"क्या पता कि नव-निर्माण की तीव्र प्रेरणा कहीं किसी किसान के बेटे को स्पंदित कर रहा हो और वह अपनी अटपटी भाषा में मन के उल्लास को जोड़ने की चेष्टा कर रही हो। दूर किसी उदास गाँव में बैठा कोई बूढ़ा लुहार टेक्टरों, बुलडामरों की गड़गड़ाहट को सुनकर फिर से जवान हो रहा हो। उसकी बाहों में फिर से फौलादी ताकत आ रही हो। सेनेटोरियम की खिड़की से पचास कोस दूर थरमल पावर प्लान्ट की चिमनियों को देखकर किसी क्षयग्रस्त युवक के फेफड़े में घाव भर रहे हों। विपुल प्राणधर्म से ओतप्रोत जीवन-छन्द रचने को वह बेदार हो रहा हो।"[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी कथा-साहित्य में उपर्युक्त विचारों एवं नई उत्क्रान्ति का चिह्न परिलक्षित होने लग गया। गत दशक में इस उदय उत्क्रान्ति ने एक सुस्थिर दिशा की ओर कदम बढ़ाया जो निस्सन्देह हिन्दी कथा-साहित्य के लिए शुभ प्रतीत हुआ और यह भी एक आश्चर्य एवं गौरव की बात है कि जब प्रेमचन्द एवं प्रेमचन्द की परम्परा की माँग पुनः आलोचक एक स्वर से कर रहे थे उसी समय नागार्जुन एवं रेणु के रूप में प्रेमचन्द की जनवादी दृष्टि लेकर वैसी प्रतिभा हिन्दी में आई। इन कथाकारों की रचनाओं से प्रेमचन्द की परम्परा बढ़ी, उसका विकास हुआ। इसी परम्परा में भैरव प्रसाद गुप्त, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, लक्ष्मीनारायण लाल, उदय शंकर भट्ट, अमृतराय, श्यामल किशोर झा, शिव प्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, बलभद्र ठाकुर, देवेन्द्र सत्यार्थी, हिमांशु श्रीवास्तव, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, शेखर जोशी, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, प्रेमकुमार, अमरकान्त आदि कथाकारों के नाम उल्लेख्य हैं।

१. साहित्यकार सम्मेलन (इलाहाबाद) १९५७ ई० में पठित निबन्ध।
२. आलोचना (२४), पृष्ठ २२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—गोविन्द रजनी

यौन परिकल्पनाएँ और हिन्दी की नयी कविता

हिन्दी काव्य के लिए यौन परिकल्पनाएँ अभिनव वस्तु नहीं हैं। इनकी एक वृहत पम्परा रही है, जिसका प्रारम्भिक सूत्र संस्कृत काव्य से उपलब्ध होता है। कालिदा से जयदेव तक शृंगार विषयक रचनाओं में, विशिष्टया संयोग पक्ष के अन्तर्गत क्रीड़ाएं हाव-भाव प्रदर्शन, आलिंगन, प्रिय समागम का वर्णन पर्याप्त रूप में हुआ है। इस यु के परिपार्श्व में सामन्ती अबाध विलासिता प्रेरणादायिनी शक्ति के रूप में कार्य क रही थी। उसी वातावरण से अनुप्राणित होकर तदनुरूप साहित्य की सर्जना हो रही थी। कालिदास के कुमार सम्भव, रघुवंश, ऋतुसंहार में यह प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षि होती है। जयदेव ने भी गीत गोविन्द में अबाध विलास, रति क्रीड़ा, वासनामय चित्र को प्रधानता दी हैं। उक्त ग्रन्थ में श्रीकृष्ण किंसी गोपी का आलिंगन करते हैं। कि के साथ विहार करते हैं। किसी को मृदु मुस्कान से देखते हैं।

ईसा की दशवीं शताब्दी तक की इस विलुप्त, क्षारावेष्ठित अंगारवत् धारा हिन्दी की रीतिकालीन धारा ने पुनः प्रज्ज्वलित किया। इन दोनों युगों की परिस्थिति में अद्‌भुत साम्य था। फलस्वरूप शृंगारपरक रचनाओं में नायक-नायिकाओं की का द्दीपन क्रीड़ाओं, केलि क्रीड़ाओं का मुक्त रूप से चित्रण हुआ। १९वीं शताब्दी के पूर्व में रीतिबद्ध कविता से विचित्र क्लीवता फैल गई थी। वासना के वेगमय उफान मथित, जर्जर राजाओं की विलासप्रियता ने उसमें आहुति का कार्य किया। इ सामन्तीकाव्य के मेरुदंड के टूटते ही, आरोहण की ओर अग्रसर हिन्दी कविता ने नय परिवेश धारण किया, जिसमें यौन-परिकल्पनाओं का तृतीय उत्थान है।

नई कविता में इसके आविर्भाव के परिपेक्ष्य में समसामयिक परिस्थिति पूर्ववर्त्ती परिस्थितियों से भिन्न थीं। प्रथम विश्व युद्ध से केवल मानव मूल्यों का वि टन नहीं हुआ, अपितु स्त्री-पुरुषों के यौन सम्बन्धों पर भी उसका कुप्रभाव पड़ा। की विभीषिका से सैनिकों की पुरानी जीवननिष्ठा, सौन्दर्यबोध, और अनुभूति मर्मा हो गई। प्रतिपल मंडराने वाली मौत की छाया ने उन्हें कामुकता की ओर प्रेरित दिया। स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह युद्ध कार्यों में संलग्न रहीं, जिससे उनकी आव वृद्धि होने से वैवाहिक जीवन विश्रृंखल हो गया, क्योंकि उन्हें वैवाहिक जीवन से वितृ हो गई थी। युद्धोतर आर्थिक विपन्नता ने गार्हस्थिक जीवन की दीवारों को ढहा दि जिससे स्वच्छन्दता के साथ-साथ यौन-उच्छृंखलता को प्रश्रय मिला। सन्तति निग्रह नवीन तथा सफल साधनों ने सामाजिक व्यभिचार को चरम सीमा पर पहुँचा दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक अन्वेषणों से भौतिकवाद उद्भूत हुआ। हर विषय को भौतिकवाद की दृष्टि से देखा गया। भौतिकवाद ने चली आई परम्पराओं और मान्यताओं को खंडित कर दिया। इससे वैज्ञानिक बौद्धिकता प्रादुर्भूत हुई। यह बौद्धिकता इतनी प्रबल हो गई कि धर्म और ईश्वर पर अविश्वास किया जाने लगा।[1] ईश्वरीय भय तथा ईश्वरीय अस्तित्व के लोप होने से नैतिक बन्धन शिथिल हो गये। नैतिकता का पतन ही उच्छृंखलता का द्योतक होता है जिससे विकृतियाँ उद्भूत हो जाती हैं।

मशीन युग की कर्कशता ने मानवीय संवेदनाओं का हनन कर, वैषम्य को जन्म दिया। पूंजीपति वर्ग के अनैतिक हथकंडों ने व्यभिचार फैलाने में योग दिया साथ ही श्रमिक वर्ग की आर्थिक विपन्नता ने यौन सम्बन्धों के अलावा अन्य मनोरंजन के साधनों का मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

तभी मनोविश्लेषण का आश्रय लेकर फ्रायड ने पदार्पण किया। उसकी मान्यताओं ने काव्य तत्त्व तथा काव्य प्रकृति पर सबसे अधिक प्रभाव डाला। उसकी यौन परिकल्पनाओं ने काव्य को जिस रूप में आक्रान्त किया, उससे विद्रोह होता है। यौनाचार और कामभावना फ्रायड की देन हैं। पाश्चात्य तथा हिन्दी के नये काव्य में उन्हें यथेष्ट मात्रा में ग्रहण किया गया है। उसने विवर्जित यौनकुंठाओं के यथार्थवादी धरातल पर मानव की शल्यप्रक्रिया की है। फ्रायड का विचार है—

१—कलासृजन के मूल में कलाकार की दमित एवं कुण्ठित काम-प्रवृत्तियों की सत्ता होती है। ये वृत्तियाँ विविध प्रकार की बाह्य वर्जनाओं के कारण अवचेतन मन में दमित अवस्था में होती हैं। मार्ग प्रशस्त होने पर विकास का मार्ग खोज लेती हैं। अतः सम्पूर्ण कला अवचेतना, अथवा अवचेतन में दमित तथा कुण्ठित कामुक वृत्तियों की अभिव्यक्ति है। यदि सामाजिक तथा बाह्य प्रतिरोधों से इन वृत्तियों का दमन है, तो अनेक मानसिक व्याधियाँ तथा विकृतियाँ उद्भूत हो जाती हैं।

२—फ्रायड के अनुसार स्वप्न इच्छापूर्ति भर हैं, जिसका दमन चेतनावस्था में किया जाता है। उसके अनुसार दमित एवं कुण्ठित आकांक्षाएँ अवचेतन में विद्यमान होती है, जो सुप्तावस्था में एक-एक करके बाहर निकलने लग पड़ती हैं।

३—फ्रायड का विश्वास था कि दु खों के केन्द्रीभूतसंगठन को शैशवकालीन यौन (Pre-occupations) चेष्टाओं में खोजा जा सकता है। उसने माता-पिता, शिशु के सम्बन्ध को ऑडिपस कॉम्पलैक्स (Oedipus complex) के नाम से अभिहित किया जिसको उसने ऑडिपस के पौराणिक आख्यान से उद्धृत किया। उक्त पौराणिक आख्यान में

१. प्रो० हेल्स का इस बारे में मत है—
Science has certainly been in part responsible for the growth of a spirit to examine themselves and remould their arguments, science has therefore tended to depress many who, without accepting materialistic opinions, have been affected by the march of thought. On the whole we may say that science has tended positivism, agnositicism, and in a word to a negative view of things spiritual."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऑडिपस ने पितृहत्या के उपरान्त माता को पत्नी बना लिया था। इस कथा से फ्रायड ने अनुमान लगाया कि यौन भावनाएँ, विपरीत लिंग के साथ सहवास की कामनाएँ, शैशव से ही विद्यमान होती हैं।[१]

फ्रायड के इस यौनवाद ने पाश्चात्य साहित्य को अप्रतिम रूप से प्रभावित किया। साहित्य के चिन्तन का प्रवाह दमित वासनाओं, सुषुप्त चेतनाओं और मुख्यतया यौनभावना की ओर उन्मुख हो गया। अनेक कवि, उपन्यासकार, जीवनीलेखकों ने फ्रायड के सिद्धान्तों का अन्धानुकरण किया। चेतना के मुक्त प्रवाह ने काव्य-रचना-प्रक्रियाओं तथा काव्यात्मक संवेदनाओं को अप्रत्याशित रूप से प्रभावित किया।

इस पतनोन्मुख दुरवस्था का लाभ उठाकर मर्यादाहीन, अनैतिक और विषाक्त सिद्धान्तों का प्रचार किया गया। इन कतिपय साहित्यकारों ने वैवाहिक जीवन की भर्त्सना की और यौन उच्छृंखलता को प्रतिपादित किया। ग्रेट एलन के उपन्यास "दि वूमेन हू डिडि" ने इन विचारों को विज्ञापित किया, एच० जी० वेल्स ने उसका प्रतिपादन और समरसेट मॉम ने" "लिजा ऑफ लामबेथ" में उसे अग्रसर किया। डी० एच० लारेंस ने "लेडी चैटरलीज लवर" में उसे चरमसीमा पर पहुँचा दिया।

लारेंस के उपन्यासों की वर्ण्यवस्तु यौन भावना है। 'दि रेन वो', 'वीमन इन लव' 'एरोन्स रोड़' में यौन भावना सम्बन्धी दृष्टिकोण एक निश्चित जीवन-दर्शन के रूप में आया है। 'वीमन इन लव' की भूमिका में उसने कहा है 'मैं सुन्दर और सशक्त प्रतीत होने वाले विषय पर ही लिख सकता हूँ—वह विषय है, स्त्री और पुरुष के बीच यौन सम्बन्ध। इन सम्बन्धों की पुनर्स्थापना तथा पुनर्समायोजन ही आधुनिक समस्या है।'[२]

लेकिन यौन भावना का जैसा घोर यथार्थवादी नग्न, और उच्छृंखल चित्रण 'लेडी चेटरलीज लवर' में हुआ है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। इसकी निरावरण, अमर्यादित यौन परिकल्पनाओं ने जितना अपरिपक्व यौन भावनाओं को संस्पर्श कर जागृत किया उतना और किसी उपन्यास ने नहीं। इसी आधार पर इसे जब्त कर लिया गया।

---

१. फ्रायड का इस बारे में कथन है कि—
"You know it is one of the tasks of analysis to lift the veil of amnesia which shrouds the earliest years of childhood and to bring the expression of infantile sexuality hidden behind it into conscious mind—Now from their first sexual expressionsof anxiety, prohibition, disappointment and punishment, one can understand why they have been repressed, but, if so, it is difficult to see why they should have such easy access to the dream life, why they should provide the pattern for so many dream fantasies..."

२ दूसरे स्थान पर उसका कथन है—
"A character will find himself after physical love, 'shattered' as well as 'satisfied,' Love must be a fusion of spirit sunk in the potent darkness."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य कविता भी फ्रायड के यौनवाद से काफी अनुप्राणित रही—

Sweet, wicked Kisses in your stark
Hate of the white washed day...
Till the winged blood horses of sex
Dead beat and meet their match.
(Barkes, Epithulamium for two friends)

यह तो हुआ पाश्चात्य साहित्य पर प्रभाव, परन्तु हिन्दी की नई कविता और कथासाहित्य पर इसका प्रभाव भी अयाचित और अछूता नहीं है। डी० एच० लारेंस के उपन्यासों की प्रतिच्छाया 'अज्ञेय' के 'नदी के द्वीप' तथा 'शेखर एक जीवनी' पर देखी जा सकती है। इन उपन्यासों में भी यौन भावना उतनी ही वेगमय बनकर व्यक्त हुई है।

हिन्दी की नई कविता पर फ्रायड के यौनवाद और लारेंस की यौन परिकल्पनाओं का अधिक प्रभाव पड़ा है। 'अज्ञेय' ने 'तार सप्तक' की भूमिका में इसे स्पष्ट किया है—

"आधुनिक युग का साधारण मनुष्य यौन वर्जनाओं का पुंज है। उसके जीवन का एक पक्ष है, उसकी सामाजिक रूढ़ि की लम्बी परम्परा, जो परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ विकसित नहीं हुई, और दूसरा पक्ष है स्थिति परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति, जिसके साथ रूढ़ि का विकास असम्भव है। इस विपर्यास का परिणाम है कि आज के मानव का मन यौन-परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएँ दमित हैं, कुंठित हैं। उसकी सौन्दर्यचेतना भी इससे आक्रान्त है। उसके उपमान सभी प्रतीकार्थ रखते हैं।—और इस आन्तरिक संघर्ष के ऊपर जैसे काठी कसकर एक बाह्य संघर्ष बैठा है, जो व्यक्ति या व्यक्ति का नहीं, व्यक्ति समूह और व्यक्ति समूह का, वर्ग और श्रेणियों का संघर्ष है। व्यक्तिगत चेतना के ऊपर वर्गगत चेतना भी लदी हुई है।"

साधारण मनुष्य को यौन-वर्जनाओं का पुंज कहना आधुनिक मनुष्य की चेतना परिधि को सीमित करना है, एक तरह से सजग तथा प्रतिभाशील कवि की प्रतिभा को सीमित दायरों में बाँधना है। मनोविश्लेषणशास्त्र ने मनुष्य के मन और व्यक्तित्व से सम्बन्धित जो सामग्री उपलब्ध की है, यदि काव्य के रूपशिल्प में उसको अभिहित किया जाये तो कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है। लेकिन जब कवि मनोविश्लेषणशास्त्र के सिद्धान्तों को अपने काव्य का आदर्श बनाकर काव्य प्रक्रिया के साथ उसका तादात्म्य कर लेता है तो उसकी काव्य-रचना संदिग्ध ही होगी। उपलब्धि के रूप में वह समाज को कुछ नहीं दे सकेगा।

अज्ञेय केवल वक्तव्य देने तक सीमित नहीं रहे अपितु उन्होंने तथा उनके अनुयायियों ने अनेक कविताओं में यौन वर्जनाओं एवं विगलित कुंठाओं का चित्रण किया है। 'इत्यलम्' की अनेक कविताओं से उक्त कथन स्पष्ट हो जाता है—

ठहर-ठहर आततायी! जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा।
और यहँ दृढ़ पैर मेरा,
गुरु, स्थिर स्थाणु सा गड़ा हुआ
तेरी प्राणपीठिका पर लिंगसा खड़ा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञेय का 'क्षेत्रविशेष' 'स्त्री-पुरुष का चिरंतन प्रेम-व्यापार रहा है।' अतः यौन भावनाओं का समावेश होना आवश्यक हो गया है। 'अज्ञेय' की यौन-सम्बन्धी भावना लारेंस से बहुत कुछ मेल खाती है। शायद 'अज्ञेय' का अवचेतन मन फ्रायड के प्रति बहुत उदार रहता होगा। लेकिन अज्ञेय ने यौन भावना द्वारा सामाजिक सस्पर्श ही नहीं किया अपितु प्रकृति के सहज चित्रों में यौन भावना का सन्निवेश करके उन्हें यौन प्रतीक का रूप दे दिया है। इन यौन प्रतीकों में प्रकृतवाद का भी अपना सहयोग रहा है—

घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले
भूमि के कंपित उरोजों पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष
वज्र-सा यदि तड़ित-सा झुलसा हुआ सा
आह मेरा श्वास है उत्तप्त—
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार
काम है अभिशाप
तुम हो नारि।

यहाँ कवि की यौन भावना प्रकृति के साथ उद्दीप्त हो जाती है। जिससे वह नारी का आह्वान करता है। अन्तश्चेतन के मुक्त प्रवाह में इन प्रतीकों का महत्व अधिक हो गया है। प्राचीन यौन प्रतीक परम्परा और आधुनिक यौन प्रतीक परम्परा में केवल अन्तर इतना है कि आज प्रतीकों की प्रक्रिया का समग्र ज्ञान होने से उनका प्रयोग बौद्धिक आधार पर किया जा रहा है। प्राचीन कवियों ने काव्य के उद्बोधन में संकेतित अर्थों के साथ-साथ, अभिधार्थ का भी प्रयोग किया है, लेकिन नये कवि अभिधार्थ के स्थान पर व्यंग्यार्थ अथवा संकेतित अर्थ का आश्रय लेते हैं।

अज्ञेय से प्रभावित होकर अन्य नये कवि भी दमित और कुंठित भावनाओं की अभिव्यक्ति करते रहे। विगलित कुण्ठाओं को व्यक्त करने के कारण ये प्रतीक लोक-हित के लिये समीचीन नहीं हैं। कुंवरनारायण के चक्रव्यूह में 'अतृप्त ज्वार' में अलिंगन, चुम्बन का सहज प्रयोग हुआ है। उनके जीवनदर्शन में समस्त सुखों का केन्द्र यौन प्रतीकों में निहित है। आमाशय, गर्भाशय, यौनाशय ही सुख और सौन्दर्य के प्रतीक हैं।

यही यौन प्रतीकों की परम्परा दूसरा मोड़ लेकर भोगवाद में परिणत हो गई। भोगवाद ही सुखवाद है। इसमें अतृप्त भावनाओं तथा यौन विकृतियों की तुष्टि होती है तथा मांसल, शारीरिक, ऐन्द्रिक सुख को प्राप्त किया जाता है। वस्तुतः इस बहाने कवि अपनी अतृप्त यौन-वासनाओं को मुखरित करने में सफल हो जाता है। शान्ता सिन्हा की एक कविता है जिसमें उन्होंने कहा है "स्तनों की परिधि फैल रही है, हसरतें अभी जवान हैं। दोस्तों और साथियों मेरे झण्डे के नीचे आओ। रक्त की लय पर उत्सव करें, नाचें, गाएँ।"

ऐसे स्थलों पर कवि-मन अपनी दमित वासनाओं को प्रकट कर चेतन और अचेतन के संघर्ष को समाप्त कर देता है। कामवृत्ति और अहं के मध्य उद्भूत द्वन्द्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी समाप्त हो जाता है। साथ ही कथ्य के माध्यम से सामाजिक नैतिकता के झीने आवरण को विदीर्ण कर कामप्रवृत्ति का दमन नहीं करना पड़ता।

अन्त में एक नये कवि, जो अभी कवियों की पंक्ति में खड़ा हुआ है, की कविता को उद्धृत किया जा रहा है। इस नये कवि का 'एक आत्मकथन' मन के अन्तश्चेतन में छिपी वासना की कहानी है जो अतृप्त होने के कारण बार-बार निकलना चाहती है—

वह मुझे एक बहुत बड़े मेले में ले गई
जहाँ सब खुश थे, सब को बड़ा मज़ा आ रहा था
वहाँ मुझे खाली हाथ देख
उसने अपनी दृष्टि में मुझे बाँध हल्के से चूम लिया
वह मुझे सजे-सजाये कमरे में ले गई
जहाँ कुर्सियाँ थीं, मेज़ें थीं, और उसकी प्रिय
कुत्तों की नस्लें और नीली-पीली बिल्लियाँ भी
उनके बीच परेशान देख
उसने मुझे वहाँ रुकने के लिये अपनी दो टाँगें—
उधार दे दीं।
इसी को सच समझे
तब से मैं कहीं गया नहीं
यहीं पड़ा हूँ। [विपिन बिहारी अग्रवाल]

इस प्रकार यौन परिकल्पनाओं के माध्यम से नये कवियों ने अपनी विर्वजित यौन कुण्ठाओं, दमितवासनाओं को काव्य में व्यवहृत किया है, जो हेय होने के साथ-साथ, समाज की नैतिकता को आघात पहुँचाने वाली हैं। यौन भावना एक सीमा तक ग्राह्य है, क्योंकि उसका अवरोध भी विद्रूपता में परिणत हो सकता है। वह नैसर्गिक प्रक्रिया है। चिरन्तन प्रवाह है। लेकिन उसकी अति द्वारा मानवमूल्यों को आघात पहुँचाना भी अनुचित है। घोर अश्लीलता किसी भी रूप में समाज को उपादेय नहीं हो सकती है। अतः नये कवियों को यौन प्रतीकों, तथा परिकल्पनाओं को व्यवहृत करने में सचेत होना आवश्यक है।

यह दोष केवल नये कवियों का नहीं है। किसी भी 'नयी कहानी' तथा उपन्यास को उठा लीजिये 'सेक्स' उसमें बुरी तरह छाया हुआ मिलेगा। 'सेक्स' के आधार पर ही मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व, और चारित्रिक विशेषताओं का प्रस्फुटन किया जाता है। यही युगबोध और युग सत्य है। युग की माँग भी यही है। परन्तु अवनति के गर्त की ओर जाते हुए समाज को क्या सत् साहित्य द्वारा रोका नहीं जा सकता है? अवश्य ही रोका जा सकता है। साहित्य जहाँ एक ओर समाज का दर्पण होता है, दूसरी ओर समाज की भावनाएँ उससे अनुप्राणित होती हैं। साहित्य का मूल उद्देश्य आदर्शमय समाज का निर्माण करना है। भटकते हुए समाज को सच्चा मार्ग दिखाना है। ऐसी अवस्था में नये साहित्यकारों का दायित्व और भी बढ़ जाता है। श्रीमती सिमोना बीवोयर के उपन्यास 'द॰मेन्डारिन्स' में वर्णित कुत्सित वातावरण से मुक्त होना है। यह 'सेक्स' स्थिति यूरोप ही नहीं भारत में भी विद्यमान है। अतः इस भाव-बोध [किंचित आधुनिकता] के माया जाल को झटकने में ही कविकर्म सफल हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० छोटेलाल दीक्षि

आस्था और नयी कविता

आत्माभिव्यक्ति की व्याकुलता रचनाकार को सृजन की प्रेरणा देती है। रचनाकार की आत्माभिव्यक्ति समष्टि-निरपेक्ष नहीं होती। उसे अपनी कृति में दोहरे दायित्व को निभाना पड़ता है : अपनी अनुभूति के प्रति ईमानदार भी होना पड़ता है और परिवेश के प्रति सापेक्ष भी। कवि की परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता कई रूपों में देखी जा सकती है : व्यक्ति के प्रति, समाज के प्रति, धर्म, नैतिकता और परम्पराओं के प्रति, राजनीति के प्रति। रचनाकार की यह प्रतिबद्धता उसके लिए आदर्श नहीं है वरन् सृजन-प्रक्रिया की अनिवार्य शर्त है। परिवेश के इन सभी रूपों के प्रति रचनाकार की प्रतिबद्धता कहाँ तक है और कहाँ तक वह इनसे मुक्त है, यह जानना महत्वपूर्ण है।

व्यक्ति के प्रति प्रतिबद्धता का तात्पर्य युग के परिप्रेक्ष्य में उसके सम्पूर्ण सत्य स्वरूप को व्यक्त करना है। इसे नकारा नहीं जा सकता कि पिछले दो-तीन दशकों में भारतीय जीवन-चेतना में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। मानव-मूल्य परिवर्तित हुए हैं। उन विभिन्न प्राचीन मान्यताओं के समक्ष प्रश्नचिह्न लग गए हैं, जिन्हें हम बिना संकोच स्वीकार करते चले आ रहे थे। इसका कारण जहाँ एक ओर वैज्ञानिक प्रगति, यांत्रिकता का विकास एवं विश्व की विभिन्न विचारधाराओं का एक-दूसरे के अधिक निकट आना है वहीं व्यक्ति की महत्ता का स्वीकार भी है। पहले मूल्य के निर्णायक राज्य, परिवार और धर्म हुआ करते थे अब व्यक्ति स्वयं है। व्यक्ति की महत्ता स्वीकार कराने में जहाँ सार्त्र जैसे अस्तित्ववादी दार्शनिकों और फ्रायड जैसे मनो-वैज्ञानिकों की चिन्तन-धारा का सहयोग रहा है वहीं उसे धर्म एवं पूँजीवादी बुर्जुआ-वर्ग की सत्ताओं से मुक्त कराने में मार्क्स जैसे समाजवादी चिन्तकों का भी। विज्ञान एवं यांत्रिक सभ्यता ने जीवन की परिस्थितियों को बदला है। अतः जीवन-मूल्य टूटे हैं। आज के व्यक्ति में कुण्ठा, निराशा, घुटन, विक्षोभ, उदासीनता, घृणा, पराजय और अतृप्ति अधिक है और नया कवि ईमानदारी के साथ इन सबको अपनी रचना में व्यक्त करने की हामी भरता है। नया कवि यह तर्क भी देता है कि यदि वह अपनी रचना में सम्पूर्ण सच्चाई के साथ आज के टूटे हुए व्यक्ति को प्रस्तुत करता है तो उसे आस्थावान कवि क्यों न कहा जाय ? देखना यह है कि जिस कवि को अपने चारों और 'रतिक्रान्त युवतियाँ और नपुंसकों का हुजूम' ही दिखाई पड़े, दूसरे (काफ्का) के अनमोल बोलों को अक्षरशः स्वीकार करते हुए जो हम सबको भुनगे और मच्छर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक महत्त्व न दे, जिसके लिए सारी मानवता 'कमजोर नामर्द औलादें' बन जाय और जिसको अपने वृत्त के चारों ओर सेक्स ही दिखाई दे, वह क्या आज के व्यक्ति का सच्चा चित्र प्रस्तुत कर सका है ? क्या वह व्यक्ति के प्रति प्रतिबद्ध है ? क्या उसे आस्थावान कवि कहा जाय ?

नगर में शोर है
विषैला धुआँ आँखों से निकल रहा है
सभी मर्द घिनौने कछुओं से पहने हुए हैं खोल
केंकड़े सी सिमटी जा रही हैं रतिक्रान्त युवतियाँ
बुझे बल्बों की कतार सी टिड्डियों की टोली
नपुंसकों का हुजूम

× × ×

हम सब है,
तलैया के बँधे जल में रहनेवाले
भुनगे और मच्छर
हमारी पीढ़ी परजीवियों की आलसियों की पीढ़ी है।

× × ×

हम सब नपुंसक हैं
बीसवीं सदी की
कमजोर नामर्द औलादें—

× × ×

गोरे जिस्म
कसे लबादे
बिजली भरी आँखें
सड़क पर केवल सेक्स है

प्रारम्भ—जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी।

यह ठीक है कि कोरे आदर्शों को व्यंजित करनेवाले, वास्तविकता को नकार कर स्वर्गिक-जीवन में भव्य काल्पनिक चित्र प्रस्तुत करनेवाले कवियों को आस्थावान कवि की संज्ञा देना भी सत्य की उपेक्षा करना है। नया कवि यदि आज के व्यक्ति के सच्चे यथार्थ को अपनी रचना में व्यक्त करता है तो यह सम्भव नहीं है कि उसमें प्रभावित करने की क्षमता न हो। कवि की रचना म उसका आत्म-तत्व व्यंजित होता है, जिसे उसके वैयक्तिक-बोध या जीवन-दर्शन की संज्ञा दी जा सकती है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या कवि अपने जीवन-दर्शन को ईमानदारी से अभिव्यक्त कर पा रहा है ? और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि कवि ने जो ईमानदारी से जिया और भोगा है क्या उससे पाठक को इम्प्रेस कर पा रहा है ? यहाँ पर यदि कवि को सफलता मिली है तो कवि का सृजन सार्थक है। वह ईमानदार और आस्थावान है। अज्ञेय, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरिजाकुमार माथुर, बालकृष्णराव, कुंवरनारायण सिंह की ऐसी अनेक रचनाएँ हैं जिनमें आज के मानव की मनःस्थिति, उसकी जीवन-चेतना का सच्चा चित्र देखा जा सकता है और जो पाठक को अभिभूत करने की क्षमता रखती हैं।

केदारनाथ सिंह की कविता 'फूल को हक दो' में प्रतीकों के माध्यम से व्यक्ति की स्वतंत्रता की माँग की गई है, जिसमें वह बाह्यारोपित दायित्वों को नकार कर अपने सार्थक दायित्वों की खोज करना चाहता है।

लहर को हक दो—वह कभी संग पुरवा के
कभी संग पछुआ के इस तट पर भी आए—
उस तट पर भी जाए
और किसी रेती पर सिर रखकर सो जाए
नयी लहर के लिए—

कुंवरनारायण सिंह की कविता 'ये दायरे' में छोटे शहर की अफवाह एवं बंधे जल के प्रतीकों से व्यक्त आज के मनुष्य की विवशताओं एवं बन्धनों का सशक्त चित्र देख सकते हैं—

दायरा
फिर दायरे पर दायरा
ये खत्म ही होने न आते दायरे
तालाब भर
अफवाह जैसे एक छोटे से शहर में
अचरजों
आँखों
बराबर फैलती ही चली ही चली जाएँ
एक कंकड़
बँधे जल में
बड़ी घटना —धर्मयुग

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की 'आज पहली बार' कविता में थकी पराजित मानवता को कहीं कुछ मिल जाता है। अज्ञेय की 'यह दीप अकेला' अथवा 'दर्द सब को माँजता है' जैसी कविताओं में व्यक्ति को मानव पीड़ा के प्रति दायित्व-चेतना से परिपूर्ण दिखाया गया है। बालकृष्णराव की 'नदी को रास्ता किसने दिखाया' रचना में व्यक्ति और उसके परिवेश की सच्ची अभिव्यक्ति की गई है, जिसमें व्यक्ति केवल अपनी परिस्थितियों से पराजित कुण्ठित नहीं है, वरन् अपनी सामर्थ्य एवं शक्ति से परिस्थितियों के समक्ष प्रश्न चिह्न लगा देता है। यदि भूमितल नीचा होकर नदी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है तो नदी की धारा भी अपने सबल थपेड़ों से भूमि तल को राह देने के लिए विवश कर देती है। अतः व्यक्ति और परिस्थिति दोनों को एक-दूसरे के वश में मान लेना भ्रान्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी को रास्ता किसने दिखाया ?
सिखाया था उसे किसने कि अपनी भावना के वेग का
उन्मुक्त बहने दो ?
कि वह अपने लिए
खुद खोज लेगी
सिन्धु की गम्भीरता
स्वच्छन्द बह कर
....

मार्ग मैंने आप ही अपना बनाया था
मगर है भूमि का दावा
कि उसने ही बनाया था नदी का मार्ग
....

ले गई
भोली नदी को भूमि सागर तक
किधर है सत्य
मन के वेग ने
परिवेश को अपनी सबलता से झुलाकर
रास्ता अपना निकाला था
कि मन के वेग को बहना पड़ा बेबस
जिधर परिवेश ने स्वयमेव
झुककर राह दे दी थी—

नई कविता (५-६) बालकृष्णराव ।

नयी कविता में जीवन के लघु-लक्ष्यों को अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास हुआ है । नया कवि विशिष्ट क्षणों की अनुभूतियों को गहराई के साथ व्यंजित करने पर विशेष बल देता है । कभी-कभी हम ऐसे क्षण को भोगते हैं जो सामान्य क्षणों की तरह नहीं होता । ऐसे क्षण में हमारी मनःस्थिति ऐसी होती है जैसी भविष्य में फिर कभी नहीं होती है । अज्ञेय ने सुन्दर प्रकृति के बीच बिताए अभूतपूर्व क्षण की महत्ता स्वीकारी है । उस क्षण में प्रकृति का सौन्दर्य प्रकृति का न होकर उस क्षण की मनः-स्थिति का है ।

झील का निर्जन किनारा
और वह सहसा छाये सन्नाटे का
एक क्षण हमारा
वैसा सूर्यास्त फिर कभी नहीं दिखा

क्षण की अनुभूति साहित्य को सार्वभौमिक नहीं बना सकती । बहुत से नए कवि एकाकी क्षणिक अनुभूति को विकृत अभिव्यक्ति देखकर काव्य-रचना के नाम पर जो हेय-सृष्टि कर रहे हैं वह स्वस्थ साहित्य के लिए हानिकारक है । आस्था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास की भावनाएँ जीवन में शाश्वत हैं। किन्तु ऐसे कवियों के लिए शाश्वत नाम की कोई वस्तु ही नहीं है, जिनको कुण्ठा के क्षणों में "विश्वास लावारिस सा दर-दर भटकता" दिखाई देता है अथवा जिनकी "आस्था की कमीज़ का हर छोर फट गया" है।

विश्वास
लावारिस-सा
दर-दर भटकता है
× × ×
हमारी आस्था की कमीज़ का
हर छोर फटा है

प्रारम्भ—ममता अग्रवाल।

साहित्य के मूल्यों की स्थापना क्षण की अनुभूति के आधार पर न की जाय तो उचित होगा। साहित्यिक-मूल्यों की स्थापना जीवन की समग्रता, सम्पूर्ण सामयिकता के परिप्रेक्ष्य में ही करना श्रेयस्कर है।

रचनाकार की प्रतिबद्धता समाज के प्रति भी है। वह समाजशास्त्री नहीं होता फिर भी समाज को पूर्णतः नकार नहीं सकता। रचनाकार का वैयक्तिक-स्वातन्त्र्य सामाजिक दायित्व से अन्योन्याश्रित होता है। वह समाज के प्रति न नितान्त निरपेक्ष है न विद्रोही। वह व्यक्तिगत सत्य की अभिव्यक्ति करता है जो बाह्य-सत्य से रहित नहीं होता। इसी अर्थ में लेखक स्वतन्त्र होते हुए प्रतिबद्ध है। लेखन की स्वतन्त्रता का अर्थ भी यही है कि वह अपने परिवेश की सच्ची उभियक्ति करते हुए उच्चतर मानव-मूल्यों की सृष्टि कर सके। नयी कविता में समाज की उपेक्षा की गई है, वैयक्तिक सीमाओं के बाहर के सत्य को नकारा गया है। उसमें व्यक्तिगत कुण्ठा, विक्षुब्ध अहम्, अन्तर्मन की दुरूहता और अर्धविक्षिप्त चेतनाओं ने विशेष स्थान पाया है। ऐसे भी नये कवि हैं, जिन्होंने समाज की उपेक्षा नहीं की है, सामाजिक मूल्यों और नैतिक मान्यताओं के विघटन को ही आधुनिकता नहीं माना है। जब मैं सामाजिक-मूल्यों और नैतिक मान्यताओं के प्रश्न को उठाता हूँ तो मेरा तात्पर्य यह नहीं होता कि ऐसी परम्पराओं और मान्यताओं को प्रश्रय दिया जाय जो आज के वदले हुए जीवन परिवेश में निरर्थक हो गई है वरन् मैं ऐसे सामाजिक-मूल्यों और नैतिक मान्यताओं की ओर संकेत करना चाहता हूँ जो प्रत्येक युग और प्रत्येक परिस्थिति में अनिवार्य शर्त के रूप में व्यक्ति और समाज के साथ जुड़ी हुई हैं, कभी परिवर्तित नहीं होतीं। जैसे अच्छे और बुरे, पाप और पुण्य के मूल्य कभी परिवर्तित नहीं होते, हाँ उन मूल्यों के परिवेश किन्हीं विशेष परिवर्तनों में बदलते रहते हैं।

नया कवि यदि रूढ़ि परम्पराओं, मान्यताओं को निरर्थक समझकर, उन्हें जनचेतना से दूर की वस्तु मानकर उनका विरोध करता है और नये मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है तो वह आस्थाहीन कवि नहीं है। साहित्यकार का दायित्व मानव की स्वाधीनता वनाते चलना, उसकी असीम सम्भावनाओं को परात्पर उपलब्ध कराते चलना है। बालकृष्ण राव के शब्दों में यदि समाज अपनी मान्यताओं को ही सुरक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना चाहता है तो चाहे, यदि सत्ता उनकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो, तो भी साहित्यकार झूठे मूल्यों और निष्प्राण मान्यताओं को छोड़ने और नवाविष्कृत सत्य को उद्घोषित करने में अग्रणी होगा। अज्ञेय की 'मानव अकेला' कविता में जर्जर लोकाचारों के बाहर मनुष्य के स्वतन्त्र स्वरूप को स्वीकारा गया है—

भीड़ों में
जब-जब जिस-जिस से से आँखें मिलती हैं
वह सहसा दिख जाता है
मानव
अंगारे-सा भगवान-सा
अकेला
और हमारे सारे लोकाचार
राख की युगों-युगों की परतें हैं।

इत्यलम्—अज्ञेय।

रूढ़ि-परम्परा और मान्यताओं को अक्षरशः स्वीकार कर हम अपने युग में जी नहीं सकते। संस्कारों की पट्टी हटाकर ही हम युग के प्रकाश को देख सकते हैं।

जिन्दगी हर मोड़ पर करती रही हमको इशारे
जिन्हें हमने नहीं देखा
क्योंकि हम बाँधे हुए थे पट्टियाँ
संस्कार की
और हमने बांधने के पूर्व देखा था
हमारी पट्टियाँ रंगीन हैं

इत्यलम्—अज्ञेय।

आधुनिकता के फेर में प्राचीन-मूल्यों के विरोध के नाम पर जो केवल संकीर्णता, दिग्भ्रम, मिथ्या-विश्वास, ध्वंस, निराशा एवं मानव-द्रोही चिन्तन-पद्धतियों को प्रश्रय देते हैं और समस्त पुरानी-पीढ़ी की मृत्यु की कामना करते हैं, वे मानव की असीम सम्भावनाओं को नकारते हैं। समाज के सामूहिक अस्तित्व के प्रति अपने दायित्व को भुलाकर अपने और अपने वर्ग के सदस्यों की वैयक्तिकता को प्रश्रय देते हैं, जो कभी श्रेयस्कर नहीं माना जा सकता।

पिछले कुछ दिनों से कतिपय नये कवियों में बीटनिक् प्रवृत्ति विशेष जग रही है जो आर्लोवस्की क्रोसे, पीटर, गिंसबर्ग जैसे बीट कवियों का अनुसरण कर यश पाना चाहते हैं। राजकमल चौधरी का 'कंकावती' नाम से एक ऐसा संग्रह भी प्रकाशित हुआ है जिसे उन्होंने अपने मित्रों तक ही सीमित रखा है। ये युवा-आक्रोशी कवि प्रत्येक प्रकार से विध्वंस चाहते हैं, असामाजिकता के पक्षपाती हैं। ये न किसी प्रकार के दायित्व से जीवन में बंधे हैं और न साहित्य में बँधना चाहते हैं। इनको कभी 'अपने ही कन्धों पर शव डाले ईश्वर भागता' दिखाई देता है और कभी ये स्वयं औरतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सामने से निर्वसन निकल जाने के लिए प्रार्थना करते दिखाई पड़ते हैं। ऐसे वीटनिक कवियों का काव्य किसी भी साहित्य के लिए रोग होगा।

अपने ही कन्धों पर डाले हुए अपना शव
···ईश्वर
चीखता हुआ भागता रहता

प्रारम्भ, राजकमल चौधरी।

औरतें
मुझे क्षमा करें
मैं
उनके सामने से निर्वसन निकल जाना चाहता हूँ।

—लहर—श्रीकान्त वर्मा।

लेखक के समक्ष किसी प्रकार की राजनैतिक प्रतिबद्धता नहीं होनी चाहिए। यदि उसके समक्ष राजनैतिक प्रतिबद्धता होगी तो वह साहित्यकार न होकर किसी विशिष्ट पार्टी के सिद्धान्तों का प्रचारक और पूर्वाग्रही होगा, उसका दृष्टिकोण स्वस्थ न होगा। किन्तु इसके साथ इस तथ्य पर भी विचार करना होगा कि राजनीति केवल दलबन्दी अथवा विशिष्ट प्रकार के सिद्धान्तों का प्रचार मात्र नहीं है। राजनीति राष्ट्र की सुरक्षा, उसके भरण-पोषण और उत्थान की सुविधा भी प्रदान करती है। कहीं-कहीं तो उसका स्वर राष्ट्र हितों के आगे बढ़कर लोक-मंगल की कामना तक प्रसार पा जाता है। ऐसी राजनैतिक दृष्टि को साहित्य से असंपृक्त कैसे रखा जा सकता है। राजनीति कभी-कभी साहित्य को अत्यधिक प्रभावित करती है। गांधी और विनोबा राजनीतिक व्यक्ति भी हैं। क्या उनकी मान्यताएँ लोक-मंगल की उपेक्षा करती हैं? साहित्यकार बिना वैयक्तिक स्वतन्त्रता को व्यक्त किए उनको प्रश्रय दे सकता है।

रचनाकार स्वतन्त्र होते हुए भी कहीं-न-कहीं व्यक्ति, समाज और राजनीति से अंशतः प्रतिबद्ध है। क्योंकि उसे मनुष्य की असीम सम्भावनाओं के उत्स को खोलना है, असीम सम्भावनायुक्त सम्पूर्ण मनुष्य को पुनः प्रतिष्ठित करना है। आज की भीषण परिस्थितियों के बीच भी मनुष्य में आशा, आस्था, विश्वास और प्रेम को बनाए रखना है। साहित्यकार के लिए आस्थावान होना अनिवार्य शर्त है। आस्था-विहीन साहित्यकार अपनी रचनाओं में कभी अपने पूरे प्राणों से जी नहीं सकता। मैं स्पेंडर के शब्दों में साहित्य की प्रगति से अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ उस आम्लान आस्था की खोज को जो जीवन और साहित्य के मूल्यों में संश्लेषण करती है। और अन्त में मैं सुरेन्द्रपाल की कविता को उद्धृत करना चाहूँगा जिसमें दुःख, दर्द, घुटन और छटपटाहट के विरुद्ध असीम मानव-सम्भावनाओं की बात व्यक्त करने को कहा गया है। नया कवि यदि जीवन की ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों को प्रश्रय न देकर आस्थावादी विचार-धारा को लेकर चले तो साहित्य के लिए उपयोगी होगा।

बहुत आसान है कहना
जिधर देखो उधर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्द है, दुःख है, अंधेरा है
किसी को रौंद कर चलते हुए कदमों की आहट है
... ...

मगर
क्या है नहीं प्रतिकार इन सबका
कि जिससे
मिटा दें दर्द को दुःख को अंधेरे को
घुटन को छटपटाहट को
किसी को रौंदकर चलते हुए कदमों की आहट को।
....

महा मानव भला क्या गोंडते ही रह गए ऊसर।

'नयी-कविता' (५-६) सुरेन्द्र पाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० देवेन्द्रकुमार, शास्त्री

अपभ्रंश कथाकाव्य

मूलतः अपभ्रंश साहित्य पुराण, चरित और महाकाव्य है। पुराणकाव्य में जहाँ महापुरुषों का अतिलौकिक जीवन वर्णित है वहीं चरितकाव्यों में प्रसिद्ध पुरुषों के लौकिक जीवन का सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है। विषय-विस्तार, विभिन्न आख्यानों की जटिलता, कार्यान्विति का अभाव और पंच लक्षणों से समन्वित पौराणिक शैली-विशेष रूप से पौराणिक काव्यों में लक्षित होती है। स्वयम्भू कृत 'पउमचरिउ', 'रिट्ठणेमिचरिउ', पुष्पदन्त विरचित 'महापुराण', धवल रचित 'हरिवंशपुराण' तथा यशकीर्ति कृत 'पाण्डवपुराण' आदि पौराणिक काव्य हैं जिनमें विविध राजवंशों, ऐतिहासिक वंशावली तथा महापुरुष राम, कृष्ण एवं कौरव-पाण्डव आदि का सविस्तर वर्णन रहता है। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के साहित्य में पुराणकाव्य की यह विधा निश्चय ही धार्मिक-आस्था तथा रीति-नीति से गुम्फित होती है। इसीलिए महापुरुषों के जीवन के साथ ही उनके पूर्व भवों, प्रासंगिक विभिन्न घटनाओं, व्रत-माहात्म्य, अवान्तर कथाओं और जीवन से सम्बद्ध विभिन्न कार्य-व्यापारों का अतिशयोक्तिपूर्वक वर्णन किया जाता है। परन्तु चरितकाव्य में किसी एक महापुरुष का चरित पौराणिक या अन्य किसी शैली में वर्णित रहता है। चरितकाव्य में नायक के सम्पूर्ण जीवन की विभिन्न घटनाओं तथा संघर्षों का वर्णन किया जाता है। इसलिए आचार्य आनन्दवर्धन ने इसे सकलकथा कहा है और आचार्य हेमचन्द्र सकलकथा को ही चरितकाव्य कहते हैं।[1] आचार्य हरिभद्रसूरि रचित 'णेमिणाहचरिउ' चरितकाव्य है। परन्तु उसके अन्तर्गत वर्णित सनत्कुमार की कथा कथा है जिसे खण्डकथा कहा जा सकता है।[2] अतएव किसी भी रचना के पीछे 'चरिउ', 'कहा', 'पुराणु' या 'कव्व' शब्द जुड़ा होने से वह उस कोटि की रचना नहीं मानी जा सकती। और इसीलिए पुराण नाम से प्रचलित कुछ काव्य-ग्रन्थों को चरितकाव्य ही माना जाना चाहिए, पौराणिक नहीं। उदाहरण के लिए—कवि पद्मकीर्ति विरचित 'पार्श्वपुराण' अठारह सन्धियों में निबद्ध होने पर भी केवल एक महापुरुष तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित वर्णित होने के कारण चरितकाव्य ही कहा जाएगा। इसी प्रकार जयमित्रहल्ल के 'वड्ढमाण कव्व' और 'मल्लिणाहकव्व' काव्य-संज्ञक होने पर भी चरितकाव्य हैं। और 'पउमसिरिचरिउ' के पीछे चरित शब्द जुड़ा होने पर भी वह चरितकाव्य न होकर कथाकाव्य है। वस्तुतः पुराणकाव्य की भाँति

१. 'सकलकथेति चरितमित्यर्थः।' 'काव्यानुशासन, ८,८ की वृत्ति।

२. ग्रन्थान्तरप्रसिद्धं यस्यामितिवृत्तमुच्यते विबुधैः।
मध्यादुपान्ततो वा सा खण्डकथा यथेन्दुमती॥ वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथाकाव्य और चरितकाव्य में कई बातों में अन्तर है।[1] अर्थ प्रकृतियाँ, कार्यावस्थाएँ, नाटकीय सन्धियाँ, कार्यान्विति तथा कथा-तत्वों की संयोजना में इन दोनों में अन्तर देखा जाता है। यथार्थ में चरित तो लोक में देखा जाता है, काव्य में तो वस्तु ही प्रधान होती है परन्तु चरितकाव्य में मूल चेतना कथा न होकर कार्य-व्यापार होती है, जिसमें नायक का प्रभावशाली चरित्र चित्रित किया जाता है।

डॉ० शम्भूनाथसिंह ने अपभ्रंश काव्यों की दो शैलियाँ मानी हैं—पौराणिक और रोमांचक। इन दोनों शैलियों में लिखे गये काव्यों को चरितकाव्य कहा गया है। संस्कृत के चरितकाव्य चारों शैलियों (शास्त्रीय, पौराणिक, रोमांचक, ऐतिहासिक) में तथा प्राकृत के तीन शैलियों में हैं।[2] परन्तु तथ्य यह है कि अपभ्रंश के चरितकाव्य अधिकतर पौराणिक शैली में लिखे गये हैं और कथाकाव्य रोमांचक शैली में। 'विलासवईकहा' रोमांचक शैली में लिखा हुआ उत्कृष्ट कथाकाव्य है। यद्यपि शैली ही भेदक रेखा नहीं मानी जा सकती है पर कहीं-कहीं शैलीगत यह अन्तर अवश्य मिलता है। अपभ्रंश के अधिकतर काव्य पौराणिक शैली में लिखे गये हैं। इसलिए कथाकाव्यों से चरितकाव्यों की संख्या अधिक है। कथाकाव्य उपन्यास की भाँति रोचक तथा कुतूहलवर्द्धक शैली में लिखे गये हैं। इनमें वर्णित कथावस्तु लोककथा एवं कल्पित हैं जो विस्मय, औत्सुक्य, कुतूहल तथा भावनातिरेक से अनुरंजित लक्षित होती है। कथाकाव्य के नायक लोक जीवन के जाने-पहिचाने साधारण पुरुष हैं जो सुख-दुःख से अनुप्राणित तथा आशा-निराशा, हर्ष-विषाद के हिंडोलों में झूलते हुए दिखाई पड़ते हैं। जहाँ उनके जीवन में अन्धकार है वहीं प्रकाश की उज्ज्वल किरणें मुस्कराती हुई दिखाई पड़ती हैं और प्रकृति अनुराग से अनुरंजित तथा सहानुभूति प्रकट करती हुई जान पड़ती है। अधिकांश चरितकाव्यों काव्यों में आदर्श की प्रधानता है और कथाकाव्यों में यथार्थ की। यद्यपि दोनों में ही नायक या नायिका के असाधारण कार्यों का वर्णन मिलता है परन्तु एक में वह दैवी संयोग और धार्मिक विश्वासों से सम्बद्ध होता है और दूसरे में अतिलौकिक एवं असम्भव घटनाओं से अनुरंजित। यही कारण है कि चरितकाव्यों में आदर्श चरित्रों की प्रधानता रहती है और उनके जीवन की सिद्धि तथा पूर्णता का वर्णन किया जाता है। निश्चय ही चरितकाव्य का नायक लौकिक जीवन की सीमाओं से ऊपर असाधारण गुण, शक्ति, ज्ञान आदि से समन्वित पूर्ण पुरुष के रूप में चित्रित किया जाता है। यथार्थ में चरितकाव्य पुराणों से विकसित हुए हैं इसलिए आख्यान तथा इतिवृत्त के साथ ही पौराणिक पुरुष के रूप में उनका असम्भव तथा अकल्पित रूप भी वर्णित रहता है। कथाकाव्य में भले ही आदर्श पुरुष का जीवन विन्यस्त हुआ हो परन्तु पूर्ण पुरुष के रूप में उसका चित्रण नहीं होता। और फिर, चरितकाव्य की कथावस्तु अधिकतर पुराणों से अधिग्रहीत होती है परन्तु कथाकाव्य की वस्तु लोक-जीवन तथा लोक-कथाओं से समन्वित होती हैं। इसलिए उनमें मानवीय परिस्थितियों के विभिन्न रूपों का आकलन होने के साथ ही स्थानीय रूप-रंग (Local colours),

१. विशेष द्रष्टव्य है—'भविसयत्तकहा और अपभ्रंश-कथाकाव्य' शीर्षक लेखक का शोध-प्रबंध।
२. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० १७४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य-व्यापार (Actions), नाटकीय कल्पनाएँ, रोमांस (Romance) और कथानक रूढ़ियाँ एवं कथाभिप्राय (Motifs) चरित्रगत उद्देश्यों के (Objective characters) के बीच लक्षित होती हैं।

विण्टरनित्स उपन्यास शैली में पद्यबद्ध लिखे हुए कथाकाव्य 'भविसयत्तकहा' को, साहसिक तथा रोमांचक दृश्यों का वर्णन होने के कारण रोमांटिक महाकाव्य मानते हैं।[1] अपभ्रंश के प्रायः सभी कथाकाव्यों में साहस, रोमांस तथा समुद्र-यात्रा, संकट आदि के रोमांचकारी वर्णन मिलते हैं। परन्तु नायक के साहसिक कार्यों के कारण तथा रोमांचक वर्णन होने से यह रोमांटिक काव्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि महाकाव्य में किसी-न-किसी रूप में प्रेम तथा रोमांस का वर्णन रहता ही है। अंग्रेजी काव्य-साहित्य में रोमांचक महाकाव्य का उत्कृष्ट निदर्शन स्पेन्सर द्वारा लिखित 'फेअरी क्वीन' माना जाता है। इसमें नायक और नायिका के प्रेम-व्यापारों के साथ नायिका की प्राप्ति का वर्णन है। काव्य का आरम्भ नाटकीय ढंग से होता है जिसमें जीवन की विविधता और जटिलताओं का सटीक एवं सजीव वर्णन मिलता है। इस काव्य की यही विशेषता है कि इसमें कई रूपों में रोमांस तथा प्रेम का सजीव चित्रण किया गया है—ईश्वर-प्रेम, देश-भक्ति, सत्य-निष्ठा, मानवीय-प्रेम और विशेषकर रोमांटिक प्रेम।[2] यद्यपि 'भविष्यदत्तकथा' में भी ईश्वर-भक्ति, मानवीय-प्रेम तथा देश-प्रेम की अभिव्यंजना मिलती है परन्तु इसमें वह व्यापकता तथा स्वच्छन्दता नहीं है जो विशेषकर रोमांटिक प्रेम तथा राष्ट्रीय चेतना में निहित रहती है। 'भविष्यदत्तकथा' का समूचा कथानक धार्मिक तथा सामाजिक परिवेश में चित्रित किय गया है इसलिए उद्देश्य प्रधान होने के कारण उन्मुक्त प्रेम का वास्तविक चित्रण इस काव्य में नहीं हो सकता है। फिर नायक-नायिका के कार्य-व्यापारों तथा प्रेम का यथार्थ वर्णन इस कथाकाव्य में किसी एक भी स्थान पर नहीं हुआ है। इसलिए साहसिक तथा रोमांचकारी वर्णनों को पढ़कर ही इसे रोमांटिक महाकाव्य मान लेना उचित नहीं जान पड़ता।

वस्तुतः अपभ्रंश के कथाकाव्यों में प्रेम तथा वीर का अद्भुत संयोग मिलता है, इसलिए एक ओर वे जहाँ रोमांटिक काव्य के निकट है वहीं दूसरी ओर वीरकाव्य (Heroic Poetry) से मिलते-जुलते हैं। अतएव प्रत्येक कथाकाव्य का आरम्भ प्रेम से, मध्य युद्ध से और अन्त निर्वेद से होता है। अधिकतर कथाएँ राजकुमारों की हैं जिनमें प्रेम का बीज वन-उपवन से अंकुरित होता है और नायिका के प्रथम दर्शन में ही नायक-नायिका एक-दूसरे के आकर्षण तथा प्रेम-पाश में बँध जाते हैं। नायक मित्रों की सहायता से उसका संयोग प्राप्त करता है परन्तु कई प्रकार की विघ्न-बाधाओं में

१. ए हिस्ट्री ग्राव इण्डियन लिटरेचर, जिल्द २, पृ० ५३२।

2. "It takes various forms, the love of Christ, of God, of Country, of justice, of truth, and most frequently and perhaps—genially romantic the love of humans for each other, and especially romantic love."

—On the Poetry of Spencer and the Form of Romances by John Arthos, 1956, p. 44.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे एक-दूसरे से बिछड़ जाते हैं। नायक कई प्रकार की आपत्ति-विपत्तियों का सामना करता है। अन्त में दोनों का मिलन होता है और विवाह हो जाता है। इस दृष्टि से साधारण सिद्धसेन के द्वारा लिखित 'विलासवईकहा' बहुत ही बढ़िया रचना है। यह 'विलासवतीकथा' अपभ्रंश के कथाकाव्यों में उत्कृष्ट प्रेमकथाकाव्य है। परन्तु 'भविष्य-दत्तकथा' में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती है।

अपभ्रंश के लगभग सभी कथाकाव्यों में सोद्देश्य चरित्र-चित्रण किया गया है। हीरोइक पोइट्री में कथात्मक होने के साथ ही उद्देश्य प्रधान चरित्रों का होना आवश्यक माना जाता है।[1] यद्यपि कुछ कथाएँ ऐसी भी होती हैं जो केवल कहने के लिए ही कही जाती हैं परन्तु अपभ्रंश में एक भी ऐसी कथा या कथाकाव्य नहीं है जिसका कुछ-न-कुछ सम्बन्ध जातीय तथा धार्मिक भावना से उद्देश्य रूप में सम्बद्ध न हो। सभी कथाएँ किसी-न-किसी जीवन-दर्शन या धार्मिक व्रत-माहात्म्य को अभिव्यंजित करती हैं। इन कथाकाव्यों में नायकों के चरित तथा कार्य भी किसी उद्देश्य से वर्णित रहते हैं। क्योंकि ये सभी कथाएँ काल्पनिक एवं लोक प्रचलित लोक-कथाएँ हैं जिनमें धर्म तथा समाज की रीति-नीति का साभिप्राय वर्णन किया जाता है। संसार के अधिकांश साहित्य में पहले से ही यह मान्यता चली आ रही है कि शक्ति का केन्द्र मानव न होकर अदृश्य शक्ति है जिसको वश में करके वह उन असम्भव-से-असम्भव कार्यों को भी पूर्ण कर सकता है जिन्हें वह अभी शारीरिक शक्ति से सम्पन्न करने में असमर्थ है।[2] अपभ्रंश के कथाकाव्यों में ईश्वर या अदृश्य शक्ति के स्थान पर कर्म (पूर्व जन्म के किये हुए कार्यों के फल को) को महत्त्व दिया गया है। यद्यपि उनके द्वारा किये गए असाधारण कार्य किसी अतिमानवीय शक्ति से ही सम्पन्न होते है पर वे निमित्त मात्र होते हैं, मुख्य तो नायक के पूर्व-जन्म में संचित कर्मों का फल है जिसके अनुसार मित्र, यक्ष, विद्याधर आदि उसकी सहायता करते हैं। यह मान्यता अपभ्रंश के सभी कथाकाव्यों में व्याप्त लक्षित होती है। इसलिए 'हीरोइक पोइट्री' की भाँति इसमें मानवीय कार्यों का वर्णन किया जाता है। नायक के असाधारण-से-असाधारण कार्य भी मानवीय कार्यों से परे नहीं होते हैं। काल्पनिक होने पर भी कथाकाव्यों में इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। पुराणकाव्यों में अवश्य अतिलौकिक तथा दिव्य चरित्रों का वर्णन किया जाता है जो ईश्वरीय या अन्य किसी शक्ति से प्रेरित तथा संचालित होते हैं। इसलिए कभी-कभी उन पर ठीक से विश्वास करना भी कठिन हो जाता है।

1. "Heroic poetry is essentially narrative and is nearly always remarkable for its objective character. It creates its own world of the imagination in which men act on easily understood principles, and, though it celebrates great doings because of their greatness, it does so not overtly by praise but indirectly by making them speak for themselves and appeal to us in their own right."

—Heroic Poetry by C. M. Bowra, 1961, p. 4.

2. Ibid, p. 5.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय साहित्य में कथाकाव्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। काव्य के मूल में जीवन की लिपिबद्ध कथाएँ ही हैं जो श्रुति रूप में वर्षों तक प्रचलित रही हैं और देश-देशान्तरों में अपने मूल रूप में स्थानान्तरित होती रही हैं। अपभ्रंश में ऐसी ही कथाएँ महाकाव्यों की कड़ी में पद्यबद्ध कथाकाव्य के रूप में लक्षित होती हैं जिनमें मानवीय संवेदना कतिपय घटनाओं के विग्रह में सजीव एवं चारित्रिक बन्धनों में अनुस्यूत रहती हैं। कथा ही कथाकाव्य में मुख्य होती है जो किसी उद्देश्य से कही जाती है। और वह उद्देश्य नायक के कार्य-व्यापारों से सम्बद्ध रहता है। ये कथाएँ प्रायः वक्ता-श्रोता शैली में कही जाती हैं। इनमें कहीं-कहीं सुनने वाला कथा एवं घटना के सम्बन्ध में जिज्ञासा और उत्सुकता प्रकट करता चलता है और लेखक उसकी उत्सुकता को वृद्धिगत करता हुआ आगे की घटनाओं का सजीव वर्णन करता चलता है। चरितकाव्यों में नायक के जीवन का समूचा इतिवृत्त अलौकिक रूप में वर्णित रहता है। उनमें अभिप्राय-विशेष भी नायक के आदर्श तथा असाधारण गुणों तथा अतिलौकिक चमत्कारों से समन्वित होते हैं। जिन कथाकाव्यों में वस्तु सोद्देश्य नियोजित नहीं हैं वे लोक-कथाएँ हैं जो साहित्यिक रूढ़ियों के साथ कालान्तर में काव्य के साँचे में प्रबन्ध के रूप में ढाल दी गई हैं। और इसीलिए इन कथाओं में कई प्रकार के परिवर्तन तथा जोड़-मोड़ मिलते हैं। कुछ कथाएँ लोक-कथा या जन-श्रुति के रूप में प्रचलित होने पर भी व्रत-माहात्म्य तथा अनुष्ठानों से सम्बद्ध होकर काव्य-बन्ध का अंग ही नहीं प्राण बन गई हैं। हीरोइक पोइट्री में कथा अल्प तथा सूक्ष्म रहती है। परन्तु कथाकाव्य में मुख्य वस्तु कथा-संयोजना तथा घटनाओं का महत्त्वपूर्ण वर्णन रहता है। 'भविष्यदत्तकथा' ऐसी ही कथा है जो पहले श्रुति के रूप में वर्षों तक जन-मानस में प्रचलित रही और फिर परम्परागत प्रबन्धकाव्य की शैली में लिखी गई। और इसलिए हीरोइक पोइट्री से भी कई बातों में अन्तर दिखाई पड़ता है। क्योंकि जब हीरोइक पोइट्री रोमांस में परिणत होने लगती है तब उसमें गेय चेतना कोमल भावनाओं और आकर्षक दृश्यों से मृदु तथा साहसिक कार्यों के मध्य विराम देने वाली आनन्दमयी अनुभूतियों से संवेदनीय हो जाती है।[1] अतएव अपभ्रंश तथा भारतीय साहित्य में कथाकाव्य तथा चरितकाव्य की विधा अपने ढंग की अलग ही प्रबन्ध-रचना है।

भारतीय साहित्य में कदाचित् प्राकृत और अपभ्रंश में इस साहित्यिक विधा का सूत्रपात हुआ जिसमें कथा और काव्य मिलकर लोक-जीवन के परिपार्श्व में यथार्थ रीति से गतिशील तथा मनुष्य जीवन में घटनाओं का रोमांचक एवं वास्तविक प्रभाव दर्शाते हुए लक्षित होते हैं। यद्यपि कहीं-कहीं पौराणिक प्रवृत्ति के अनुगमन से घटनाओं में अस्वाभाविकता-सी जान पड़ती है परन्तु प्रबन्ध-संघटना और रचना-शिल्प में

1. "When heroic poetry passes into romance, it is touched by a lyrical spirit which dwells on tender emotions and charming scenes and softens the stark outlines of adventure with intervals of ease and pleasure."
—Heroic Poetry by C. M. Bowra, 1961, p. 548

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिथिलता नहीं दिखाई पड़ती। अपभ्रंश के इन कथाकाव्यों की विशेष प्रवृत्ति है—प्रेम की मधुर व्यंजना। अधिकतर नायक पवित्र प्रेम से प्रेरित एवं संचालित दिखाई पड़ते हैं। कहीं-कहीं प्रेम की उदात्त व्यंजना धार्मिक वातावरण में हुई है कहीं-कहीं शुद्ध मानवीय। इस रूप में हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्य वस्तु एवं शिल्प-रचना की दृष्टि से ही नहीं शैली और प्रेम की मधुर व्यंजना में भी अपभ्रंश के इन कथाकाव्यों से प्रभावित जान पड़ते हैं।

कथा पहले आख्यान थी, जो शुद्ध इतिवृत्त थी। परन्तु ज्यों-ज्यों काव्य-तत्वों से उसका ताल-मेल बैठता गया त्यों-त्यों वह कहानी और उपन्यास का रूप ग्रहण करती गई। भविष्यदत्तकथा को पद्य में लिखा हुआ एक प्रकार का उपन्यास ही समझना चाहिए। यद्यपि रचना-तत्वों में असमानता है पर हम उसे कथा ही कहते आए हैं। और इसलिए भी कि वस्तु रूप में वह लोक-कथा ही है। संस्कृत में लिखी गई कथाएँ गद्य में हैं। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' तो उपन्यास ही जान पड़ती है। परन्तु वह कथा ही है। प्राकृत और अपभ्रंश में छोटी तथा बड़ी लगभग सभी प्रकार की कथाएँ छन्दोबद्ध हैं। 'कुवलयमाला कथा' अवश्य गद्य में लिखी मिलती है। इसी प्रकार अन्य रचनाएँ भी गिनाई जा सकती हैं, परन्तु प्राकृत और अपभ्रंश में पद्यबद्ध कथाएँ लिखने की सामान्य प्रवृत्ति रही है। गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' से लेकर आज तक न जाने कितनी तरह की कथाएँ और कहानियाँ लिखी गईं जो नीति-रीति, मानवीय स्थितियों की विविधता और यथार्थता से समन्वित लिखी जाती रही हैं। भाषा की भाँति साहित्यिक विधाओं का भी यह परिवर्तन आज इतिहास की वस्तु बनकर रह गया है। उन परिवर्तनों का पूर्ण विवरण देना आज असम्भव-सा जान पड़ता है।

अपभ्रंश-साहित्य का ही नहीं, यदि हम दसवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक के भारतीय साहित्य का अनुशीलन करें तो ज्ञात होता है कि मध्य-युगीन भारतीय काव्यों की मुख्य प्रवृत्ति उदात्त प्रेम की मधुर व्यंजना रही है। यद्यपि इस युग के काव्य में वर्णित प्रेम अतिलौकिक भाव-भूमिका में भी चित्रित हुआ है परन्तु काव्य का सामान्य धरातल लौकिक प्रेम में ही अभिव्यक्त हुआ है। इसलिए अतिलौकिक प्रेम और आदर्शों को समझने के लिए हमें किन्हीं प्रतीकों और रूपकों के रहस्यों को खोलना पड़ता है। परन्तु अपभ्रंश के कथाकाव्यों में प्रायः यह व्यंजना नहीं मिलती हैं। यद्यपि प्रेम-बीज से लेकर उसके विकास तक की सम्पूर्ण परिस्थितियों एवं अवस्थाओं का उनमें पूर्ण विकास लक्षित होता है परन्तु व्यक्तिवादी वैचित्र्य एवं चमत्कार नहीं मिलता। वस्तुतः ये कथाकाव्य मध्ययुगीन भारतीय साहित्य की देन हैं जो लोक-जीवन की परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतएव हम इस युग को पुनर्जागरण काल (Renaissance) कह सकते हैं, जिसमें जनवादी प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही थीं और पौराणिकता से हटकर साहित्य लोक-चेतनोन्मुखी हो रहा था। अतएव लोक-जीवन के विविध तत्त्व कथाकाव्य में सहज ही लक्षित होते हैं। इस युग में कथाकाव्य का नायक आदर्श पुरुष ही नहीं, राजा, राजकुमार, बनिया, राजपूत या अन्य कोई साधारण से साधारण पुरुष हो सकता था जो अपने पुरुषार्थ से असाधारण व्यक्तित्व तथा गुणों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट कर मानव वन सकता था। सभी कथाकाव्यों में यह व्याप्ति पूर्णतया लक्षित होती है। इससे देश के साहित्यिक विकास की एक नवीन उत्थानिका का पता चलता है जो मध्ययुगीन साहित्य की विशिष्टता है।

भविष्यदत्तकथा—अपभ्रंश के कथाकाव्यों में भविष्यदत्त की कथा अत्यन्त करुण, सजीव और यथार्थ है। परिवार की छोटी-सी घटना को लेकर वस्तु-बीज किस प्रकार जाति, समाज और देश के मूल तक पहुँच जाता है—इसका सटीक वर्णन इस कथाकाव्य में मिलता है। समस्याएँ प्रत्येक युग में सचेत सामाजिक के सामने रहीं और उन पर समय-समय पर साहित्य-लेखक विचार भी करते रहे हैं। यही नहीं, उन समस्याओं की जटिलता तथा परिणामों का लेखा-जोखा भी किसी-न-किसी रूप में चित्रबद्ध किया जाता रहा है। धनपाल के इस कथा काव्य को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में किस प्रकार सामन्त-धनिकवर्ग काम-वासना की तृप्ति के लिए बहु-विवाह रचते थे और संतति पर उसका क्या दुष्परिणाम पड़ता था। इस प्रकार सत्ता तथा बाहुबल पर किस प्रकार राजा लोग सुन्दरी का अपहरण कर लेते थे और इस प्रकार की छोटी-छोटी बातों के लिए संग्राम में रण-कौशल दिखाते थे। भाई-भाई किस प्रकार सम्मान तथा आत्म-तृप्ति के लिए सगे भाई के साथ छल-कपट करते थे और किस प्रकार मातृतुल्य भावज को अपनी बना लेने का षड्यन्त्र रचा करते थे। और किस प्रकार भाई तथा भावज अपनी परीक्षा देते थे और अन्त में सफलता प्राप्त करते थे। उस युग की ऐसी ही कुछ ज्वलन्त घटनाएँ हैं जिन पर कवि ने भलीभाँति प्रकाश डाला है और सांकेतिक रूप से समस्याओं का उद्घाटन किया है।

वस्तुतः 'भविसयत्तकहा' में भावों की उदात्तता, कल्पना की अतिशयता और वस्तु का यथार्थ चित्रण जितना सजीव और आवेगमय है उतना अपभ्रंश के अन्य कथा-काव्यों में नहीं है। परिमाण एवं आकार की दृष्टि से भी यह अपभ्रंश कथा-चरित काव्यों में सबसे बड़ी रचना है। यह कथाकाव्य दो खण्डों में और बाईस सन्धियों में विभक्त है। प्रवन्ध तथा वास्तु-तत्व की योजना सोद्देश्य नियोजित है। इसलिए धार्मिकता का पुट स्पष्ट है। किन्तु भावान्तर तथा अतिलौकिक बातों को ऊपर से जोड़ी हुई चिप्पियाँ समझकर छोड़ दिया जाये तो शुद्ध रूप में लोककथा झलकने लगती है।

मूल रूप में कथा बहुत छोटी रहती है। किन्तु वस्तु-वर्णन तथा विभिन्न अभि-प्राय-मूलक घटनाओं के योग से समूचे जीवन का चित्र चित्रित करने वाले प्रबन्ध काव्य का आकार ग्रहण कर लेती है। अपभ्रंश के कथाकाव्यों में हमें अधिकतर ऐसी ही कथाएँ मिलती हैं जो शृंखलाबद्ध रूप से वर्णित हैं। इसे ऐकिक कहानी कहा जा सकता है जो कई सरल कथाओं से मिलकर एक बृहत्कथा बनती है। इस प्रकार अप-भ्रंश-कथाकाव्य के कथानक सरल तथा कार्यान्विति से युक्त मिलते हैं।

कथा-वस्तु—भविष्यदत्त की कथा में एक साथ तीन अन्य उपकथाएँ जुड़ी हुई हैं। मुनि के आशीर्वाद से भविष्यदत्त का उत्पन्न होना और पाँच सौ व्यापारी तथा भाई बन्धुदत्त के साथ समुद्र की यात्रा करना, मार्ग में मैनागद्वीप में बन्धुदत्त के द्वारा भविष्यदत्त को अकेला जंगल में छोड़ दिया जाना, वहाँ से भविष्यदत्त का तिलकपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उजाड़ नगरी में पहुँचना और भविष्यानुरूपा का मिलन होना, दोनों का परस्पर होना और विवाह हो जाना, बन्धुदत्त के बारह वर्षों के बाद फिर से मैनागद्वीप में लौटने पर उसी स्थान पर भविष्यदत्त की भेंट होना, बन्धुदत्त का फिर से छलपूर्वक भाई को अकेला छोड़ जाना और भावज पर आसक्त होना, पोत का डगमगाना, देवी का स्वप्न देना और बन्धुदत्त का अपने घर पहुँचकर भविष्यानुरूपा से विवाह करने की तैयारी कराना, भविष्यदत्त का फिर से उजाड़ नगरी में पहुँचना और यक्ष मित्र की सहायता से विमान में बैठकर गजपुर माँ के पहुँचना—ये सब घटनाएँ कथा के एक सूत्र में पिरोयी हुई हैं जो आदि से अन्त तक एक ही मुख्य कथा में विन्यस्त हैं। यह कथा मूल रूप में बड़ी माँ' की कहानी है जिसमें सौतेली माँ का व्यवहार और उसके सिखाये हुए पाठ से बड़े भाई के साथ छोटे भाई के खोटे-से-खोटे और नीच-से-नीच कर्म करने का वर्णन है। कहीं-कहीं इन घटनाओं से कथा को गतिशील बनाये रखने के लिए उपवाक्यों की भाँति उपकथाएँ जुड़ी हुई हैं।

अपभ्रंश के लगभग सभी कथाकाव्यों की वस्तु कल्पित एवं निजंधरी है। घटनाओं के मोड़ में तथा सोद्देश्य चरित्रों के चित्रण से भी यह स्पष्ट हो जाता है। उजाड़ नगरी या किसी अज्ञात वन-उपवन के ऐकान्तिक अंचल में स्थित आश्रम अथवा चमत्कारी पर्वत या विद्याधरों की नगरी के वर्णन कवि की कल्पना से प्रसूत हैं। ऐसे स्थलों पर कवि की वृत्ति प्रकृति या सुरम्य वातावरण के वर्णनों में अधिक रमी है। महाकाव्यों की भाँति इन कथाकाव्यों में भी प्रकृति-वर्णन, वस्तु-व्यापारों का विस्तृत विवरण तथा मानवीय परिस्थितियों का उल्लेख रहता है। कहा जाता है कि हीरोइक पोयट्री में नायक की क्रियाओं का विस्तृत वर्णन रहता है। वर्तमान दशा में जिन बातों को अनावश्यक समझकर उपन्यासकार या कथाकाव्य लेखक छोड़ देता है उन्हीं बातों के विस्तृत वर्णन से हीरोइक पोयट्री व्याप्त रहती है।[1] अपभ्रंश-कथाकाव्यों की अपेक्षा चरितकाव्यों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है। परन्तु कथाकाव्यों की वस्तु उद्देश्यमूलक तथा विषय के अनुरूप भलीभाँति सम्बद्ध रहती है। 'भविसयत्तकहा' में भी श्रुतपंचमी व्रत के माहात्म्य का फल भविष्यदत्त के जीवन में भलीभाँति चरितार्थ दिखाया गया है और उसकी माता कमलश्री की आस्था फलवती दर्शाई गई है। परन्तु कथा यहीं पर समाप्त नहीं होती है, वह आगे भी चलती है। और उसमें भविष्यदत्त की वीरता, पराक्रमपूर्वक युद्ध की तैयारी करना, राजा भूपाल की पुत्री सुमित्रा की याचना करने वाले सिन्धुनरेश को पराजित करना और राज्यलक्ष्मी का भलीभाँति उपभोग कर शासन करना आदि भविष्यदत्त की असाधारण बातों का चित्रण है, जो वैश्य-बालकों में नहीं मिलती। वस्तु और विषय के इन विविध आयामों में भविष्यदत्तकथा

1. No reader of heroic poetry can fail to notice that it abounds in detailed descriptions of actions which are in themselves trivial, and would be omitted by a novelist or narrative poet working in modern conditions. These are the mechanics of narrative and are needed to keep the story coherent and obective."—Heroic Poetry, P. 179.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-उपन्यास की धारा से निःसृत ही जान पड़ती है। विभिन्न सन्धियों में इसमें नवीन पात्र, घटनाओं तथा परिस्थितियों का समावेश हुआ है। इसलिए कथा में आदि से अन्त तक उत्सुकता तथा कुतूहल बना हुआ है।

अपभ्रंश-कथा-काव्य उक्त बातों के कारण निश्चय ही महाकाव्य से भिन्न है। लेसिल्स-एबरक्रोम्बी के मत में प्रचलित, स्पष्ट तथा पौराणिक कथा के माध्यम से जिस काव्य में अज्ञात एवं अचेत तथा मान्य अपने युग की अध्यात्मतत्व की अभिव्यंजना की जाती है वह महाकाव्य है। परन्तु ई० एम० डब्ल्यु० टिलयार्ड उनके इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि निश्चित रूप से महाकाव्य की कथावस्तु लोकजीवन से अधिगृहीत होनी चाहिए, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह कथा रूप में ही हो, जिसमें घटनाएं परम्परा की शृंखला की भाँति अनुक्रम से नियोजित हों और जिससे विन्यस्त कहानी अधिक-से-अधिक पाठकों को रुचिकर हो सके। प्रत्येक युग में—जिस प्रकार जीवन के मान-दण्ड बदलते रहते है उसी प्रकार घटनाओं, परिस्थितियों, क्रियाओं तथा जीवन-दर्शन और आदर्शों में भी कुछ-न कुछ परिवर्तन होता रहता है इसलिए वस्तु की दृष्टि से पौराणिक या ऐतिहासिक अथवा प्रख्यात नायक की कही हुई कथा में संयोजित-काव्य ही महाकाव्य हो सकता है—इस विचार से हम सहमत नहीं हैं। परन्तु मेरे मत में किसी काव्य के महाकाव्य होने के लिए उसमें राष्ट्रीय चेतना, युग की मुख्य विचार-धाराओं का आकलन, युगसापेक्ष्य प्रतिनिधित्व और परम्परागत शास्त्रीय नियमों का निर्वाह या किसी विशिष्ट काव्य-सरणि का स्थापक और सुसम्बद्ध घटनाओं तथा विचारों को अभिव्यक्त करने वाला हो। केवल आकार या परिमाण से ही अथवा उदात्त शैली से ही कोई प्रबन्धकाव्य महाकाव्य नहीं हो सकता। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर भविष्यदत्त-कथा में हमें वह सूक्ष्म व्यंजना तथा राष्ट्रीय चेतना का प्रवाह नहीं मिलता जो अपने युग के प्रतिमान प्रदर्शित कर सके। यद्यपि इस कथाकाव्य का प्रथम खण्ड बहुत ही उत्तम है पर द्वितीय खण्ड कुछ शिथिल, अवान्तर आख्यानों से भरित और प्रभावहीन सा जान पड़ता है इसलिए यह महाकाव्य की कोटि का न होकर कथाकाव्य है, जिसे आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में 'एकार्थकाव्य' कहा जा सकता है।

भविष्यदत्तकथा का लोक-रूप—यद्यपि अपभ्रंश की कथाएँ सच्ची मानकर लोगों के मन पर धार्मिक प्रभाव डालने के लिए लिखी गई हैं पर उनकी जड़ें लोक-

1. Lascelles Abercrombie postulates that the epic not only should express the 'Accepted unconscious metaphysic' of its age but do so through a clear and anthentic story, a story known and already part of the mythology of the audience. I disagree with this further demand. Certainly, the material of the epic should be largely public, but not necessarily in the form of a narrative where the concatenation of sequent events holds a large proportion of the reader's interest."

—The English Epic and its Background by E. M. W. Tillyard, 1954, P. 13

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथाओं में जमी हुई मिलती हैं। भविष्यदत्तकथा भी मूलतः लोक-कथा है, जो उद्देश्य विशेष से प्रबन्धकाव्य के रूप में वर्णित है। इस तरह की कथा-कहानी आज भी हमारे यहाँ गाँवों में कही जाती हैं। कहीं पर यह कहानी राजा-रानी और राजकुमारों के रूप में कही जाती है और कहीं सौदागर के रूप में[1]। अधिकतर लोक-कहानियों में राजकुमार की कहानी इससे मिलती-जुलती सुनी जाती है। बंगाल में प्रसिद्ध लोक-कथाओं में 'कलावती राजकन्या' की कहानी इसी प्रकार की रूपकथा है जिसमें पाँचों राजकुमार ईर्ष्यावश सबसे छोटे दोनों राजकुमारों को छोड़कर कलावती को पाने के लिए जहाज में बैठकर यात्रा करते हैं। किन्तु दोनों भाई भी डोंगी में बैठकर प्रस्थान करते हैं। दोनों भाई तीन बुढ़ियों के देश में पहुँचकर बुढ़िया के चंगुल में फंसे हुए पाँचों भाइयों को छुड़ाते हैं। परन्तु इस पर भी पाँचों भाई दोनों भाइयों की उपेक्षा कर आगे बढ़ जाते हैं। मार्ग में दिशा-भ्रम की दशा में दोनों भाइयों में से बुद्धू पाँचों की सहायता करता है। अन्त में तूफान आने से पाँचों भाई डूब जाते हैं। बुद्धू कलावती के नगर में पहुँचकर देखता है कि पाँचों भाई बन्दी-गृह में हैं। उसे भी बन्दी बना लिया जाता है। परन्तु वह कला-कौशल से पाँचों भाइयों को तथा छोटे भाई को कलावती के साथ लेकर पोत में बैठकर घर के लिए लौट पड़ता है। पाँचों भाई कलावती को बुद्धू के पास देखकर जल-भुन उठते हैं और उन दोनों भाइयों को समुद्र में फेंक देते हैं। कलावती को कैद कर वे अपने नगर में ले जाते हैं। राजा—कलावती का विवाह राजकुमार से करना चाहता है, परन्तु वह तैयार नहीं नहीं होती। राजा मार डालने की धमकी देता है। वह एक महीने का व्रत धारण करती है। इसी बीच दोनों राजकुमार आकर कलावती से मिलते हैं। राजा को जब सारा रहस्य ज्ञात होता है तब वह बुद्धू का विवाह कलावती के साथ धूम-धाम से करता है। छोटे भाई का पाणिग्रहण भी किसी अन्य राजकुमारी से हो जाता है। पाँचों भाइयों को अपने किये का दण्ड मिलता है।

इस प्रकार संक्षेप में भविष्यदत्त की लोक-कथा का रूप है—

किसी नगर में एक नगर सेठ रहता था। उसका नाम धनवइ था। कमलश्री नाम की उसकी शील तथा रूपवती पत्नी थी। उन दोनों के भविष्यदत्त नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। धीरे-धीरे सेठ का मन उससे विरक्त हो गया। उसका दूसरा विवाह सरूपा से हुआ। सरूपा स्वभाव से दुष्ट तथा रूपगर्विता थी। भविष्यदत्त ननिहाल में पढ़-लिखकर बड़ा होता है। सरूपा के भी एक पुत्र उत्पन्न होता है, जिसका नाम बन्धुदत्त रखा जाता है। बन्धुदत्त नगर में बहुत उत्पात मचाता है। नगर के लोग मन्त्रियों से निवेदन करते हैं। अन्त में प्रधान नगर-सेठ से कहकर उसे व्यापार के लिए भेजते हैं। पाँच सौ व्यापारियों का मुखिया बनकर बन्धुदत्त समुद्र के मार्ग से जहाज पर बैठकर यात्रा करता है। भविष्यदत्त भी साथ में जाने के लिए तैयार होता है। उसकी माता कमलश्री बहुत समझाती है। अन्त में मामा आदि के कहने से वह भविष्यदत्त को भेज देती है। बन्धुदत्त की माता बड़े भाई भविष्यदत्त के सम्बन्ध में

१. डा० नामवरसिंह : हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, तृतीय परिवर्द्धित संस्करण, पृ० २५०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कुछ बता देती है और किसी प्रकार मार्ग में कहीं छोड़ आने या समुद्र में गिरा देने की सीख देती है। कई दिनों के बाद बन्धुदत्त का जहाज मैनागद्वीप के तट पर लगता है। सब लोग उतर कर खाते-पीते हैं। फल-फूलों को वन में से तोड़ते हैं। भविष्यदत्त फूलों को चुनता हुआ दूर निकल जाता है। अवसर पाते ही बन्धुदत्त भविष्यदत्त को वहीं छोड़कर जहाज चलवा देता है। भविष्यदत्त रोता-गाता जंगल में भटकता है। एक रात घने जंगल में, जंगली जानवरों के बीच एक शिला पर सोता हुआ बिताता है। दूसरे दिन एक गुफा में से निकलकर एक उजाड़ नगरी में पहुँचता है। उस तिलकपुर में उसे केवल एक सुन्दर राजकुमारी को छोड़कर कोई नहीं मिलता। वह उससे सारा हाल पूछता है। वह कहती है—राक्षस ने इस नगरी को उजाड़ दिया है। तुम भी उससे नहीं बच सकते। राक्षस के आने पर वह ललकारता हुआ युद्ध के लिए तैयार हो जाता है। राक्षस साहस तथा पराक्रम से प्रसन्न होकर उन दोनों का विवाह कर देता है। दोनों वहाँ पर बारह वर्षों तक साथ में रहते हैं। एक दिन भविष्यानुरूपा ससुराल के हाल-चाल पूछती है। भविष्यदत्त को माता का स्मरण हो आता है। वह दूसरे दिन ही उसी गुफा में से होकर समुद्र-तट पर पहुँचते हैं।

बारह वर्षों के बाद बन्धुदत्त का जहाज फिर उसी तट पर लगता है। लोग भविष्यदत्त को पहचान लेते हैं। बन्धुदत्त गले मिलता है। भाई से क्षमा माँगता है। भविष्यदत्त सब को भोजन कराता है। भविष्यानुरूपा के साथ सब माल जहाज पर चढ़ा दिया जाता है। भविष्यानुरूपा को इतने में ही स्मरण हो आता है कि वह सेज पर नागमुद्रा भूल गई है। भविष्यदत्त उसे लेने के लिए जाता है। तभी बन्धुदत्त लोगों के मना करने पर भी जहाज खुलवा देता है। भविष्यदत्त बहुत पछताता है। भौजाई के रूप-सौप्दर्य से आकृष्ट होकर बन्धुदत्त उससे अनुनय-विनय करता है। वह मौन धारण कर लेती है। भोजन-पानी त्याग देती है। देवी उसे स्वप्न देती है कि एक महीने में पति के दर्शन होंगे। मार्ग में जल-देवता के प्रभाव से तूफान आता है। जहाज डगमगाने लगता है। सभी बन्धुदत्त को धिक्कारते हैं। भविष्यानुरूपा से क्षमा माँगते हैं। तब कहीं लहरें शान्त होती हैं और वे गजपुर की ओर आगे बढ़ते हैं। सभी अपने-अपने घर पहुँच जाते हैं। कमलश्री भविष्यदत्त को आया हुआ नहीं देखकर निराश होती है। वह सबसे पूछती है। सब यही कहते हैं कि किसी द्वीप में रह गया है। आ जायगा। बन्धुदत्त के विवाह की तैयारियाँ होती हैं। पन्द्रह-बीस दिन बाद भविष्यदत्त घर लौट आता है। मामा के साथ वह राजा को सब वृत्तान्त सुनाता है। माता को भेजकर नागमुद्रिका के अभिज्ञान से वह भविष्यानुरूपा को राज-दरबार में बुला लेता है। राजा सभा बुलाता है। सारा रहस्य खुल जाता है। नगरसेठ और बन्धुदत्त को दण्ड मिलता है। जनता विरोध करती है। भविष्यदत्त के कहने पर धनवइ को छोड़ दिया जाता है। राजा अपनी कन्या सुमित्रा का विवाह भविष्यदत्त के साथ करने का निश्चय प्रकट करता है।

इसी बीच पाँचालनरेश की सेना आकर गजपुर को घेर लेती है। सुमित्रा को माँगने और अधीनता स्वीकार कर कर देने का प्रस्ताव रखा जाता है। राजा बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असमंजस में पड़ जाता है। भविष्यदत्त इस प्रस्ताव को ठुकरा देता है। स्वयं सेना का नेतृत्व कर युद्ध लड़ता है और चित्रांग को बन्दी बना लेता है। सुमित्रा से उसका विवाह हो जाता है। वह राजा बन जाता है। धनवइ भी अपनी भूल को स्वीकार कर पूर्व त्यक्त कमलश्री को अपना लेता है। सभी का जीवन आनन्द से बीतता है।

अतएव अपभ्रंश की यह कथा लोक-कथा है, जिसमें धर्म और साहित्य के परिप्रेक्ष्य में कतिपय कथाभिप्राय वर्णित हैं। ऐसी कथाएँ प्रायः लोक-जीवन और संस्कृति को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं। भविष्यदत्त की यह कथा उत्पाद्य है, जिसमें सुमित्रा के लिए युद्ध, मणिभद्र यक्ष की सहायता से मैनागद्वीप से गजपुर पहुँचने और भविष्यानुरूपा के दोहला के समय तिलकपुर में भ्रमण करने की घटनाएँ एवं वृत्त कल्पित जान पड़ता है। इसका मुख्य कारण धार्मिक वातावरण प्रस्तुत करना है।

चरित्र-चित्रण—घटनाओं की भाँति भावों में संघर्ष का चित्रण करना अपभ्रंश कथाकाव्यों की सामान्य प्रवृत्ति है। यद्यपि भविष्यदत्त सामान्य व्यक्ति है इसलिए भाई के द्वारा द्वीप में छोड़ दिये जाने पर आँसू बहाता है, पश्चात्ताप करता है, परन्तु विनय, शालीनता, साहस और धैर्य आदि गुणों से संयुक्त होने के कारण वह धीरोदात्त नायक की भाँति चित्रित किया गया है। अपभ्रंश के कवियों ने अपने काव्यों में सामान्य व्यक्ति को नायक मानकर उसके क्रिया-कलापों से उदात्त जीवन में उन्हें प्रतिष्ठित किया है। और इसका मूल कारण उनकी धार्मिक वृत्ति जान पड़ती है, जिसके अनुसार वे 'नर से नारायण' बनने की मान्यता में विश्वास रखते हैं। अतएव भविष्यदत्त वीर, वीर ही नहीं, साहसी और क्षमाशील भी है। जातीय गुणों के साथ ही उसमें क्षात्रधर्म का दर्प और तेज भी दिखाई पड़ता है। अतएव सिन्धुनरेश के अन्यायपूर्ण प्रस्ताव से असहमत होकर वह सबसे आगे बढ़कर युद्ध लड़ता है और निर्भीकता के साथ अपनी वीरता का परिचय देता है। इस प्रकार सामान्य वणिक्पुत्र होकर भी भविष्यदत्त राजोचित प्रवृत्तियों एवं गुणों को प्रदर्शित कर अन्त में राजा बनता है और सफलता से राज्य-शासन करता है। लेखक ने जहाँ दैवी संयोग, आकस्मिकता और असाधारण वृत्तों की संयोजना धार्मिक प्रभाव स्पष्ट करने के हेतु की है वहीं नायक चारित्रिक गुणों पर भी प्रकाश डाला है।

अप्रभ्रंश के इन सभी कथाकाव्यों की रचना पद्धड़ियाबद्ध है। पद्धड़िया एक छन्द का नाम है। संस्कृत में इसे पज्झटिका कहते हैं। यद्यपि अपभ्रंश का औरस छन्द दोहा कहा जाता है, किन्तु अपभ्रंश के प्रबन्धकाव्यों में स्वतन्त्र रूप से इसके दर्शन नहीं होते। पद्धड़िया छन्द अवश्य प्रायः सभी कथाकाव्यों में बन्ध रूप में मिलता है। इसकी प्राचीनता का उल्लेख भी मिलता है। महाकवि स्वयम्भू ने कहा है कि उन्होंने पद्धड़िया छन्द चतुर्मुख से ग्रहण किया जो छड्डुणिया, दुवई और ध्रुवक से जड़ा हुआ है।[1] 'स्वयम्भूछन्द' में इसका विस्तृत उल्लेख मिलता है। वस्तुतः पद्धड़िया और घत्ता प्रयोग-शैली के छन्द हैं जो बन्ध-रचना के अनुरूप प्राकृत और अपभ्रंश-काव्यों में प्रयुक्त हुए हैं। पद्धड़िया में चतुर्मात्रिगण तथा चारों पद समान होते हैं। कुल चौंसठ मात्राएँ

१. छड्डणिय दुवइ धुवएहिं जडिय, चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय। —हरिवंशपुराण १,२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हैं। पूर्वार्द्ध में या उत्तरार्द्ध में यमक होता है।[१] किन्तु प्राकृतपैंगलम् में यमक का उल्लेख न होकर प्रत्येक चरण के अन्त में जगण की रचना आवश्यक कही गई है। इसका उदाहरण है—

किं करमि खीणविहवप्पहाइ, णउ लहमि सोह सज्जण सहाइ।
अह णिद्धणु जणि सोहइ णु कोइ, घणु संपय विणु पुण्णहि ण होइ॥

यह पद्धड़िया छन्द है। इसमें चार चरण हैं। चारों में समान रूप से सोलह-सोलह मात्राएँ हैं। अन्त में जगण (मध्य गुरु) है।

आ० स्वयम्भू ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि प्रबन्ध-रचना की दृष्टि से कडवकों की बहुविध रचना होती है जिसमें पद्धड़िया, छड्डुणि, घत्ता आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता है। पद्धड़िया के प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं और वह दो यमकों से मिलकर बनता है। और प्रत्येक कडवक में आठ यमक होते हैं।[२] इस प्रकार कडवकों की रचना पद्धड़िया छन्द से, छड्डुणि से या अन्य किसी बड़े छन्द से होती है। परन्तु अधिकतर पद्धड़िया छन्द का ही प्रयोग मिलता है।

स्पष्टतया अपभ्रंश के कथाकाव्यों की रचना पद्धड़ियाबद्ध कडवकों की शैली में हुई है। साधारणतः एक कडवक में सोलह पंक्तियाँ देखी जाती हैं। परन्तु यह नियम नहीं है। प्रत्येक कडवक में घट-बढ़ पंक्तियाँ भी मिलती हैं। विषय के अनुरूप विभिन्न छन्दों से कडवक की संयोजना अपभ्रंश काव्य की निजी विशेषता है। और इस प्रकार कडवक बन्ध एक शैली मात्र है जो समान रूप से अपभ्रंश के पुराण, चरित, कथा तथा अन्य काव्यों में भी प्रयुक्त मिलती है।

इस प्रकार भारतवर्ष में ही नहीं अन्य देशों में भी मध्यकाल में पद्यबद्ध कथाएँ लिखी जाती रही हैं। मूलतः कथाएँ ही प्रत्येक देश की प्राचीनतम साहित्यिक अभिव्यक्ति हैं, जिनमें जीवन की आलोचना ही नहीं वरन् सामाजिक और सांस्कृतिक तत्त्वों की संयोजना भी होती रही है। और इतिहास की अपेक्षा कथाएँ ही हमारे लिए सबसे उपयोगी साधन रूप में विद्यमान हैं, जिनकी सहायता से हम किसी भी देश की मूल संस्कृति तथा सभ्यता का सरलता में वास्तविक पता लगा सकते हैं। अतएव कथा तथा कथाकाव्यों का महत्त्व किसी भी युग, राष्ट्र तथा परिस्थितियों की जानकारी के लिए अत्यन्त उपयोगी है। साहित्य और सामाजिक दृष्टि से उनका सदा महत्त्व बना रहा है और बना रहेगा।

---

१. प्राकृतपैंगलम्, १,१२५।
सोलहमत्तं पाआउलअं, छचद्धंसविरइअं संकुलअं।
तं चेअ चत्तारचउक्कलअं, तं जाणसु पद्धडिआधुइअं॥ स्वयम्भूछन्द, ६,१२६।

२. पद्धडिआ पुणु जे इ करेंति, ते सोडह मत्तउ पउ धरेंति।
विहिं पअ[illegible] कडवअ अट्ठहिं जमअहिं रअन्ति। वही, ८, १५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० रमाशंकर तिवारी

...मायनी' की अतिलौकिक अन्तर्योजना

...यनी' की वस्तु-योजना में अतिमानवीय तथा अतिलौकिक तत्त्वों का इतना प्राचुर्य ...नान है कि उसका मानवीय मूल्य पर्याच्छन्न-सा बन गया है। यह कथन कुछ चौंकाने ... तथा नास्तिकों-जैसा ध्वनित होता है, किन्तु स्वस्थ मन से विचार किया जाए तो ...की सत्यता स्फटिकवत् प्रमाणित हो जाएगी। 'कामायनी' की प्रबन्ध-सृष्टि का एक ..., आधार-भूमि है सर्वनाशी जल-विप्लव और दूसरा छोर, प्राप्तव्य-विन्दु है कैलाश-... आनन्द-लोक। इस अथ और इति के मध्यवर्ती अन्तराल में मनु, श्रद्धा तथा ...का मिलन-व्यापार प्रसरणशील रहा है। और, ये सभी किसी-न-किसी प्रकार ...की रक्त की समशीतोष्णता से पूर्णतः प्रभावित नहीं हो सके हैं। कवि का अन्तिम ...लं, अभेद-मूलक सामरस्य-वर्मा अखण्डानन्द की प्राप्ति, स्वतः इतना उदात्त एवं ...निरपेक्ष रहा है कि वह अतिलौकिक क्या, अलौकिक, पारलौकिक जैसा दिखाई ...ता है। अतएव, बिलकुल स्वाभाविक रीति से, 'कामायनी' की अन्तर्योजना में अति-...किक तत्त्वों का आद्योपान्त संगुम्फन हो गया है, जिसके फलस्वरूप काव्य की परिणति ...प्त होने वाला अन्तिम रस इन्द्रजाल के आस्वाद का आधायक बन गया है।

(क)

अतिलौकिकता के वातावरण का प्रथम महत्त्वमय घटक तत्त्व है रहस्यवादी ...का नियोजन। काव्य का आरम्भ ही एक विस्मयकारी, अतीव सम्भ्रमपूर्ण ध्वनि से ...है। हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, शिला की छाँह में समासीन मनु आर्द्र नयनों ...लय-प्रवाह देख रहे हैं। नीचे जल-सन्दोह उमड़ रहा है, ऊपर हिमराशियों की पर्तें ...ी हुई हैं। एक तरल है, एक सघन है। कितु दोनों एक ही मूल तत्त्व के प्रकाश ...चाहे उसे जड़ कहा जाए, चाहे चेतन : "एक तत्त्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ ...चेतन।" असाधारण परिस्थितियों में साश्रुनयन मनु को एक केन्द्रीय तत्त्व का, ...का अत्यन्त आदिम स्वरूप व्यक्त है, दर्शक बनाकर, प्रसादजी ने 'कामायनी' की ...वर्ती ध्वनि को लौकिक की अपेक्षा अतिलौकिक, भौतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक ...ा दार्शनिक बना दिया है।

प्रलय का वर्णन अतिलौकिकता की सामान्य सीमा में परिगणित न हो, क्योंकि ...कवि का तत्काल उपपन्न अर्थ है। लेकिन, उसमें गुंफित बिम्ब साधारण भौतिक ...टन को अतिक्रान्त कर जाते हैं और उनमें रहस्यवादी गुंजन सुनाई पड़ने लगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । पंचभूतों के भैरव-मिश्रण तथा शम्पाओं के शकल-निपात का कथन तो उप... कहा जाएगा; लेकिन जब अमर शक्तियाँ उल्काओं की मशालें जलाकर, भूले प्रा... खोज करती हैं, तब रहस्यवादी अतिलौकिकता से पूरा बिम्ब ओत-प्रोत हो जाता...

"उल्का लेकर अमर शक्तियाँ
खोज रही ज्यों खोया प्रात।"

अतएव, आरम्भ से ही पाठक सावधान हो जाता है कि काव्य की वस्तु... विशुद्ध लौकिक, इसीलिए विशुद्ध मानवीय धरातल को स्पर्श अथवा अंगीकार... नहीं समझी जानी चाहिए ।

जल-प्रवाह के घट जाने के बाद जीवन का उन्मेष रहस्यवादी आवरण में... हुआ है । ध्वस्तचेता मनु के भीतर अचानक प्रश्न उत्पन्न होता है, "कौन ?" त... उस प्रश्न की माया में विचित्र ढंग से उलझ जाते हैं । "हे अनन्त रमणीय ! तुम... हो ? कैसे हो ? क्या हो ? हे विराट् ! हे विश्वदेव ! तुम कुछ हो, ऐसा भान... है ।" मनु की यह जिज्ञासा तथा उसके समाधान की यह चेष्टा और भी अति... अतिप्राकृत बन जाती है जब वह परोक्ष सत्ता उनके कानों में यह गुंजार करती... है, "मैं हूँ" और तब मनु भी यह कहते छटपटा उठते हैं, "मैं रहूँ शाश्वत ... गानों में ।"

मनु के भीतर जीवन की यह प्रेरणा रहस्य से उत्पन्न होती और ग... बनती है, प्रकृति की व्यापक जीवन-चेष्टा के अंग-रूप में । "नित्य नये प्रश्न उ... होते हैं । उनके अर्ध-प्रस्फुटित उत्तर मिलते हैं । समस्त प्रकृति कर्म-लीन बनी हुई... जीवन आज अपना अस्तित्व बनाये रखने में व्यस्त है । मनु भी तपनिरत होकर... करने लगे हैं और उस एकान्त नियति-शासन में विवश चलते जा रहे हैं ।" प्रकृति... नियति का यह गठबन्धन तथा मनु का विवश भाव से कर्म-लीन होना, वातावरण... अपार्थिव रहस्य से जड़ित कर देता है ।

रहस्यवादी यह अलौकिकता 'काम' सर्ग में अपना मोहक, विस्मयकारी वि... ताने हुए है । मनु जगती के नीले आवरण से दुर्बोध नहीं बनने की प्रार्थना करते... अणुपरमाणुओं के नृत्य-शिथिल निश्वासों की मोहमयी छाया से आकर्षित होते... आकाश के आलोचक मूर्च्छित-से सोते दिखाई पड़ते हैं, 'सौन्दर्यमयी चंचल कृ... रहस्य बनकर नाचती हुई उनकी आँखों को रोक लेती हैं; 'सुन्दरता के उस पर्दे... छिपे किसी 'अमूल्य धन' की प्रतीति से वे चंचल बन जाते हैं और वह कोमल ... दुर्भेद्य ही बनी रह जाती है ।

मनु के हृदय में अनादि वासना के जागरण से लेकर उनका प्रायः ... कार्य-कलाप रहस्यधर्मी अलौकिकता की गन्ध से अखिल रहा है । यह तथ्य ... अतिलौकिक वातावरण को एक अन्तर्हित, अविच्छेद्य आधार-सा प्रदान किये हुए है...

(ख)

अतिलौकिक अन्तर्योजना का दूसरा संघटक तत्त्व है स्वप्नों का संगुंफन । ... ने एक स्पष्ट स्वप्न में काम का सन्देश सुना है और एक अर्ध-स्वप्न में काम की अ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनी है। दूसरा स्वप्न कामायनी ने देखा है। पंडितों ने मनोविश्लेषणीय आधार इन स्वप्नों में अवदमित वासनाओं की छाया का दर्शन किया है। किन्तु, तथ्य यह कि ये स्वप्न, विचित्र ढंग से, प्रबन्ध की गठना के साथ उलझे हुए हैं और नायक-यिका दोनों की जीवन-धारा को मोड़ने में सहयोगी सिद्ध हुए हैं। 'काम' सर्ग में मनु कल्पना-तरंगों पर चढ़कर, जीवन-रस के आकण्ठपान के व्यामोह का अनुभव ता है—

> **"पीता हूँ, हाँ मैं पीता हूँ,**
> **यह स्पर्श-रूप-रस-गन्ध भरा"**

तब, स्वप्न में काम ने पहले ही यह चेतावनी दे दी है—

> **"प्यासा हूँ, मैं अब भी प्यासा**
> **सन्तुष्ट ओघ से मैं न हुआ।"**

देव-सृष्टि के विलास-परिणमित विनाश की चिन्ता मनु को सन्तापित कर रही । काम ने स्वप्न में मनु को पूरा इतिहास ही बता दिया कि कैसे वह देवों का सह-रहा, कैसे उसकी पत्नी रति सुर-बालाओं की रागमयी सखी रही और यदि मनु प्राणों में,

> **"नव हो जगी अनादि वासना**
> **मधुर प्राकृतिक भूख-समान,"**

कैसे काम तथा रति भी भूख-प्यास से जाग उठे—

> **"हम भूख-प्यास से जाग उठे,**
> **आकांक्षा-तृप्ति-समन्वय में,"**

कैसे वह सुख-मन्दिर सृष्टि विनष्ट हो गई—

> **"वे अमर रहे न विनोद रहा,**
> **चेतनता रही, अनंग रहा।"**

आप कदाचित् यह समझ लें कि काम के प्रस्तुत कथन में मनु के मनन-तत्त्व प्रतिध्वनित हुए हैं, इस आशंका को जैसे निरस्त करते हुए, काम ने स्वप्न में मनु संयम तथा कर्म का उपदेश दिया है : "यह विश्व मनोहर कृतियों का नीड़ है, कर्म रंगस्थली है। हम दोनों की वह सुन्दर भोली-भाली सन्तान, श्रद्धा, सृष्टि की मूल प्रेम-कला का सन्देश सुनाने आई है। उसे पाने की इच्छा हो तो योग्य बनो।" आँखें खोलकर पूछने भी लगे हैं, "हे देव ! उस ज्योतिमयी को प्राप्त करने का -सा पथ है ?" मनु ने, किन्तु, काम के सन्देश का पालन नहीं किया।

यही काम एक बार पुनः अर्ध-स्वप्न-जैसी दशा में 'इड़ा' सर्ग के आरम्भ में को चेतावनी देता दिखाई पड़ता है। मनु कामायनी का परित्याग कर, सारस्वत पहुँच गए थे और देव-दानवों के संघर्ष एवं जीवनादर्शों पर सोच-विचार कर रहे । इसी अवस्था में काम की अपशकुनमयी वाणी उन्हें पुनः सुनाई पड़ती है, "मनु ! श्रद्धा को भूल गए। तुमने पुरुषत्व-मोह में नारी की सत्ता का अपमान किया। ने तो प्रणय से पूर्ण अपना सरल हृदय तुम्हें दान कर दिया, किन्तु तुमने सौन्दर्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलधि से केवल अपना गरल-पात्र ही भरा । अब तुम स्वतन्त्र बनना चाहते हो, अलग तन्त्र स्थापित करना चाहते हो । तुम्हारा प्रजातन्त्र शापित बन जाय।" की शापमयी यह चेतावनी काव्य की कथ्य वस्तु से कितनी घनिष्ठतापूर्वक है, सामान्य पाठक भी जानता है । काम की इस वाणी में मनु के अब तक किये की भर्त्सना और भविष्य में सम्पद्यमान कार्य-कलाप की अशुभ परिणतियों का पूर्व-निर्देश सन्निविष्ट हुए हैं ।

'स्वप्न' सर्ग में कामायनी ने जो स्वप्न देखा है, उसी का विजृंभण अगले सर्ग में परिलक्षित है । सारस्वत-सभ्यता का नवसंघटन, सुख-वैभव के साधनों एकत्रीकरण, इड़ा का बलात् आलिंगन, प्रजा का विद्रोह इत्यादि समस्त प्रमुख का सन्निवेश कामायनी के स्वप्न में हो गया है, और इस स्वप्न से भयभीत यनी मनु की खोज में निकल गई है । यहाँ श्रद्धा की अवदमित वासना की प्रति देखना काव्य की मूल-ध्वनि को झुठला देना है ।

इन सभी स्वप्नों की योजना इस सामान्य भारतीय विश्वास को आधार कर की गई है कि स्वप्न दिव्य संकेत हैं, जिनमें अतीत की पुनरावृत्ति के साथ, एवं भविष्य के तथ्यों का संकेत भी रहता है । 'कामायनी' के वस्तु-विन्यास के इन स्वप्नों का आवयविक (organic) सम्बन्ध है ।

(ग)

अतिलौकिकता का तीसरा प्रसंग 'संघर्ष' सर्ग में वहाँ नियोजित है जहाँ विद्रोही सारस्वत-प्रजा के दमन-हेतु अपना भीषण अस्त्र सँभालते हैं । कवि ने कि मनु के अन्यायपूर्ण आचरण के प्रतिशोध-रूप में देव-शक्तियाँ भी क्रुद्ध हो गई अपनी पूँछ में प्रलयंकर ज्वाला समेटे, रुद्र का भयंकर नाराच छूट पड़ा तथा में महाशक्ति रोष से हुंकार उठी, जिसका सम्मिलित परिणाम रहा, मनु का होकर भूमि पर मुमूर्षु गिर पड़ना—

"धूमकेतु-सा चला रुद्र-नाराच भयंकर,
लिये पूँछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर ।
अन्तरिक्ष में महाशक्ति हुंकार कर उठी,
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं ।
और गिरीं मनु पर, मुमूर्षु थे गिरे वहीं पर;
रक्त-नदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर ।"

मनु ने संयम भंग किया है, अतएव उन्हें दण्ड देने के लिए विक्षुब्ध जन के साथ देव-शक्तियों ने भी सहयोग किया है । कवि की पौराणिक आस्था निक बुद्धिवादी दृष्टिभंगी के मेल में नहीं पड़ती, लेकिन उसे स्वयं इसमें कोई पूर्ण तत्त्व नहीं दिखाई पड़ता । जब संसार की मर्यादा टूटने पर होती है, तब किक किंवा पारलौकिक शक्तियाँ जो देव-रूप में सृष्टि-चक्र का नियमन करती हैं, कुपित हो जाती हैं और अपराधी को दण्ड देती हैं—इस सामान्य विश्वास का उपयोग कवि ने किया है । इस सम्बन्ध में मैं यह कह दूँ कि काव्य के निजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में देव-शक्तियों के नियोजन का यह तथ्य तनिक भी असंगत नहीं है, अपितु इसे कला-पूर्ण भी कहा जा सकता है; लेकिन, इससे हमारे इस विवक्ष्यार्थ की पुष्टि ही होती है कि प्रसादजी ने अपने काव्य-रत्न की इन्द्रजाली चकमक को अतिप्राकृत दीप्तियों से ओतप्रोत कर दिया है।

(घ)

'कामायनी' की अतिलौकिक अन्तर्योजना में एक अन्य महत्त्वमय सूत्र है रजनी, ज्योत्स्नाप्लावित विभावरी का उपयोग। बात साधारण-सी जान पड़ती है, किन्तु इसे संयोग-दान नहीं समझना चाहिए। प्रसादजी ने मायावी रजनी के ताने-बाने से अपने काव्य-संसार को एक निश्चित आयाम, एक निश्चित स्वभाव प्रदान किया है जो विद्वानों की दृष्टि से अद्यापि सर्वथा ओझल रहा है।

मनु की अलस चेतना की आँखें अन्तरिक्ष में हिल्लोलित चन्द्रिका-उदधि के रमणीय दृश्य में खुलती हैं और उनके अन्तस में मधुर भूख के समान अनादि वासना जाग पड़ती है। अंचलों के अचानक छूट पड़ने से मोहक मणिराजी बिखेरने वाली मौग्ध्य-मण्डित रजनी को देख, मनु की छाती के दाग हरे हो उठते हैं। श्रद्धा रजनी के पिछले पहरों में विचार-मग्न मनु के समीप आती है और उन्हें मंगल-मण्डित काम का उपदेश देती है।[1] 'काम' सर्ग में रजनी के पिछले पहरों में काम ने मनु को संयम का उपदेश दिया है और ज्योत्स्नाप्लावित रजनी की माया में ही मनु का अपना रहस्यात्मक चिन्तन, जिसकी पृष्ठभूमि के रूप में श्रद्धा के दर्शन तथा प्राथमिक परि-चय से अनुप्रेरित हो, अतीत के यौवन-सुलभ सुख-विलासों का उन्होंने मानसिक पारा-

---

१. श्रद्धा रात में ही मनु के समीप आई है। वह ललितकलाओं के अभ्यास की लालसा से अनु-प्राणित हो, 'हृदय-सत्ता का सत्य' खोजने निकली थी। चाँदनी रात इस खोज के लिए सदा उपयुक्त होगी। 'काम' सर्ग के प्रथम छन्द में मनु मधुमय वसंत के 'रजनी के पिछले पहरों' में आने का कथन करते हैं। 'रजनी के पिछले पहरों' की व्याख्या पण्डितों ने 'किशोरा-वस्था की पूर्णता', 'पतझर की रजनी के पिछले पहरों', 'रात की अन्तिम वेला में काम-वृत्ति के जगने' इत्यादि के गूढ़ अर्थों में की है। किन्तु, ये सभी दूरारूढ़ कल्पनाएँ हैं। सम्बद्ध पंक्तियाँ यों हैं—

"मधुमय वसंत जीवन-बन के,
वह अन्तरिक्ष की लहरों में,
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों में।"

(काम)

यहाँ कवि का उपपन्न अर्थ वाच्यार्थ ही है, और वह है श्रद्धा का रात के पिछले पहरों में, हृदय-सत्ता का सत्य खोजते, मनु के समीप चुपके से पहुँचना। 'साहचर्य' के नियम से, मनु, श्रद्धा के विषय में सोचते हुए, अतीत की सुखमय स्मृतियों में उलझ गए हैं।

श्रद्धा दिन में हृदय-सत्य की खोज में निकल ही नहीं सकती थी। इड़ा वह नारी है जो दिन के रूक्ष प्रखर प्रकाश की अभिलाषिणी है। इसीलिए वह प्रत्यूष-वेला में मनु के निकट आई, यद्यपि प्रसादजी ने इड़ा के भी सम्पूर्ण कर्म-प्रसार की परिणति, अन्तिम सर्ग में, चाँदनी रात की लुभावनी माया में ही दिखाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यण किया है, चला है। 'वासना' सर्ग में कथा के सूत्र संध्या तथा रागरंजित चन्द्रिका की छाया में ही आगे बढ़े हैं। 'दरिद्रमिलन' वाली संध्या-वेला में श्रद्धा अपने पशु पर प्यार प्रदर्शित करती है, जिसके प्रतिक्रिया-स्वरूप मनु ईर्ष्या से दीप्त हो उठे हैं और थोड़ी देर बाद कामायनी के कोमल कर-स्पर्श से शान्त होकर लुभावनी चाँदनी रात में 'विश्व-रानी', 'सुन्दरी नारी' को अपनी चेतना का दान समर्पण करते हैं तथा कामायनी 'मधुर व्रीड़ा-मिश्र चिन्ता' के साथ पुलकित मनोदशा में वह समर्पण स्वीकार करती है। 'कर्म' सर्ग में मनु के पशु-यज्ञ की विषण्ण प्रतिक्रिया के रूप में कामायनी ने चन्द्रिका-चर्चित रजनी के परिप्रेक्ष्य में अपनी प्रणय-वेदना का कथन किया है और अन्ततः उत्तेजक सोमरस का पान भी किया हैं। इसी स्थल से उसके जीवन की धारा में महत्त्व का मोड़ प्रवर्तित हुआ है। ईर्ष्या सर्ग में कथा की जो प्रगति हुई है—रागमयी संध्या के अवतरण पर मनु का मृगया से लौटना, कामायनी द्वारा उनके असाधारण मृगया-व्यसन का मधुर-मार्मिक प्रतिवाद, मनु द्वारा चिर-मुक्त पुरुष की स्वच्छन्द प्रकृति का निरूपण तथा श्रद्धा से उसके 'दुलार' की माँग करना और भावी शिशु के सुख-हेतु सम्पादित साज-सज्जा पर ईर्ष्याभिभूत हो, उसे छोड़कर चले जाना—वह सभी रजनी की मायक छाया में ही घटित हुई है।

'इड़ा' सर्ग से अन्तर्मुख मनु की जीवन-धारा में एक नवीन मोड़ प्रवर्तित हुआ है। उन्होंने सारस्वत-सभ्यता की नवरचना कर, प्रजापतित्व की प्रतिष्ठा अर्जित की है। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि प्राची में अरुण राग के प्रस्फुटित होने की वेला में, इड़ा मनु के सामने प्रकट होती है और उन्हें बुद्धि-संगत रीति से कर्मलीन होने का उद्बोधन प्रदान करती है : 'हँस पड़ी उषा प्राची-नभ में, देखे नर अपना राज्य-काज।' कर्म-पथ में प्रवृत्त होने के संकल्प के लिए अरुणोदय कदाचित् अधिक उपयुक्त मुहूर्त है, क्योंकि कर्म का विस्तार दिन के विस्तार का ही आकांक्षी होगा। किन्तु, इस संकल्प की पृष्ठभूमि में यहाँ भी काम की शापमयी वाणी मनु को रात में ही सुनाई पड़ी है। बाद के सर्गों में रात, और प्रायः चाँदनी रात का ही सर्वोपरि महत्त्व दृष्टिगोचर होता है। श्रद्धा का पूरा स्वप्न रात की माया से प्रेरित है। 'संघर्ष' के बाद 'निर्वेद' सर्ग में, कामायनी अपने 'रूठे प्रवासी' की खोज करती हुई, 'निस्तब्ध निशा' में इड़ा के निकट पहुँचती है तथा घायल मनु के दर्शन करती है। मनु पुनः रात में ही शान्ति के संधान में कामायनी तथा कुमार को छोड़ चले जाते हैं। 'दर्शन' सर्ग में भी ज्योत्स्नाप्लावित विभावरी का मधुमय आलोक आद्योपान्त प्रसरणशील है। सरस्वती के निर्जन पुलिन पर स्थित एक लतावेष्टित गुहा में घायल मनु को चाँदनी रात में श्रद्धा पुनः प्राप्त करती है और नटराज का आकर्षक, विस्मयकारी वह माया-नृत्य भी मनु द्वारा चन्द्रिका की मनोहर छटाओं के मध्य ही देखा जाता है। 'रहस्य' सर्ग में मनु को 'त्रिदिक् विश्व' के दर्शन भी संध्या के समय ही मिले हैं : "दिवा-रात्रि के संधि-काल में ये सब कोई नहीं व्यस्त थे।" किंबहुना, 'आनन्द' सर्ग की वह आनन्दमयी घटना भी संध्या तथा चाँदनी रात के मधुमय इन्द्रजाली आलोक में ही घटित हुई है। सारस्वत-वासियों का जुलूस ~~...~~ कैलाश-स्थित मानसरोवर तीर्थ के समीप पहुँचता है, तब "दिनकर गिरि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे अब, हिमकर था चढ़ा गगन में।" और, जब वे लोग मनु-श्रद्धा के पावन दर्शनों से पुलकित होते हैं, तब तो 'ज्योत्स्ना का जलनिधि' अन्तरिक्ष में हिल्लोलित हो उठा है, और जिस 'चेतनता' के विलास की ध्वनि से काव्य का रहस्यमय संगीत समाप्त हुआ है, वह भी ज्योत्स्ना का ही सहधर्मा है—

"रश्मियाँ बनी अप्सरियाँ
अन्तरिक्ष में नचती थीं;
परिमल का कन-कन लेकर
निज रंगमंच रचती थीं।
× × × ×
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।"

अतएव, यह आसानी से देखा जा सकता है कि सम्पूर्ण काव्य की योजना में सन्ध्या, रात्रि, निस्तब्ध रात्रि तथा चन्द्रिका-चर्चित रात्रि को अद्वितीय महत्त्व मिला है। जैसा हमने आरम्भ में निवेदन किया है, इसे संयोग का अवदान नहीं समझना चाहिए। प्रसादजी ने जान-बूझकर, अपने काव्य की 'स्पिरिट' का निर्माण करने के निमित्त, सन्ध्या तथा रजनी का लगभग प्रत्येक सन्दर्भ में कुशल विनियोग किया है। 'कामायनी' की स्पिरिट मूलतः ज्योत्स्नामयी विभावरी की स्पिरिट है, जिसमें मनोहर इन्द्रजाली लालसाएँ, प्राणों को विछला देने वाली वासनाएँ, हृदय को तोड़ने वाले सपने, स्निग्ध-सुकुमार एवं ललित-गलित कल्पनाएँ स्वच्छन्द भाव से आती और विलीन हो जाती हैं। प्रकृत कर्म का जो समारम्भ प्राची के अरुण-राग से हुआ था, उसकी दुर्दान्त, दयनीय परिणति अर्थ-गर्भा समझी जानी चाहिए।

(ङ)

काव्य का पर्यवसान उसकी अलौकिक अन्तर्योजना का सबसे महत्त्वपूर्ण संघटक तत्त्व है। शान्ति की खोज में कामायनी के साथ चलते हुए मनु, निर्निमेष, अनन्त शून्य में झाँकने लगते हैं और तभी उन्हें मंगल-चेतन आलोक-पुरुष के पावन दर्शन मिले जो केवल 'प्रकाश का कल्लोल' था, 'सत्ता का स्पन्दन' था—

"सत्ता का स्पन्दन चला डोल,
आवरण-पटल की ग्रन्थि खोल;
तम-जलनिधि का बन मधु-मन्थन,
ज्योत्स्ना-सरिता का आलिंगन;
वह रजत-गौर, उज्ज्वल जीवन,
आलोक-पुरुष ! मंगल-चेतन !
केवल प्रकाश का था कलोल,
मधु-किरनों की थी लहर लोल।"

इस आलोक-पुरुष के ताण्डव-नृत्य का भी भौतिक साक्षात्कार मनु को हुआ। उन्होंने देखा, कैसे नृत्य के प्रभाव से दिक्काव्य लुप्त हो रहे हैं, कैसे सूर्यचन्द्रादि पिण्डों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रचना हो रही है, कैसे पहाड़ धूलि-कण के समान उड़ रहे हैं, कैसे असंख्य ब्रह्माण्ड इतस्ततः बिखर रहे हैं, कैसे गणनातीत चेतन परमाणु बिखरते, बनते, विलीन होते जा रहे हैं—

"अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित,
थी शून्य-भेदिनी सत्ता चित्;
नटराज स्वयं थे नृत्य-निरत,
था अन्तरिक्ष प्रहसित मुखरित;
स्वर लय होकर दे रहे ताल,
थे लुप्त हो रहे दिशा-काल।
× × × ×
बिखरे असंख्य ब्रह्माण्ड गोल,
युग त्याग ग्रहण कर रहे तोल;
× × × ×
यह विश्व झूलता महादोल,
परिवर्तन का पट रहा खोल।"

मनु विस्मय-विमुग्ध हो उठते हैं तथा चिल्ला पड़ते हैं—

"यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल,
उन चरणों तक दे निज संबल;" इत्यादि।

कवि का जो भी, जैसा भी विश्वास रहा हो, सबसे विस्मयकारक उसका आत्म-विश्वास है, जिसके साथ उसने शंकर के नृत्य का इतना सूक्ष्म, स्थूल एवं चाक्षुष बिम्ब अंकित किया है, और यह विश्वास भी कि पाठक उसके चित्रांकनों का रसास्वादन पूर्ण आस्तिक-बुद्धि से करेंगे। कवि की प्रस्तुत पौराणिक आस्था और उसका अमोघ आत्मविश्वास, जिसके साथ उसने इस आस्था को सम्प्रेषणीय बनाने का प्रयास किया है, दोनों काव्य को पारलौकिक व्यंजना से पूर्ण कर देते हैं।

'रहस्य' सर्ग में वस्तु-योजना समस्त भौतिक एवं लौकिक परिवेष्टनों से प्रायः मुक्त हो गई है। त्रिदिक् विश्व के तीन प्रकाश-बिन्दुओं को देखकर, मनु विस्मय-चकित हो जाते हैं और उन्हें भासित होता है जैसे वह किसी इन्द्रजाली माया-लोक में पहुँच गए हैं।

"मैं किस लोक बीच पहुँचा, इस
इन्द्रजाल से मुझे बचाओ।"

यहाँ यह स्मरणीय है कि मनु थोड़ी ही देर पूर्व, पिछले सर्ग में, शंकर का मनोमुग्धकारी नृत्य देखकर, श्रद्धा से प्रार्थना कर चुके हैं कि वह उन्हें पावन-चरणों तक पहुँचाए। और जब वे त्रिपुर के दर्शन करते हैं, तब उनकी यह पूर्व मनोदशा बदली दीखती है और वे उस 'इन्द्रजाल' से बचना चाहते हैं। दार्शनिक दृष्टि से, मनु के शांभव-स्थिति तक पहुँचने की मध्यवर्ती सरणि के रूप में चाहे जो व्याख्या इस असंगतिपूर्ण अनुरोध के लिए प्रस्तुत की जाए, इतना निश्चित है कि प्रसादजी ने एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रजाल की अवतारणा की, इस तथ्य-निरूपण के निमित्त कि मानव-संसार में इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान के व्यापार एक-दूसरे से पृथक्-पृथक् चल रहे हैं जो मनुष्य की विपत्ति के लिए उत्तरदायी हैं। यह इन्द्रजाल अपनी चरम सीमा को प्राप्त हो गया है जब श्रद्धा मुसकरा देती है और उसकी मुसकान की किरणों से 'महाज्योति' की एक रेखा फूटकर, उन तीनों लोकों को परस्पर संयुक्त कर देती है, सकल विश्व में शृंग तथा डमरू का निनाद गूँज उठता है तथा उस दिव्य अनाहत संगीत में श्रद्धा-समेत मनु तन्मय हो उठते हैं। पूरा वातावरण यहाँ अतिलौकिक, पारलौकिक बन गया है। इस अभीष्ट के प्रतिपादनार्थ कि इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान के समरसीभवन से ही अखंड शान्ति से ओतप्रोत पूर्णानन्द की उपलब्धि हो सकती है, कवि ने, अपने ढंग से तथा काव्य में आरम्भ से ही उत्पन्न वातावरण की अनुकूलता में, मनोरम प्रयत्न किया है। लेकिन, इस साध्य-साधन में सम्पूर्ण वातावरण पौराणिक बन गया है। सावधान पाठक के लिए अपनी स्वाभाविक प्रश्न-वृत्ति को दबाकर, कवि की प्रस्तुत परिणति को मौन-भाव से स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं मिलता। श्रद्धा को हम विशुद्ध मांसल आकर्षण से युक्त देख चुके हैं, उसे लज्जा के साथ सुकुमार संघर्ष में संलीन देख चुके हैं, अपनी सम्पूर्ण संयम-शालीनता के बावजूद नारी-लभ्य दुर्बलता के सामने पराम्त होते उसे देख चुके हैं; और जब अन्त में यह पाते हैं कि श्रद्धा दिव्य इन्द्रजाली प्रतिभा से समन्वित वह देवदूत है जो अपनी भौतिक मुसकान से अन्तरिक्ष के वायवीय ऊर्ध्व धरातलों पर अवस्थित अभौतिक त्रिदिक् विश्व को समस्त बना देती है, तब लगता है, हम सहसा किसी अपार्थिव, पौराणिक संसार में चले गये हैं जहाँ आश्वस्त होने के लिए श्रद्धा के अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है, सरल-सहज विश्वास के अतिरिक्त कोई अन्य सहारा नहीं है। इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया के एकीकरण एवं सामरस्य वाले आदर्श से हमें कोई तात्त्विक असहमति नहीं है। किन्तु, इस आदर्श की सिद्धि के निमित्त जो अलौकिक, अतिप्राकृत सूत्र परस्पर अनुस्यूत किये गए हैं, वे निश्चिततया हमें पुराणों की दुनिया में स्थानान्तरित कर देते हैं जहाँ सम्भव-असम्भव के बीच कोई विभाजन-रेखा नहीं और जहाँ पार्थिव-अपार्थिव, लौकिक-अलौकिक सभी अनमेल तत्त्व बेहिचक मिलते तथा मिश्रित होते हैं।

'आनन्द' सर्ग की परिणति में तो पौराणिक, अतिप्राकृत एवं अतिलौकिक रंगों एवं छटाओं का मोहक वितान तन गया है। सारस्वत-प्रजा के सदस्य, इड़ा के निर्देशन में, मनु-पुत्र मानव के साथ, सोमलता से आवृत 'धर्म-प्रतिनिधि' धवल वृषभ की पुण्य छाया में कैलाश की यात्रा करते हैं और संसृति की सेवा में लीन उस 'द्युतिमय देव-द्वन्द्व' के पावन दर्शन करते तथा प्रणति में झुक जाते हैं। मनु और कामायनी आनन्द-लीन हो, चिर-मिलित 'पुरुष-प्रकृति' बन गए हैं, उनके-जैसे दिखाई नहीं पड़ रहे हैं, क्योंकि विद्वानों ने बताया है कि मनु शांभव-स्थिति में पहुँचकर 'सदाशिव' बन गए हैं—

> "चिर-मिलित प्रकृति से पुलकित
> वह चेतन पुरुष पुरातन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

> निज-शक्ति-तरंगायित था
> आनन्द-अम्बुनिधि शोभन।"

और, फिर किसी अन्य इन्द्रजाली रसायन के प्रभाव में, मनु वीतराग योगी की भाँति लौकिक चेतना से पूर्ण हो, अभेदवाद तथा 'विश्वनीड़वाद' का उदात्त उपदेश भी देते हैं—

> "सब भेदभाव भुलवा कर
> दुख-सुख को दृश्य बनाता,
> मानव कह रे! 'यह मैं हूँ,'
> यह विश्व नीड़ बन जाता।"

सारस्वत-वासियों के जुलूस का जिस सूक्ष्म विवरण के साथ, जिस शैली में, वर्णन किया गया है, उसे पढ़कर लगता है जैसे हम काव्य नहीं, किसी पौराणिक गाथा का पारायण कर रहे हैं। इसी प्रकार, मानसरोवर तीर्थ में मनु तथा श्रद्धा की महिमा का वर्णन पौराणिक आस्वाद से सौरभित है। प्रसादजी की कल्पना प्रस्तुत काव्य में, काव्यात्मक होते हुए भी, पौराणिक बन गई है। विद्वानों ने बताया है कि काव्य की कल्पना सत्य का आभास रखती हुई भी झूठी ही बनी रह जाती है, किन्तु पुराण की कल्पना मिथ्या को भी सत्य का स्वरूप प्रदान करती है। प्रसादजी ने 'कामायनी' में ऐसी ही कुशल प्रतिभा का विनियोग किया है और मिथ्या को ऐसे कलात्मक कौशल एवं सहज विश्वास के साथ चित्रित किया है कि वह सत्य का स्वरूप ग्रहण करता-सा प्रतिभात होता है। उन्होंने 'सारस्वतवर्त्म' का अनुसरण कर पुराण की सृष्टि की है, जिसमें जीवन की समस्या को सनातनता के स्तर पर प्रतिष्ठित किया गया है और सामयिक प्रश्नों का भी सनातन निदान सुझाया गया है।

(च)

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष निकलते हैं—

'कामायनी' का वातावरण आद्योपान्त अतिप्राकृत, अतिलौकिक है। उसमें रहस्यमयी शक्तियाँ कार्यशील हैं: रहस्य-सत्ता है जिसका प्रकाश व्यक्त विश्व में विच्छुरित हुआ है; देव-शक्तियाँ हैं जो मनुष्य को संयम तथा शालीनता का पाठ पढ़ाती हैं और नैतिक विच्युतियों के लिए उसे उचित दण्ड देती हैं; काम एक अदृश्य किन्तु शक्तिशाली देवता है जो विचित्र ढंग से मनुष्य को अपनी माया में फँसाता है और साथ ही, संयम-विहीन आचरण के विरुद्ध चेतावनी भी देता है; स्वप्न भी हैं जो अतीत, वर्तमान तथा भविष्य के परदे एक साथ उठाते हैं और मनुष्य को सही मार्ग-दर्शन देने की चेष्टा करते हैं; और सबसे बढ़कर, कैलाश-तीर्थ मानसरोवर है जहाँ गौरी-शंकर चिर-मिलित प्रकृति-पुरुष के रूप में लोकों तथा ब्रह्मांडों का निर्माण एवं विनाश किया करते हैं और जहाँ मनुष्य शांभव स्थिति को अधिगम्य करता तथा पुनः स्वेच्छा से वीतराग संन्यासी के समान सत्कर्म का उपदेश देता है। इस अलौकिक काव्य-संसार की स्पिरिट मूलतः 'रजनी-रानी' की स्पिरिट है जिसमें मधुर कल्पनाएँ हृदय तोड़ने वाली घटनाओं को भी एक मोहक ममत्व से आर्द्र बना देती हैं। जीवन को देखने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परखने की स्पिरिट मुख्यतया चाँदनी रात की स्पिरिट है जो अलस चेतना की आँखें खोलती है, जो जीवन-भोग की ललित लालसा को रहस्य-भाव से जगाती एवं उपलालित करती है, जो सब प्रकार के अवरोधों तथा बाधाओं से बच निकलने के लिए पलायन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है और जो जीवन के चरम साध्य आनन्द की महिमा को भी अपनी लुभावनी माया में निमज्जित कर देती है। यह स्मर्तव्य है कि अखंड चेतना के समरसतापूर्ण विलास का आनन्द भी यहाँ ज्योत्स्ना की मधुर परिणतियों में आस्नात चित्रित है। प्राची के रागारुण आलोक में मनु का इड़ा से परिचय हुआ, और वह शुभ नहीं रहा क्योंकि बुद्धि के प्रखर प्रकाश में नवसंघटित सारस्वत-सभ्यता स्वयं 'प्रजापति' के लिए ही अत्यन्त घातक सिद्ध हुई।

प्रसादजी की प्रतिभा 'कामायनी' में मूलतः पुराण-निर्मात्री बनकर प्रकाशित हुई है। हिमगिरि के उत्तुंग शिखर से नीचे समतल प्रदेश में उतारकर, मननशील मनु को पुनः वहीं कैलाश-तीर्थ में पहुँचा दिया गया है और इस प्रकार, मानसरोवर की पौराणिक महिमा का वर्तमान युग में नवस्थापन सम्पन्न हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सलाम मछली शहरी

एक महान् अमरीकी कवि राबर्ट फ्रास्ट

अमरीकी कवि (राबर्ट फ्रास्ट) से हम अभी हाल ही में बड़ा प्रेम करने लगे हैं। इस प्रेम का प्रादुर्भाव स्वाभाविक ही है। हमारे प्रिय नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू ने मृत्यु से कुछ दिन पूर्व उसकी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ पैंड के कागज़ पर लिखकर अपने कमरे की एक छोटी-सी मेज़ पर रख दी थीं। स्मृति-स्वरूप प्राप्त हुई यह फ्रास्ट की कविता "Stopping by Woods on a Snowy Evening" का एक पद्यांश है।

इसका भावार्थ यह है :

"सुहाने घनेरे, अँधेरे हैं जंगल
मगर मुझको आराम करना नहीं है"
कि मैंने किसी से यह वायदा किया है, अभी तो बहुत दूर जाना है मुझको।
"अभी तो बहुत दूर जाना है मुझको।"

औरों का तो मुझे पता नहीं, परन्तु यह पढ़ने के बाद मेरे हृदय में यह इच्छा अवश्य उत्पन्न हुई कि तनिक उस कवि के बारे में कुछ और जानकारी प्राप्त करूँ। इस कवि के सम्बन्ध में जितना जान सका हूँ उसका संक्षिप्त विवरण यह है—

जन्म तिथि······२६ मार्च १८७४ ई०।
स्थान······सैन फ्रांसिसको।
पिता का नाम······विलियम प्रेस कोट फ्रास्ट।
माता······(एक स्काट स्त्री थी)।

इनके पिता विलियम को राजनीति तथा कला से बड़ा प्रेम था। वे बहुत ही अस्थिर विचारों के व्यक्ति थे, जिसका कारण था नियमित और अधिक मदिरापान।

माता अजबील एक सुशिक्षित महिला थी और एक विद्यालय में अध्यापन-कार्य करती थी। उसे पारिवारिक कार्यों की अपेक्षा कविता से अधिक प्रेम था और वह भी 'रूमानी' कविता से।

दस वर्ष की आयु तक फ्रास्ट के जीवन में कोई अद्भुत लक्षण प्रगट नहीं हुए, परन्तु आवारा-प्रकृति युवकों की संगति ने उसमें बुरी आदतों के बीजारोपण कर दिए थे, जिसका यदा-कदा परिणाम भी भुगतना पड़ता था।

१८८५ में विलियम का स्वर्गवास हो गया। उसकी अन्तिम इच्छा यह थी कि उसका अपने देश 'न्यूइंग्लैंड' में अन्तिम संस्कार किया जाए। उस इच्छा की पूर्ति को वास्तविक रूप दिया गया, परन्तु उसकी सम्पन्नता के लिए माता के पास पर्याप्त धन नहीं था। इस कारण दो बच्चों और एक उनकी विधवा माता को पुनः केलि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फोर्निया आना भाग्य में नहीं बदा था। माता अजवेला 'हेम्प शायर' में एक बाल-विद्यालय में अध्यापन का कार्य करने लगी। यहीं 'फ्रास्ट' की शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। घर की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए उसे मेहनत-मज़दूरी भी करनी पड़ी थी। १८८८ में उसने 'लारेंस हाई स्कूल' से 'मैट्रीक्यूलेशन' पास कर लिया।

एक दिन जबकि वह 'मेक्सिको की विजय' के बारे में एक पाठ पढ़ रहा था तभी उसके मस्तिष्क में एक 'बैलेड' लम्बी कविता लिखने का विचार जागृत हो उठा। यह उसकी प्रारम्भिक कविता थी जो उसी स्कूल की 'पत्रिका' में प्रकाशित हुई।

इसी विद्यार्थी-जीवन के प्रवाह में उसे लातीनी भाषा के काव्य-ग्रन्थों को पढ़ने का अवसर मिला। वह धीरे-धीरे 'रोमांसप्रिय' होता गया, जिससे उसकी रुचि दिनों-दिन बढ़ती गई और अन्त में एक लड़की (एलजिमेरम) से प्रारम्भ में प्रेम, फिर अन्त में विवाह कर लिया। इसके बाद वह विशेष अध्ययन के लिए 'डार्ट माउथ' चला गया, लेकिन अध्ययन से अब उसका प्रेम समाप्त हो गया।

वह जल्दी ही वापस आ गया और अपनी माँ के ही स्कूल में पढ़ाने लगा। परन्तु उसका वह नटखटपन, जो उसे सम्भवतः पिता से धरोहर में मिला था, समाप्त नहीं हुआ। माता का स्कूल छोड़कर वह अब 'लारेंस' के एक दूसरे विद्यालय में नौकर हो गया। १८९४ में उसने एक कविता 'मेरी तितली' रची, यह उसकी पहली कविता थी और एक लोकप्रिय मेगज़ीन 'इन्डिपेंडेन्ट' में प्रकाशित हुई। इस प्रेस की नौकरी के बीच उसने अपनी छः कविताओं का एक संग्रह भी तैयार कर लिया जो प्रकाशित हुआ। इसका नाम था Twilight, लेकिन उस पुस्तिका के केवल दो ही परिच्छेद थे। एक उसकी प्रियतमा के लिए और एक स्वयं उसके लिए। यह लड़की 'सेंट-लारेंस' में अध्ययन करती थी और यहीं १८९५ में अध्ययन समाप्त करके 'फ्रास्ट' की पत्नी बनी। परन्तु एलिज़ ने प्रारम्भ में उसकी कविताओं की इस भेंट पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इसलिए कवि को महान् दुःख हुआ और वह हताश होकर कहीं बाहर चला गया। कुछ समय पश्चात् वापस आकर एक अख़बार का 'सम्पादक' बन गया। अब उसकी आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी हो रही थी। परन्तु अचानक फिर उसके मन में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की चाह जाग उठी और वह 'हारवर्ड' चला गया। परन्तु कठिन रोग के कारण उसे लौटने पर बाध्य होना पड़ा। इस बार उसने अपनी दरिद्रता दूर करने के लिए एक 'पोलट्रीफार्म' स्थापित किया। किन्तु इस काम से भी जल्द ही उकता गया और हरी साग-सब्ज़ियों की खेती करने लगा। भाग्य तनिक चमका तो यहीं अंग्रेज़ी पढ़ाने की एक नौकरी मिल गई, लेकिन इस नौकरी से भी वह बहुत जल्दी घबरा गया। इस मोड़ पर वह दरिद्रता की परवाह किए बिना किसी ऐसे अज्ञात स्थान पर जाना चाहता था जहाँ पर स्वतन्त्र रहकर केवल कविता ही कविता कर सके। अन्त में १९१२ में अपने पुत्र-पुत्रियों तथा पत्नियों समेत उसे इंग्लैंड आना पड़ा और यहीं किराए पर एक मकान लेकर वह काव्य-रचना में लीन हो गया। जीवन के साथ कला का यह टकराव अधिक सफल रहा। १९१३ में एक प्रकाशक डिविडन्ट ने उसकी कविताओं की पहला संग्रह प्रकाशित किया। इस संग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर 'इज़रा पाउण्ड' और दूसरे आलोचकों ने बहुत अच्छी आलोचनाएँ लिखीं। फिर शीघ्र ही उसी प्रकाशक ने उसका दूसरा कविता संग्रह 'North of Boston' प्रकाशित कराया। यहीं से उसकी प्रसिद्धि का श्रीगणेश हुआ। १९१४ में जब संहार का सबसे बड़ा विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ तो योरुप में साहित्य और काव्य का जीवन शान्त हो गया। 'फ्रास्ट' फिर अमरीका वापस आ गया। इस बार उसने एक छोटा-सा फार्म खरीदकर किसान का जीवन प्रारम्भ कर दिया। वह अपनी समस्त आयु कविताओं से जोड़ देना चाहता था, परन्तु उसकी यह इच्छा अन्त तक पूरी न हो सकी। इसके दो बड़े मुख्य कारण थे। एक यह कि उसका जीवन बड़ा अस्तव्यस्त और अशान्त था। वह मनुष्यता से प्यार करता था। और दूसरा कारण उसकी अपनी आर्थिक परिस्थितियाँ थीं। परन्तु उसको व्याख्यान देने और अपनी कविताओं का पाठ करने के लिए निमन्त्रण बराबर प्राप्त होते रहते थे। फलस्वरूप उसे कला के प्रति सान्त्वना मिलती रही। १९१४ में उसने 'Mountain Interval' के नाम से अपनी कविताओं का तीसरा संग्रह छपवाया और इसी वर्ष 'नेशनल इस्टीट्यूट ऑफ़ आर्ट्स एण्ड लेटर्स' का सदस्य बन गया। साथ ही 'एमहर्स्ट कालिज' ने उसे प्रोफ़ेसर का पद दे दिया, जिसे फ्रास्ट ने अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए स्वीकार कर लिया।

यथार्थ में स्वयं उसे यह जीवन प्रिय न था, लेकिन कला के विद्यार्थियों के सौभाग्य से वह जीवन-भर उनके सम्पर्क में रहा। वह पहला अमरीकी कवि था जिसे विभिन्न विश्वविद्यालयों ने महान् कवि की उपाधियों से विभूषित किया। फ्रास्ट के जीवन में कला का यह सुन्दर मोड़ चालीस वर्ष तक अज्ञात कवि का समय बिताने के बाद आया और फिर ऐसे अवसर आते रहे।

१९३० में अमरीकन एकादमी ने उसे अपना सदस्य मनोनीत कर दिया। १९३८ में वह 'हारवर्ड कारपोरेशन' का 'ऑनरेरी एसोसिएट' बनाया गया।

इसी बीच उसे कई पारितोषिक तथा सम्मान प्राप्त हुए। इसी में Pulitzer Award भी सम्मिलित है।

अब तक वह चालीस से अधिक कालिजों और विश्वविद्यालयों की ओर से डॉक्टरेट की उपाधियों से विभूषित हो चुका था। अमरीकी सीनेट ने उसकी पचासवीं और पचहत्तरवीं वर्षगाँठ बड़ी धूमधाम से मनाई और दीर्घायु के लिए प्रसन्नता तथा सद्भावनाएँ प्रकट कीं।

१९२२ और १९४४ के बीच उसकी कविताओं के चार और संग्रह प्रकाशित हुए और १९४९ में जब उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना प्रकाशित हुई तो साहित्य-संसार में उसकी प्रसिद्धि अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। १९५८ में उसे जो सबसे महत्व सम्मान मिला उसका अस्तित्व कुछ साहित्य और कुछ राजनीतिक था। अमरीकी कांग्रेस पुस्तकालय में विशेष काव्य-प्रतिनिधि के रूप में उसकी नियुक्ति हो गई और १९६१ में जब उसने जॉन कैनेडी के राष्ट्रपति होने पर एक प्रशंसात्मक कविता The Gift Out Night की रचना की तो उसने प्रसिद्धि के आकाश को छू लिया। यह सम्पूर्ण अमरीका में एक कवि के लिए प्रथम सम्मान था। फ्रास्ट वास्तव में प्रशंसा का पात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसकी समस्त प्रसिद्धि का कारण उसका कविता से अटूट प्रेम है और ऐसे उदाहरण संसार में बहुत कम मिलते हैं ।

वह प्रारम्भ में केवल एक रूमानी कवि था और सौन्दर्य तथा प्रेम विषय पर ही काव्य रचना करता रहा । उसकी सुन्दर कविताओं में ऋतुओं के रंगीन परिवर्तनों का अद्भुत प्राकृतिक रंगों के साथ उसके विचारों का रंगीलापन स्पष्ट दिखाई पड़ता है । ऐसी कविताओं में उसने कहीं-कहीं मानव और प्रकृति की समानता भी की है । उसकी दृष्टि में कहीं-कहीं प्रकृति मानव से दूर असीमित दृष्टिगोचर होती है और कहीं केवल निर्दयी स्वार्थी शक्ति जो एक अनजाने विचार के अनुकूल ही हो । लेकिन इसके बाद की कविताओं में वह अपनी व्यक्तिगत कथाओं तथा अपनी काव्य-प्रकृति के चक्कर से मुक्त दिखाई पड़ता है । अब वह तमाम व्यक्तियों के दुख-सुख में सम्मिलित हो जाता है । उस दौर के पश्चात् तुरन्त ही उसकी कविताओं में दृढ़ बौद्धिक कविताओं की झलकियाँ दिखाई देने लगीं ।

इस मोड़ पर भौतिकवादी और व्यवसायी जीवन के खोखलेपन से वह अक्सर परेशान दिखाई पड़ता है । New Hapshire और अन्य कविताओं में वह स्वयं अमरीकी समाज के अनुसार प्रतिनिधि रूप में आता है । वह प्रत्येक वस्तु को 'शो केस' में देखकर उस पर व्यंग्य वाण चलाता है ।

फ्रास्ट अपनी प्रमुख कविताओं में उस शक्ति का भी चितेरा दिखाई पड़ता है जिससे वह स्वयं को अनजाने रूप में बहुत समीप अनुभव करता है परन्तु यह समीपता उस पर अच्छी प्रकार घटित नहीं है और इसीलिए वह स्वयं अपनी खोज में खोया हुआ दृष्टिगोचर होता है और यही वह वाह्य प्रदर्शनों से मदद लेना चाहता है । वास्तव में फ्रास्ट एक ऐसा कवि है जो कलाकारों में सम्मिलित करने योग्य है । उसकी कुछ कविताओं के अध्ययन से यह अनुमान भी होता है कि वह भारतीय दर्शन से प्रभावित है । West Running Brook में उसने यह दिखाया है कि जीवन कभी समाप्त नहीं होता और उसका क्रम सदैव बना रहता है । Too Anxious for Rivers में भी उसने आवागमन की समस्या को बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है । इसमें नदी जीवन का प्रतीक है और पर्वत 'मृत्यु' का प्रतीक माना है । परन्तु ऐसा भी नहीं है कि वह दार्शनिक, आध्यात्मिक और धार्मिक विचारधाराओं से परिपूर्ण होकर इनसे सन्तुष्ट है परन्तु वह उनकी सीमाओं को भी तोड़ देना चाहता है । वह केवल एक ऐसी सत्यता की खोज में है जो उसे इस दुखान्त जीवन से मुक्ति दे सके । इसी उद्देश्य के लिए वह सांसारिक और सामाजिक स्वतन्त्रता पर बहुत जोर देता है और ऐसी कविताओं में वह उर्दू कविताओं के लक्षण तथा उसकी हृदयग्राही रमणीयता का आधार अपनाता है ।

वह आज की वैज्ञानिक खोजों और उनके प्रयोगों का अपने अनुभवों द्वारा स्वागत करते हुए यह भी नहीं चाहता कि आज का विज्ञान मनुष्यता के सुन्दर विचारों को हड़प जाए । उसकी दृष्टि में विज्ञान और कविता का सम्बन्ध अवैज्ञानिक है ।

रावर्ट फ्रास्ट का युग कविता और साहित्य में नए-नए अनुभवों का दौर था । लेकिन उसने पुरानी साहित्यिक परम्पराओं को कभी नहीं छोड़ा । उसने जनसाधारण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों तथा भावों को साधारण भाषा में व्यक्त किया। न्यूइंगलैंड की ग्रामीण बोली ही उसकी कविता की वाणी थी, परन्तु वह किसी विशेष भाग की बोली का प्रचार भी नहीं करना चाहता था। यह प्रारम्भ से ही चढ़ाव-उतार का कवि था। आरोह अवरोह के समान ध्वनियों द्वारा स्वर में संगीत भरना ही उसकी काव्य-कला का मुख्य गुण है। दूसरा गुण काव्य के समस्त अंगों का सुन्दर तथा मार्मिक प्रयोग है। इन गुणों के कारण वह हर प्रकार के व्यक्तियों में प्रसिद्ध था। वह अपनी कविता में एक एक ऐसा अनूठा चित्रण करने वाला चितेरा दृष्टिगोचर होता है जो विभिन्न प्रकार की बौद्धिक दशाओं तथा मनोवृत्तियों को विभिन्न प्रकार के चित्रों द्वारा प्रदर्शित करना जानता होता कि उनके वास्तविक परिणाम वही निकलें जो वास्तव में वह चाहता है। उसकी कला की एक विशेषता अपने व्यक्तिगत विचारों और जनसाधारणी-करण का बहुअंगी समन्वय है।

Birches उसकी बड़ी सुन्दर कलाकृति है। उसमें उसने मानवीय बौद्धिक दशाओं, मनोवृत्तियों को अभिव्यक्त किया है जिसमें वह कल्पना के सहारे आकाश को छू लेने का प्रयास करता है और इस आशा को छोड़ना भी नहीं चाहता। इस कविता में एक लड़का अपनी इच्छाओं का वर्णन इस प्रकार करता है।

"मेरी इच्छा यह है कि मैं बस थोड़ी देर के लिए पृथ्वी से कहीं दूर चला जाऊँ और फिर जल्दी पृथ्वी पर वापस आकर जीवन व्यवसाय में संलग्न हो जाऊँ।"

वास्तव में वह एक महान कवि था जो अनात्मिक शांति का पिपासु होने के अतिरिक्त स्वयं धरा के अमर सौन्दर्य और मानवी संघर्षमयी जीवन की तरंगों का अद्भुत चितेरा होने का इच्छुक हो। मैं यह समझता हूँ कि श्री नेहरू के अन्तर का कवि फ्रास्ट को चाहता था। इसका कारण यह है कि स्वयं उनके जीवन का एक विशेष पहलू उस कवि के विचारों से समानता रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकलदीप सिंह

अंग्रेजी कविता : एक दिशा-संकेत

प्रगति और परम्परा के संघर्ष में ही मनुष्य के विकास की गतिविधि निहित है। विकास के क्रम में कभी प्रगति प्रबल दीखती है तो कभी परम्परा। किन्तु चिरविजयिनी प्रगति के अनुसार परम्परा अपना रूप बदलती जाती है। वह रूढ़ियों से उन्मुक्त होती जाती है। परम्परा की विकसनशीलता ही उसकी जीवन्तता है। और यह जीवन्तता ही वस्तुतः प्रगति है।

प्रगति-परम्परा का संघर्ष हर देश में एक-सा नहीं होता। किसी-किसी देश में परम्परा ही अपने रूढ़ रूप में ताकतवर बनी रहती है। परम्परा का यह रूढ़ रूप साहित्य में भी प्रतिबिम्बित होता है। प्रगति कमजोर पड़ जाती है। अपने स्वभाव के अनुसार प्रगति लोकोन्मुख नहीं हो पाती।

प्रस्तुत निबन्ध में हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि किस प्रकार इंग्लैंड में धर्मोन्मुख और पलायनोन्मुख परम्परा आधुनिक अंग्रेजी साहित्य में अब तक देखी जा रही है। आधुनिक साहित्यकारों में किस प्रकार प्रच्छन्न रूप से वही परम्परा दीख रही है जो पुराने इंग्लैंड में भी स्थूल रूप में दीखती थी। और किस प्रकार प्रगति की गति धुंधली आज भी बनी हुई है।

पाश्चात्य देशों में छोटे-छोटे स्वार्थों की टकराहट होती रही। पूंजीवाद जन्य स्वार्थों के कारण बड़े-बड़े मानवघाती युद्ध हुए। एक राष्ट्र दूसरे को निगल जाने के लिए सदा तत्पर रहा। आर्थिक विपन्नता बढ़ती गई। प्रकृति की ओर से अधिक सुविधाएँ नहीं मिल सकीं। आबादी घनी होती चली गई। लड़ाइयाँ, असन्तोष, अशान्ति! सामूहिक व्यवस्था की ओर से विमुखता बनी रही। फलतः व्यक्ति को दुखान्तता (जो व्यक्तिवादी परम्परा की आधार पीठिका है) का सामना करना पड़ा।

ऐसा लगता है कि व्यक्तिवादी काव्य के पारस्परिक विकास की एक पतली धारा अंग्रेजी रोमांटिक युग से ही दीखने लगी। प्रगति और परम्परा के बीच से गुजरती हुई अंग्रेजी कविता आगे बढ़ने लगी। वर्ड्सवर्थ के साथ कुछ कवियों ने जीवन और जगत को निकट से परखा पर "पैन्थेइज़्म" के कारण यथार्थ नहीं सामने आया। दूसरी ओर कीट्स और उनके साथ के कुछ कवियों ने शारीरिक सीमा में भौतिकता को महत्व दिया तथा मांसल सौन्दर्य को ही सब कुछ समझा। पहली बार खुलकर वैयक्तिकता, भौतिकता से आ जुड़ी। लेकिन इस युग में भी अध्यात्म पृष्ठभूमि के रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रहा। कालेरिज ने बुद्धि और आत्मा का समन्वय करना चाहा। शैली ने अध्यात्म या आत्मवाद के प्रकाश में सामाजिक क्रान्ति को देखा। वायरन का विद्रोह अराजक व्यक्तिवाद के रूप में प्रगट हुआ। कुल मिलाकर रोमांटिक युग यथार्थ से आँख मिला सकने में असमर्थ-सा रहा।

रोमांटिक युग के पूर्व (Metaphysical School of poetry) कविता के क्षेत्र में जो दार्शनिक धारा चली थी वह सूक्ष्म तो होती गई किन्तु सबल भी होती गई। डान, वागन, हरवर्ट आदि ने दर्शन के माध्यम से भावों का बौद्धिकीकरण किया। टी॰ एस॰ इलियट की मानसिक पृष्ठभूमि के निर्माण में इस स्कूल का बहुत बड़ा हाथ है।

विकास की प्रक्रिया में रोमांटिक कवियों की प्रतिक्रिया हुई। विक्टोरियन युग में यद्यपि दो समानान्तर धाराएँ चलती रहीं किन्तु प्रबलता रही 'कला कला के लिए की'। आर्नल्ड और टेनिसन की सामाजिकता और नैतिकता की प्रतिक्रिया हुई। 'बचनन' के (The Fleshy School of Poetry) से प्रभावित होकर रोजेटी और स्विनवर्न ने जीवन से हटकर कला का पूर्ण रूप से समर्थन किया। प्रीरेफेलाइट स्कूल की प्रबलता रही। अंग्रेजी कविता "कला कला के लिए" का समर्थन कर शारीरिक सुख की सीमा में आबद्ध हो गई। रूप-रस-गन्ध-स्पर्शादि की सीमा में आकर कविता अवश्य यथार्थोन्मुख होती रही किन्तु यह यथार्थोन्मुखता जन-जीवन के साथ नहीं जुड़ सकी। राजनैतिक-सामाजिक समस्याओं से उलझने वाले कवि मोरिस और वर्न्स जैसों का उचित मूल्यांकन नहीं हो सका।

पूँजीवाद की बढ़ती हुई व्यवस्था में जहाँ का साहित्य पनपता है, संस्कृति पनपती है वहाँ बहुत कम ऐसे साहित्यकार होते हैं जो अपनी सामन्ती सीमा से ऊपर उठकर लोकतान्त्रिक व्यवस्था की ओर नजर उठा सकें। गल्सवर्दी, शॉ और वेल्स आदि की भाँति कुछ समाजोन्मुख लेखक भी आये किन्तु उनकी कड़ी आलोचना ही हुई, भले ही उनके साहित्य का प्रभाव अगली पीढ़ी में बढ़ता ही गया। वेल्स को स्वप्नदर्शी कहा गया, शा को तमाशबीन। गल्सवर्दी को परम्परा-विरोधी कहा गया।

पेटर ने भी सामाजिक समस्याओं से दूर हटकर जीवन और कला के सम्बन्ध-सूत्रों को अत्यन्त ही व्यक्तिवादी ढंग से देखा। पेटर के विचारों का गहरा प्रभाव उस काल के कवियों पर पड़ा और बाद के कवियों पर भी कम नहीं पड़ा। पूंजीवादी व्यवस्था में औद्योगिक विकास से जो सामाजिक विद्रूपता उत्पन्न होती है वे प्रायः व्यक्तिवादी विचारों को ही जन्म दे सकती है। आस्करवाइल्ड जैसे अद्भुत व्यक्तित्व का आविर्भाव इन्हीं परिस्थितियों में हुआ। वैयक्तिक विलासिता को किस प्रकार दार्शनिक रूप देने का प्रयत्न किया गया इसे आस्कर वाइल्ड की कुछ उपपत्तियों से समझा जा सकता है।

दरअसल, डिकेडेन्ट कवि अपने युग के अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित थे। एक तरफ विज्ञान और उद्योग का चक्रारोही विकास था तो दूसरी ओर इसके फ़लस्वरूप अध्यात्म या रहस्य का पतन। इस स्थिति में जो कवि लेखक आये, वे अपने को इसी स्थिति के अनुरूप बनाते गये। इस काल के कवि अनैतिकता, कृत्रिमता, वैयक्तिकता, दम्भ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक भौतिकता के प्रति मात्र उत्सुकता के बीच घिरकर जो कुछ लिखते रहे उससे सामाजिक कुरूपताएँ (Morbidity) ही फैलती रहीं। सामाजिक अस्वस्थता के प्रति इनकी उत्सुकता आश्चर्य की वस्तु है। 'कृत्रिम' शब्द आज भी अवांछनीयता से लिपटा है किन्तु आस्कर वाइल्ड का कहना है कि जीवन का प्रथम कर्तव्य यथाशक्ति कृत्रिम होना है। जितना कृत्रिम हुआ जा सके होना चाहिए। और जीवन का दूसरा कर्तव्य क्या है—इसका अन्वेषण, उनकी दृष्टि में अब तक नहीं हुआ है। वे कहते हैं—To be natural is to be obvious and to be obvious is to be inartistic.

अर्थात् स्पष्टता में कलात्मकता नहीं होती है।

यह स्पष्ट है कि आस्कर वाइल्ड की मनःस्थिति, कला की निरपेक्षिता, दैहिकत्व, कृत्रिमता और वैयक्तिक विचित्रता परस्पर कितनी मिली हुई है। इसीलिए उन्हें सिद्धान्त गढ़ना पड़ा कि कला सुन्दर या असुन्दर नहीं होती। समाज से साहित्य को अलगाने वाला आस्कर वाइल्ड का व्यक्तित्व एक बहुत 'बड़ा प्रयत्न' था। 'दी पिक्चर ऑफ डोरियन ग्रे' की छोटी-सी भूमिका में उनके विचार देखे जा सकते हैं।

इस कलावाद के प्रचार का नेतृत्व जिनके हाथ में था वे थे सिन्मन्स साहब जिनका कहना है कि Art begins when man wishes to immoralise the most vivid moment he has lived.

कहने का तात्पर्य कि 'अनैतिकीकृत क्षण' की विशेषता बाद में बढ़ती चली गई। और कला का सम्बन्ध स्थापित हुआ वस्तुओं से, मनुष्य से नहीं (Art in relation with things not with men)। कला जड़ सिक्का बन गई व्यापारिक युग में। और कला कलाकार्य न होकर 'प्राइवेट फन्टासी' बन गई। इस प्राइवेट फन्टासी ने आगे चलकर कविता की टेकनीक में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। बिम्ब, प्रतीक के अन्धभक्तों की रचनाओं में अनगढ़ंत के रूप में आई जिसे सैद्धान्तिक रूप देने का कार्य स्पष्ट रूप से किया टी० एस० इलियट ने।

और टी० एस० इलियट जैसे व्यक्तित्व के आविर्भाव की भूमिका पहले से तैयार हो रही थी। प्रमुख प्रीरेफेलाइटिस्ट रोजेटी ने वैयक्तिक प्रेम, प्रेम-जन्य आशा-निराशा, मृत्यु की सीमाओं में जीवन को देखा और इन्द्रिय प्रभावों (Sense impressions) की ओर संकेत किया। वैयक्तिक-शारीरिक-सुख के प्रति विशेष आग्रह था इनका या इनके अन्य प्रीरेफेलाइट मित्रों का। और इस आग्रह का अर्थ ही होता है अबौद्धिक भावुकता। कीट्स की परम्परा को आगे बढ़ाया गया और मूल प्रवृत्ति (Primal instinct) को साहित्य का आधार बनाया गया। रोजेटी ने कहा Poetry is passionate for it deals with primal instinct and is sensuous for it appeals through senses. अर्थात् उन्होंने भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया इन्द्रियों को। इसीलिए कहा जाता है कि रोजेटी के लिए इन्द्रियाँ 'आत्मा' की पुनीत तथा प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रीरेफेलाइटों का असमाजिक शारीरिक सुखवाद बीसवीं शताब्दी के प्रमुख कवियों में पूर्ण रूप से प्रतिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिकता का स्वर भी पूर्णरूप से अंग्रेज़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता की परम्परा में लगा रहा। क्या कारण है कि टी० एस० इलियट ने प्रभाव ग्रहण किया ब्राउनिंग से—डॅने से। इन कवियों ने अपनी आध्यात्मिकता को बौद्धिकीकरण कर के व्यक्त किया। अर्थात् सैक्स और अध्यात्म (मृत्यु भी, सम्भवतः) की खिचड़ी पकाने का काम अंग्रेज़ी कविता ने अधिक किया।

इटालियन कामुकता (Eroticism) का प्रभाव तो अंग्रेज़ी कविता पर पड़ा ही, फ्रायड का भी कम प्रभाव नहीं पड़ा। फ्रायड ने सेक्स और मिथ (या अध्यात्म कह लें) को एक पलड़े पर रखा। अंग्रेज़ी कविता की पारम्परिक धारा ही ऐसी रही। किसी एक आलोचक ने कहा था, (Sexual ecstacy transfigured by spiritual rapture is unique in English literature.) कि अंग्रेज़ी साहित्य में यह एक अद्‌भुत विशेषता है कि यह आध्यात्मिक और वासनात्मक आनन्द के सम्मिश्र रूप को लेकर चलता है। यही 'विशेषता' अंग्रेज़ी कविता को समाजोन्मुख होने से वंचित करती रही। यही अंग्रेज़ी कविता की प्रतिक्रियावादी परम्परा है। इस परम्परा से टी० एस० इलियट कौन कहे, स्पेण्डर, डे लिविस आदि जैसे तथाकथित प्रगतिशील कवि भी प्रभावित रहे।

इसी परम्परा के फलस्वरूप अंग्रेज़ी कविता बिम्बों और प्रतीकों के प्रभाव में आई और ठोस यथार्थ से दूर बनी रही। समाज से हटकर अंग्रेज़ी कविता व्यक्ति में सीमित हो गई। चेतन से हटकर अचेतन में चली गई। जीवन से हटकर कला में सिमट गई। और समाज का गौरव छिन्न हो गया। मनुष्य को निम्न स्तर से देखा जाने लगा। हार्डी ने मनुष्य को परिस्थितियों में (भाग्य) कुलबुलाता हुआ असमर्थ रेंगने वाला कीड़ा मकोड़ा कहा। इसी का प्रभाव हुआ कि अंग्रेज़ी कविता में आगे चलकर कुण्ठा तथा अनास्था का स्वर दीखने लगा। टी० एस० इलियट ने लन्दन को (The Waste Land) बंजर कहा आदमी को (The Hollow Man) खोखला कहा। यह अंग्रेज़ी कविता का असमाजिक और अमानवीय रूप है। न सामाजिक व्यवस्था में विश्वास रह गया और मनुष्य के गौरव में। यह विचारणीय है कि किस तरह पूंजीवादी-राजनीति का खोखलापन साहित्य में कटा-छँटा सिद्धान्त बनकर आता है।

भौतिक विज्ञान और औद्योगिक विकास को व्यवस्थित करनेवाली किसी सामूहिक दृष्टि के अभाव में ऐसा ही होता है।

यीट्स एक प्री रेफेलाइट चित्रकार के पुत्र थे। संस्कार तो था ही। परम्परा तो अपनी थी ही। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया में उन्हें फ्रेन्च प्रतीकवाद की छाया में सन्तोष मिला। विज्ञान से भागकर आदमी या तो अचेतन में प्रवेश करेगा नहीं तो अध्यात्म में जाएगा। यीट्स एक (Passionate metaphysical seer) भावुक दार्शनिक द्रष्टा बनकर रह गए। डन और हरवर्ट की परम्परा विकसित हुई। किन्तु विकासोन्मुख सामाजिकता अवरुद्ध हुई। यीट्स महोदय को 'प्रजातान्त्रिक समानता' 'प्रगति' 'समाजवाद' आदि जैसे शब्दों से घृणा थी। इसी के फलस्वरूप उनका सम्पर्क आर्थर सिंमन्स, प्री रेफेलाइट या दि येलो बुक ग्रुप से था। स्वप्न से पीड़ित एक उदासी का जाल यीट्स की रचनाओं (मुख्यतः The Wind Among the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Reeds : the Dolls) में पाया जाता है।

अब देखने की ज़रूरत है कि कला के लिए स्वप्न लोक, यथार्थ और स्वप्न का द्वन्द्व, दर्शन, प्रतीक तथा काम आदि चीज़ें कवि को राजनीति के किस आधार पर ले जाती है। लुई मैकनीस ने कहा था (The facts are that Yeats had a budding fascist inside himself) घुमा-फिराकर यीट्स में फासिज़्म का बीज था।

ब्रीजेज का ईसाई धर्म में अन्धविश्वास था। इस अन्धविश्वास के कारण ही सौन्दर्य, जीवन, जगत के प्रति उनका दृष्टिकोण न वैज्ञानिक रहा, न यथार्थोन्मुख। वे निराधार भविष्यवादिता (Futurism) से आक्रान्त रहे।

किप्लिंग की भाँति मेसफिल्ड भी संकीर्ण राष्ट्रवादियों की भाँति इंगलैण्ड और इंगलिश के अन्धप्रेम में डूबे रहे। 'डाउवर' में वाल्टर डिला मेयर की भाँति मैसफिल्ड भी परियों, भूतों तथा रहस्यमयी छायाओं की विस्मयकारी अभिव्यक्तियाँ देते रहे। यह क्या था ? एक पलायन ही था यथार्थ से।

जार्जियन कवियों (डबल्यू डेविज, डिलामेयर, रावर्टबुक, ड्रिंकवाटर, फ्रीमन, जे० सी० स्वकायर, सर एडवार्ड मार्स आदि) पर विचार करने पर ऐसा लगता है कि वे मानसिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक, और सामाजिक समस्याओं या अन्तर्द्वन्द्वों से दूर भाग गए। प्रकृति के मधुर रूप के चित्रण में लगे रहे। यह भी एक पलायन ही था। विकसित औद्योगिक समाज की समस्याओं को सहने का साहस इनमें नहीं था। 'जार्जियन मुवमेन्ट' १९२२ ई० तक रहा जब टी० एस० इलियट का दी वेस्टलैण्ड (१९२२) प्रकाशित हुआ।

इस बीच (Hulme) ह्य म ने (वर्गशाँ के दर्शन का भक्त) एफ. एस. फ्लिन्ट और रिचार्ड एल्डिगटन आदि को मिलाकर विम्बवादियों का संगठन किया। रिम्बाँ, मेलार्मे, वर्ले, वाल्देयर की विचार-धाराओं से प्रभाव ग्रहण किया गया किन्तु इस आन्दोलन की जड़ यथार्थ में नहीं थी अतः इसका विकास समाप्त हो गया। वास्तविकता से भागकर ही विम्ब या प्रतीक का सहारा लिया जाता है।

१९२० ई० के बाद अंग्रेजी कविता में एक ताजगी-सी आई किन्तु जटिल बौद्धिकता का प्रवेश हुआ और कविता पुनः अपनी प्रतिक्रियावादी परम्परा में सट गई। एफ० आर० लिविस ने हापकिन्स को आधुनिक युग का विशिष्ट कवि माना। किन्तु हापकिन्स भी कीट्स और प्रीरेफेलाइट्स की परम्परा से दूर नहीं हट सके। एडिथ सिटवेल ने कविता लिखना बन्द कर दिया। यीट्स रहे नहीं। टी० एल० इलियट कविता के क्षेत्र में एक 'आन्दोलन' के रूप में आये। पो के प्रथम प्रतीकवादी काव्य (Ulalume) यूलाल्यूम का प्रभाव टी० यस० इलियट पर पड़ा। किन्तु वैज्ञानिक भौतिक बोध के अभाव ने इनको भी पीछे हट जाने के लिए मजबूर किया। इनकी बौद्धिकता धार्मिक रंग में घुल गई। भावनाओं की अतिरिक्त महत्ता बढ़ा दी गई। डान और हरवर्ट आदि मेटाफिजिकल कवियों की भाँति इन्होंने 'चिन्तन' और 'वासना' को एकसाथ "ट्विस्ट' किया। धर्म से आधुनिक युग की समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सकता है। धर्म और आधुनिकता को सम्मिश्रित करने के कारण ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी रचनाएँ उलझी तथा गुम्फित हो गई। टी० एस० इलियट ने भी अपनी पुरानी परम्परा को नई शैली में आगे बढ़ाया। फ्रायड का दर्शन भी था ही। टी० एस० इलियट के अलावा अधिकांश कवियों ने अचेतन में प्रवेश किया और अनगढ़ क्रम-विहीन असंगत पंक्तियों की कविताएँ करते रहे। 'जटिलता' कविता का गुण हो गई। जन जीवन के निकट कविता न आई, कुछ बुद्धिजीवियों की मानसिक क्रीड़ा का साधन बन गई।

१९३० और १९४० ई० के बीच कुछ और कवि उभरे जिनमें आडेन, डेलिविस, स्टेफन स्पेन्डर, मैकनीस, डायलन प्रमुख रहे। इन लोगों ने टी० एस० इलियट की सीमा को पहचाना। उनकी 'बंजरता' को क्योर करने का बीड़ा उठाया। इन लोगों ने अलग हटकर काव्य को जीवन के निकट लाने का प्रयत्न किया। किन्तु इनका प्रयत्न भर ही रहा। कुछ दिनों में ही डे लिविस ने सामाजिक और राजनैतिक आदर्श से विश्वास खो दिया। वे अपनी व्यक्तिवादी परम्परा में आकर जुड़ गए। स्पेन्डर ने अपनी पुस्तक (Life and the Port) में घोषित किया कि जीवन की मौलिक चीजों से ही कविता का सम्बन्ध है। आडेन हृदय की शुद्धि पर जोर देने लगे। इस तरह लगभग सभी यथार्थ की टकराहट नहीं सह सके, पीछे लौट गये। सर ओसवर्ट सिटवेल, एडिथ सिटवेल, हरवर्ट रीड, सैसून आदि भी अपनी परम्परागत सीमा में आकर सिमट गए जिसका विरोध प्रगतिवादी विचार करता रहा।

१९५०-५१ ई० के आसपास डेविड गैसक्वायन का व्यक्तित्व प्रभावशाली था, किन्तु इन पर सुर्रियलिज्म का प्रभाव विशेष था जिसका एक पहलू धार्मिकता भी है। धार्मिक प्रवृत्ति के कारण वैज्ञानिक युग ने इनको ऐसे ही खोटा प्रमाणित कर दिया।

इस प्रकार देखते हैं कि अंग्रेजी कविता के क्षेत्र की व्यक्तिवादी परम्परा, काम, धर्म, अहं, आत्मा, मृत्यु आदि में उलझकर धुँधली हो गई। उनके आगे कोई उसे राह न दीखी। स्थिति में एक खीझ-सी उत्पन्न हुई और एक आन्दोलन आया जो घनघोर रूप से 'प्रतिगामी' था। यह था (Apocalytitac movement) एपोकलिटिक मुवमेंट। इस आन्दोलन के प्रमुख कवि थे हेनरी ट्रीस, जे० एफ० हेन्ड्री और जी० एस० फ्रेज़र। हेनरी ट्रीस ने अपनी पुस्तक (How I See Apocalypse) में अपने विचारों को स्पष्ट रूप से रखने का प्रयत्न किया है। इस आन्दोलन का मुख्य स्वर 'अराजकता' का था। व्यक्ति की स्वतन्त्रता और कविता की स्वतन्त्रता इनका नारा था। दर्शनविहीन आन्दोलनों की भाँति यह आन्दोलन भी बिखर गया। इसने भी ईश्वर के नवीनीकरण का प्रयत्न किया। धार्मिकता और वैयक्तिक उच्छृंखलता का एक हास्यास्पद समन्वय का रूप इसमें देखने को मिलता है।

इन सब असंगतियों ने एक नई परिस्थिति पैदा की। कवियों की एक ऐसी पीढ़ी सामने आई जो अपनी अराजकता और उच्छृंखलता के कारण अत्यधिक प्रचलित हुई। वह है क्षुब्ध पीढ़ी। अमेरिकन बीटनिक-पीढ़ी की भाँति यह पीढ़ी भी किसी भी सामाजिक व्यवस्था के विरोध में प्रगट हुई। क्षुब्ध पीढ़ी के कवि किसी भी नैतिकता को नहीं मानते। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में उनका विश्वास नहीं है। न वे भूत को स्वीकार करते हैं न भविष्य को। वर्तमान को स्वीकार भी करते हैं तो सन्देह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नजर से। अपने अस्तित्व में भी इन्हें अनास्था है। किसी भी प्रकार के नियन्त्रण को ये अस्वीकार करते हैं। ये अपने असामाजिक, अव्यवस्थित जीवन को निर्भीकता के साथ व्यक्त करते हैं। इनकी आस्था न कला से है न वस्तु से। ये अपने परिवेश पर क्षुब्ध हैं। ये अपने-आप पर भी क्षुब्ध हैं। किसी प्रकार की मान्यता से ये क्षुब्ध हैं। इनकी रचनाओं में पूँजीवाद-जन्य व्यक्तिवाद की घनघोर विकृतियाँ व्यक्त हो रही हैं। इन कवियों ने अपनी अव्यवस्था के सिद्धान्त को साहित्य में भी प्रचारित करने का प्रयत्न किया है। अकहानी, अनाटक, अकविता, अयथार्थ आदि के नारे इन लोगों की ओर से उठ रहे हैं। साहित्य या जीवन की परम्परा को छिन्न-भिन्न करना इनका उद्देश्य हो गया। इस पीढ़ी का कोई एक सिद्धान्त नहीं है। हर कवि अपनी अलग उच्छृंखलता लिये हुए है। निरर्थक आक्रोश के प्राणहीन कठपुतले हैं ये।

किन्तु इस क्षुब्ध पीढ़ी की सीमा के बाहर भी कुछ ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाओं में जीवन्तता के कुछ तत्त्व पाये जाते हैं। उनकी रचनाओं में कुछ अंश तक प्रगतिशीलता की झलक पाई जाती है। मैक डायरमिड का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इनका मार्क्सवाद के प्रति कुछ झुकाव है किन्तु इनकी प्रगतिशीलता असंगतियों तथा रोमान्टिक तत्वों से भरी है। नई पीढ़ी में 'क्रिस्टोफर लॉग' का भी नाम लिया जा सकता है किन्तु इनकी भी सीमा 'प्रेम' के चारों ओर चक्कर काट रही है। न्यू लाइन्स (१९५६) नाम से नये कवियों की कविताओं का एक संग्रह आया। पेंग्विन की ओर से दी न्यू पोयट्री (The New Poetry, १९६३) नाम से एक दूसरा संग्रह आया। इसके अतिरिक्त अभी 'न्यू लाइन्स, दूसरा, (१९६३) के नाम से संग्रह आया है।

इन सभी संग्रहों में, विश्व विद्यालयों के प्राध्यापक आदि ही विशेष रूप से हैं। इन संग्रहों की कविताएँ अतिरिक्त बौद्धिकता से बेतरह बोझिल हैं। इनके पाठक नहीं के बराबर हैं। इनका उद्देश्य भी जन-साधारण से मिलना या उनके लिए लिखना नहीं है। वे अपने दो-चार मित्रों के लिए कविताएँ लिखते हैं और उन्हीं की पसन्दगी से सन्तुष्ट रहेते हैं। जन-जीवन से दूर-सी हो गई है अंग्रेजी कविता। हाँ, एक बात अवश्य ध्यान देने की है कि अंग्रेजी कविता किसी प्रकार की सैद्धान्तिक या तार्किकता से दूर हटती जा रही है। यह अचेतन के ऊहापोह से भी दूर हट रही है। सहज जीवन को सहज शैली में कहने की ओर अंग्रेज़ी कविता झुक रही है। अधिकांश कवियों की कविताएँ सरल गद्य के निकट पड़ती जा रही हैं। एलिजावेथ जेनिंग्स की रचना 'एडमोनिसन' गद्य है बिलकुल। इसी तरह कई उदाहरण लिए जा सकते हैं।

अन्ततः कहा जा सकता कि अंग्रेजी कविता आज बिखराव की स्थिति से गुजर रही है। कई धाराएँ समानान्तर चल रही हैं। पर किसी एक धारा की प्रमुखता नहीं स्थापित हो सकी है अभी। सभी धाराएँ कमोबेश चल रही हैं। किन्तु आज के लोकतान्त्रिक युग में जिस धारा को आना चाहिये नहीं आ रही। अभी भी कविता के क्षेत्र में किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता (Commitment) स्वीकार करने की जागरूकता नहीं दीख रही है। चेतनशीलता का स्वर सदा से दबता आया है। लेकिन अब जन-जीवन की माँग झुठलाई नहीं जा सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामसेवक सिंह

जेम्स जॉयस कृत 'युलिसिस' : एक कथा प्रयोग

: १ :

जिस 'युलिसिस' के प्रकाशन से टी० एस० एलियट ने यह माना था कि 'वर्तमान संसार को कला में सफलतापूर्वक उतारने का प्रयत्न एक कदम आगे बढ़ा है', उसी को धारावाहिक प्रकाशित करने के लिए 'दी लिट्ल रिव्यू' को न्यूयॉर्क की कोर्ट ने सौ डालर जुर्माना किया था और अमेरिका में उसके प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाया था। परिणाम हुआ था, उसकी अधूरी और अवांछित आवृत्तियाँ। प्रकाशन के समय से लेकर आज तक इस कृति को एक समस्या के रूप में देखा गया है। किसी ने जेम्स जॉयस को अर्द्धविक्षिप्त करार दिया तो किसी ने 'गलत समझा गया जीनियस'। उससे मिलने पर उसकी होने वाली पत्नी कुमारी बारनैकूल तक ने कहा था : 'मेरा अन्दाज है, यह आदमी यों तो जीनियस है, लेकिन है दिमाग का गन्दा।' उस आदमी को ही नहीं उसकी 'युलिसिस' को भी अश्लील करार दिया गया था। यह एक आश्चर्य की बात है कि जॉयस की सभी कृतियों के प्रकाशन में कठिनाइयाँ खड़ी हुई थीं। जब सम्पादकों ने पांडुलिपि को स्वीकार किया तो मुद्रकों ने छापने से इनकार किया। जब प्रकाशकों ने छापना स्वीकार किया तो संसार ने अश्लील घोषित किया और जब अश्लीलता का जुर्म हटा तो अनैतिकता और ईश्वरनिन्दा का दोष पाया गया। जब अन्त में यह जुर्म भी निराधार सिद्ध हूआ तो लोगों ने जॉयस को देशद्रोही ठहराया। इसी प्रकार जिस किसी कृति पर आयरलैंड में प्रतिबन्ध लगा वह इंग्लैंड में छपी और जब इंग्लैंड में प्रतिबन्ध लगा तो अमेरिका ने छापा। मगर कुल मिलाकर इतना तो कहा ही जा सकता है कि जॉयस ने साहित्य के क्षेत्र में जो प्रयोग किये थे उन्हें या तो लोगों ने ठीक से समझा नहीं अथवा स्वीकार करने से इनकार किया। जॉयस के तीन उपन्यासों में जब 'फिनेगन्सवेक' एकदम अस्पष्ट (Obscure) है, 'दी पोर्टेट ऑफ दी आर्टिस्ट' काफी दूर तक लेखक की पहली कृति होने का भान कराता है। 'युलिसिस' में ही लेखक की टेकनीक का पूरा-पूरा विकास दीख पड़ता है। इस उपन्यास में लेखक ने क्या और किस प्रकार कहना चाहा है, यहाँ उसी पर संक्षेप में विचार किया जाएगा।

पहले कथ्य। 'युलिसिस' की शैलीगत दुरूहता को एक क्षण के लिए भूलकर यदि ढाँचे पर गौर किया जाए तो मालूम पड़ेगा कि बाह्य विशृंखलता के बावजूद उसमें एक कहानी अन्तस्थ है। सन् १९०४ की १६वीं जून को आयरलैंड की राजधानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डबलिन में जो कुछ भी घटित होता है उसकी एक झाँकी यहाँ प्रस्तुत है। सुबह सोकर उठने के बाद से लेकर पुनः रात को सो जाने तक के दरम्यान तीन चेतनाएँ— लिओपोल्ड ब्लूम, स्टीफेन डेडालस और मॉली ब्लूम किस प्रकार अन्य कितने ही इन्सानों की तरह अपनी चिन्तायें लिये दिन व्यतीत करते हैं, यही इस उपन्यास में दिखाया गया है। ब्लूम की दिनचर्या है : एक कसाई की दुकान से नाश्ते के लिए माँस लाना, एक अखबार के कार्यालय में होते हुए नेशनल लाइब्रेरी में जाना, एक शवयात्रा में भाग लेना, एक लड़की की स्मृति में दिवा-स्वप्न देखना और अपने छिपे प्रेम की अभिव्यक्ति करना, एक प्रसूतिगृह में विद्यार्थियों के साथ बैठकर अंग्रेजी के लेखकों की शैली में पैरोडी करते हुए नयी पत्रकारिता पर प्रकाश डालना, और फिर अन्त में डेडालस को साथ लेकर अपने घर वापस जाना।—ये और इस तरह के कितने ही अन्य छोटे-मोटे कामों में व्यस्त ब्लूम थक-चूर अपने घर आकर उस पत्नी के साथ सो जाता है जो पति के अंक में होकर भी अपने प्रेमी ब्लेजेज़ बॉयलन की याद करती है। ब्लूम की नजर के सामने से होकर जो कुछ भी गुजरता है वह उसी पर विचार करता है, कोई रिमार्क देता है। बार-बार वह भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिये योजनायें बनाता है लेकिन हर बार उसे अपनी बेवफा पत्नी और ब्लेजेज़ बॉयलन के प्रेम की याद एक टीस दे जाती है। उसके लड़के की बचपन में ही मृत्यु हो जाने से उसे किसी ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जिसे वह पुत्रवत रख पाता। ऐसा ही व्यक्ति है स्टीफेन डेडालस—एक सुन्दर युवक जिसे साहित्य में रुचि है तथा जो स्वयं अपनी माँ की मृत्यु के समय प्रार्थना न कर सकने के कारण दुखी है। जबकि ब्लूम यहूदी है और डबलिन में रहकर भी ऐसा महसूस करता है जैसे किसी अनजान देश में रह रहा हो, डेडालस अपने ही देश में रहकर कलाकार होने के कारण इस शहर के जीवन से निर्लिप्त है। इन दोनों को ही जैसे एक-दूसरे की खोज रही हो। ब्लूम को अपने मृत पुत्र का एक स्थानापन्न चाहिए था और चाहिए था अपनी शादी करने योग्य लड़की के लिए अच्छा वर। और इन दोनों के लिए डेडालस उपयुक्त था। इतना ही नहीं ब्लूम के मन में साहित्य और कला के प्रति जो प्रेम था उसकी अभिव्यक्ति वह डेडालस से बातें करके कर पाता था। यह डेडालस और कोई नहीं लेखक स्वयं है। डेडालस लेखक डबलिन की सड़कों पर घूम-घूमकर थक गया, उसे कहीं अपनापा नहीं दीखा। यहाँ तक कि विद्यामन्दिर से वेश्यागृह तक यात्रा करने के पश्चात् भी वह किसी प्रकार का स्थायित्व अनुभव नहीं कर सका। जैसे उसके जीवन की धुरी ही गायब हो। ब्लूम और डेडालस कई बार एक-दूसरे से मिलते हैं; लेकिन अन्त में वेश्यागृह से जब वे साथ घर आते होते हैं तब कैबमैन में शरण लेते हैं। वे वहाँ अपने व्यक्तित्व की सही झाँकी देते हैं। यहाँ उनकी चेतनायें एकदम अलग प्रकार की होती हैं। शायद लेखक जोर देकर यह कहना चाहता है कि हर एक की चेतना और उसका व्यक्तित्व ही नहीं उसकी नियति भी अलग है। उपन्यास के अन्त में जब ब्लूम सो जाता है, उसकी पत्नी उसके पास ही सोई हुई अपने प्रेमी की याद करती होती है। धीरे-धीरे करीब चालीस पेज का स्वगत समाप्त करते-करते उसकी पलकें भारी हो जाती हैं। यहीं उसके चरित्र का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निखार आता है। इसके पहले सारे दिन उसकी उपस्थिति का भान होता रहता है किन्तु यहाँ आकर ही उसके अस्तित्व का पूर्णरूप से ज्ञान होता है। उसके अस्तित्व का महत्व इतना अधिक है कि ब्लूम दिन भर उसकी स्मृति से ही ग्रस्त रहता है।

कहानी के इसी अस्थिपंजर पर जॉयस ने 'विचारों का खून और माँस चढ़ाया है। यदि कहानी उसके पूर्ववर्ती यथार्थवादी (Materialist) लेखकों (जिनमें खास हैं एच० जी० वेल्स, आरनोल्ड वेनेट और गाल्सवर्दी) जैसी होती तो किसी प्रकार की कठिनाई ही न होती। 'युलिसिस' में जो कुछ भी ऊपर से दीख पड़ता है उतना ही नहीं है, बल्कि बहुत कुछ ज्यादा है। तह-पर-तह और विचार-पर-विचार—सब कुछ सुविचारित और सुनिश्चित। इसीलिए तो सन् १९०४ से लेकर १९२२ तक इस उपन्यास का लेखन चलता रहा। वर्षों तक काम करने के बाद इतनी जटिलता लाना स्वाभाविक ही था।

'युलिसिस' में एक साथ कई बातें कही गई हैं। मुख्य रूप से यह कहा जा सकता है कि यह उन दो यात्रियों की कहानी है जो अपने घर लौटने के लिए व्याकुल हैं। कुटिल संसार के कुचक्र से मुक्त परिवार के सुख की कल्पना मात्र से जिन्हें रोमांच हो आता है, किन्तु दुर्भाग्य से जिनका कोई घर नहीं है। रात के दो वजे भी सारा दिन व्यस्त रहकर व्यतीत करने के बाद स्टीफेन लिओपोल्ड ब्लूम के घर कॉफी पीने के लिए चला ही आता है क्योंकि वह अपने ही देश में एकदम अकेला, निष्कासित महसूस करता है और ब्लूम के लिए तो अपना घर भी पराये के घर जैसा है। जहाँ उसकी पत्नी उसी की सेज में सोकर किसी अन्य व्यक्ति की स्मृतियाँ सँजोये, वह घर कहाँ ? जेम्स जॉयस ने भी अपना घर बहुत पहले छोड़ दिया था। उनके जीवन का अधिकांश विदेशों में ही बीता था। बड़े विश्वास से उन्होंने 'दी पोर्टेट ऑफ दी आर्टिस्ट' में लिखा था : 'इस देश में (आयरलैंड) जन्म के समय ही आत्मा को अपंग करने के लिए मनुष्य पर एक जाल फेंका जाता है। आप मुझसे स्वदेश, भाषा और धर्म की बातें करते हैं। मैं तो कोशिश करूँगा कि इन्हीं जालों की सहायता से उड़ जाऊँ।' (पृ० २३४)। उन्हें जिस चीज में विश्वास नहीं था उसकी चर्चा करना भी मंजूर नहीं था। चाहे वह अपना देश अथवा अपना धर्म ही क्यों न हो। जो अनुभव उन्हें सत्य-दर्शन कराये उसके माध्यम से अपनी जाति को एक नई चेतना (Conscience) देना था। इसीलिए अपने देश, धर्म, समाज और स्थानिक राजनीति से अलग होकर 'युलिसिस' में इन दो यात्रियों की कहानी लिखी। यदि गुलिवर, काँदीद और रासेलास का नवीन संस्करण लिओपोल्ड ब्लूम है तो ब्लूम का प्रतिरूप ग्रीक यात्री ओडीसियस है। सही बात यह है कि १६ जून, १९०४ तो मनुष्य की उस यात्रा का एक अंश है जिसकी संज्ञा है जीवन। कौन जाने, समय और स्थान के बन्धन में बँधा मनुष्य किस दिशा में प्रयाण कर रहा है। किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वह एक चिर-यात्री है।

होमर के महाकाव्य 'ओडेसी' में दस वर्ष के ट्रॉय युद्ध के बाद ओडीसियस को घर पहुँचने में आठ वर्ष लग गये। इस बीच उसका पुत्र अठारह वर्ष का हो गया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपने पिता की खोज में निकल पड़ा था। पेनिलोपी अपने प्रशंसकों की बेतुकी बातें सुन-सुनकर भी अपने पति की प्रतीक्षा करती रही। यहाँ 'युलिसिस' में सुबह से लेकर रात के दो बजे तक ब्लूम नाना प्रकार के दैनिक काम करके घर लौटता है अपनी बेवफा पत्नी से मिलने। अन्य साम्य हैं: बातूनी स्कूल मास्टर और नेस्टर; अश्लील इशारे करने वाली गर्टी डोवेल और सुकुमारी नॉसिका आदि। यद्यपि जॉयस के मन में इस उपन्यास को लिखते समय होमर की 'ओडिसी' का ही ढाँचा था, उन्होंने छपने के समय अध्यायों के शीर्षक निकाल दिये। होमर ने ओडीसियस की कहानी को चौबीस भागों में बाँटा है। जॉयस ने सिर्फ तीन भाग ही किये हैं। और उन तीन हिस्सों को अठारह घटनाओं में बाँटा है। ऑडेसी का पहला खंड 'टेलिमैकिया' उस महाकाव्य की भूमिका तैयार करता है: टेलिमॉक्स का अपने पिता ओडीसियस की खोज में भटकना।' युलिसिस' का स्टीफेन आठ बजे सुबह मार्टेलो टॉवर में नाश्ता करके निकलता है, दस बजे एक स्कूल में इतिहास पढ़ाता है, और ग्यारह बजे मैन्डीमाउन्ट के समुद्री किनारे पर टहलता है। इसके बाद 'युलिसिस' का मुख्य भाग आता है जिसमें बारह घटनायें पिरोई गई हैं। इन बारह घटनाओं में थोड़े अन्तर के साथ ओडीसियस ब्लूम की यात्रा का वृहत वर्णन है: लिओपोल्ड ब्लूम का सुबह आठ बजे एक्लीज़ स्ट्रीट में नास्ता लेना (ओडीसियस का कैलिप्सो के साथ होना); दस बजे स्नान (लोटसईटर्स के प्रदेश में गमन); ग्यारह बजे शवयात्रा में (हेड्स=नरक में जाना); बारह बजे अपने अखबार के कार्यालय में (योलस द्वीप में); एक बजे भोजन (लेस्ट्रीगोनियन्स नरभक्षियों के देश में); दो बजे पुस्तकालय में (स्काइलस और चैरिब्डिस से घिरा हुआ); तीन बजे किताबों की दुकान में (वॉडरिंग रॉक्स के पास); चार बजे आरमॉड होटल में बारमेड्स के साथ शब्दहीन संगीन सुनना (साइरेन्स का प्रदेश); सायं पाँच बजे सैलून में नागरिकों के साथ बैठकर मानहानि सहना (साइक्लोप्स लोगों के बीच); आठ बजे गर्टी मैकडोवेल के साथ छेड़छाड़ (नॉसिका के साथ); दस बजे रात को प्रसूतिगृह में (ऑक्सेन ऑफ दी सन) और बारह बजे रात को वेश्यागृह में जाना (सर्सी जादूगरनी का ओडीसियस से मिलना)। इन वर्णनों के बाद की कहानी ब्लूम के घर लौटने की कहानी है ठीक वैसे ही जैसे 'ओडेसी' में तीसरा भाग। स्टीफेन वैसे सारा दिन (अधिकांश) अनुपस्थित ही रहा है लेकिन सायंकाल वह ब्लूम के साथ बातें करने लिए आ मिलता है। दोनों काफी देर तक साथ रहते हैं; लेकिन कहानी के इस छोर पर मुख्य पात्र मौली ब्लूम है। वापस आते समय लिओपोल्ड ब्लूम का एक बजे रात को ड्राइवर के यहाँ थोड़ी देर रुकना (सुमियस के यहाँ ओडीसियस का शरण लेना), दो बजे रसोईघर में एक्लीज़ स्ट्रीट (इथाका) और पौने तीन बजे सुबह अपनी शय्या पर अपनी पत्नी मॉली के साथ (ओडीसियस का पेनेलोपी से मिलन)।

यह है कहानी का ढाँचा जिसमें मूल भाग है दोनों ही यात्रियों ओडीसियस और लिओपोल्ड ब्लूम का गृह-प्रयाण। किन्तु दोनों कहानियों में साम्य से वैषम्य की मात्रा अधिक है। ब्लूम डबलिन की जिन सड़कों और गलियों में लुढ़कता है वे अपने ही जमाने की हैं। मनुष्य आज भी यात्री है; परन्तु उसकी और अडीसियस की यात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कितनी विषमता है ! 'युलिसिस' में इस बात पर जोर दिया गया है कि जीवन परिवर्तनशील होकर भी प्रवहमान है, निरन्तर आगे की ओर बढ़ता रहता है। बीसवीं शती के शहर डबलिन को नरक के सिवा और क्या कहा जाय जहाँ स्टीफेन और ब्लूम ही नहीं, बल्कि मैकडॉवेल और माँसल मॉली ब्लूम तक अकेला महसूस करती हैं। इतना ही नहीं, बहिर्मुखी चरित्रों की आत्मा का खोखलापन भी स्पष्ट है। वे अकेलेपन से भागने के लिये मैत्री करते हैं; लोगों से सम्बन्ध बाँधते हैं। ब्लूम के अकेलेपन का कारण है : उसके पुत्र की असामयिक मृत्यु जिसकी याद उसे शव-यात्रा के समय तथा प्रसूतिगृह में फोरफॉय के लड़के के जन्म के समय आती है; उसके अपने पिता की आत्म-हत्या की याद; स्वयं भार्या क्लिफोर्ड से प्रेम करके भी अपनी बेवफा पत्नी से दुखी होना; उसकी शंका कि उसकी पुत्री भी अपनी माँ जैसी ही है, पिता-पुत्री के बीच एक दूरी बनाये रहती है, और सबसे अन्त में उसका एक यहूदी होना है। यहूदी पैसे का लोभी होने के कारण आज की व्यापार-प्रधान संस्कृति का प्रतिनिधित्व अच्छी प्रकार कर सकता है। मगर आजका कलाकार भी यहूदी जैसा ही है। जिस देश में राज-नीतिक भाषणों की तारीफ होती हो, छोटी-छोटी बातों को महत्व दिया जाता हो, सेंटिमेंटल गीतों को अच्छी कविता माना जाता हो, उसमें स्टीफेन जैसा युवक कैसे सुखी हो सकता है। उसका न कोई घर है, न धर्म और न धन्धा। उसकी रहन-सहन का तरीका ही मनुष्य के भविष्य की घोषणा करता है। उसने धर्म का त्याग इसलिये किया है कि उसे धर्म का दास बनना स्वीकार्य नहीं। उसने परिवार को छोड़ा है तो इसलिये कि उसके परिवार में कोई उसकी कक्षा का व्यक्ति नहीं और कोई उसको समझता नहीं। यदि वह अपने मित्रों के साथ भी नहीं निभा पाता तो इसलिये कि वे इतने संवेदनशील नहीं जितना वह है, इसलिये वे लोग उसे घृणा करते हैं। वह प्रेम और मैत्री के लिए जन्मा ही नहीं है। इसके ठीक विपरीत ब्लूम सामाजिक है और लोगों से सम्बन्ध रखने में विश्वास रखता है। उसका दुर्भाग्य यह है कि हर स्थान पर उसकी अपनी पारिवारिक स्थिति उसके व्यवहार पर हावी हो जाती है। लोगों के बेल-गाम व्यंगों से बचने के लिए स्टीफेन सिनिक की तरह व्यवहार करता है। उसको बार-बार ऐसा लगता है कि आयरलैंड में लोग उसे हैमलेट की तरह सिर्फ बर्दाश्त करते हैं, निभाते हैं, उसे सम्मान नहीं देते। उसकी स्थिति 'एक विदूषक की तरह है जिसे मिलता है इनाम यदि राजा खुश हुआ, और मिली मौत यदि वह नाराज हुआ।' ('युलिसिस', पृ० २६)। वह दुखी इसलिए है कि वह अपनी दम तोड़ती माँ के सिर-हाने खड़ा होकर भी उसकी आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना न कर सका। उसे मनुष्य में कोई रुचि नहीं, क्योंकि उसे ऐसा लगता है जैसे मनुष्य ने आज तक के इतिहास में घटनाओं की अनुत्तरदायित्वपूर्ण हवाएँ ही बुनी हैं : 'जो हवायें बुनते हैं उनके भविष्य में रिक्तता के सिवा और क्या हो सकता है ?' ('युलिसिस', पृ० २२)। इसके साथ ही स्टीफेन को आयरलैंड की वर्तमान स्थिति का भान है। जिस देश में दो क्रूरताएँ : राजा और पुरोहित (Priest) शासक हों। इस देश में रहकर कितनी ही जिम्मेदारियाँ उसके सिर पर हैं। वह उन्हें ईमानदारीपूर्वक निभाना चाहता है, लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैमलेट की तरह अशक्त है। सामान्य पारिवारिक सुख से वंचित अपने ही शहर में वहिष्कृत, जिम्मेदारियों के बोझ से दबे हुए स्टीफेन और हैमलेट में कितना साम्य है। इस बात की पूरी प्रतीति स्टीफेन को है। जैसे हैमलेट ने पोलोनियस का मजाक उड़ाया था उसी प्रकार स्टीफेन ने मिस्टर डिज़ी का। इतना ही नहीं, जिस तरह हैमलेट की सम्वेदनशीलता, उसकी उदासी, उसकी सालिलोक्वियों में व्यक्त हुई है उसी प्रकार स्टीफेन की मन:स्थिति की अभिव्यक्ति संज्ञा-प्रवाह (Stream of consciousness) में : खास तौर से समुद्र के किनारे टहलते समय। उसने शेक्सपियर की त्रासदी 'हैमलेट' का अपना मौलिक विश्लेषण किया है लेकिन उसे तब तक प्रकाशित नहीं करेगा जब तक कि उससे उसे आर्थिक लाभ न हो। और प्रकाशन की कोई सम्भावना नहीं है। यह भी उसके अकेलेपन का एक कारण है।

ब्लूम और स्टीफेन नाना प्रकार की समस्याओं पर गम्पूरतापूर्वक विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'यह सच है कि हम देश को नहीं बदल सकते। अच्छा हो, यदि हम चर्चा का विषय ही बदल दें।' यात्रा शुरू करने के समय ब्लूम समाज की मान्यताओं को मानकर चला था, किन्तु शाम होते-होते उसके विश्वास डिगने लगे थे। डबलिन अपनी तमाम विशेषताओं के साथ वर्तमान संसार का प्रतिनिधित्व करता है यहाँ की जनता गन्दी राजनीति को वैसे ही नापसन्द करती है जैसे संसार के अन्य हिस्सों में दूसरे लोग। यहाँ कला उसी प्रकार सस्ती और सौदे की वस्तु बन गई है जिस प्रकार अन्यत्र। यहाँ की कला को स्टीफेन ने 'किसी नौकर का टूटा हुआ दर्पण' ('युलिसिस' पृ० ८) कहा है। इस शहर में अब कला की नई देवियाँ— व्यापार, आपेरा-संगीत, प्रेम, प्रचार, उत्पादन, वाणी-स्वातन्त्र्य, मताधिकार और मनोरंजन आदि हैं। आयरलैंड अब 'एररलैंड' (Errorland) हो गया है और डबलिन 'डिडलम' (Diddllem) एक निरर्थक नाम। अतः इस शहर का निवासी भी ठीक वैसे ही धुरीहीन है जैसे दुनिया के किसी और हिस्से का व्यक्ति। इससे भी आगे बढ़कर कहा जा सकता है कि यह उपन्यास कुल मिलाकर हमारे अस्तित्व का एक संक्षिप्त रूप है। इसमें हमारे जीवन के लगभग सभी अनुभवों का समावेश है। जन्म (प्रसूति-गृह का दृश्य), शिक्षा (विद्यालय में), बचपन (मार्टेलो टावर का दृश्य), धर्म (लोटस-ईटर्स का वर्णन), दर्शन (समुद्र के किनारे घूमते समय स्टीफेन का संज्ञा-प्रवाह), संगीत (आरमाँड होटल), पत्रकारिता ('फ्रीमैन' अखबार के कार्यालय में), साहित्य (पुस्तकालय में), शहरी जीवन (वाँडरिंग रॉक्स में), सेक्स (मॉली ब्लूम के स्वप्न में), राजनीति (किरनान में) तथा मृत्यु (पैडी डिगनम की शव यात्रा) इसलिये यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार डबलिन वर्तमान विश्व का संक्षिप्त संस्करण है उसी प्रकार १६ जून, १९०४ वर्तमान जीवन के किसी भी एक दिन का नमूना है।

जाहिर है कि इन सारी बातों को समेटने के लिए जब उपन्यासकार ने लेखनी उठायी होगी तो उसके लिए आवश्यक रहा होगा कि वृहद पैमाने पर संकेतों, प्रतीकों और पैटर्नों का प्रयोग करता। वर्तमान जीवन को साकार और मुखर करने के लिए 'ऑडेसी' और 'हैमलेट' के साथ समानान्तर बताते हुए नयी वास्तविकताओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिस्थापित करना अपने-आप में एक भारी प्रयोग है।

: ३ :

जैसे विचार के क्षेत्र में जेम्स जॉयस ने प्रयोग किया वैसे ही शैली के क्षेत्र में भी। 'फिनेगन्स वेक' में नये शब्दों की इतनी भरमार है कि पढ़ते-पढ़ते ऊब आने लगती है, और कितनी जगहों पर तो अर्थ भी नहीं खुलते। गागर में सागर भरने का प्रयत्न स्पृहणीय जरूर है मगर सिर्फ प्रयोग की दृष्टि से। उपन्यास की दृष्टि से (वैसे कुछ आलोचक 'फिनेगन्स वेक' को एक कविता मानते हैं) यह कौशल बहुत श्लाघ्य नहीं है। 'युलिसिस' में नये शब्दों का उपयोग जरूर हुआ है मगर यहाँ महत्व की वस्तुएं दूसरी ही हैं, जैसे कि ऊपर कहा गया है, तीन कहानियों को एक साथ जोड़कर वर्तमान युग के जीवन की करुणा को व्यक्त करना कोई आसान काम नहीं था और जो शैली उस समय प्रचलित थी उसमें सब-कुछ कह सकना भी सम्भव नहीं था। इसलिये दुजार्दिन, हेनरी जेम्स, कॉनरॉड, डोरोथी रिचार्डसन और मार्सल प्रूस्त आदि सभी पूर्वगामी लेखकों की शैलियों को परिपक्व और विकसित बनाकर जॉयस ने अपने उपन्यास का सर्जन किया।

'युलिसिस' में जॉयस का मूल प्रयत्न रहा है पाठकों को उपन्यास के माध्यम से जीवन के सीधे सम्पर्क में लाना। बिना दखल दिये जीवन को अपने सही रूप में लेखक ने हमारे समक्ष रखा है। 'दी पोर्टेट ऑफ दी आर्टिस्ट' में उन्होंने लिखा था कि कलाकार का व्यक्तित्व धीरे-धीरे वैयक्तिकता और अस्तित्व के घेरे से बाहर निकल जाता है और अन्त में अपनी कृति का स्रष्टा कलाकार उस कृति के अन्तस में, उसके बाहर, उसके ऊपर अथवा उससे बिलकुल अलहदा होता है। यह बात 'युलिसिस' के लिए शतप्रतिशत ठीक है। निर्वैयक्तिकता प्राप्त करने के लिए ही इस उपन्यास में संज्ञा-प्रवाह शैली (Stream of Consciousness Technique) का प्रयोग किया है।

हम अपने व्यवहार में स्वयं को जितना अभिव्यक्त कर पाते हैं उससे कहीं ज्यादा हमारे मस्तिष्क के अन्दर होता है। हर क्षण दिमाग कुछ-न-कुछ सोचता रहता है। यदि किसी व्यक्ति को सही रूप में उद्‌घाटित करना हो तो उसके दिमाग के अन्दर चल रहे नाटक को बाहर लाने से हो सकता है। इसलिए जॉयस ने अन्य पूर्वगामी लेखकों की तरह 'इन्टीरियर मोनोलोग' (Interior Monologue) का प्रयोग किया है। कहीं सालिलोक्वी के माध्यम से, तो कहीं फ्लैश बैंक से हमारे भूत, भविष्य और वर्तमान को एक में गूँथने का प्रयत्न किया है। जहाँ गर्टी मैकडॉवेल एक चट्टान पर बैठी अपने प्रशंसकों को खेलते देखती रहती है (नॉसिका प्रसंग, पृ० ३२६) और लियोपोल्ड ब्लूम उसको अपनी प्यासी नजरों से देखता होता है, वहाँ अप्रत्यक्ष इन्टीरियर मोनोलोग का सर्वोत्तम प्रयोग हुआ है क्योंकि यहाँ गर्टी के दृष्टिकोण से, उसी के चेतना-प्रवाह की सहायता से दृश्य का वर्णन किया गया है। अर्थात् जॉयस ने अपनी ओर से एक शब्द भी कहे बगैर गर्टी के मन में जो कुछ चल रहा था उसको कागज पर उतार कर उस समय के सम्पूर्ण दृश्य की झाँकी दी है। इसी तरह चेतना-प्रवाह को नियन्त्रित करने के लिए 'फ्री असोसियेशन' (Free Association) का भी प्रयोग हुआ है जिसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार-शिला हैं स्मृति, मार्ग-दर्शक हैं ज्ञानेन्द्रियाँ और रूपदाता है कल्पना। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है मॉली ब्लूम की सालिलोक्वी जिसमें संज्ञा अपनी पूरी वक्रता के साथ उतारी गई है।

कविता और नाटक की टेकनीक की भी सहायता कहीं-कहीं ली गई है। रात के बारह बजे ब्लूम और स्टीफेन वेश्यागृह जाते हैं और वहाँ से बिल्कुल शराब में धुत लौटते हैं। यहाँ लेखक बड़ी सफाई से इस वेश्यागृह और इन दो यात्रियों का मिलन अपने शब्दों में न करके उन्हीं की अस्वस्थ मानसिक स्थिति का चित्रण करके करता है। ब्लूम और स्टीफेन के मस्तिष्क के अन्दर ही एक नाटक खेला जा रहा है : सारी घटनाएँ तिरकर पुनः घटित हो रही हैं। अतः जो कुछ भी उन्होंने वहाँ कहा था, किया था, वह सब दुहराया जाता है। इस घटना के आलेखन के लिए उनकी वेशभूषा, व्यवहार और शब्दावली आदि सभी कुछ के लिए निर्देश दिये गए हैं। इस टेकनीक से फायदा यह है कि लेखक से भूलकर भी अपने विचार व्यक्त करने की गलती नहीं हुई। और उन दो चरित्रों की कितनी ही अन्य छिपी इच्छाओं को प्रकट करने में सहायता मिलती है।

फिल्मों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि वे दो डाइमेंशन की होती हैं। इस सीमा को दूर करने के लिए वहाँ टाइम और स्पेस-मॉटेज (Time-and-Space-Montage) टेकनीक का प्रयोग होता है जिसमें समय को जोड़ने के लिए, भूत का वर्तमान और वर्तमान का भविष्य से सम्बन्ध बताने के लिए 'मल्टिपुल व्यू' (Multiple View) स्लो-अप्स (Slow-ups), फेड-आउट्स (Fade-outs), कटिंग (Cutting), क्लोज-अप्स (Close-ups), पैनोरमा (Panorama) और फ्लैश-बैक (Flash-back) का उपयोग होता है। 'युलिसिस' में स्पेस-मॉटेज का सर्वोत्तम प्रयोग 'वॉडरिंग राक्स'—प्रसंग में हुआ है। यहाँ छोटे-छोटे अठारह दृश्य हैं। चूँकि एक ही समय कई स्थान पर कई चीजें घटित हो रही हैं और सबका वर्णन आवश्यक है लेखक ने छोटे-छोटे डीटेल्स का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध बताने के लिए क्रास-रेफरेंस (cross-reference) दिया है। (इस टेकनीक का अच्छा प्रयोग आल्डस हक्सले ने अपने उपन्यास 'Point Counter Point' में किया है।

चेतना-प्रवाह को उपन्यास में उतारने में दो मुख्य कठिनाइयाँ हैं : एक तो यह कि प्रत्येक चरित्र की संज्ञा अलग किस्म की होती है; और दूसरी यह कि संज्ञा हमेशा प्रवहमान होती है। वह कभी स्थिर नहीं होती। इसलिए जॉयस ने प्रयत्न-पूर्वक इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए कुछ खास उपायों (devices) का सहारा लिया है। उन्होंने पहले तो मनोवैज्ञानिकों द्वारा मान्य अनुषंगों के रूप को स्वीकार कर लिया और मस्तिष्क के अन्दर होने वाली हलचल को उसी के अनुकूल बना दिया। दूसरे कितने ही बिम्बों और प्रतीकों की सहायता से वह सब कह दिया जो सीधे ढंग से नहीं कहा जा सकता। एक उदाहरण लें—अपनी माँ के मरने के समय स्टीफेन प्रार्थना नहीं कर सका। यह बात बार-बार स्टीफेन को याद आती है और उसके हृदय को कुरेदती रहती है। इसे वह 'Agenbite of Inwit' कहता है। यह अपराध-भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ अपनी माँ के प्रति नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज के प्रति है। प्रथम घटना से इस बिम्ब की भूमिका तैयार होती है और उसके बाद तो नेस्टर, प्रोटियस तथा सभी प्रसंगों में इस बिम्ब का जिक्र आता है। ठीक इसी प्रकार एक बड़ा मजेदार उदाहरण है—ब्लूम अपनी जेब में एक भुना हुआ आलू रखता है। यह उसके लिए एक प्रकार का तावीज है। (और यह बात उसने वेश्या बेला को बताई थी)। वह बार-बार अपनी अँगुलियों से छूकर देख लेता है कि आलू अपनी जगह पर है कि नहीं क्योंकि जब भी वह कोई काम करने चलता है उसको विश्वास दिलाने के लिए कुछ चाहिए। खास तौर से ऐसे बहादुरी के कामों (?) के समय जैसे कसाई की दुकान से माँस लाना। जब वह उलझन में पड़ता है तब भी उसके हाथ उसी आलू पर जाते हैं, जैसे कि उस समय जब कि वह अपनी पत्नी के प्रेमी ब्लेजेज बॉयलन से लड़ने की स्थिति में होता है। कभी-कभी कुछ खास शब्द इन्हीं बिम्बों और प्रतीकों की तरह काफी महत्वपूर्ण होते हैं। 'Metempsychosis' (पुनर्जन्म) शब्द का उच्चारण मॉली ब्लूम सुबह-सुबह करना चाहती है मगर कर नहीं पाती। बड़ी मुश्किल से वह इतना ही कह पाती है 'met him pike hoses'। यह शब्द कैलीप्सो प्रसंग में पहली बार आता है तब जब ब्लूम से मॉली उसका अर्थ पूछती है। इसके बाद ब्लूम उस शब्द को भूल नहीं पाता। नॉसिका, साइरन, आक्सेन-ऑफ-दी' सन् प्रसंगों में बारी-बारी से उसे इस शब्द की याद आती रहती है। उसका कारण यह है कि जॉयस इस उपन्यास में पुनर्जन्म पर भी विचार करना चाहते थे। ब्लूम के लिए तो यह शब्द विशेष रूप से महत्वपूर्ण था: पारिवारिक तथा सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में असंतोष होने के कारण जीवन की निस्सारता का भाव जो था उसे।

'युलिसिस' पर यह दोष लगाया जाता है कि उसमें घटना-बाहुल्य है और घटनाएँ असंतुलित तथा असम्बद्ध हैं। वह इसलिए कि सामान्य चरित्रों की संख्या जरूरत से ज्यादा (unmanageable) है, और भौगोलिक दृष्टि से जिब्राल्टर, पेरिस भारत तथा इंगलैंड जैसे शहरों-देशों में घटनाएँ घटित होती हैं। इतना ही नहीं घटनाओं का विस्तार बहुत बड़ा है—स्टीफेन के विद्यार्थी जीवन से लेकर पेरिस में रहने के समय तक, ब्लूम तथा मॉली के भोले बचपन से लगाकर अब तक का जीवन। कितनी बड़ी है परिधि यह! किन्तु इन सबको जॉयस ने जिस प्रकार गूँथा है वह आश्चर्यजनक है। इस उपन्यास में 'युनिटी' (unity) के अभाव का दोष अवांछित है। 'युलिसिस' की सारी कहानी सिर्फ एक दिन (१८ घण्टों) की है तथा एक ही शहर (डबलिन) की है। वर्णन दो जगहों से शुरू होते हैं: एक तो मार्टेलो टावर से जहाँ प्रात:काल बक मुलिगन और स्टीफेन बातें करते होते हैं, तथा दूसरी जगह है मॉली ब्लूम का घर जहाँ से चौथा प्रसंग शुरू होता है। दोनों ही प्रसंग एक ही समय शुरू होते हैं: करीब आठ से दस बजे के बीच तथा घटनाओं का विकास भी एक-एक घन्टे के अन्तर पर बताया जाता है। हाँ, 'ऑडेसी' से जो समानान्तर बताये जाते हैं वे अपनी सामयिक विशेषताओं के साथ। आज का मनुष्य ओडिसियस जैसा साहसिक नहीं, जो अपनी भुजाओं के बल पर पोजीडॉन नामक देवता के गुस्से को भी बर्दाश्त कर सके। वह तो लियोपोल्ड ब्लूम है जो एक निकृष्टकोटि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शहर की गलियों और सड़कों पर मारा-मारा फिरता है। इसलिए 'युलिसिस' एक महाकाव्य के पैटर्न पर होकर एक प्रहसन (burlesque) है जिसमें वर्तमान मानव की करुण स्थिति पर व्यंग्य किये गए हैं। यदि ओडीसियस नरभक्षियों (Lestrygonians) के प्रदेश में गया था ('ऑडेसी', अध्याय १०) तो 'युलिसिस' का ब्लूम सिर्फ इसलिए परेशान था कि उसे लंच खाने के लिए कोई स्थान नहीं मिल पा रहा था। मगर दोनों घटनाओं में समान बात यह है कि दोनों में ही खाने की बात है। डबलिन के एक सस्ते-से होटल में जब ब्लूम बैठा तो उसे वहाँ माँस की प्लेट से मनुष्य के माँस की महक आने लगी थी। ब्लूम वैसे ही आश्चर्य प्रकट कर रहा था जैसे कि ओडीसियस ने किया होगा जब लेस्ट्रिगोनियन्स उसके मित्रों को खा रहे थे। इसी प्रकार हर एक दृश्य और प्रसंग किसी-न-किसी प्रकार होमर की 'ऑडिसी' की घटनाओं पर आधारित है। परन्तु उसका अपना अलग-अलग रंग है, अलग टेकनीक है और अलग प्रतीक है। इन सबके बावजूद एक बात कही जा सकती है कि बिना होमर को बीच में लाये भी 'युलिसिस' की कहानी पूर्ण है।

: ४ :

कुल मिलाकर इतना कहना समीचीन होगा कि 'युलिसिस' एक प्रयोगकृति है जिसमें नाना प्रकार के उपायों (devices) की सहायता से तीन मुख्य पात्रों के साथ अन्य कितने ही चरित्रों के संज्ञा-प्रवाह को अंकित किया गया है। और उनके माध्यम से आज के जीवन की व्यथा और असहायता पर प्रकाश डाला गया है। विचार के क्षेत्र में जैसे असाधारण प्रयोग जॉयस ने किए हैं वैसे ही शैली के क्षेत्र में भी। यहाँ उनकी एक झाँकी ही प्रस्तुत की जा सकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिकृष्ण देवसरे

आज का बालसाहित्य

"मुझे एक बार महिलाओं की एक संस्था में बालसाहित्य पर व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किया गया···मैंने उस सभा में देखा कि प्रायः सभी महिलाओं के हाथों में ऊन और सलाइयाँ हैं। फिर भी मैंने इसलिए व्याख्यान शुरू कर दिया कि वे सभी मेरी ओर देख रही थीं। मैंने बालसाहित्य की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए अपने देश में बालसाहित्य की स्थिति की चर्चा आरम्भ की। थोड़ी देर तक बोलने के बाद मैंने देखा कि एक महिला खड़ी हो गई। शायद कोई प्रश्न पूछना चाहती होगी, इस आशा से मैं रुक गया। मैंने सोचा, चलो एक महिला ने तो ध्यान से सुना। किन्तु जब उस महिला ने प्रश्न पूछा तो मेरा बुरा हाल हो गया। उसने पूछा, "क्षमा करें! क्या आप ये बता सकेंगे कि आपके इस स्वेटर की बुनाई का नमूना आपकी श्रीमतीजी ने कहाँ से प्राप्त किया था?" और मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया। मेरी सारी आशाएँ धुँधली हो गईं। मुझे लगा कि आज संसार का शायद ही ऐसा कोई देश हो जो बालसाहित्य को महत्त्व देता हो?" ये विचार ब्रिटिश कौंसिल के चीफ़ लायब्रेरियन श्री जे० बी० फर्ग्युसन के हैं। सचमुच आज बालसाहित्य का वह महत्त्व नहीं है, जो होना चाहिए जबकि यह बच्चों के विकास के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना भोजन और कपड़ा। बालसाहित्य की यह उपेक्षा केवल अविकसित देशों में ही हो, यह बात नहीं है। आज के विकसित देशों में भी बच्चों के साहित्य की बुरी दुर्दशा है। जो विकसित देश हैं, वहाँ आर्थिक और व्यापारिक पहलू इतना प्रबल है कि वह जीवन के भावनात्मक पक्ष को उभरने ही नहीं देता। वहाँ जीवन के मूल्य इतने कुण्ठित और गिरे हुए होते हैं कि अध्ययन की रुचि जागृत कर, स्वस्थ मानसिक विचारधारा का पोषण असम्भव-सा हो जाता है। अविकसित देशों में इन स्थितियों को विपरीत रूप मिलता है। वहाँ आर्थिक असमानताएँ इतनी अधिक होती हैं कि इस मानसिक विचारधारा को विकसित होने का अवसर ही नहीं मिलता। इसके अलावा साहित्य के प्रचार-प्रसार में इतनी अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है कि लोग उससे बहुत जल्दी उदासीन हो जाते हैं। इस तरह प्रायः सभी देशों में बालसाहित्य किसी-न-किसी रूप में उपेक्षित बना हुआ है।

अविकसित देशों में बालसाहित्य की उपेक्षा के कारणों को यदि कुछ सीमा तक स्वीकारें भी तो प्रश्न यह उठता है कि विकसित देशों में यह उपेक्षा क्यों है?

वास्तव में बच्चे, साहित्य-समाज और संस्कृति के लिए नवागत के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं। यह सच है कि प्रत्येक युग की अपनी विशिष्टताएँ होती हैं, किन्तु बच्चों का उतना ही महत्व होता है, जितना होना चाहिए। आज की दुनिया में जहाँ हम एक ओर लोगों को प्रस्तर-युग से निकलते हुए देखते हैं, दूसरी ओर पूर्वी सभ्यता में पुराने विचारों और परम्परागत नियमों का कठोर पालन देखते हैं, तीसरी ओर नई विचार-धारा, नई खोज और जीवन के नये मूल्यों की स्थापना के लिए व्यस्त पश्चिमी सभ्यता को पाते हैं—वहाँ बच्चों के जीवन और उनकी समस्याओं का रूप भी उतना ही वैविध्य लिए हुए होता है। किन्तु इस वैविध्य के बीच भी एक समान विचारधारा की जो सूक्ष्म रेखा है, वह बच्चों के सुनियोजित और महत्वपूर्ण विकास की ओर इंगित करती है। यह रेखा कभी-कभी इतनी प्रभावहीन और धूमिल हो जाती है कि बच्चों के जीवन के मूल्यों का कोई महत्व नहीं रह जाता। यह तभी होता है जब कोई ऐसी विचारधारा अधिक प्रभावशाली बन जाती है, जो आज के युग के अनुकूल होती है। यह ठीक है कि युग के साथ साहित्य, संस्कृति और मानव जीवन के रूपों में भी अन्तर आता है, पर यह परिवर्तन बच्चों के जीवन पर किसी सीमा तक प्रभाव-शाली बनने देना चाहिए, यह बात विचारणीय है। इस परिवर्तन के कारण, उन्हें स्वस्थ मानसिक विचारधारा वाला व्यक्ति बनाने वाले मूलभूत आधारों तथा मनो-वैज्ञानिक नियमों का परिवर्तन तो नहीं किया जा सकता। इसलिए तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम उन मूलभूत आधारों को यों अनावश्यक समझकर अलग न करें, बल्कि बच्चों के विकास में उनकी महत्ता को ध्यान में रखकर उनका उचित उपयोग करें।

बालसाहित्य की रचना के मूलाधार वे ही तथ्य तथा मनोवैज्ञानिक नियम हैं, जो बच्चों को स्वस्थ मानसिक विचारधारा वाला व्यक्ति बनाने के लिए आवश्यक हैं। बालसाहित्य बच्चों के उन अंकुरों को पुष्ट करता है, जो बड़े होकर उन्हें जीवन के सत्य को पहचानने में सहायता करते हैं। पूर्वी योरप के ज्वीस कबीलों में तो यह प्रथा है कि जब तक शिशु माँ की गोद में है, पिता उसकी विशेष चिन्ता नहीं करता। किन्तु जैसे ही वह पढ़ने लगता है, उसका सम्मान बढ़ने लगता है। यह सम्मान उसके अध्ययन के स्तर के साथ आगे बढ़ता जाता है। बच्चे को समाज में उसकी योग्यतानु-सार उचित सम्मान देकर उसकी प्रतिभा और विकास की गति को बल प्रदान करते हैं।

आज विश्व जिन नये सिद्धान्तों और विचारों को लेकर बढ़ रहा है, उसमें बच्चों की अपनी पृथक स्थिति नहीं है। उनकी रुचि, मनोवृत्ति और स्वाभाविक विकास की गति का कोई महत्त्व नहीं रहा। आज तो हर देश अपनी नीतियों और विचारधाराओं में ही बच्चों को भी रंग लेना चाहता है।

रूस में लिखा जाने वाला आज का बालसाहित्य भले ही काल्पनिक कथाओं की आधारभूमि पर खड़ा हो, पर उसमें नई दुनिया का आभास अवश्य मिलेगा। आज आसमान में उड़ने वाली बात केवल कल्पना तो नहीं रह गई, उसमें विज्ञान की प्रगति भी किसी-न-किसी रूप में सम्मिलित होगी। इसलिए ऐसी क्रियाशील कल्पना तथा उसे जागृत करने वाले साहित्य को ही रूस की साम्यवादी विचारधारा स्वीकारती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ यदि जीवन का निर्माण साम्यवादी विचारधारा के प्रतिकूल होता देखते हैं तो अभिभावक अपने बच्चों को तुरन्त सुधारने का प्रयत्न करने लगते हैं। रूस में बच्चों के लिए पौराणिक-धार्मिक कथाओं का कोई महत्त्व नहीं है। ये कथाएँ हृदयहीन संसार को बढ़ावा देती हैं। ये तो वहाँ के बच्चों के लिए अफीम की गोली की भाँति समझी जाती हैं। वहाँ यदि बच्चा रूसी सिपाही, वैज्ञानिक, उड़ाका या मज़दूर बनता है तो उसे विकास की दिशा में अग्रसर समझा जाता है। आज के रूसी बालसाहित्य में पुरानी सभ्यता और परम्परा को भूलकर नई मान्यताओं को ग्रहण करने की बात होती है। वहाँ बच्चों के प्राकृतिक और स्वाभाविक विकास पर बल न देकर, उन्हें नई साम्यवादी विचारधारा से अवगत कराया जाता है।

जर्मनी में दो महायुद्धों के बाद बच्चों के साहित्य के रूप में बहुत से परिवर्तन आ गए हैं। वहाँ बचपन से ही यह देखा जाता है कि बालक में ऐसी विचारधारा जन्म ले जो उसके जीवन के मूल्य और उद्देश्यों को जानने के योग्य बना सकें। जर्मनी में बच्चों को आरम्भ से ही 'जीवन-युद्ध' में लड़ने योग्य एक कर्मठ सिपाही बनाने के प्रयत्न किए जाते हैं। किन्तु इसका वास्तविक परिणाम यह होता है कि वे जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने के योग्य नहीं रह पाते, उनमें चरित्र की दृढ़ता का अभाव होता है; उनमें उत्तरदायित्व सम्हालने की तत्परता नहीं रह जाती, उनके जीवन में आत्म-विश्वास की भावना नहीं जागृत हो पाती और उनके कार्यों का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं रह जाता। आज जर्मनी के बालसाहित्य में वहाँ की राजनैतिक विचारधारा बच्चों को आप्लावित किए रहती है। यह वहाँ की स्थितियों के अनुकूल भले ही हो, पर उनके जीवन में वह रस नहीं रहता जो कि प्रकृति-प्रदत्त है। बड़े होने पर वे बच्चे अपने जीवन को एक विशेष प्रकार के साँचे में ढला हुआ पाते हैं, जिसमें कि किसी प्रकार का परिवर्तन लाने की आशा नहीं रहती।

अमरीका में आर्थिक प्रवृत्तियाँ इतनी प्रबल हैं कि वहाँ का बालसाहित्य एक निश्चित उद्देश्य लेकर लिखा जा रहा है। यह उद्देश्य, वहाँ की विचारधारा के अनुसार, बच्चों के जीवन को प्रशस्त बनाता है। अमरीका में आज जीवन को सुखी ढंग से बिताना एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसलिए वहाँ के बालसाहित्य में जीवन के इसी पक्ष को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति मिलती है। पुस्तकों का बच्चों के लिए कहाँ और कितना महत्त्व है, यह बात भी प्रायः निश्चित-सी ही है। वहाँ जीवन के भावनात्मक पक्ष पर कम, व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल दिया जा रहा है। अमरीकी बालसाहित्य, काल्पनिक परिकथाओं, जादूभरी कहानियों को नहीं स्वीकारता। ये विषय बच्चों के लिए घातक तथा कुप्रभाव डालने वाले माने जाते हैं। वे जीवन का सही मूल्य जानने में भूल कर सकते हैं। ऐसे साहित्य के स्थान पर उन्हें सत्य बातों का ज्ञान कराना अधिक समीचीन होता है। मशीन कैसे बनती है, हवा में कैसे उड़ते हैं, पानी पर जहाज कैसे चलता है आदि बातें अधिक उपयोगी मानी जाती हैं। अमरीकी बच्चों के साहित्य में मनोरंजन का पक्ष तो पर्याप्त मात्रा में होता है किन्तु उसका भावनात्मक पक्ष बच्चों की स्वाभाविक रुचि, मनोवृत्ति और विचारों के अनुकूल होने की अपेक्षा व्यावहारिक अधिक होता है। वह किन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी शक्तियों से संचालित होता है, जिनकी लगाम बड़ों और पूँजीवादी विचारधारा वाले लोगों के हाथ में होती है।

फ्रान्स में अमरीकी बच्चों के साहित्य का विपरीत रूप मिलता है। वहाँ बच्चों को युवावस्था के लिए तैयार किया जाता है। सुखी जीवन बिताने के लिए उन्हें जीवन से संघर्ष करना सिखाया जाता है। वहाँ जीवन का भावनात्मक पक्ष प्रबल होता है और मनोरंजन का कोई महत्त्व नहीं होता। वहाँ तो एकमात्र उद्देश्य होता है कि बच्चे युवक बनकर जीवन की परिस्थितियों से संघर्ष करके उन्हें अपने अनुकूल बनाना सीखें। किन्तु अमरीका में बच्चों के मनोरंजन और उनके सुख का पूरा ध्यान रखा जाता है। वहाँ बच्चों के लिए माता-पिता के आदेश ही सब-कुछ होते हैं। उनकी अपनी भावनाओं का कोई महत्त्व नहीं होता। दूसरी ओर फ्रान्स के बच्चों में युवावस्था के अंकुर उगाए जाते हैं, जो भविष्य में उन्हें जीवन का एक सफल उपभोक्ता बनाते हैं।

और जब भारतीय बालसाहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं तो लगता है कि हम बच्चों को सदियों पीछे ले जाना चाहते हैं। वही जादूभरी घाटियाँ, परिकथाएँ, पुराणों की कहानियाँ घुमा-फिराकर सुनाते रहते हैं। बच्चों का एक प्रमुख पत्र पिछले दस से भी अधिक वर्षों से वही पुरानी दास्तान दुहराए जा रहा है। दूसरी ओर हम आगे बढ़ने का, नई दुनिया का सपना देखते हैं। पर यह भूल जाते हैं कि नई दुनिया के सपनों को साकार करने वालों को हम पुराने ही साँचे में ढाले जा रहे हैं। यहाँ के बालसाहित्य के लेखक और प्रकाशक अधिकांश ऐसे हैं, जो इसकी ओट में धन कमाने का उद्देश्य-मात्र लेकर चलते हैं। शायद इसीलिए बच्चों के प्यारे चाचा नेहरू ने एक बार कहा था, "दुर्भाग्य है कि जो लोग पुस्तकें लिखते और प्रकाशित करते हैं, उनमें से बहुत कम ऐसे हैं जो यह सोचते हैं कि बच्चों की वास्तविक माँग क्या है?"

आज के जीवन में बच्चों का जो स्वरूप है, वह किसी-न-किसी राजनीतिक अथवा पिछड़ी हुई सामाजिक विचारधारा से प्रभावित है। बच्चों को जिस मनोवैज्ञानिक साहित्य और व्यवहार की आवश्यकता होती है, उसे बिल्कुल ही अलग कर दिया गया है। तद्युगीन समाज और वातावरण के अनुकूल बच्चों को बनाना तो आवश्यक है, किन्तु उनकी मूल-प्रवृत्तियों को विकसित न होने देना, उनके प्रति अन्याय है। इससे वे एक ऐसा मॉडल बनकर तैयार होते हैं, जो किसी एक विशेष कम्पनी में ढला हुआ होता है।

आज संसार के प्रायः सभी देशों में बच्चों की स्वतन्त्रता, प्रवृत्ति और विचारधारा का कोई मूल्य नहीं रह गया। पर क्या यह गुत्थी यूँ ही अनसुलझी ही रहेगी? बदलते हुए युग और प्रतिमानों के साथ इसे भी सुलझाना होगा और ऐसे बालसाहित्य की रचना करनी होगी जो इस नये परिवेश में रहकर भी अपनी मूल विशेषताओं और प्रवृत्तियों को कम न होने दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक हिन्दी कविता में 'विराट्' तत्त्व

विराट्ता के प्रति आकर्षण और उसके सामने समर्पण की भावना मनुष्य में आदिम काल से आज तक किसी-न-किसी रूप में चली आ रही है। वेदों से लेकर आज तक के साहित्य में यह विराट्' तत्त्व—अपने अलग-अलग रूपों में—अभिव्यक्ति होता रहा है। मनोविज्ञान के अनुसार यह विराट् साधना मनुष्य की स्वाभाविक हीनताओं और अक्षमताओं की काल्पनिक संसार में पूर्ति है। यह स्वाभाविक ही है कि मनुष्य अपने ज्ञान और शक्ति की सीमित परिधियों से तंग आकर किसी विराट् तत्त्व की ओर आर्कार्षित हो—फिर चाहे वह इस विराट् की धारणा ईश्वर के रूप में करे या किसी महान आदर्श के रूप में। कई बार तो लगता है कि यह विराट् तत्त्व शायद महान् साहित्य का एक स्थायी उपकरण है। खैर इस बारे में काफ़ी मतभेद की गुंजाइश है। लेकिन साहित्य में इस विराट् तत्त्व के महत्त्व को बहुत कम लोग झुठला सकेंगे। यह विराट्ता न केवल किसी साहित्य को विशाल और व्यापक चित्रफलक देती है, बल्कि पाठक की आदिम समर्पण भावना को जगाकर, उसकी केन्द्रापगामी प्रवृत्तियों को उभार कर, उसे उस स्थिति के लिए प्रस्तुत करती है, जिसे मनोविज्ञान में तन्मयता या तादात्म्य की स्थिति कहा जाता है, और जिसे कलाओं के तथा प्रकृति के सौन्दर्यानन्द का प्रमुख आधार माना जाता है। यदि कविता मनुष्य के हृदय की मुक्तावस्था का, जिसे शुक्लजी रसदशा कहते हैं, साधन है, तो कविता में विराट्तत्त्व उसकी इस क्षमता का प्रमुख स्रोत है। पर कविता में विराट् तत्त्व की भूमिका सिर्फ इतनी ही नहीं है। विराट् तत्त्व न केवल कविता की विषय-वस्तु को ही गरिमा देता है, बल्कि कविता की शिल्प-शैली को भी उदात्त बनाता है। यूनानी दार्शनिक लोंजाइनस ने जिस उदात्त तत्त्व को काव्य में इतना अधिक महत्त्व दिया है, उसके वस्तुपक्ष के मूल में भी, स्वयं लोंजाइनस के अनुसार महान् विचारों की उद्भावना के रूप में यह विराट् तत्त्व ही रहता है।

साहित्य में यह विराट्-तत्त्व कई रूपों में व्यक्त होता है। भागवतकार ने जब आकाश, वायु, सलिल, पृथ्वी, नक्षत्रों, नदियों और दिशाओं को हरि का शरीर कहा तब वह अपने ढंग से इसी विराट्-भावना की अभिव्यक्ति कर रहा था।[1] खलील जिब्रान की अधिकतर कविताओं के आकर्षण का एक प्रमुख आधार यही विराट् तत्त्व

१. खं वायुमग्निं सलिलं महीश्च ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमाणि
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरम् यत्किंचभूतं प्रणमेदनन्यः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उनकी गुलामी नामक कविता की ये पंक्तियाँ देखिये :

सात हज़ार बरस पहले से, जब मैंने पहली बार जन्म लिया था, आज तक
मैं ज़िन्दगी के गुलामों को अपनी भारी बेड़ियां खींचते हुए देखता रहा हूँ
मैं पृथ्वी के पूर्वी और पश्चिमी छोर तक गया हूँ
मैंने सभ्यता के जुलूसों को उजाले से अँधेरे में जाते देखा है
और देखा है कि हर एक नरक तक खींचा गया है
गुलामी के जुए में जुती हुई अपमानित आत्माओं द्वारा
मैं बेबीलोन से काहिरा तक और एनदावर से बग़दाद तक गया हूँ
मैं कांगो के कूलों से फ़रात के तटों तक समय के साथ-साथ चला हूँ
नील के मुहानों से असीरिया के मैदानों तक
अथेन्स की रंगभूमियों से रोम के गिरजाघरों तक
और हर जगह गुलामी को
अज्ञान के एक गौरवपूर्ण जुलूस में घूमते देखा है।

हिन्दी की प्राचीन कविता में और आधुनिक छायावादी कविता में भी, इसका प्रयोग रहस्य-भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए खुलकर हुआ है। पर हिन्दी की रूमानी कविता में विराट्-तत्त्व ने अपनी अभिव्यक्ति एक दूसरे रूप में भी प्राप्त की है। बच्चन कहते हैं :

सृष्टि के आरंभ में मैंने उषा के गाल चूमे
बालरवि के भाग्य वाले दीप्त भाल विशाल चूमे
प्रथम संध्या के अरुण दृग चूमकर मैंने सुलाये
तारिका कलि से सुसज्जित नव-निशा के बाल चूमे
वायु के रसमय अधर पहले सके छू होठ मेरे
मृत्तिका की पुतलियों से आज क्या अभिसार मेरा
कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्‌गार मेरा।

इसे प्रकृतिगत विराट्ता की रूमानी अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

छायावादोत्तर हिन्दी कविता में विराट् तत्व के तीन प्रमुख रूप देखे जा सकते हैं। देशगत या भौगोलिक, कालगत या ऐतिहासिक और मानवीय। देशगत विराट्ता प्रगतिशील कविता में आकर एक अन्तर्राष्ट्रीय भावनावाद के रूप में साकार हुई है और इसका सबसे सुन्दर उदाहरण है नरेश मेहता की लम्बी कविता 'समय देवता'।

'समय देवता' अपने समय के संसार के भूगोल और इतिहास का एक विराट् चित्र है। सजग अलंकृति से सुसज्जित यह लम्बी कविता विश्व की प्राकृतिक संरचना का एक स्नेह-सिक्त चित्र ही नहीं, प्रकृति और वर्ग-स्वार्थों की बाधक शक्तियों के विरुद्ध जूझती हुई विराट् प्रगतिशील मानव-शक्तियों की वाणी भी है। भिन्न-भिन्न देशों की प्रकृति और लोक-जीवन का उदार मानववादी दृष्टि से किया हुआ यह चित्रण हिन्दी कविता में अभूतपूर्व है। इस कविता से कई उद्धरण देने का लोभ संवरण करना काफ़ी कठिन है। पहले दूर से, इस घूमती हुई पृथ्वी का एक चित्र देखिये :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूनानी मुनि प्लेटो की मुद्रा में बैठे समय सनातन
घूम रही मेरी पृथ्वी में आँख गड़ाए देख रहे क्या ?
बिछा हुआ है देव तुम्हारे प्रलय-सृजन की आँखों का आकाश
हमारे देशान्तर औ अक्षांशों के इन लम्बे बाँसों पर

और सोवियत धरती का यह चित्र :

यह यौवन की भूमि सोवियत
जहाँ मनुज की उसके श्रम की होती पूजा
पूंजी औ साम्राज्यवाद की तोड़ बेड़ियाँ
हाथों में नवजीवन की उल्काएँ लेकर मनुज खड़ा है, कुतुब सरीखा
उसके चलने में लोहा है
कौन रोक सकता है मानव को चलने से
जिसके संग संग ही आदिकाल से इन्द्र चल रहा
मनुज चल सके इसीलिए तो सूर्य चल रहा
सबसे पहले इसी भूमि पर श्रम की जयजयकार हुई थी
एक पुरुष लेनिन की वाणी शतकंठी हुंकार हुई थी
धीमे बोलो समय देवता !
उसी पुरुष की यह समाधि है
अभी-अभी जो कर्म-निरत था
अब आँखें आकाश मींचकर श्रम के सपने देख रही हैं !

इन पंक्तियों में विराट्-तत्त्व के एक तीसरे रूप—मानव का विराट् रूप में चित्रण का भी एक सुन्दर उदाहरण है।

चीन का यह चित्र देखिए :

यह जो पीली भूमि दीखती देव !
यही है पीत सूर्य की पीली वसुधा
जिसका होता क़हवा मीठा
श्रमण चीन का पीला चीवर अल्ताई पर बिछा हुआ !
वे अफ़ीम के खेत उदुम्बर रंगों में डूबे सोये हैं।
किन्तु आज तो चीन देश की वसुधा माता
झुलसी हुई मृतप्राय है
वे विदेश पूँजी की कीलें जो छाती में ठुकी हुई थीं
तीस वर्ष के बाद आज वे उखड़ रही हैं
मेरी चीनी माता की आँखों में कोई भाव नहीं है
राग प्रेम कुछ नहीं बचा है
केवल नयन-गगन में भूख-प्यास की चीलें मँडराती हैं
आज वर्दियां तीस साल के बाद उतरतीं
लगातार बारूद उगलते बन्दूकें भी हाँफ रही हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछली सारी फ़सलों के वे महल जल गये
जिनके हरे गलों में टँके हुए ताबीज़-गुलामी टूट रहे हैं
जाओ कालिदास के बादल चीनी धरती बुला रही है।
जाओ हे सत्तरंगी सूरज चीन देश में भोर हुई है।

और अमेरिका ?—

डमरू जैसा देश दिख रहा अमरीका का
कोलम्बस के पोत लगे थे इसके तट पर
उपनिवेश औ शोषण के हित
गगन विचुम्बित इन महलों की मनुज नींव है
जिनमें पैसे का निवास है
एटम औ उदजन बम है नभगामी महलों के कर में
चाह रहे जो सृष्टि-धरा को केवल हिरोशिमा कर देना
इसने पैसों की ईंटों से चाहा ऊँचे महल बनाना
किन्तु बन गये आज दैत्य ये
खड़े हुए हुंकार कर रहे
जिनकी अंधकार की लम्बी परछाहीं से
अतलांतिक औ महा पैसेफ़िक कांप रहे हैं।

निस्सन्देह हिन्दी की किसी और कविता में सामयिक विश्व का ऐसा विराट् चित्र नहीं मिलता। भौगोलिक और ऐतिहासिक विराट्-तत्व की प्रगतिशील अभिव्यक्ति शमशेर की एक कविता में भी बड़े सुन्दर ढंग से हुई है।

देखो न हकीकत हमारे ज़माने की कि जिसमें
होमर एक हिन्दी कवि सरदार जाफ़री को
इशारे से अपने क़रीब बुला रहा है
कि जिसमें फ़ैयाज खाँ बिटोवन के कान में कुछ कह रहा है
मैं शेक्सपियर का ऊँचा माथा उज्जैन की घाटियों में झलकता हुआ देख रहा हूँ
और कालिदास को वेमर के कुंजों में विहार करते हुए...
मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टेच्यू उतना ही प्यारा है
जितना मास्को का लाल तारा
मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुन रहा हूँ
जो वोल्गा से आये।

कविता में देश और काल की सब संकीर्ण परिधियों को तोड़कर उभरने वाली हमारे ज़माने की हकीकत की व्यंजना बड़े सुन्दर ढंग से की गई है।

परम्परागत शैली में एक सूफ़ी मस्ती को मिलाकर इसी सत्य की अभिव्यक्ति नीरज ने इस प्रकार की है :

इसको भी अपनाता चल, उसको भी अपनाता चल
राही हैं सब एक डगर के सब पर प्यार लुटाता चल !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई नहीं पराया सारी धरती एक बसेरा है
इसका खेमा पश्चिम में तो उसका पूरब डेरा है
श्वेत बरन या श्याम बरन हो सुन्दर या कि असुन्दर हो
सभी मछरियाँ एक ताल की क्या तेरा क्या मेरा है
गलियाँ गाँव गुँजाता चल, पथ-पथ फूल बिछाता चल
हर दरवाज़ा रामदुआरा सबको शीश झुकाता चल !

प्रगतिशील विराट् तत्त्व की अभिव्यक्ति मेरी अपनी एक कविता में इस प्रकार हुई है :

तुम ठीक कहती हो कि मैं तुम्हें···
लेकिन मैं क्या करूँ
मेरे ज्ञान ने मेरी संवेदनाओं के क्षितिज कितने फैला दिये हैं
कि दुनिया के कोने-कोने में मैं अपने दोस्तों और दुश्मनों को देख रहा हूँ
मेरे दोस्त :
जो मेरे दुश्मनों से एक निर्णायक लड़ाई में जूझ रहे हैं
और पेरिस के किसी चौराहे पर फहरता हुआ मज़लूमों का एक बुलन्द इरादा,
जंजीबार में उठी हुई मुट्ठियों का एक जुलूस,
न्यूयार्क में रंगभेद के खिलाफ़ कड़कता हुआ एक नारा
मुझे इस तरह रोमान्चित कर जाता है
जिस तरह महीनों की जुदाई के बाद तुम्हारा पहला आलिंगन !
और टोकियो में एक मजबूरन टूटी हुई हड़ताल,
लियोपोल्डविल में एक गिरफ़्तारी,
सिंगापुर में एक झुकी हुई गर्दनों का वापस लिया हुआ आन्दोलन
मेरे दिल पर अवसाद का इतना बोझ रख जाता है
कि मैं घंटों किसी से बात भी नहीं कर पाता !

ऐतिहासिक विराट्ता के कुछ सुन्दर उदाहरण रांगेय राघव के खण्डकाव्य 'मेधावी' में मिलते हैं। इतिहास का मानवीकरण करके उसकी विराट्ता का वर्णन देवराज की कविता 'इतिहास-पुरुष' की इन पंक्तियों में मिलता है :

व्यापक मैं हूँ विराट्
रोम-रोम में मेरे ज्ञान क्रिया भावाकुल चित्त लोक बस रहे हैं
बेगिनती चेतना की स्वप्न-बोध किरणों के
तार उलझ-फँस रहे हैं
मैं हूँ सहस्र नेत्र : लाख रंग रूपों पर
दृग मेरे गड़ रहे हैं
मेरे हजार बाहु संसृति के कण-कण को
बरबस पकड़ रहे हैं
मेरी विशाल बुद्धि सूर्य-चन्द्र-तारों के ताप-वेग नाप रही
मेरी अतर्क्य शक्ति जल, थल, समीर, व्योम, विद्युत को चाँप रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में प्रगतिवाद ने हिन्दी कविता को विराट् तत्त्व की अभिव्यक्ति के जितने अनुकूल अवसर दिये, उतने हिन्दी की किसी अन्य आधुनिक प्रवृत्ति ने नहीं दिये।

अरविन्दी प्रभाव में पनपनेवाली एक नई काव्य-प्रवृत्ति—सनातन 'सूर्योदयी' कविता में एक विशेष प्रकार की स्पेस-धर्मी विराट्ता के दर्शन होते हैं। यह विराट्ता रहस्यवादी विराट्ता से मिलती-जुलती होते हुए भी बहुत हद तक उससे भिन्न है। ऐसे विराट् तत्त्व के कुछ उदाहरण वीरेन्द्र कुमार जैन की कविताओं में मिलते हैं। इसी स्कूल के एक नये कवि श्री बारीन्द्र कुमार की एक कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं :

भेद कर व्यक्तित्व अपना कुछ इस तरह मैं फैल जाता
शून्य महदाकार के अस्तित्व में ही डूब रहता
न वात्याचक्र होता, न भँवरों की घिरन ही
न रेत पर अंकित अजाने चिह्न ही।
न होता दुःख, न होती सुख की बिछलन
किन्तु होता सिर्फ़
सप्तरंगी किरण-जल से प्लावित—यह अनन्त आकाश
नीलाभ, स्वर्णिम और स्वर्गिक !

और जहाँ तक प्रयोगवादी कुण्ठित लघुमानवों का सवाल है, इन बिचारे बौने कवियों को अपनी क्षुद्र अहंताओं, कुण्ठाओं और विकृतियों के वर्णन से ही फ़ुरसत कहाँ मिली कि ये अपने से बाहर निकलकर विराट्ता को देख सकते। पर फिर भी विराट्ता ने उन्मेश के कुछ क्षणों में इन कवियों को भी कभी-कभार अपना माध्यम बनाया ही है। लघु मानववादियों के नेता अज्ञेय में यह क्षमता अन्य लघुमानवों की अपेक्षा अधिक रही है। उनकी एक कविता है :

चुप-चाप चुप-चाप
झरने का स्वर हम में भर जाए,
चुप-चाप चुप-चाप
शरद की चाँदनी
झील की लहरों पर तिर आए,
चुप-चाप चुप-चाप
जीवन का रहस्य
हमारी आँखों में गहराए,
चुप-चाप चुप-चाप
हम पुलकित विराट् में डूबें
और विराट् हममें, मिल जाए
चुप-चाप चुप-चाप···

विराट् में चुपचाप डूबने का यह चित्र वास्तव में सुन्दर है और इस बात का प्रमाण है कि अहम्‌वादी व्यक्ति भी विराट् के पवित्र स्पर्शों से वंचित नहीं रखे जाते, बशर्ते कि उनमें कुण्ठाओं और विकृतियों से बाहर निकल सकने का थोड़ा भी माद्दा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० श्रीमती गिरीश रस्तोगी

संस्कृत नाटकों में संगीत की परम्परा

वैदिककाल से ही जन-जीवन के बीच नाटक का किंचित् स्वरूप विद्यमान था। वैदिक साहित्य, इतिहास, पुराण और लोकगीत आदि से प्रेरणा पाकर ही संस्कृत नाटक परिष्कृत रूप में हमारे सम्मुख आए। ऋग्वेद-काल में नृत्य, गीत, वाद्य तथा अभिनय, संवाद एक-दूसरे से अभिन्न थे। संगीत के साथ-साथ नाटक का जन्म हो रहा था। उसका विकास अवश्य स्वतन्त्र रूप में नहीं हो पाया था। लोक-जीवन में प्रचलित नाटक नृत्य-गीत से पूर्ण होते थे क्योंकि जनता की रुचि यथार्थ जीवन के ठोस धरातल की ओर उतनी नहीं थी जितनी उत्सव मनाने, आनन्दानुभव करने तथा हर्षातिरेक में मस्त हो जाने की ओर थी। इसी कारण वे नाचकर, गाकर, अभिनय किया करते थे और अपनी मनोरंजन-प्रिय प्रवृत्ति को संतुष्ट करते थे। भरतमुनि ने जन-जीवन में नाटक की ओर यह विशिष्ट प्रेम-प्रवाह एवं रोचकता देखकर नाटक-कला को नियमों में बांधकर उसका गंभीर विवेचन किया और उसे एक परिष्कृत तथा विकसित साहित्य का रूप प्रदान किया। डॉ० दशरथ ओझा का कथन है—

"जन-नाटक तो स्वाभाविक रूप में जन-समुदाय में विद्यमान था ही, केवल इतना ही अवशिष्ट था कि जन-नाटकों का अभिनव संस्कृत रूप उपस्थित किया जाय जिससे समस्त वर्णों एवं सभी जातियों का मनोरंजन तथा उन्नयन हो। यही काम भरतमुनि ने किया।"[१]

अस्तु यह नितान्त सत्य है कि जन-समूह की रंजन-प्रवृत्ति को देखते-समझते हुए सर्वप्रथम भरत ने ही नाट्यशास्त्र में नाटक के साथ-साथ संगीत का भी विशद विवेचन किया।

संगीत की यह धरोहर हमें संस्कृत नाटकों में अपने अक्षुण्ण रूप में प्राप्त होती है। नाट्य-कला तथा संगीत-कला के शास्त्रीय विवेचन के उपरान्त संस्कृत में साहित्यिक नाटकों की परम्परा विकसित हो चली। इन संस्कृत-नाटकों का उद्देश्य भाषा एवं भावों के योग द्वारा उस रस का साधारणीकरण करना व काव्यानन्द की अनुभूति कराना था, जिसे 'ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है।'[२]

१. डॉ० दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ० १६।

2. "The Sanskrit play does not attempt to present a realistic view of everyday life. It relies largely on evoking the right sentiments (Rasas). The play's purpose is accomplished of this evoking of sentiments appropriate to the theme is brought about by the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसी 'काव्यानन्द' की सृष्टि करने के हेतु संस्कृत नाटककारों ने संगीत का प्रश्रय लिया क्योंकि संगीत मानव-मन को अधिक स्पर्श करता है अतः आनन्दानुभूति का कारण होता है। एक विशेष बात केवल यह है कि इन नाटकों में नृत्य एवं वाद्य का जितना प्रयोग हुआ है उतना गीत का नहीं। विभिन्न उत्सवों के शुभावसर पर प्रजा के नृत्य का वर्णन किया गया है। स्थान-स्थान पर वाद्य-वादन की चर्चा की गई है। फिर भी सम्पूर्णतः दृष्टि डालने पर यह अवश्य ज्ञात हो जाता है कि नाटककारों को संगीत-कला का पर्याप्त ज्ञान था और साथ ही जनता के बीच प्रचलित उत्सवों तथा जनता की नाचने-गाने की प्रवृत्ति के विषय में ज्ञान था। इसी कारण उन्होंने समयानुसार ताल, लय, स्वर, राग, नृत्य, वादन, आदि का शास्त्रीय रीति से भी वर्णन किया है।

संस्कृत नाटकों में संगीत का प्रयोग जिन अवसरों पर जिन रूपों में किया गया है वह निम्न प्रकार से है—

१. नाटक के प्रारम्भ होने से पूर्व नान्दी के अन्तर्गत अथवा नान्दी के उपरान्त सूत्रधार अथवा नटी के द्वारा गान।
२. राज-दरबार में नृत्य, वादन तथा गीत।
३. विविध उत्सवों पर प्रजागण द्वारा आनन्दातिरेक में नृत्य एवं सहगान—उदाहरणार्थ मदनोत्सव आदि।
४. संगीतशाला में नृत्य, गान तथा वादन-शिक्षा।

भरत के नाट्यशास्त्र में विहित नियमों के अनुसार नाटक प्रारम्भ होने से पूर्व कुछ अन्य कार्यों का सम्पन्न होना अनिवार्य था। उदाहरणार्थ मृदंग की ध्वनि के उपरान्त वाद्य-वादन और पुनः तांडव नृत्य के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश होता था। इस दृष्टि से नाटक से पूर्व संगीत द्वारा दर्शक-मंडली को आकर्षित किया जाता था और नाटक के अनुकूल वातावरण की सृष्टि की जाती थी। पूर्व-संगीत द्वारा नाटक की सफलता के लिए ईश्वर-स्तुति की जाती थी। सूत्रधार के रंगमंच पर आने पर भी नट, नर्तक आदि द्वारा संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता था ऐसा कई नाटकों से ज्ञात होता है। 'वेणी संहार' नाटक के प्रथम अंक में सूत्रधार कहता है—

"एते खल्वार्यविदुराज्ञया पुरुषाः सकलमेव शैलूषजनं व्याहरन्ति-
प्रवर्त्यन्तामपरिहीयमानमातोद्यविन्यासादिका विचयः।"

(ये राजकर्मचारी आर्य विदुराज्ञा से सभी नटों को आज्ञा देते हैं कि वे गाना, बजाना और नृत्य बिना किसी न्यूनता के करते जाएँ।)

सूत्रधार कहता है—

"तत्किमिति परिपार्श्विक, नारभ्यसि कुशीलवैः सह संगीतकमेलकम्।"[1]

(भाई, नटों के साथ सांगोपांग संगीत आरम्भ क्यों नहीं करते?)

grace and skill of the language and gestures."
—Wilson, Raghavan, Vidyabhushan : The theatre of the Hindus : P. 214.

१. भट्टनारायण : वेणी संहार : प्रथम अंक : पृ० ९-१२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार 'मुद्राराक्षस' नाटक में सूत्रधार रंगमंच पर आकर कहता है—

"तद्यावद् इदानीं गृहं गत्वा गृहिणीमाहूय गृहजनेन सह संगीतकमनुतिष्ठामि ।"[1]

इसी प्रकार 'मृच्छकटिक' में भी सूत्रधार कहता है—

"अये, शून्येयमस्मत्संगीतशाला, क्वनुगता कुशीलवा भविष्यन्ति "[2]

इन नाटकों के अतिरिक्त कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'[3] और भास के 'प्रतिभानाटक'[4] के प्रथम अंक में भी सूत्रधार के कहने पर नटी द्वारा संगीत-प्रयोग का वर्णन किया गया है । यह प्रक्रिया हमें सभी नाटकों में मिलती है ।

संगीत का दूसरा स्वरूप हमें राज-दरबारों में प्राप्त होता है जो राजदरबारियों की संगीत-प्रियता तथा संगीत के प्रचलन का संकेत करता है । नाटक के पात्र राजा व राजकुमारी के रूप में संगीत के अनन्य प्रेमी दिखाये गए हैं । डा० वी० राघवन् का कथन इस मत को और भी पुष्ट कर देता है—

"नृत्य और गीत प्राचीन भारत में उच्च कोटि की दरबारी-कलाओं में से हैं। ये नृत्य एवं गीत गाँवों तथा गलियों में दिखाये जानेवाले लोकगीत एवं लोकनृत्य नहीं थे । राज-महलों में नाट्य के लिए पृथक् शालाएँ होती थीं ।[5]

कालिदासकृत 'मालविकाग्निमित्र' में नायिका मालविका दरबार में राजा के सम्मुख 'छलिक' नृत्य करती है । उसका गुरु गणदास नृत्य प्रारंभ होने से पूर्व दरबार में कहता है—

"महाराज शर्मिष्ठा द्वारा प्रकाशित मध्यम लय समन्वित चतुष्पद गान है, उसी में छलिक नामक अभिनय से चमत्कृत गान प्रस्तुत होगा ।[6]

इस नृत्य के साथ अभिनय, गान, वाद्य तथा मुद्राओं का समन्वित रूप चलता है । अतएव यह ज्ञात होता है कि गान के साथ नृत्य का भी चलन था । 'स्वप्नवासवदत्ता' में राजा उदयन तथा वासवदत्ता के वीणा-वादन का उल्लेख किया गया है।[7] प्रतिहारी कहती है—

"श्रृणोत्वार्यः । अद्य भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा वादिता । तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्-घोषवत्याः शब्द इव श्रूयत इति ।"

---

१. विशाखदत्त : मुद्राराक्षस : प्रथम अंक : पृ० ६ ।
२. शूद्रक : मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० ११ ।
३. कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पृ० ७० ।
४. भास : प्रतिभानाटक, प्रथम अंक, पृ० ४ ।
5. "Dance and music are highly evolved court-art in ancient India. They were not the folk-arts to be shown on the streets or near the village shrines. The palaces contained seperate halls for Natya."

—Wilson, Raghavan, Vidyabhushan, The theatre of the Hindus, P. 156

६. कालिदास : मालविकाग्निमित्र, पृ० ५६ ।
७. भास, स्वप्नवासवदत्ता : अंक ६, पृ० २०६ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अंक में राजा उदयन भी कहते हैं—

"अभ्यास के समय दी हुई शिक्षाओं में भी मेरी ओर देखते हुए जिसने हाथ से मिजराव छूट जाने पर बिना ताल-लय के वीणा बजाई, उसी की याद आ रही है।[1]

संस्कृत नाटकों में प्रजा के मध्य विविध उत्सवों के आयोजनों का उल्लेख है। ये उत्सव नाच-गाकर मनाती थी। कर्पूरमंजरी' नाटक में वटसावित्री महोत्सव के अवसर पर 'चर्चरी' नृत्य का दृश्य विस्तारपूर्वक दिखाया गया है, जिसमें दूर नर्तकी गोलाकार होकर गीत गाती है और गोलाकार में स्थित होकर ही कलात्मकता के साथ ताल का ध्यान रखते हुए विविध भावों एवं मुद्राओं का प्रदर्शन करती हैं। नाटककार ने उस दृश्य का अतीव मोहक वर्णन किया है—

"किङ् किणीकृतझणज्झणमन्याः कण्ठगीतिलययन्त्रिततालम्।
योगिनीव लयनर्तनलीलां तारनूपुररवं विरचयन्ति ॥"[2]

भवभूति के 'मालतीमाधव' के दशम अंक में भी महोत्सव में बंधुवर्ग तथा अवलोकितादिजन के नृत्य का उल्लेख मिला है।

कुछ संस्कृत नाटकों से यह भी संकेत मिलता है कि राजमहलों में 'संगीत-शाला' का प्रबन्ध रहता था जहाँ संगीत सभा के विविध आयोजन हुआ करते थे। कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में 'संगीतशाला' का उल्लेख किया है।[3] भवभूति के 'मालतीमाधव' नाटक से भी द्वितीय अंक में संगीत शाला का नाम आया है।[4] इसी प्रकार 'मृच्छकटिक' नाटक में सूत्रधार द्वारा 'शून्येयमस्मत्संगीतशाला'[5] का संकेत मिलता है।

प्रयोजन की दृष्टि से संस्कृत नाटकों में संगीत का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में हुआ है—

१. रसानन्द की सृष्टि के लिए।
२. लोक-रंजनार्थ।
३. वातावरण की सृष्टि के लिए।
४. प्रकृति-चित्रण अथवा ऋतु-वर्णनार्थ।
५. पात्रों की मानसिक भावाभिव्यक्ति के लिए।
६. पात्रों की संगीत-प्रियता के प्रदर्शनार्थ।

वस्तुतः वैदिक काल में अन्य पुराणों में तथा जन-समुदाय के बीच नाटकों में संगीत का जो रूप विद्यमान था वही संस्कृत नाटकों में उपलब्ध होता है। संस्कृत नाटकों का मुख्य उद्देश्य नाट्यशास्त्रानुसार रसानन्द की सृष्टि करना रहा है, अतः संगीत को भी उसी के सहायक रूप में लिया गया है। कारण यह है कि इन नाटकों में

१. वही, अंक ५; पृ०
२. राजशेखर, 'कर्पूरमंजरी', श्लोक १७, पृ० ६८-६९।
३. कालिदास, 'मालविकाग्निमित्र', प्रथम अंक, पृ० ६।
४. भवभूति, 'मालतीमाधव', पृ० ८४।
५. शूद्रक, 'मृच्छकटिक', पृ० ११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें 'गान्धर्व' संगीत ही अधिक मिलता है जो अत्यन्त कलात्मक, गम्भीर प्रकृति का शुद्ध-पवित्र संगीत होता था तथा जिसका सम्बन्ध देवस्तुति से होता था। इसे मार्गी संगीत भी कहते थे। 'मृच्छकटिक' में नायक चारुदत्त के लिए 'गान्धर्वं श्रोतुं गतस्य' का प्रयोग कवि शूद्रक ने किया है,[1] जिससे गान्धर्व संगीत के प्रचलन का आभास होता है।

इसके साथ-साथ संस्कृत नाटकों में संगीत का प्रयोग लोकरंजनार्थ भी हुआ है। स्थान-स्थान पर प्रजाजन के बीच, उत्सव-विशेष पर, नृत्य, गान, वाद्य-वादन इत्यादि का चित्रण इसी प्रवृत्ति के कारण हुआ है। संगीत द्वारा मनोरंजन केवल प्रजा तक ही सीमित नहीं है, पात्रों में भी यह रंजन-प्रवृत्ति पाई जाती है। विशेषता यही है कि लोकरंजन के लिए किसी प्रकार के हल्के अथवा अत्यन्त प्रचलित संगीत का प्रयोग नहीं होता था वरन् जनता उसी संगीत में आनन्द लेती थी जो उच्च कोटि का होता था।

नाटकों के प्रारम्भ में ईश्वर-स्तुति, वाद्य-वादन तथा सूत्रधार अथवा नटी द्वारा गान इत्यादि का मुख्य प्रयोजन वातावरण की सृष्टि करना ही रहा है। इस प्रकार का संगीत दर्शकों को आकृष्ट करके चारों ओर नाट्य-विषय से सम्बन्धित वातावरण की सृष्टि करता था। राजदरबारों में भी नृत्य, वादन, गान आदि का जो आयोजन किया गया है वह एक ओर तो राजाओं की संगीत-प्रियता एवं कला-सम्मान का प्रदर्शक है, दूसरी ओर दर्शकों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र एवं तत्कालीन संगीत के ज्ञान का परिचायक है।

संगीत द्वारा प्रकृति-वर्णन अधिक नाटकों में नहीं उपलब्ध होता है। जिन नाटकों में ऋतु-वर्णन के लिए संगीत का प्रयोग किया गया है वह अवश्य प्रशंसनीय है। 'वेणीसंहार' नाटक में संगीत आरम्भ करने के लिए सूत्रधार की आज्ञा होने पर परिपार्श्विक पूछता है—'कतमं समयमाश्रित्य गीयताम्'[2] अर्थात् 'किस ऋतु के आधार पर गाया जाए ?'

सूत्रधार कहता है—

'शरत्समयमाश्रित्य प्रवर्त्यतां संगीतकम्'[3]

(शरत्समय पर आधारित संगीत आरम्भ करो।)

स्पष्ट है कि ऋतु, समय आदि का ध्यान करके संगीत की योजना की जाती थी। भास के 'प्रतिमानाटक' में सूत्रधार के कहने पर नटी द्वारा गाये गए गीत का उल्लेख है जिसमें शरद ऋतु के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।[4] इसी प्रकार 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में अत्यन्त मधुर शब्दों में नाटककार कालिदास ने ग्रीष्म ऋतु के आगमन की सूचना दी है। सूत्रधार के कहने से नटी रंगमंच पर गाती है—

१. शूद्रक, 'मृच्छकटिक', पृ० १५१।
२. भट्टनारायण, 'वेणीसंहार', पृ० ६।
३. वही, पृ० ११-१२, प्रथम अंक।
४. भास, 'प्रतिमानाटक', पृ० ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेशरशिखानि ।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि ॥'[1]

(स्त्रियाँ अतीव कोमलता से हाथ से पकड़कर शिरीष के उन पुष्पों के कर्णफूल बनाती हैं, जिनके तन्तुओं की नोकें अत्यन्त कोमल हैं और जो काले भौंरों द्वारा धीमे से चूमे गए हैं ।)

संस्कृत नाटकों में ऐसे संगीत का अभाव है जिसके द्वारा पात्रों के मानसिक घात-प्रतिघात तथा भावों की अभिव्यंजना हो सके । संगीत-कला की यह मनोवैज्ञानिकता, पात्रों के भावों के उतार-चढ़ाव तथा अन्तर्द्वन्द्व से उसका सम्बन्ध हमें हिन्दी-नाटकों में ही मिलता है । संस्कृत के एक-दो नाटकों में ही नृत्य-वादन एवं गीत का सम्बन्ध पात्र की मन-स्थिति से दीखता है । 'मालविकाग्निमित्र' में नायिका मालविका जब राजा के सम्मुख दरबार में 'छलिक' नृत्य करती है तब उस नृत्य के साथ उसका गान मालविका की मानसिक स्थिति, उसके हृदय में उठते हुए प्रेमांकुरों का प्रतीक है । राजा के प्रति अपने भावों का समर्पण अभिनय द्वारा सांकेतिक रूप में करते हुए वह गाती है—

'हे नाथ इस जन को स्वानुरागिनी जानना'[2]

इस प्रकार के भावों एवं अन्तर की गहराई को संकेत द्वारा अपने प्रेमी के सम्मुख प्रस्तुत करने का यह कौशल इस नाटक में द्रष्टव्य है । इस प्रकार की गहनता का स्वर-प्रदर्शन संस्कृत-नाटकों में बहुत कम मिलता है ।

संगीत का अन्तिम प्रयोजन संस्कृत-नाटकों में पात्रों की कला-कुशलता तथा संगीत-प्रियता के प्रदर्शनार्थ रहा है । 'स्वप्नवासवदत्ता' का पात्र राजा उदयन कला-प्रेमी है । कला-प्रियता व कुशलता का सर्वोत्तम उदाहरण 'मृच्छकटिक' का नायक चारुदत्त है । वह संगीत के साथ-साथ ऋग्वेद तथा सामवेद का सच्चा अनुभवी एवं ज्ञाता है । रेभिल नामक गायक से संगीत सुनने के उपरान्त चारुदत्त का कथन उसकी संगीत-प्रियता के साथ-साथ कवि-शूद्रक की कला-प्रियता का भी परिचायक है—

'रक्तं च नाम मधुरं च समं स्फुटं च
भावान्वितं च ललितं च मनोहरं च ।'

(वह गीत अनुरागवर्धक, मधुर, समतायुक्त, स्पष्ट इत्यादि भावों से युक्त तथा अत्यन्त मनोहर था ।)

'तं तस्य स्वरसंक्रमं मृदुगिरः श्लिष्टं च तन्त्रीस्वनं,
वर्णानामपि मूर्च्छनान्तरगतं तारं विरामे मृदुम् ॥
हेलासंयमितं पुनश्च ललितं रागद्विरुच्चारितं,
यत्सत्यं विरतेऽपि गीतसमये गच्छामि शृण्वन्निव ॥'[3]

(उसकी वह मधुर वाणी, स्वरों का उतार-चढ़ाव, शब्दों का अनुगामी वीणा का शब्द,

---

१. कालिदास, 'अभिज्ञानशाकुन्तल', पृ० ७० ।
२. कालिदास, 'मालविकाग्निमित्र', पृ० ६० ।
३. शूद्रक, 'मृच्छकटिक', तृतीय अंक, पृ० १५३-१५४ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत के वर्णों का मूर्च्छना के समय ऊँचे तथा विराम में मृदु स्वर से बोलना तथा सहसा रुककर पुनः लय के साथ दो-दो बार गाये हुए संगीत का बोलना बड़ा सुन्दर था। सच तो यह है कि गान-समय के बीत जाने पर भी मैं उस गीत को सुनता-सा जा रहा हूँ।)

चारुदत्त के इस कथन में स्वर, ताल, लय, गीत के वर्ण, मूर्च्छना, आरोह-अवरोह तथा संगीत के अमिट प्रभाव का बड़ी सुन्दरता से चयन किया गया है। यह भी सिद्ध होता है कि जनता में शास्त्रीय संगीत को समझने तथा उससे आनन्दित होने की सामर्थ्य थी।

संस्कृत-नाटकों में संगीत के नृत्य, वाद्य, गीत तीनों अंगों की दृष्टि से यदि अवलोकन करें तो हमें नृत्य और वाद्य का ही प्रयोग अधिक दृष्टिगत होता है। गीतों का प्रयोग एवं उनकी संख्या बहुत कम है। एक गीत तो 'मालविकाग्निमित्र' में मालविका 'छलिक' नृत्य के साथ गाती है जिसका उद्धरण ऊपर दे दिया गया है। दूसरा गीत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए नटी गाती है—'ईषदीषच्चुम्बितानि·········।' यह विशुद्ध गीत है जिसमें नृत्य का आश्रय नहीं लिया गया है। श्रीहर्ष के 'नागानन्द' नाटक में भी एक गीत प्राप्य है जो पार्वती-स्तुति के रूप में है। वीणा बजाते हुए मलयवती गाती है—

'उत्फुल्लकमलकेसरपरागगौरद्युते ! मम हि गौरि।
अभिवाञ्छितं प्रसिध्यत, भगवति ! युष्मत्प्रसादेन ॥'[1]

(खिले हुए कमल के केसर की धूलि की तरह गौरक्रान्ति को धारण करनेवाली ऐ ऐश्वर्यसम्पन्न भगवती गौरी ! आप मेरे ऊपर दया कीजिए, जिससे मेरी मनोकामना पूर्ण हो।)

निष्कर्ष यह निकलता है कि संस्कृत-नाटकों में शास्त्रीय संगीत तथा संगीत के नर्तन, वादन, गायन तीनों रूप मिलते हैं, किन्तु नर्तन-वादन अधिक प्रयुक्त हुए हैं। वस्तुतः संस्कृत-नाटकों से पूर्व भी नृत्य और वाद्य का ही अधिक प्रचलन था। जन-नाटकों में भी नृत्य की प्रधानता थी। यही कारण है कि जन-प्रवृत्ति के प्रतीक-स्वरूप नृत्य, गान तथा वाद्य को इन नाटककारों ने स्वीकार किया। संस्कृत के बहुत-से नाटकों में तो संगीत का उल्लेख ही नहीं है। इस अभाव तथा विशुद्ध गीत मात्र के अभाव का एक कारण यह हो सकता है कि सभी संस्कृत-नाटकों में गद्य-पद्य का सम्मिश्रण किया गया है। पद्यात्मक श्लोकों में लय होने के कारण संगीत का किंचित् सौन्दर्य आ जाता है। डॉ० कीथ का कथन है—

"वैदिक काल और उसके बाद भी संस्कृत-नाटकों में पद्य का प्रयोग मनोरंजन तथा भक्ति के रूप में गीत के महत्त्व की दृष्टि से होता था। इसके अतिरिक्त हमारे वर्तमान नाटक महाकाव्य की पद्यात्मक प्रणाली से अत्यधिक प्रभावित हैं।"[2]

---

१. श्रीहर्षदेव, 'नागानन्दम्', प्रथम अंक, विद्याविलास प्रेस, बनारस, १९४८; पृ० ३३।
2. Dr. Kieth : Sanskrit Drama p. 23.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्यांकन

डॉ० बेचन

परशुराम की प्रतीक्षा : कोयला और कवित्व

आज से चौबीस साल पहले हिन्दी के प्रगतिवादी आलोचक श्री शिवदानसिंह चौहान ने दिनकरजी के विषय में लिखा था कि दिनकरजी क्रान्ति की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करनेवाले 'नाशवादी' कवि (Anarchist) हैं।[1] सन् १९६३ ई० में प्रकाशित दिनकर के काव्यसंग्रह 'परशुराम की प्रतीक्षा' को देखकर शिवदानजी की उपर्युक्त अभ्युक्तियाँ हठात् याद आ जाती हैं। परशुराम का आह्वान करते हुए लगभग ३२ पृष्ठों की एक लम्बी कविता दिनकर ने लिखी है। इसीलिए ८० पृष्ठों के इस संग्रह का नाम 'परशुराम की प्रतीक्षा' रखा गया है, जिसकी पहली कविता 'परशुराम की प्रतीक्षा' है। इस 'नाशवादी (एनारकिस्ट) परम्परा के प्रतीक परशुराम हैं जिनके दुर्धर्ष चरित्र का चित्रण भारतीय साहित्य में हुआ है। कवि के अनुसार वह परशुराम आधुनिक भारत (स्वतन्त्र भारत) का होनेवाला नया नेता है। कवि ने कल्पना की है कि आज के वर्तमान नेता हमारे देश की सुरक्षा करने में असमर्थ हैं—

"जो सत्य जानकर भी न सत्य कहता है,
या किसी लोभ के विवश मूक रहता है,
उस कुटिल राजतन्त्री कदर्य को धिक् है,
यह मूक सत्यहन्ता कम नहीं अधिक है।
चोरों के हैं जो हितू, ठगों के बल हैं,
जिनके प्रताप से पलते पाप सकल हैं,
जो छल-प्रपंच, सब को प्रश्रय देते हैं,
या चाटुकार जन से सेवा लेते हैं;
यह पाप उन्हीं का हमको मार गया है,
भारत अपने घर में ही हार गया है।
नेता निमग्न दिन-रात शान्ति चिन्तन में,
कवि कलाकार ऊपर उड़ रहे गगन में।
यज्ञाग्नि हिन्द में समिध नहीं पाती है,
पौरुष की ज्वाला रोज बुझी जाती है।[2]

यह नया परशुराम कुछ नहीं चाहता, केवल देश की सुरक्षा के लिए प्रहरी का कार्य करेगा—

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य; पृ० १६८।
२. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० १-४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मत डरो, सन्त यह मुकुट नहीं माँगेगा,
धन के निमित्त यह धर्म नहीं त्यागेगा।
तुम सोओगे, तब भी यह ऋषि जागेगा,
ठन गया युद्ध तो बम-गोले दागेगा।"

आज की समाजवादोन्मुखी शासन-व्यवस्था में ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना नाशवादी विचारधारा मानी जायगी। 'नाशवादी' विचारधारा को मानने वाले दो प्रकार के होते हैं। एक वर्ग तो व्यक्ति को समाज से ऊँचा समझता है और दूसरा वर्ग सामूहिक जीवन को व्यक्ति से अधिक महत्व देता है। व्यक्ति या समूह की सत्ता पर जोर देते हुए भी दोनों वर्ग यह मानते हैं कि राज्य का विनाश हो जाय।[1] दिनकरजी व्यक्ति (परशुराम) की सत्ता का जयगान करते हैं, किन्तु उसका क्षेत्र थोड़ा विकसित करते हुए समाज से भी जोड़ देते हैं। परिणामस्वरूप इनका यह एनारकिस्ट थॉट उपर्युक्त दोनों प्रकारों का समन्वय है—

"विक्रमी रूप नूतन अर्जुन जेता का,
आ रहा स्वयं यह परशुराम त्रेता का।
यह उत्तेजित, साकार क्रुद्ध भारत है,
यह और नहीं कोई, विशुद्ध भारत है।"[2]

'एनार्की' कविता में कवि ने भारत की वर्तमान नाशवादी भावना और छीना-झपटी का सजीव चित्र खींचा है। संग्रह की कविताओं में नया भारत मुखरित हो उठा है। दिनकरजी युग-कवि हैं—उन्होंने स्वयं अपने को 'काल का चारण' कहा है। युग-बोध का ज्ञान दिनकरजी को सदैव रहा है। इसलिए समग्र समकालीन परिस्थिति को कवि ने अपने काव्य का विषय बनाया। दिनकर के समान शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा कवि होगा जो युग के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह इतनी सजगता से कर रहा हो। इस दृष्टि से बड़े-छोटे मार्क्सवादी कवि भी दिनकरजी से पीछे छूट जाते हैं और नये परिप्रेक्ष्य पर कविता लिखते हुए 'मार्क्स की दाढ़ी में जुएँ'[3] ढूँढ़नेवाले कवियों से भी ज्यादा जोश एवं चमत्कार अपनी नयीं कविताओं में उत्पन्न करते हुए कहते हैं—"गांधी की रक्षा करने को गांधी से भागो'।[4] गांधी ने ही कभी कहा था, जब कायरता और हिंसा में चुनाव करने का प्रश्न उठे तो हिंसा को चुनना चाहिए।[5]

अपने एक रेडियो भाषण में भी कवि ने कहा था कि "आज जो हिंसा-अहिंसा की बातें करता है वह देश को कमज़ोर बनाता है।" कवि का यह कथन विचारणीय है। नयी कविता के युग में भी दिनकर क्रियाशील रचनाकार हैं—नयी कविता के तथाकथित नवीन शिल्प के प्रयोगकर्ता कवियों से भी अधिक। यह बात दूसरी है कि

१. Anarchist Thought in India—Adi H. Doctor. P. 2.
२. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० १६।
३. नागार्जुन, धर्मयुग १९६२ ई०।
४. परशुराम की प्रतीक्षा पृ० ५८।
५. सर्वोदय तत्व-दर्शन, पृ० ६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी कविता के कवि दिनकरजी को नयी कविता का कवि न मानें और शायद दिनकर भी अपने को नयी कविता का रूढ़िवादी कवि मानने से इनकार कर सकते हैं, किन्तु दिनकरजी की कविता नये परिप्रेक्ष्य में नयी हैं। "नये को वास्तव में नया होना चाहिए, जीवन के ठोस प्रश्नों से सम्बन्धित जीवन की नयी शक्तियों का प्रतिनिधि।"[1]

शिवदानजी के द्वारा अभिव्यक्त नये साहित्य की इससे ज्यादा सही अन्य परिभाषा नहीं हो सकती है। दिनकरजी यह स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं कि उनकी नयी कविताएँ वस्तुतः नयी हैं। कई एक इंटरव्यू में, इनकी कविताओं को नयी कविता कहने वालों के प्रति, इन्होंने शिकायत व्यक्त की है। खैर ! कवि की धारणा चाहे जो कुछ भी हो किन्तु शिवदानजी की व्याख्या के अनुसार दिनकर की नयी कविताएँ वस्तुतः नयी हैं। इन कविताओं में जीवन के ठोस नये प्रश्नों को उठाया भी गया है और उसका समाधान भी खोजा गया है। इसीलिये ये सारी कविताएँ कवि की नयी शक्तियों का परिचय देती हैं। समसामयिक चेतना ही आधुनिकता और नवीनता का पर्याय है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' के बाद सन् १९६४ में प्रकाशित उनका काव्य संग्रह 'कोयला और कवित्व' इसका सुन्दर उदाहरण है। इस संग्रह में कवि ने आत्म-चिंतन किया है, अपने को खोजा है, पहचानने की कोशिश की है और कभी-कभी to be or not to be वाली स्थिति का भी परिचय दिया है। डॉ० रामविलास शर्मा[2] ने उचित ही इस संग्रह को थकन, द्विधा और प्रयत्न का काव्य कहते हुए दिनकर की उपर्युक्त हीन भावना पर आघात किया है (क्योंकि दिनकर अपनी कविताओं को नयी कविता कहने की हीन भावना से आक्रान्त हैं)। डॉ० शर्मा कहते हैं—"शायद अपनी पुरानी कविताओं से खुद ही कुछ ऊबकर दिनकरजी ने कुछ नये ढंग की नयी कविताएँ भी लिखी हैं। वे इस संग्रह में हैं, इससे पहले के भी एकाध संग्रह में हैं जहाँ वह कष्ट-साध्य अलंकारों के सहारे कविता में चमत्कार पैदा करने का प्रयत्न करते हैं, वहाँ उनका स्वर सच्चा नहीं लगता। इस तरह की रचनाएँ दिनकरजी की प्रतिभा के योग्य नहीं है, वैसे ही जैसे बहुत ज्यादा गर्जन-तर्जन करने वाली पंक्तियाँ—जहाँ-तहाँ कुछ इस संग्रह में भी हैं—हमें प्रभावित नहीं करतीं। किन्तु दिनकरजी पुरानी कविता का अनुसरण और नये कवियों का अनुकरण—किये बिना भी बहुत सुन्दर पंक्तियाँ—काफी सुन्दर कविताएँ लिखते हैं। वह उन थोड़े से कवियों में हैं, जिनकी प्रतिभा निरन्तर विकसित होती जा रही हैं।"

गत् १९५४ ई० में प्रकाशित 'नीलकुसुम'[3] की भूमिका में भी दिनकरजी ने नये कवियों की कविताओं के प्रति आकर्षण का भाव व्यक्त किया था जो सिद्ध करता है कि दिनकरजी के मन में नयी कविता का कवि कहलाने की इच्छा है। किसी भी

१. आलोचना (२७) शिवदानसिंह चौहान, पृ० ४।
२ जनशक्ति साप्ताहिक, पटना, १९ अप्रैल, १९६४, पृ० १०।
३. "मैं प्रयोगवाद का अगुआ नहीं; पिछलगुआ कवि हूँ—हिन्दी कविता का आकाश बदल रहा है। जो नया क्षितिज सामने चमक रहा है, उसी ओर खड़ा होकर मैं स्वागत में 'नील कुसुम' बिखेरता हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि के लिए ऐसी प्रवृत्ति घातक होती है। ऐसा होने से वह कवि अपनी मौलिक काव्य रचना का आधार छोड़कर समकालीनों से प्रभावित होता चलता है, जिससे कालांतर में साहित्य का बड़ा अहित होता है। आधुनिक कविता के युग में (१९६४ ई० में) किसी काव्य-संग्रह का नाम 'कोयला और कवित्व' रखना उचित ही है। कोयला यथार्थ भाव, भाषा और शैली का परिचायक है, जिसमें कवित्व उत्पन्न हुआ है। प्रधान कोयला है। हालाँकि 'कोयला और कवित्व' में कार्य कारण सम्बन्ध होता है। इन शब्दों की व्याख्या के लिए बिहार के नाटककार लोहासिंह उर्फ प्रो० रामेश्वर सिंह 'कश्यप' के लिखे नाटक 'नीलकण्ठ निराला' से निराला के कथोपकथन को उद्धृत किया जा रहा है—

"राग में रसोई में
कविता की कला
और पाकविज्ञान में
बड़ा कार्यकारण सम्बन्ध है।
तुम साहित्य-प्रेमी हो
इसीलिए कहता हूँ,
जीवन से साहित्य वैसे ही
बनता है जैसे निकली हैं
इत्र और औषधियाँ
कोयले से,
भावों को सब्जी के समान ही
पड़ता है पकाना
धीमी आँच में।"[1]

दिनकरजी कोयला और कवित्व की व्याख्या करते हुए एक विदुषी को उनके इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि कला फलाशा से युक्त होती है या वियुक्त और कोयले का उत्पादन बढ़ाने को यदि गीत लिखे जाएँ तो कैसा रहे?—

"देवि! कला के लिए कला से आप व्यर्थ चिढ़ती हैं।
कर्म, विकर्म, अकर्म एक ही आरोहण के पद हैं।
एकमात्र आश्रय अकर्म ही है समस्त कर्मों का।
और जानती ही होंगी, दुर्लभ अकर्म यह क्या है।"
प्रेरित किसी लोभ से अथवा भीत किसी शंका से,
कोयले की उत्पत्ति बढ़ाने को हम जब लिखते हैं,
वह लेखन की क्रिया कर्म होती है; और क्रिया यह,
सीमित नहीं मानवों तक; पशु भी उसको करते हैं,
प्रेरित क्षुधा, भीति या जैविक किसी अन्य चिन्ता से।[2]

१. नीलकण्ठ निराला, पृ० ४०।
२. कोयला और कवित्व, पृ० ७२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक कवि गद्य और पद्य की भाषा में कोई अन्तर नहीं समझते। दिनकर के नव्य-काव्य विकास में यह विशेषता देखने योग्य है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' और 'कोयला और कवित्व' नामक काव्य-संग्रहों में कवि ने भाषा के इस चमत्कार को दिखाया है। एक स्थान पर कवि ने भाषा सम्बन्धी अपनी मान्याओं को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"मैं गद्य की सुस्पष्टता को कविता में खपाये बिना संतोष नहीं पाता।"[1]

संग्रह की सारी कविताएँ गद्य की अभिव्यंजना शक्ति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। 'दिनचर्या' इस दृष्टि से उत्कृष्ट कविता है और आधुनिक हिन्दी कविता के लिए प्रतिमान उपस्थित करती है।

भाषाभिव्यंजना के कतिपय आधुनिक प्रयोगों के कारण 'उर्वशी' को भी एक 'मार्डन' रचना मानना होगा। हिन्दी के नवोत्थित आलोचक कुमार विमल ने 'उर्वशी' की इन विशेषताओं का गहन अध्ययन प्रस्तुत करते हुए लिखा है—'उर्वशी' में हम एक ही साथ 'मैटाफिजिकल टेम्पर आव मार्डन फिजिक्स' और 'साईण्टिफिक टेम्पर आव मार्डन फिलासफी को पाते हैं, जो निश्चित रूपेण हिन्दी कविता के लिए एक अभूतपूर्व बात है।—'उर्वशी' में कई ऐसे प्रसंग हैं जहाँ दिनकर ने दर्शन और विज्ञान के समीकरण को, जो मानव-मस्तिष्क की अत्याधुनिक उपलब्धि है, काव्यात्मक धरातल पर रखने की सफल चेष्टा की है।[2]

आज की नई कविता-धारा के परिप्रेक्ष्य में दिनकरजी की काव्यधारा का अध्ययन करने पर अंग्रेजी-साहित्य की आधुनिक काव्यधारा के सम्बन्ध में स्टीफेन स्पेंडर की १९६३ ई० में प्रकाशित नई पुस्तक 'दी स्ट्रगल ऑफ दी मार्डन' की विश्लेषणात्मक एवं ऐतिहासिक समीक्षा याद हो जाती है। स्पेंडर ने आधुनिक कविता के परिप्रेक्ष्य में दिनकर ऐसे कवियों को समकालीन कवियों की कोटि में रखा है और हिन्दी की नई कविता के रूढ़िवादी कवियों के समान कवियों को आधुनिक कवियों में रखा है। किन्तु उस दृष्टि से विचार करने पर लगता है कि दिनकर आधुनिक कवि हैं—आधुनिकता की सारी सम्भावनाएँ दिनकर में मौजूद हैं, जिसकी अभिव्यक्ति अभी शेष है। कुरुक्षेत्र और उर्वशी उस विकास की भूमिका में दो मील स्तंभ हैं। कुरुक्षेत्र और उर्वशी के सामाजिक रूप से एक श्रेष्ठ युगान्तरकारी महाकाव्य का लेखन दिनकरजी के द्वारा होगा, जिसका नायक होरी के समान कोई-लघु-मानव' होगा। दिनकरजी ने सन् १९६१ ई० में इस पंक्ति के लेखक के समक्ष कहा था कि यह युग 'लघु-मानव' का है। इन बातों को सुनकर शायद यह प्रश्न हो सकता है कि दिनकर की कृतियों द्वारा इस प्रकार की अभिव्यक्ति का कोई प्रमाण नहीं मिलता। बल्कि दिनकरजी की सद्यः-प्रकाशित रचना 'परशुराम की प्रतीक्षा' में तो कवि ने स्पष्ट रूप से परशुधर के रूप में एक डिक्टेटर की कल्पना की है। आज के युग में यह भावना प्रतिक्रियावाद का द्योतक हो सकती है।

यह बात सही है कि दिनकरजी ने परशुराम के रूप में एक कठोर व्यक्तित्व

१. कल्पना, फरवरी १९५३।
२. नई कविता, नई आलोचना और कला, पृ० ४४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उत्तरोत्तर गान किया है—

"मुख में वेद, पीठ पर तरकश, कर में कठिन कुठार विमल,
शाप और शर दोनों ही थे, जिस महान ऋषि के संबल।"[1]

× × ×

"मुख में वेद, पीठ पर तरकस, कर में कठिन कुठार,
सावधान, ले रहा परशुधर फिर नवीन अवतार।"[2]

× × ×

गावो कवियो! जयगान, कल्पना तानो,
आ रहा देवता जो, उसको पहचानो।
है एक हाथ में परशु, एक में कुश है,
आ रहा नये भारत का भाग्य पुरुष है।[3]

किन्तु दिनकरजी के आगामी नायक का यह असली रूप नहीं है—डी० एच० लौरेंस ऐसे लैंगिक कवि की कविताओं का भावानुवाद और उसके आधार पर काव्य सृजन उनके समस्त आगामी काव्य को प्रभावित करेगा ही, जिससे नया 'लघुमानव' नायक उभरेगा।

शायद दिनककजी के अन्त:प्रदेश में यह लघुमानव अपना रूप संवार रहा है। मेरा विश्वास है कि उसके हाथ में परशु नहीं होगा बल्कि अपना कुठार फेंक वह नव-निर्माण में प्रवृत्त होगा। जिस तरह परशुराम ने किया था—'जब उनका (परशुराम) प्रतिशोध शान्त हो गया, उन्होंने कोंकण के पास पहुँचकर अपना कुठार समुद्र में फेंक दिया और वे नव-निर्माण में प्रवृत्त हो गये।'[4] दिनकर के इस नये मानव को कुरुक्षेत्र में ही परशु-कुठार, चाप और तरकस से घृणा हो चुकी है। भीष्म-पितामह की आत्मग्लानि और तत्सम्बन्धी स्खलन इसका सुन्दर प्रमाण है—

"कर में चाप, पीठ पर तरकस,
नीति-ज्ञान था मन में,
इन्हें छोड़ मैंने देखा,
कुछ और नहीं जीवन में।"[5]

× × ×

"कर पाता यदि मुक्त हृदय को,
मस्तक के शासन से,
उतर पकड़ता बांह दलित की,
मन्त्री के आसन से।[6]

इसलिए ऐसा नेता नहीं चाहिए। बल्कि ऐसा नेता चाहिए जो 'मन्त्री' का आसन छोड़कर 'दलितों' को गले लगा ले।

१. रश्मिरथी (तृतीय संस्करण), पृ० १२।
२. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ४२।
३. ...वही...,पृ० १५
४. परशुराम की प्रतीक्षा, दो शब्द।
५. कुरुक्षेत्र पृ० ६३।
६. कुरुक्षेत्र, पृ० ६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो नई कविता-पुस्तकें

१—'प्यासा निर्झर'
२—'प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी'

सृजन के सन्दर्भ में पुरानी पीढ़ी की सक्रियता के प्रमाण उक्त दो कविता-संग्रहों का सम्बन्ध क्रमशः नरेन्द्र शर्मा तथा रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की लेखनी से है। छायावादी कविता के विघटन के दौर में ये कवि कतिपय अंशों में उसी छायावादी कविता की लीक पर और अनेक अंशों में उससे भिन्न नई लीकों का प्रवर्तन करते हुए कविता की भूमि पर उतरे थे। छायावादी काव्य में कविता की क्रमशः अस्पष्ट होती हुई आकृति को इन कवियों ने एक स्पष्टता दी थी, उसे आकाश की ऊँचाइयों से उतारकर लौकिक सन्दर्भों के बीच ग्रहण किया था। उसकी समस्त वायवीयता तथा प्रच्छन्नाभिव्यक्ति को उपेक्षित करते हुए बहुत कुछ अभिधा की भूमि पर उसे अपने व्यक्तिगत हर्ष-उल्लास, अधिकांशतः पीड़ा तथा वेदना की—जिसका सम्बन्ध या तो उनके अपने प्रणयी मन से था या फिर साँसारिक भूमियों में मिलनेवाली कटुता तथा विक्षोभ से—अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर सबके समक्ष प्रस्तुत किया था। केवल भावभूमि की दृष्टि से ही नहीं, भाषा को नई सादगी देने तथा उसे अपने अन्तर्मन की कसक, आकुलता, आसक्ति तथा तृष्णा आदि की सशक्त वाहिका बनाकर उसका नया संस्कार करने में भी इन कवियों का स्मरणीय योग था। जिस भावभूमि को लेकर इन कवियों ने कविता के क्षेत्र में पदार्पण किया था, वह इनके अपने अर्थ में भले ही कितनी प्राणवान तथा इनकी अपनी भोगी हुई हो, नये सामाजिक सन्दर्भों तथा उभरती हुई प्रगतिशील चेतना के क्रम में, कालान्तर में वह ग्राह्य न हुई, फलतः इन कवियों के स्वर भी या तो मंद पड़ते गये या इन्हें अपनी लीकें बदलने के लिए विवश होना पड़ा।

नरेन्द्र शर्मा के काव्य-विकास से जो लोग थोड़ा भी परिचित हैं, जानते हैं कि छायावादी भूमिका से प्रारम्भ कर उनकी कविता क्रमशः उत्तर-छायावादी लौकिक भूमि से गुज़रती हुई, सामयिक प्रभाववश सामाजिक चेतना की भूमि पर क्षण भर ठहरकर अन्ततः उस व्यापक रहस्य तथा अध्यात्म की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी जो उनके परवर्ती कविता-संग्रहों—'हंसमाला', 'कदलीवन', 'अग्निशस्य' आदि की भूमि है। उसे विशुद्ध रहस्य तथा अध्यात्म की भूमि तो नहीं माना जा सकता परन्तु भौतिकता तथा अध्यात्म के समन्वय की भूमि वह अवश्य है। मिट्टी की ओर कुछ काल देख लेने के पश्चात् सन् १९४६ में ही 'हंसमाला' संग्रह की प्रस्तावना में कवि ने घोषित किया था—"मुझे आज भौतिक चिन्तन एकांगी लगता है। हमें अपने जीवन-दर्शन को अधिक व्यापक और मानवीय बनाना होगा जिसमें भौतिक प्रसार तथा चेतना की गहराई दोनों ही विद्यमान हों।" नरेन्द्र शर्मा अपने इस वक्तव्य के प्रति कितना सजग रहे हैं, इसका प्रमाण उनके 'प्यासा निर्झर' तक का सारा काव्य-विकास है, जो 'हंस-माला' के बाद के १८ वर्षों के समय को अपनी परिधि में समेटे हुए है। 'मन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्बलताओं के कवि' का बढ़ती हुई वय के साथ सामाजिक संघर्षों की लीक छोड़कर व्यक्तिगत शान्ति तथा समरसता खोजने के क्रम में रहस्य तथा अध्यात्म की भूमि में पहुँचकर अन्ततः उसमें रम जाना सहज स्वाभाविक भी है। नरेन्द्र शर्मा की विशिष्टता इस अर्थ है कि उनका अध्यात्मवादी चिन्तन केवल वैयक्तिक भूमिकाओं में ही सिमट कर नहीं रह गया है, उन्होंने उसे समष्टि के हित, समष्टि तक प्रसारित करना चाहा है। व्यक्ति को केन्द्र में न रखकर सम्पूर्ण मानवीय जीवन को उच्चतर चेतना की भूमि तक पहुँचाने में उसे सार्थकता देने का प्रयास किया है। इस सन्दर्भ में 'प्यासा निर्झर' कविता की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

अपने सिवा और भी कुछ है, जिस पर मैं निर्भर हूँ,
मेरी प्यास हो न हो जग को, मैं प्यासा निर्झर हूँ।

कवि की इस समष्टि चेतना के मूल में निश्चित रूप से उस प्रगतिशील चेतना का सन्दर्भ है जो 'प्रवासी के गीत' जैसी कृतियों की भावभूमि के दौरान में बिजली की भाँति कौंधकर व्यक्तिगत निराशा तथा वेदना में डूबे उनके मन को आलोकित कर गई थी। प्रगतिशील चेतना की भूमि पर वे बहुत काल तक नहीं ठहरे, परन्तु उस भूमि पर उनका अल्पकालिक ठहराव भी इस कारण उनके लिए महत्वपूर्ण है कि उसने उन्हें समष्टि-चिन्तन की नई दिशा दी, एक 'क्षयग्रस्त कवि' को उसके क्षय से उबारा। आज वे रहस्य तथा अध्यात्म के सन्दर्भ में अपनी इस चेतना को प्रसारित कर रहे हैं, यह अलग बात है।

'प्यासा निर्झर' संग्रह में पिछले दस वर्षों की अवधि में रची गई उनकी कविताएँ संग्रहीत हैं। कृति की भूमिका में अपने को 'मनोभूमि का कृषक' मानते हुए उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं—एक आज के युग में कविता और पाठक के बीच—प्रकारांतर से कवि और पाठक के बीच क्रमशः बढ़ते हुए अन्तर का, दूसरा कविता—एक प्रकार से समूचे साहित्य-सृजन के सन्दर्भ में व्यष्टि और समष्टि चेतना के आनुपातिक महत्व का। वे कवि और पाठक के बीच के अन्तर को न केवल अहेतुक मानते हैं, वह शीघ्र से शीघ्र समाप्त हो सके, इसीलिए समष्टि चेतना का प्रसार भी चाहते हैं। अपने कवि को उन्होंने इसी भूमि पर सक्रिय करना चाहा है। प्रस्तुत संग्रह की अधिकांश कविताएँ मिट्टी तथा मानव-जीवन के सन्दर्भ में ही उनके चिन्तन की अध्यात्मपरक भूमिका को उद्घाटित करती हैं। कतिपय कविताएँ सामाजिक विषमता, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, पाखण्ड आदि से सीधे ही अपना सम्बन्ध जोड़ती हुई व्यंग्यात्मक शैली में समाज की कल्याण-कामना को व्यक्त करती हैं। कुछ, विशेषकर संग्रह के अन्तिम अंशों में कविता की प्रकृत भूमि पर कवि के प्रणयी-मन, प्रकृति-प्रेम आदि की मनोरम-व्यंजना करती हैं। दाम्पत्य-प्रेम को केन्द्र में रखकर रची गई कतिपय कविताएँ भी संग्रह में हैं जो अपनी मानवीय भूमिका में सच्ची काव्य-संवेदना के साथ प्रणय के स्वस्थ स्वरूप को सामने रख सकी हैं।

दोसौ चालीस पृष्ठों के इस कविता-संग्रह का अधिकांश कवि के चिन्तन की समन्वयवादी, अध्यात्मपरक भावों का परिचायक है। मिट्टी का मोह, सांसारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के प्रति आसक्ति, कर्मनिष्ठा (निष्काम कर्म) इस प्रकार की प्रायः सब कविताओं में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। कवि की आध्यात्मिक चेतना कहीं भी इतनी प्रगल्भ नहीं होने पाई है कि उसे मिट्टी से पृथक कर सके, जैसा कि विशुद्ध अध्यात्मवादियों के साथ प्रायः ही देखा जाता है। मिट्टी तथा मानव-जीवन या लोक-जीवन के प्रति अपने प्रेम को सहेजे हुए ही कवि ने रहस्यमयी सत्ता की जिज्ञासा, मिट्टी का तन लिए धरती पर उसके अवतरण की कामना, सूक्ष्म चेतना का आह्वान, चिन्मय रसकी वृष्टि की इच्छा प्रकट की है। कहा जा सकता है कि उसका सारा तत्व-चिन्तन और उसका सारा प्रसार मिट्टी के लिये, मिट्टी के हित में ही हुआ है। अध्यात्मपरक भूमिका पर पहुँचे हुए कवि की वाणी में उपदेशात्मकता की गंध आ जाना स्वाभाविक है—संग्रह की कुछ कविताएँ इसे प्रमाणित करती हैं—परन्तु नरेन्द्र शर्मा का कवि अभी उन मसीहाओं की कोटि तक नहीं पहुँचा है जो केवल उपदेश ही देते हैं और सारे तत्व-चिन्तन को आत्मसात कर चुकने का दम्भ करते हैं। कवि का प्रतीक प्यासा निर्झर है, इसी कारण उसकी दार्शनिक चिन्तना मात्र जिज्ञासा के स्तर तक ही पहुँच सकी है, उससे आगे की भूमियों पर जाकर उसने कवि या पाठक को छलने का प्रयास नहीं किया है। जीवन तथा जगत के लिये कल्याणकारी बातों को सुनने तथा जानने के लिए भी चूँकि कवि तत्पर है इसी कारण ग्रहण की गई बातों के कतिपय स्थलों पर उपदेश की भूमिका तक पाठकों के बीच पहुँचाने का उसका प्रयास खलता नहीं। हम तो इसे उसकी निश्छल मानवीयता का प्रदर्शन ही मानते हैं।

संगह की अधिकांश कविताएँ कथ्य-प्रधान हैं—शैली-प्रधान नहीं। शिल्पगत प्रयोगों की भूमिका में न जाकर अपने कथ्य को ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रति कवि विशेष सचेष्ट रहा है। शिल्प के अतिरिक्त प्रयोग वही करते हैं जिनके पास कहने को बात नहीं होती। नरेन्द्र शर्मा की स्थिति ऐसी नहीं है। उनके पास गम्भीर कथ्य है, इस कारण उन्होंने प्रयोगवादी भूमिका अदा नहीं की। कविताओं की कथ्य-प्रधानता कतिपय स्थलों पर द्विवेदी युग के वर्णन-विवरण का भी आभास देने लगी है, यद्यपि अनेक कविताओं में कवि ने अपने कथ्य को आलंकारिकता या रूपकों के परिवेश में प्रस्तुत कर कविता के प्रति सही न्याय करने की कोशिश की है। कुछ कविताएँ—(मुक्ति-पर्व, मारीच, निशा अँधियारी, दुष्ट कुमार आदि) पौराणिक आख्यानों पर आधारित हैं जिन्हें-यत्र तत्र कवि ने नये अर्थ भी देने चाहे हैं। विवरण तथा वर्णन की प्रचुरता इन कविताओं में विशेष रूप से दिखाई पड़ती है, परन्तु आख्यान से सम्बन्धित होने के कारण उनका इस साँचे में ढलना स्वाभाविक था। इन सारी कविताओं को देखकर नरेन्द्र शर्मा के काव्य-विकास की गति बहुत कुछ पन्त से अपनी अनुरूपता सूचित करती प्रतीत होती है। पन्त उत्तर-छायावादी दौर से नहीं गुज़रे अन्यथा छायावाद-प्रगतिवाद तथा अध्यात्मवाद के सोपान उनकी कविता ने भी तय किये हैं। पन्त का अध्यात्मवादी काव्य एक विशिष्ट दर्शन के सन्दर्भ को लिए हुए है जब कि नरेन्द्र शर्मा की दार्शनिक रुझानें अभी इस प्रकार की किसी विशिष्टता से नहीं बँध पाई हैं। गीता के निष्काम कर्म की चर्चा अवश्य कुछ अधिक हुई है तथा कतिपय कविताएँ—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्टतः अद्वैत दर्शन का संकेत देती हैं। समग्रतः, अभी वे सामान्य भूमिका पर ही हैं। इस सामान्य भूमिका से ही उन्होंने पन्त की भाँति भव तथा मानव के परित्राण का संकल्प लेकर उच्चस्तरीय चेतना के नये जीवन को धरती पर उतार लाने के लिए 'परम व्योमचारी' का आह्वान किया है—

जीवन की अँधियारी रात हो उजारी—
धरती पर चरण धरो तिमिर-तोम-हारी—
परम-व्योम-चारी।

लोक-जीवन या भव-जीवन के प्रति सच्ची संवेदना की दृष्टि से कवि की इन कविताओं का विशेष महत्व है। उसके चिन्तन की सरणि से अपना मतभेद रखनेवाले पाठक हो सकते हैं, ज्ञान-विज्ञान के आधुनिक सन्दर्भों में जो स्वाभाविक भी है, परन्तु उसके मूल में निहित कवि की निश्छल संवेदना तथा ईमानदार आग्रह को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह बात नरेन्द्र शर्मा के लिये ज़ोर देकर कही जा सकती है जो अपने कवि-कर्म के समूचे दौरान में सहज, निश्छल आत्माभिव्यक्ति के विशेष कायल रहे हैं। सच्ची कविता की भूमि से भी इन चिन्तन-प्रधान कविताओं के लिए दो-एक बातें कही जा सकती हैं। चिन्तन या दर्शन कविता की पगडंडी से गुजरकर ही कविता के भीतर स्थान पाने के अधिकारी बनते हैं, अन्यथा कविता की स्थिति निरीह हो उठती है। पन्त के बहुत से परवर्ती काव्य के लिये यह कथन सत्य है, और बावजूद कवि की सजगता के, इन कविताओं में भी अनेक उसी प्रकार विचार-बोझिल हो उठी हैं। अवधी या ब्रज के कतिपय बिल्कुल अप्रचलित शब्दों को ढोने वाली और अनेक स्थलों पर पौराणिक या तन्त्र-मन्त्रपूत भारी भरकम वैदिक-सी शब्दावली—यहां तक कि वाक्यावली तक से युक्त भाषा ने भी इस निविड़ता को बढ़ाने में योग दिया है। इसके विपरीत 'सोलह वर्ष', 'कौन वह किशोरी', 'यह दिन भी बीता जाता', 'मैं तुमको देख रहा हूँ', 'जंगल', 'विरह-मिलन', 'तुम्हें देख,' 'दाम्पत्य-गाथा', 'पनिहारिन,' 'पल्लव दल सुकुमार', 'मुद्रित दृग तुम्हारे', 'मिलन-रैन' जैसी वे कविताएँ भी हैं जो अपनी सहज मानवीय भूमिका में काव्य सत्ता के प्रति न्याय करती हुई पाठक के अन्तस्तल को 'प्रवासी के गीत', 'पलाशवन' तथा 'मिट्टी और फूल' की कविताओं की ही भाँति छूती हैं। ये कविताएँ ही स्मरण दिलाती हैं नरेन्द्रशर्मा के समर्थ, सच्चे कवि का, और विश्वास उत्पन्न करती हैं कि बावजूद चेतनावादी धरातल के, नरेन्द्र शर्मा की काव्य-संवेदना आगे भी इस सहज मानवीय भूमिका से ही जुड़ी रहेगी। हम तो इन्हीं कविताओं में नरेन्द्र शर्मा के प्रकृत-कवि के दर्शन करते हैं, औरों की बात जो भी हो। इस मानवीय भूमिका में ही हम उनके कवि को इस प्रखर सामाजिकता से दीप्त देखना चाहते हैं जो 'प्यासा निर्झर' की भूमिका की इन पंक्तियों में साकार हुई है, और कविता में रूपायित होने की बाट जोह रही है—"अहंता-ममता-जन्य व्यक्तिवाद, व्यक्तिगत, संपत्ति की मान्यता पर आश्रित व्यापारिक क्रय-विक्रय, उत्पादक की अपेक्षा वितरक-प्रबन्धक-बिचौलिया की बढ़ी हुई सत्ता और हाथ की तुलना में हाथ के मैल की अधिक महत्ता ने जो साँस्कृतिक संकट पैदा किया है, वह कविता का काल बनकर कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सामने खड़ा है।" नरेन्द्र शर्मा के कवि में इस चुनौती को स्वीकार करने की सामर्थ्य है, आवश्यकता एक हल्के मोड़ की है—उस मोड़ की जहाँ पहुँचकर कविता समाज की सीप में एक आबदार मोती के रूप में चमकती है, अपने सामाजिक तथा मानवीय सन्दर्भों में जितनी सशक्त, अपने सौन्दर्य में उतनी ही भास्वर तथा प्रखर। कवि तथा पाठक के बीच की दूरी को भी यही कविता कम कर सकती है।

'प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी' अंचल की नई-पुरानी कविताओं को मिला-जुलाकर तैयार की गई नव्यतम काव्यकृति है। उत्तर-छायावादी कवियों में 'अंचल' सबसे विशिष्ट रहे हैं। विशिष्ट इस अर्थ में कि नरेन्द्र शर्मा तथा बच्चन से विपरीत उनकी कविता में परिस्थितियों की विषमता से विक्षुब्ध मन के हाहाकार की अपेक्षा उत्कट रूपासक्ति, उद्दाम तृष्णा तथा भयानक विह्वलता की स्थितियाँ प्रत्यक्ष हुई हैं। यह 'मधूलिका' तथा 'अपराजिता' की भावभूमि है, जिनकी कविताएँ कुछ ऐसा आभास देती थीं, मानो कवि की इस तृष्णा तथा उद्दामता का कोई अन्त ही न हो। बाद के 'किरण वेला', 'लाल चूनर', 'वर्षांत के बादल' तथा 'विराम-चिह्न' संग्रहों में कवि के स्वरों की कुछ बदली हुई भूमिकाएँ भी प्रत्यक्ष हुई और पिछली भावभूमि भी अपेक्षाकृत मँज-सँवरकर सामने आई। प्रस्तुत संग्रह प्रणयासक्ति, रूपतृष्णा तथा अन्य श्रृंगारी-मनोभावनाओं की अपेक्षाकृत इसी संयमित भूमिका को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। 'अंचल अपने काव्य-विकास में अपने अन्य समानधर्मों की तुलना में अधिक धारावाहिक तथा स्पष्ट रहे हैं। जो लीक उन्होंने प्रारम्भ में पकड़ी थी, बीच की भावावेशजनित कुछ तथाकथित प्रगतिशील कही जाने वाली कविताओं को छोड़ दिया जाय (अंचल ने स्वतः स्वीकार किया था कि उनकी सामर्थ्य इस भावभूमि पर काव्य-रचना करने की नहीं है, इसे उनकी ईमानदारी ही कहा जायगा) तो निर्द्वन्द्व भाव से वे उस पर अन्त तक चलते रहे हैं और आज भी चल रहे हैं। उन्होंने अपने को छलने का और एक प्रकार से हिन्दी के सामान्य कविता-प्रेमी पाठक को भ्रम में डालने का प्रयत्न नहीं किया। अपनी काव्य-प्रेरणा, काव्य-भूमि तथा संवेदना-क्षेत्र को वे समझते रहे हैं, और थोड़ा-बहुत भटकाव के बावजूद उसी पर आश्वस्त भाव से टिके रहे हैं। समीक्षक को भी उन्होंने सुविधा दी है, अपने कवि को और पाठक को भी। अपने परिचित क्षेत्र में, जिसमें अपनी विशिष्ट काव्य-रचना में वे माहिर हैं—उन्होंने भले ही अनेक स्तर प्रदर्शित किये हों, रहे वे उसी के भीतर हैं। आयु के साथ क्रमशः उनकी भावनाओं में एक सन्तुलन आया है, वे अधिक स्वच्छ भी हुई हैं। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में 'मधूलिका' या 'अपराजिता' सा बरसाती नदी का वेग न होकर शारदीया स्रोतस्विनी का अपेक्षाकृत सहज प्रवाह है। यहाँ शिकवे अधिक हैं, आर्त पुकार है, कचोटभरी विह्वलता है, उस प्रणयिनी या प्रणय के सन्दर्भ में जो गत की वस्तु बन चुका है फिर भी हृदय से मिटा नहीं है, तन-मन पर नशे के समान छाया हुआ है। एकाध फुटकल कविताओं को छोड़ दिया जाय तो अधिकांश कविताओं की भावभूमि यही है। गत प्रणय की आकुलताभरी स्थितियों में कवि यहाँ मौन चाहता है—सर्वत्र मौन—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुप रहो वन पंखियों की रूपगंधी ओ हवा
आज तो कुछ भी कहीं, कोई नहीं है, चुप रहो
चुप रहो अनुगूँजते, ओ शंखवर्षी बादलो
गुनगुनाती ओ गुफाओ, कंदराओ चुप रहो।

गत प्रणय की इस भूमिका से टकराकर पहली बार यहाँ कवि की आस्था तथा विश्वास चूर-चूर हुए हैं। उसके स्वरों में एक छिपी हुई व्यथा तथा करुणा बार-बार झाँक उठती है। इस भूमिका में भी कवि प्यार और उसके दर्द से पृथक नहीं होना चाहता—

'मेरा दर्द रहे नित जीवित, तुम केवल इतना करना···

प्यार के दर्द को जीवित रखने के लिये इस प्रकार की विनय कविताओं में भी प्रकारांतर से की गई है। भावनाओं में एक गति सर्वत्र है और लगता है कि आज भी 'अंचल' का हृदंय-कोष इस प्रकार की रचनाओं के लिये भरा-पूरा है। प्रणय-जनित सुख-दुःखमयी अनुभूतियों की अनेक भंगिमाएँ कविताओं में उभरी हैं। कल्पना के धनी कवि ने रूप तथा सौन्दर्य की कतिपय स्थलों पर आकर्षक छवियाँ प्रस्तुत की हैं, जो पहले भी उसके काव्य का सत्य थीं और आज भी हैं। भाषा ने कवि का साथ आद्यंत दिया है, वही मिली-जुली भाषा, जो इस प्रकार के गीत तथा कविताओं के लिए प्रायः टकसाली बन गई है।

अपनी समग्रता में 'अंचल' की ये कविताएँ उनकें प्रणयी मन की बहुरंगी अभिव्यक्तियाँ हैं। इनमें वह मांसलता नहीं है जिससे उनकी पिछली रचनाएँ आवश्यक रूप से सम्बद्ध रहा करती थीं और जिसे लक्ष्य करके ही एक समय आचार्य वाजपेयी ने उन्हें प्रकृतिवादी कहा था। वे प्यार के दर्द से भरे-पूरे एक प्रौढ़ कवि-हृदय की उपलब्धि हैं।

•

डॉ० गोपाल राय

चारु चन्द्रलेख : प्रथम वाचन की एक प्रतिक्रिया

यह निर्विवाद है कि किसी कलाकृति का मूल्यांकन करने के लिए उसका प्रथम दर्शन या प्रथम वाचन पर्याप्त नहीं होता, पर पुस्तकों के विषय में यह एक कठोर सत्य है कि अधिकांश पाठक—पेशेवर विशिष्ट समालोचकों को छोड़कर—किसी पुस्तक को सामान्यतः एक ही बार पढ़ पाते हैं। अतः किसी पुस्तक के प्रचार-प्रसार में प्रथम वाचन की प्रतिक्रिया का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। सामान्यतः इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हम अपने मित्रों से कहते-सुनते हैं, और पठन-रुचि पर शोधकार्य करने वाले विद्वानों के निष्कर्ष हैं कि पठन-रुचि के विकास तथा किसी पुस्तक के लोकप्रिय होने में ऐसी प्रतिक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

'चारु चन्द्रलेख' पर 'आलोचना-३०' में डॉ० रमेश कुन्तल मेघ का एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गम्भीर अध्ययन प्रकाशित हुआ है—इतना गम्भीर (?) कि हिन्दी के साधारण पाठकों की बात तो अलग है, कदाचित् विशिष्ट पाठकों को भी उसे ग्रहण करने में सर खुजलाना पड़े और फिर भी कुछ हाथ न आये।

मैंने 'चारु चन्द्रलेख' नवम्बर १९६३ में, उसके प्रकाशित होते ही, पढ़ा था, और प्रथम वाचन की अपनी प्रतिक्रियाओं को लिपिबद्ध कर लिया था। मित्रों के बीच इसकी चर्चा भी हुई थी। आज मैं उसे हिन्दी के व्यापक पाठक समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ।

'चारु चन्द्रलेख' को पढ़कर मुझे निराशा हुई। मैंने इसे 'उपन्यास' समझकर पढ़ना आरम्भ किया था, जो यह वास्तव में नहीं है।

आज तक उपन्यास की कोई सर्वमान्य कसौटी नहीं बन पाई है, पर इतना सब मानते हैं कि उपन्यास में एक कल्पना-प्रसूत किन्तु यथार्थ संसार का चित्रण होता है। 'चारु चन्द्रलेख' की उपन्यास की दृष्टि से सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसमें जो संसार कल्पित किया गया है, वह यथार्थ किंवा विश्वसनीय नहीं है। यद्यपि पं० व्योमकेश शास्त्री (जो वस्तुतः लेखक ही है) के मतानुसार "कथा का स्वर विश्वसनीय है" पर मुझे ऐसा नहीं प्रतीत होता। बार-बार मन में प्रश्न उठता है कि क्या विवेच्य कथा-पुस्तक में वर्णित अतिलौकिक घटनाएँ सम्भावना की कोटि में आ सकती हैं? इस कथा-पुस्तक में अतिलौकिक घटनाओं या कार्यों की इतनी भरमार है कि इसे पढ़ते वक्त लगता है, जैसे हम किसी तिलस्मी और मायावी संसार में विचरण कर रहे हैं! चन्द्रलेखा का आकाशमार्ग से उड़ना, कोटिवेधी रस सिद्ध करते हुए उसका गुरु गोरक्षनाथ और भगवती त्रिपुर भैरवी का संवाद सुनना, त्रिपुर भैरवी के छिन्नमस्ता रूप का वर्णन, सीदी मौला के अद्भुत अनुभव तथा उसका भगवान बुद्ध के साक्षात् दर्शन करना, अशोक चल्ल के यहाँ राजा सातवाहन का तारादेवी के दर्शन करना आदि अतिलौकिक घटनाएं—इस प्रकार की घटनाओं से कथा भरी हुई है—तनिक भी विश्वसनीय नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि इन कार्यों को पात्रों के मानसिक विकारों से उद्भूत प्रतिभास के रूप में नहीं, वास्तविकतः घटित घटनाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कहीं-कहीं इनका वर्णन मानसिक विकारोद्भूत प्रतिभासों के रूप में भी है, पर उनके लिए पर्याप्त मनोवैज्ञानिक कारण नहीं दिये गए हैं। इस प्रकार के प्रतिभास मनोविश्लेषण की अपेक्षा रखते हैं, जिसका इस कथा-पुस्तक में अभाव है। इस कथा-पुस्तक की सैकड़ों घटनाओं के बारे में यह सन्देह उठता है कि 'क्या ऐसा हो सकता है'? आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन घटनाओं की कल्पना साम्प्रदायिक पुस्तकों के आधार पर की है, प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर नहीं। पर क्या साम्प्रदायिक ग्रन्थों में वर्णित अतिलौकिक घटनाएं घटित हैं? क्या द्विवेदीजी ऐसा मानते हैं? प्रश्न सन्देह की कुज्झटिका में खो जाता है।

यह तो अतिलौकिक घटनाओं की बात हुई। लेखक ने विवेच्य कथा-पुस्तक में वर्णित सामान्य कार्यों को भी विश्वसनीय बनाने का प्रयास नहीं किया है। चन्द्रलेखा का व्यवहार (और इसलिए उसका चरित्र भी) आरम्भ से लेकर अन्त तक असामान्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सिद्ध योगिनी बनने के पूर्व भी उसका व्यवहार स्त्रीजनोचित नहीं है। क्या कथाकार का सचमुच ऐसा विश्वास है कि बत्तीस स्त्रीलक्षणों से युक्त नारी या सर्प के फण पर नृत्य करते खंजन का शकुन देखने वाली स्त्री राजरानी होती है ? क्या सुहरादेवी और चन्द्रलेखा (यदि ये ऐतिहासिक पात्र हैं) के साथ ऐसा घटित हुआ था ? क्या ऐसा अतीतकाल में वस्तुतः किसी के साथ घटित हुआ था ? ज्योतिष (और लेखक—के भी) के इस विश्वास को विश्वसनीय बनाने में लेखक को सफलता नहीं मिली है।

'चारु चन्द्रलेख' में किसी भी पात्र का चरित्र प्रभावोत्पादक नहीं बन पाया है। प्रथम तो इसके सभी पात्र रहस्य के झुटपुटे में अस्पष्ट बने रहते हैं। कथा का प्रधान पुरुष पात्र सातवाहन सर्वत्र निष्क्रिय, चिन्तनमूढ़ और दृढ़ संकलपरहित व्यक्ति के रूप में दिखाई पड़ता है। आत्मशक्ति और दृढ़ निश्चय जैसी कोई वस्तु उसके चरित्र में है ही नहीं। वह विद्याधर भट्ट, बोधा प्रधान और मैना के हाथों का खिलौना मात्र है। इस प्रकार के पुंसत्वहीन, ढुलमुलयकीन और चिन्तनमूढ़ व्यक्ति के रूप में सातवाहन को प्रस्तुत कर उपन्यासकार ने युग को कौन सा सन्देश देना चाहा है, इसका पता नहीं चलता।

मैना—मैनसिंह—जो आनन-फानन में 'अद्भुत कार्य सम्पन्न कर डालती है, वह उसके वय, लिंग और परिस्थिति को देखते हुए विश्वसनीय नहीं लगता। उसकी वीरता और कुशलता असामान्य की सीमा का स्पर्श करती है।'

इस कथा-पुस्तक में चिन्तन है, आध्यात्मिक विचारों का मन्थन है, गम्भीर तत्त्ववाद है, भावनाओं की मार्मिक अभिव्यंजना भी है, पर यथार्थ, जिसके अभाव में उपन्यास की कल्पना नहीं की जा सकती, का स्पन्दन इसमें नहीं सुनाई पड़ता।

'चारुचन्द्रलेख' की सबसे बड़ी शक्ति और सिद्धि है, इसकी भाषा। जहाँ कहीं लेखक को सौन्दर्य या वस्तुवर्णन का अवसर मिलता है, वह उपमाओं की ऐसी मनमोहक झड़ी प्रस्तुत करता है, रूपक का ऐसा भव्य-ठाट बाँधता है, सटीक शब्द प्रयोग का ऐसा कौशल दिखाता है कि बस पढ़ते ही बनता है। कथा-वर्णन में लेखक (अपने पात्रों के माध्यम से) किस्सागोई का वह उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसकी तुलना 'सहस्र रजनी चरित्र' की शाहजादी से ही की जा सकती है। भावनाओं के उच्छल प्रवाह को वाणी देने में भी लेखक को अद्भुत सफलता मिली है। रानी चन्द्रलेखा के प्रति राजा सातवाहन के गम्भीर, करुण और कभी-कभी उद्वेलित हो उठने वाले प्रेमभाव के प्रभावशाली वर्णन मनोमुग्धकारी हैं। मैना का अहेतुक आत्मसर्पण, बोधा-प्रधान का निर्व्याज सेवा-भाव, नाटी माता और भगवती विष्णुप्रिया का सहज-वात्सल्य तथा भक्तिभाव समर्थतम वाणी पाने में समर्थ हुए हैं। 'चारु चन्द्रलेख' की भाषा संस्कृत गद्यकाव्यों का स्मरण दिलाती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि उपन्यास की दृष्टि से 'चारु चन्द्रलेख' की भाषा उपयुक्त नहीं है। सीदी मौला की संस्कृतनिष्ठ काव्यात्मक भाषा विश्वसनीय नहीं बन पाई है। उसका तुलसी की पंक्ति ('कहियत भिन्न न भिन्न') का उद्धरण देना हास्यास्पद प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल मिलाकर 'चारु चन्द्रलेख' विश्वसनीयता का वातावरण उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हुआ है। वह भले ही 'धार्मिक साधनाओं का सन्दर्भ-ग्रन्थ' हो। धर्म और इतिहास का भ्रमर-चम्पक कुयोग हो, 'मध्य-काल के इतिहास की पुनर्रचना' हो अन्तरानुभूति' का महाकाव्य हो, पर यह 'उपन्यास' नहीं है। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ने इसे एक नयी विधा 'चारु कथा लेख' कहा है, पर डॉ० मेघ को इस नवीन नामकरण की सार्थकता अभी सिद्ध करनी है। हम इसे गद्यकाव्य ही क्यों न कहें ?

अन्त में मैं यह स्वीकार करता हूँ कि 'चारु चन्द्रलेख' को पढ़कर एक तरफ निराशा हुई तो दूसरी तरफ आनन्द भी कम नहीं मिला। बाह्य सौन्दर्य और भावों का ऐसा मार्मिक तथा सशक्त वर्णन मैंने इधर नहीं पढ़ा था।

श्रीमती विजय चौहान

रेखा

स्वतन्त्रता के बाद के अनेक हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग की शिक्षिता नारियों की, बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों में पैदा होनेवाली 'एडजस्टमेण्ट' की समस्याओं का चित्रण किया गया है किन्तु आधुनिक नारी को केवल आर्थिक संघर्ष और सैक्स-कुण्ठा के परिप्रेक्ष्य में ही रखकर समझने की कोशिशें की गई हैं। नारी के दृष्टिकोण से विवाहित जीवन की समस्याओं का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण कम लेखकों ने किया है 'चित्रलेखा' में भगवती बाबू ने स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों, प्रेम, पाप तथा पुण्य के विषय में दार्शनिक तथा कलात्मक स्तर पर अनेक प्रश्न उठाये थे। तब से लेकर भगवती बाबू ने अनेक उपन्यास लिखे हैं और बदलते हुए सामाजिक यथार्थ के साथ उनकी शैली और दृष्टिकोण भी बदला है।

प्रस्तुत उपन्यास में रेखा नाम की एक प्रतिभाशाली युवती का चित्रण है जो अपने अधेड़ प्रोफ़ेसर प्रभाशंकर के प्रति आकर्षित होती है। प्रभाशंकर विधुर हैं और एक विवाहित स्त्री देवकी के साथ उनका सैक्स सम्बन्ध है। रेखा के प्रति प्रभाशंकर को आकर्षित होते देखकर देवकी चेतावनी देती है। "इससे बचकर रहने में ही तुम्हारा कल्याण है। यह तुमसे अवस्था में बहुत छोटी है, तुम्हारी लड़की के बराबर, और मौक़ा पड़ने पर यह खतरनाक भी साबित हो सकती है।"

प्रभाशंकर रेखा के अनिंद्य यौवन के प्रति आकर्षित हुए और रेखा उनकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति और सुन्दर व्यक्तित्व के प्रति। दोनों ने आपस में शादी कर ली। लेकिन रेखा को सुख न मिल सका, क्योंकि पति उम्र में उससे बहुत बड़े थे। झूठे पातिव्रत्य का आडम्बर रचकर अपनी आत्मा को धोखा देने की बजाए वह अपने शरीर की भूख को विभिन्न पुरुषों से शारीरिक सम्पर्क स्थापित करके शान्त करने का यत्न करती है। उसका विश्वास है कि "भूख प्रकृति है, उसे दबाना प्रकृति के साथ अन्याय

'रेखा' : लेखक भगवतीचरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन, मूल्य नौ रुपये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना होता है—बुद्धि इतना जानती है। उपवास करना, अपने को प्रताड़ित करना, यह सब अन्धविश्वास की परम्परा है। वैज्ञानिक और स्वस्थ बुद्धि के स्तर से अलग की चीज़!" किन्तु उसकी अन्तरात्मा चेतावनी देती है, "यह शरीर की भूख बुद्धि को नष्ट कर देती है।" सोमेश्वर, रेखा के साथ 'अफ़ेयर' खत्म करके अमेरिका चला जाता है, जब रेखा को पता लगा कि वह माँ बनने वाली है तो वह लेडी डॉक्टर की सहायता से 'अबॉर्शन' करवा लेती है क्योंकि मन से वह अभी भी प्रभाशंकर के प्रति समर्पित थी। इसके बावजूद रेखा में एक विचित्र हिंस्र पागलपन पैदा हो जाता है और वह स्वस्थ युवकों को अपने प्रति आकृष्ट करती है—निरंजन कपूर को जो अपनी तरुणी मंगेतर शीरीं को छोड़कर रेखा के पीछे पागल हो जाता है। उधर प्रभाशंकर शीरीं की खूबसूरत माँ रत्ना चावला से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं और उन्हें यह एहसास होता है, "शरीर का अपना एक अलग स्थान है आत्मा से पृथक।" दोनों एक-दूसरे को यंत्रणा देते हैं। प्रभाशंकर रेखा को मारना-पीटना तक शुरू कर देता है। लेकिन रेखा उन्हें छोड़कर नहीं जाती, क्योंकि प्रभाशंकर की उदारता और मानवता के बल पर वह जिन्दा है, फिर भी शशिकान्त, और उसके वाद अपनी सबसे नज़दीकी सहेली ज्ञानवती के प्रेमी कलाकार शिवेन्द्र के प्रति भी वह आर्कर्षित होती है। लेकिन वह ज्ञानवती से अधिक समझदार है, इसीलिए ज्ञानवती को सलाह देती है कि शिवेन्द्र से शादी न करे, क्योंकि शिवेन्द्र ज़िन्दगी में लेना जानता है देना नहीं।

अन्त में रेखा डॉक्टर योगेन्द्रनाथ के प्रति आकर्षिक होती है जो रेखा को समझाता है कि शरीर की कमज़ोरियों पर विजय पाना असम्भव नहीं है। लेकिन रेखा अपनी आत्मा को कुण्ठित करके शरीर की कमज़ोरियों पर विजय पाने के लिए तैयार नहीं। योगेन्द्रनाथ शारीरिक सम्बन्ध को आत्मिक सम्बन्ध से अलग नहीं मानता। भगवती बाबू ने योगेन्द्रनाथ के द्वारा अपने उपन्यास के मूलभाव को व्यक्त किया है—"प्रेम आत्मा और शरीर इन दोनों के समान भाव से एक-दूसरे में लय की प्रक्रिया का नाम है।" रेखा के जीवन के अन्तर्द्वन्द्व का मुख्य कारण यही है कि उसने शारीरिक भूख की अवहेलना करके प्रभाशंकर से शादी की है—और वह इस ग़लती से चिपकी रहना चाहती है।

उपन्यास के अन्तिम दो परिच्छेद अत्यन्त मार्मिक हैं। रेखा अपनी कुण्ठाओं और अतृप्तियों से बचने के लिये घर के कामकाज में व्यस्त रहती है लेकिन वह घुटन के बीच में ज़िन्दा नहीं रह सकती क्योंकि "एक घुटन सैकड़ों मृत्यु के बराबर होती है।" योगेन्द्रनाथ उसे इस भँवर जाल से त्राण दिलाने के लिए एक स्वीडिश विश्वविद्यालय की नौकरी स्वीकार कर लेता है। रेखा योगेन्द्रनाथ के बग़ैर ज़िन्दा नहीं रह सकती, न ही वह योगेन्द्रनाथ के साथ जा सकती है, क्योंकि प्रोफ़ेसर को पक्षाघात हो जाता है। प्रभाशंकर रेखा के आगे यह क़बूल कर लेते है कि रेखा से शादी करके उन्होंने उसके प्रति अन्याय किया है। "अपने शरीर की भूख को तो मैं जानता था लेकिन तुम्हारे शरीर की भी कोई भूख हो सकती है इस बात को मैं भूल गया था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात से द्रवित होकर रेखा वहीं बैठी रहती है और जब वह एयर पोर्ट पहुँचती है तो योगेन्द्र का प्लेन जा चुकता है, और जब वह घर लौटती है तो देखती है कि हार्ट अटैक से प्रभाशंकर की भी मृत्यु हो चुकी है। इस प्रसंग में यह अन्ना केरेनीना की-सी ट्रैजेडी है, अन्तर इतना है कि अन्ना ने अपने प्रेमी व्रॉन्स्की की रेलगाड़ी तले लेटकर अपने प्राण दे दिए और रेखा के साथ भाग्य ने क्रूर खिलवाड़ किया, जिसके लिए कुछ हद तक स्वयं रेखा भी उत्तरदायी है। यह जानते हुए भी कि डॉक्टर प्रभाशंकर के साहचर्य्य में रहकर वह अतृप्त रहेगी और 'अतृप्ति से ही पागलपन पैदा होता है' वह मानसिक रूप से केवल प्रभाशंकर के प्रति ही समर्पित है। वह दूसरे पुरुषों से निर्भीक भाव से प्रणय-सम्बन्ध स्थापित तो करती है लेकिन हर बार बाद में उसे अपराध की अनुभूति होती है, जिसकी वजह से वह कोई भी ठोस क़दम उठाने में असमर्थ रहती है। यह विरोधाभास शिक्षिता भारतीय महिलाओं में अभी तक मौजूद है और रेखा के चरित्र के इसी विरोधाभास ने उपन्यास को सशक्त बनाया है।

लेकिन सफल चरित्र-चित्रण और सशक्त थीम के बावजूद प्रभाशंकर की 'अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति'-'रेखा का फ़र्स्टक्लास फ़र्स्ट' होना, कार ड्राइव करना, एम्बेसीज़ की पार्टियों में जाना, स्कॉच पीना, और फिर पति को "मेरे आराध्य ! मेरे देवता !" कहना कुछ बेतुका लगता है। इसी तरह 'एकेडमी अवार्ड' वाली फ़िल्म का ज़िक्र तो किया गया है लेकिन फ़िल्म का नाम नहीं बताया गया, इम्पीरियल होटल के 'सुसज्जित' कमरे की सजावट का भी एक चलता हुआ हवाला दिया गया है।

'लो ब्लड प्रेशर' के मरीज़ को कॉरोनरी थ्रॉम्बॉइसिज़ बहुत कम होता है और इस उपन्यास में पृष्ठ ३२९ पर जिस 'थरोनरी आम्बेसिज़' का ज़िक्र है—शायद वह कॉरोनरी थ्रॉम्बॉइसिज़ ही है। शायद यह छपाई की ग़लती हो।

अन्त में, यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि 'रेखा' मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर लिखे गए आजतक के सभी हिन्दी उपन्यासों से बेहतर है और आधुनिक नारी की समस्याओं को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से समझने का प्रशंसनीय प्रयास है।

महेन्द्र भटनागर

दो नये उपन्यास

उपन्यास नामक साहित्य-रूप के प्रतिपाद्य अथवा क्षेत्र की चर्चा करते समय सैद्धान्तिक ग्रन्थों में प्रायः लिखा मिलता है कि उपन्यास का क्षेत्र अतिविस्तृत है, वह सभी विषयों को अपने में समेट लेता है, सामान्य से सामान्य प्रसंगों, घटनाओं तथा चरित्रों के लिए

१. वे दिन—श्री निर्मल वर्मा, प्र० राजकमल प्रकाशन, मूल्य रु० ५.५०।
२. छोटे-छोटे सवाल—श्री दुष्यन्त कुमार प्र० राजकमल प्रकाशन, मूल्य रु० ७.००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उसमें पर्याप्त स्थान-अवकाश है, उसमें अति साधारण, महत्त्वहीन, रोज़मर्रा की जिन्दगी का भी चित्रण किया जा सकता है आदि—इन सभी बातों का व्यावहारिक रूप श्री निर्मल वर्मा-कृत 'वे दिन' और श्री दुष्यंत कुमार लिखित 'छोटे-छोटे सवाल' नामक उपन्यासों में देखा जा सकता है। इसमें संदेह नहीं, ऐसी रचनाओं में कथारस अथवा कथा-सौष्ठव का अभाव रहता है। मंथर और बोझिल गति से कथानक आगे बढ़ता है। पाठक पढ़ते समय प्रायः ऊब उठते हैं। चरित्रांकन का भी कोई विशेष कौशल उनमें दृष्टिगोचर नहीं होता। जब उनमें जीवन के किसी विशिष्ट पक्ष का गहराई से अवलोकन भी नहीं पाया जाता तब तो पाठकों को ऐसे उपन्यासों से कुछ भी प्राप्ति नहीं होती। ऐसे उपन्यास सतही बनकर रह जाते हैं।

'वे दिन' का परिवेश एवं पृष्ठभूमि अभारतीय हैं। लेखक ने योरोप के युद्धोत्तर समाज का चित्रण किया है; जो आस्थाहीन व लक्ष्यहीन है। चेकोस्लोवेकिया में चूंकि लेखक स्वयं रहा है अतः देशकाल का विवरण सही माना जा सकता है। क्रिसमस की छुट्टियों में आई एक सैलानी महिला रायना के अभिशप्त जीवन की अवसादपूर्ण गाथा 'वे दिन' में कही गई है। मात्र रायना की असाधारणता ही कुछ चमत्कार उत्पन्न करती है; उसमें कोई गहरी मनोवैज्ञाविकता खोजना असंगत ही होगा। रायना की मनोदशा को उपन्यासकार यदि और गहराई से आँकने की चेष्टा करता तो सम्भवतः 'वे दिन' अधिक सफल उपन्यास सिद्ध होता।

'छोटे-छोटे सवाल' तो और भी सामान्य कोटि का है। उसका किस्सा शैक्षिक जगत् से अधिक सम्बद्ध है। प्राइवेट शैक्षणिक संस्थाओं में व्याप्त असंगतियों एवं भ्रष्टाचार का नग्न रूप 'छोटे-छोटे सवाल' में चित्रित किया गया है। इसमें संदेह नहीं, लेखक में यथार्थ को चित्रित करने की अच्छी क्षमता है। उसके पात्र भी सजीव हैं। पर, कुल मिलाकर उपन्यास प्रभावहीन है। अन्त में अस्वाभाविकता भी पर्याप्त है। निष्कर्ष रूप में जिन छोटे-छोटे सवालों की ओर संकेत किया गया है वे रचना को निरर्थक बना देते हैं। हिन्दी-उपन्यास के वर्तमान विकास को देखते हुए ये दोनों उपन्यास अति साधारण कोटि के हैं।

मधुरेश

लौटती लहरों की बाँसुरी

भारतभूषण अग्रवाल नई कविता के सुपरिचित कवि हैं। 'लौटती लहरों की बाँसुरी' (शीर्षक से इस बार भी कविता का भ्रम होता है!) से वह एक नई दिशा की ओर मुड़े हैं—कविता से उपन्यास की ओर। परन्तु उनका यह पहला उपन्यास भविष्य के

१. लौटती लहरों की बाँसुरी : भारतभूषण अग्रवाल, प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, पृ० संख्या १६४, मूल्य ३·५०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति आस्था के कुछ सूत्र-संकेत भले ही छोड़ता हो, वर्तमान की उसकी उपलब्धि निश्चय ही किसी समर्थ और शक्ति-सम्पन्न कृति की उपलब्धि नहीं है।

'लौटती लहरों की बाँसुरी' को लेकर लेखक का आग्रह है कि वह 'दिवा-स्वप्न की शैली में एक भावुक मन की अन्तर्कथा' है। पुस्तक की अतिशय भावुकता को जैसे वह स्वयं स्वीकारता है और उसका अस्तित्व-बोध उससे एकाधिक जस्टीफिकेशन की माँग करता है। शायद इसी कारण से उपन्यास के नायक अशोक को एक कवि बनाया गया है और अनेक स्थलों पर अनेक पात्रों के मुँह से कहलवाया गया है कि वह अत्यधिक भावुक है, अतिशय सेन्सटिव !

अशोक एक लम्बे अर्से बाद कलकत्ता आया है—दफ्तर के किसी काम से। फोन करते हुए आज भी उसके हाथ बेतरह काँप रहे हैं, जैसे आज से बीस वर्ष पूर्व। पृष्ठभूमि में शायद तब भी अमिता थी आज भी अमिता है। और तब बीस वर्षों का वह अन्तराल जैसे पिघलकर बहने लगता है। अशोक अपने अतीत से साक्षात्कार करता है जब अपनी युवावस्था में वह किसी भयावह आकर्षण से बंधा अमिता की ओर खिंचा था। अमिता से हुई एक नाटकीय भेंट उसके जीवन की महत्वपूर्ण घटना बन गई जिसकी कोख से ही आगे की लगभग अनुमानित और प्रत्याशित ट्रेजेडी जन्मती है। अमिता के भाई को पढ़ाकर उसके परिवार का सम्पर्क उसे मिला परन्तु सामाजिक विधि-निषेध और आर्थिक वैषम्य की मोटी दीवार हमेशा उनके बीच रही और उसे तोड़ने की कोई कोशिश भी दोनों में से किसी ने की हो ऐसा नहीं लगता है। अशोक ने उसे महसूस भले ही किया हो और उसके उस ऐहसास में आवेश की निष्क्रियता भले ही हो, सुचिन्तित संघर्ष का माद्दा एकदम नहीं है। कारण शायद यह है कि उसके उस प्रेम की असफलता को ही लेखक एक सिद्धि मानकर चला है ! शायद इसी कारण लेखक को उसकी भावुकता की इस कदर आवश्यक-अनावश्यक वकालत करनी पड़ी है। परन्तु इससे भी बात कुछ बनी नहीं है वह भावुकता उसे अकर्मण्य बनाती है जैसे सब कुछ को नतशिर स्वीकारना ही उसकी नियति है, उसकी विवशता है।

'अज्ञेय' के समान एक ओढ़ी हुई पीड़ा का 'दर्शन' भी कहीं-कहीं मिलता है, परन्तु 'अज्ञेय' की दार्शनिक भंगिमा और एकाधिक स्थलों पर मिले पीड़ा के उदात्त रूप का इस कृति में नितान्त अभाव है। सारा उपन्यास कालेज के रोमानी और कविता के अशरीरी प्रेम से भरा है। न तो उसमें जीवन के किसी उदात्त पहलू के दर्शन होते हैं और न ही प्रेम को लेकर कोई नया दृष्टिकोण मिलता है। अशोक और अमिता के प्रेम की असफलता ही अपने में एक प्रयोजन हो तो बात अलग है अन्यथा सारा उपन्यास निष्प्रयोजन है। कहानी की सहजता और विषयगत रोचकता को ही उसकी उपलब्धि माना जाये तो बात दूसरी है क्योंकि कवि होने के बावजूद साधारण बात को प्रायः ही साधारण ढंग से भारतभूषणजी कह सके हैं।

उपन्यास का शिल्प अलबत्ता ध्यान आकर्षित करता है। उसका शिल्प और शीर्षक की सांकेतिकता एक अन्तर्सम्बन्ध में जुड़े-बँधे हैं। अतीत में हुए प्रेम की अनुभूति का साक्षात्कार अपने में एक रोचक अनुभव है। लम्बे अन्तराल के पार अनुभूति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह संगीत कुछ वैसा ही जादू पैदा करता है जैसे लहरों पर तैरकर आती हुई बाँसुरी की गूँज । चूंकि अनुभूति का सम्बन्ध अनिवार्य रूप से अतीत से है इसलिए स्वाभाविकतः ही किसी ऐसे शिल्प की आवश्यकता थी जो सहज रूप में अतीत की रेखाओं को वर्तमान के समानान्तर उभारता चले । लेखक का आग्रह उसे 'अन्तर्कथा की शैली' कहने का रहा है लेकिन यह शैली भी चेतना-प्रवाह पद्धति का ही एक भाग है इसीलिए उसका शिल्प बहुत कुछ 'परती : परिकथा' और 'आरोग्य-निकेतन' के शिल्प जैसा है। फोन करते समय अतीत की स्मृति से पैदा हुई बदहवासी, वीरेन्द्र के प्रति व्यक्त किया गया आक्रोश, वीणा और अमिता के साथ खाने की मेज पर बैठकर कोई एक ऐसा संकेत-शब्द जो अतीत का सारा परिप्रेक्ष्य उभार देता है आदि साहचर्य के कुछ ऐसे स्वाभाविक सूत्र हैं जो वर्तमान को अतीत से जोड़ते चलते हैं कहानी को बिना कहीं उलझाये हुए । और उपन्यास का यह उलझावहीन सहज शिल्प ही उसे एक सुपाठ्य रचना के गुण से सम्पन्न करता है ।

उपन्यास की भाषा और उससे सम्बन्धित प्रयोग को लेकर कुछ कहना भी शायद असंगत नहीं होगा । चूँकि उपन्यास का लेखक एक कवि है इसलिए स्वाभाविक तौर पर उपन्यास की भाषा में कविता का भ्रम होता है । यह ठीक है कि गद्य और पद्य की भाषा के एक होने का नारा वर्षों पहले लगाया गया था परन्तु दोनों की शैली के स्वाभाविक अन्तर को दूर करने का प्रयास और उसकी सफलता का अनुपात हमेशा ही असम रहा है । और आज तो यह परेशानी और भी अधिक है जब कविता का आग्रह गद्यात्मकता की ओर है और कहानी अत्यधिक संकेतों-प्रतीकों और नवीन शब्द-प्रयोग की ओर बढ़ रही है । परन्तु 'बतराती' और 'प्रस्थानोद्यताओं' जैसे शब्द न तो सहज ही लगते हैं और न सार्थक ही । उपन्यास में अंग्रेजी भाषा और शब्दों का भी खुलकर प्रयोग हुआ है । वीणा के सामने अमिता और अशोक के बीच कई-कई वाक्य अंग्रेजी में चलते हैं । (भले ही कोष्ठकों में उनका हिन्दी अनुवाद दे दिया गया हो) और खीझकर वीणा को कहना पड़ता है कि वह भी अंग्रेजी समझती है ! तब तो स्थिति पर सचमुच हँसी आती है जब अमिता के घर के रसोइये और नौकरों को भी अशोक अंग्रेजी में जवाब देता है !

सब मिलाकर शायद यह कहा जा सकता है कि 'लौटती लहरों की बाँसुरी' कोई बड़ी उपलब्धि या हिन्दी कथा-साहित्य की कोई महत्वपूर्ण कृति भले ही न हो परन्तु शिल्प और विषय के स्तर पर उसकी सहजता लेखक के भविष्य के प्रति आस्था पैदा करती है । निष्प्रयोजन घटना प्रवाह और कैशोर भावुकता से बचकर यदि वह किसी जीवन को उसकी सहज गरिमा के साथ प्रस्तुत कर सका तो निश्चय ही वह किसी श्रेष्ठतर कथा-कृति को जन्म देगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० कुमार विमल

हिन्दी-साहित्य और बिहार

(द्वितीय खण्ड)

यह पुस्तक इतिहास और साहित्यिक सर्वेक्षण के बीच की चीज है, क्योंकि यह न किसी विपश्चित् अनुसन्धाता की रचना है और न किसी साहित्यिक परिव्राजक की। इसमें यथोपलब्ध सामग्री का उपयोग विवरणात्मक परिचय की पद्धति पर किया गया है जबकि साहित्येतिहास-लेखन का कार्य बहुलांश में अनुसन्धानात्मक होता है। अतः पहली नज़र में यह ग्रन्थ अनुसन्धायक नहीं, किसी संकलनकर्त्ता के कार्य जैसा प्रतीत होता है। किन्तु गहराई से विचार करने पर इसकी महत्ता के संलक्ष्यक्रम पटल खुलने लगते हैं। स्वयं आचार्य शिवपूजन सहाय ने इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड की भूमिका में विद्या-विनम्र होकर नहीं, बल्कि पूरी बौद्धिक तटस्थता के साथ ऐसे कार्य की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए इसकी रेखांकित विशेषता का निर्देश इस प्रकार किया था :—

(क) "यद्यपि मेरी दृष्टि में यह इतिहास हिन्दी-संसार को 'शिवसिंह सरोज' के समान भी जँचने योग्य नहीं है, तथापि आधुनिक शोध-युग के अनुसन्धान-परायण सज्जनों के लिए यह आधार-शिला मात्र तो होगा ही।"

(ख) "इस शोध-समीक्षा-प्रधान युग में कोई साहित्यिक इतिहास सर्वथा निर्दोष और सर्वांगपूर्ण नहीं हो सकता; क्योंकि साहित्यिक अनुसन्धान की प्रगति दिन-दिन प्रखर होती जा रही है और नवीन शोधों के फलस्वरूप पुरानी स्थापनाएँ एवं परम्पराएँ परिवर्तित होती जाती हैं, अत जो कुछ प्राप्त हो चुका है, वह हिन्दी-संसार के सामने जब उपस्थित कर दिया जाएगा, तभी विज्ञ विद्वानों द्वारा त्रुटियों का मार्जन हो सकेगा।"

अतः आज का कोई खरा और निष्पक्ष विचारक इस ग्रन्थ पर जो सावधान टिप्पणी देगा, उसे बहुत पहले ही स्वर्गीय आचार्य सहाय ने प्रायशः अपनी कृति के प्रति रहनेवाली आशुतोष आसक्ति से मुक्त होकर स्वीकार कर लिया था। आशय यह है कि साहित्येतिहास-लेखन के महत्त्व की दृष्टि से यह ग्रन्थ 'नींव का रोड़ा' है। फलस्वरूप, ईदृक्तया एक 'अनपढ़ शिला-खण्ड' के समान रहने पर भी और तथ्य-निरूपण के सन्दर्भ में आगमिष्यत् शोधों से इसकी अनेक स्थापनाओं के खण्डित हो जाने की प्रशस्त सम्भावनाओं के बावजूद इसका महत्त्व सर्वथा निर्विवाद है, क्योंकि बिहार के साहित्यिक इतिहास के सम्बन्ध में इतना व्यवस्थित (यद्यपि सूचनात्मक) शोध-कार्य इससे पहले नहीं हुआ था। अतः मेरी दृष्टि से इस ग्रन्थ को इतिहास-लेखन की दिशा में एक प्रास्थानिक प्रयत्न का महत्त्व अवश्य मिलना चाहिए। बहुत कोताही करने पर भी हिन्दी-जगत् को आचार्य शिवपूजन सहाय का धन्यवाद इसलिए करना

सम्पादक—आचार्य शिवपूजन सहाय, प्रकाशक—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना; प्रथम संस्करण, पृष्ठ-संख्या ४१२—मूल्य ८.०० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारणाओं का निराकरण और उपेक्षा के कारण विनाशोन्मुख इस महान और अप्रतिम विशाल वाङ्मय की बहुत कुछ रक्षा की। सर्वश्री प्रबोधचन्द्र बागची, चिन्ताहरण चक्रवर्त्ती म० म० हर प्रसाद शास्त्री तथा पं० गोपीनाथजी कविराज के ग्रन्थों द्वारा तन्त्र शास्त्र का महत्त्व और तान्त्रिक दर्शन एवं साधना की प्राचीनता विस्तार और प्रभाव आज हम समझने लगे हैं।

तान्त्रिक साहित्य में शाक्त दृष्टि के मूल में जो शक्ति है, वह चिद्रूपा है। जड़ शक्ति नहीं। शक्ति पद से यहाँ कूटस्थ ब्रह्म या पुरुष का ग्रहण नहीं किया जाता। 'चितिः स्वतन्त्रा विश्व सिद्धिहेतुः' इस प्रकार की चिद्रूपा शक्ति यहाँ ग्रहण की जाती है। यह शक्ति शिव से अभिन्न होने पर भी विश्व-सृष्टि की मूलभूता है। इसका परिणाम नहीं होता, परन्तु प्रसार तथा संकोच होता है। भोक्ता और भोग्य भी शक्तिरूप हैं। सम्पूर्ण विश्व शक्ति की लीला है और इस अपने अभिनय की प्रेक्षिका भी शक्ति ही है। शक्ति का इस प्रकार संक्षिप्त निर्देश करके (१) सत्य का परम स्वरूप तथा महाशक्ति की लीला। (२) भगवत्कृपा का रहस्य, (३) भगवान् का जीवोद्धार क्रम-दीक्षा, (४) तन्त्र का स्वरूप, आविर्भाव और भेद, (५) परम शिव की पृष्ठभूमि, (६) शक्ति-साधना, (७) तान्त्रिक पूजा का परम आदर्श, (८) षट् चक्र भेद, (९) देह-विज्ञान, (१०) सृष्टि का उन्मेष, (११) सामरस्य या महामिलन, (१२) महाशक्ति—श्री श्री मां (१३) देह और कर्म, (१४) इच्छा शक्ति, (१५) अमरत्व-साधन पर शाक्त दृष्टि, (१६) शुष्क ज्ञान और दिव्य ज्ञान (१७) जपविज्ञान, (१८) नादतत्त्व, (१९) शाक्त दृष्टि से गुरुतत्त्व आदि अट्ठाइस निबन्धों का संकलन इस ग्रन्थ में किया गया है। स्थानाभाव के कारण उनका विस्तृत विवेचन यहाँ नहीं किया जा सकता।

ज्ञानगंज, वृन्दावन, आदि सिद्ध क्षेत्रों का स्वरूप निरूपण और रहस्य तथा योग-द्वारा वज्रदेह की प्राप्ति आदि ऐसे विषय हैं जो बुद्धिगम्य न होकर अलौकिक अनुभूति की अपेक्षा रखते हैं। उनके वर्णन पढ़कर साधारण बुद्धिजीवी मानव, जो इन विषयों का वैज्ञानिक दृष्टि से साक्षात्कार और प्रमाण माँगता है, अवश्य ही चकित, स्तम्भित तथा आश्चर्य से अभिभूत तो होगा किन्तु उसकी जिज्ञासा की पूर्ण तृप्ति और उसकी शंकाओं का समाधान नहीं हो सकता। इसी प्रकार इन निबन्धों में ऐसे अनेक स्थल हैं जो आपाततः परस्पर विरोधी कथनों से कदर्थित प्रतीत होते हैं और जिन्हें स्वयं लेखक ने बुद्धिगम्य नहीं माना है, फिर भी अनुभव के तारतम्य तथा दृष्टिभङ्गी के भेद के आधार पर उनमें समन्वय और सङ्गति बैठालने की चेष्टा की गई है।

हिन्दी साहित्य में तन्त्र साहित्य के परम विद्वान् कविराजजी के ये ग्रन्थ अनेक दृष्टियों से परम उपादेय, ज्ञानवर्धक, तथा विचारोत्तेजक हैं। कविराजजी की, तन्त्रतत्त्व और तन्त्र-साधना विषयक यह प्रौढ़ गवेषणा उनके प्रगाढ़ पाण्डित्य, विशाल अध्ययन, मौलिक चिन्तन तथा सिद्ध महामानवों के चरणों में बैठकर उपलब्ध किये हुए साधन-रहस्यों की विलक्षण अनुभूति के आलोक से उद्भासित हो रही है। साधना-पथ पर चलनेवाले साधनों के लिए इसमें अनेक उपादेय निर्देश संनिविष्ट हैं। तत्त्व जिज्ञासु दार्शनिकों के लिए विविध दृष्टिभङ्गियों का समन्वयात्मक प्रसाद यहाँ उपस्थित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानविकी पारिभाषिक कोश

ENCYCLOPAEDIA OF HUMANITIES

सम्पादक : डॉ० नगेन्द्र

079574

हिन्दी को ज्ञानात्मक साहित्य से समृद्ध करने का अभिनव प्रयास !

इस कोश की योजना की पूर्ति पाँच खण्डों में होगी :

साहित्य खण्ड : सम्पादक डॉ० नगेन्द्र
दर्शन खण्ड : सम्पादक डॉ० वी० एस० नरवणे
मनोविज्ञान खण्ड : सम्पादक डॉ० पद्मा अग्रवाल
समाजशास्त्र खण्ड : सम्पादक डॉ० श्यामाचरण दुबे
ललित कला खण्ड : सम्पादक डॉ० सुरेश अवस्थी

दो खण्ड प्रकाशित हो गये

साहित्य खण्ड

पाश्चात्य का साहित्य एवं साहित्यशास्त्रीय संकल्पनाएँ हमारी साहित्यिक गतिविधियों एवं उपलब्धियों, धाराओं और सिद्धान्तवादों को एक अवधि से प्रभावित कर रही हैं। "साहित्य खण्ड" में पाश्चात्य संकल्पनाओं और सिद्धान्तवादों की सोदाहरण, सामान्य व्याख्याएँ-परिभाषाएँ प्रस्तुत की गयी हैं, तथा समानान्तर भारतीय संकल्पनाओं के सन्दर्भ में उनके तुलनात्मक निरूपण के साथ-साथ उनके हिन्दी-पर्यायों का निर्धारण किया गया है।

मूल्य १२.५०

दर्शन खण्ड

दर्शनशास्त्र के क्षेत्र की पाश्चात्य संकल्पनाओं के पर्याय एवं परिभाषाएँ प्रस्तुत करने वाला खण्ड। भारतीय दर्शन की एक अपनी लम्बी परम्परा है; आधुनिक युग में उसका अध्ययन जिन पाश्चात्य सिद्धान्तों और शब्दों में किया जाता है, उसके लिए "दर्शन खण्ड" अतीव उपयोगी सिद्ध होगा। दर्शन-शास्त्र के प्राध्यापकों एवं छात्रों के लिए आवश्यक रूप से संग्रहणीय सन्दर्भ-ग्रन्थ।

मूल्य १२.५०

अन्य खण्ड शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

राजकमल

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६ पटना-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रैमासिक **आलोचना** के

स्थायी ग्राहक बनिये, और इसके चार-खण्डीय

स्वातन्त्र्योत्तर-हिन्दी-साहित्य-विशेषांक

की प्रतियाँ १८ रुपयों की जगह केवल १२ रुपयों में पाइए !

फुटकर में इन खण्डों का मूल्य इस प्रकार है

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक–१	जनवरी ६५ का अंक	६ रुपये
,, ,, २	अप्रैल ६५ का अंक	४ रुपये
,, ,, ३	जुलाई ६५ का अंक	४ रुपये
,, ,, ४	अक्तूबर ६५ का अंक	४ रुपये

स्वातन्त्र्योत्तर-हिन्दी-साहित्य-विशेषांक

में लगभग १२० निबन्ध होंगे

हिन्दी आलोचना पर	४
हिन्दी कविता पर	५
हिन्दी उपन्यास पर	१
हिन्दी नाटक, एकांकी, रेडियो तथा रंगमंच पर	३
हिन्दी कहानी पर	३
हिन्दी निबन्ध पर	१
हिन्दी में बाल-साहित्य, समाजशास्त्रीय साहित्य तथा वैज्ञानिक साहित्य पर	२
हिन्दी में हिन्दीतर भारतीय तथा विदेशी साहित्य पर, एवं विदेशों में हिन्दी साहित्य पर	१४
हिन्दी में शोधकार्य पर	१
साहित्य के नये मानमूल्यों, आधुनिकता और सामयिकता, परम्परा और प्रयोग, लेखक और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, लेखक और मानववाद, लेखक और युग के केन्द्रीय प्रश्न, सौन्दर्यशास्त्र के नये आधार, इत्यादि सामयिक प्रश्नों पर	१९
साहित्यिकों के रेखाचित्र	३१
श्रेष्ठतम कृतियों के पुनर्मूल्यांकन	२७
जनपदीय भाषाओं का नया साहित्य	८

प्रत्येक अंक को रजिस्टरी से पाने के लिए
१४ रुपये का मनीआर्डर आज ही भेजिए !

राजकमल

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६ पटना-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री ओंप्रकाश, मैनेजिंग डाइरेक्टर, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि०, ८ फ़ैज़ बाजार, दिल्ली के लिए श्री सत्यप्रकाश गुप्ता द्वारा नवीन प्रेस, दिल्ली में मुद्रित।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar